प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, राष्ट्रभाषा मुद्रण, वाराणसी

संवत् : २०१९, तृतीय संस्करण, प्रतियाँ ११००

मूल्य : ८.००

समर्पण

प्राचीन राजस्थानी संस्कृति की ज्वलंत प्रभा के

प्रतिभाशाली निरूपक

राजपूत इतिहास के अमर लेखक

वीरभूमि राजस्थान के समुज्ज्वल रत्न

विश्वविश्रुत विद्वान्

महामहोपाध्याय रायबहादुर

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा

के करकमलों में

राजस्थानी जातीय काव्य का प्रतिनिधिस्वरूप

यह परंपरानुगत लोकप्रिय प्राचीन काव्य

उनके स्नेहमय निरंतर प्रोत्साहन के लिये

संपादकों द्वारा

श्रद्धा के साथ सविनय समर्पित है।

निवेदन

जयपुर राज्य के अंतर्गत हणोतिया ग्राम के रहनेवाले बारहट नृसिंहदासजी के पुत्र बारहट बालाबख्शजी की बहुत दिनों से इच्छा थी कि राजपूतों और चारणों की रची हुई ऐतिहासिक और (डिंगल तथा पिंगल) कविता की पुस्तकें प्रकाशित की जायँ जिसमें हिंदीसाहित्य के भाडार की पूर्ति हो और ये ग्रंथ सदा के लिए रक्षित हो जायँ। इस इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने नवम्बर सन् १९२२ में ५०००) काशी नागरीप्रचारिणी सभा को दिए और सन् १९२३ में २०००) और दिए। इन ७०००) से ३।।) वार्षिक सूद के १२०००) के अंकित मूल्य के गवर्मेंट प्रामिसरी नोट खरीद लिए गए हैं। इनकी वार्षिक आय ४२०) होगी। बारहट बाला-बख्शजी ने यह निश्चय किया है कि इस आय से तथा साधारण व्यय के अनंतर पुस्तकों की बिक्री से जो आय हो अथवा जो कुछ सहायतार्थ और कहीं से मिले उसमें 'बालाबख्श राजपूत चारण पुस्तकमाला' नाम की एक ग्रंथावली प्रकाशित की जाय जिसमें पहले राजपूतों और चारणों के रचित प्राचीन ऐतिहासिक तथा काव्यग्रथ प्रकाशित किए जायँ और उनके छप जाने अथवा अभाव में किसी जातीय संप्रदाय के किसी व्यक्ति के लिखे ऐसे प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ, ख्याति आदि छापे जायँ जिनका संबंध राजपूतों अथवा चारणों से हो। बारहट बालाबख्शजी का दानपत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के तीसवें वार्षिक विवरण में अविकल प्रकाशित कर दिया गया है। उसकी धाराओं के अनुकूल काशी नागरी-प्रचारिणी सभा इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करती है।

विषयसूची

भूमिका

महाकवि महाराज पृथ्वीराज राठोड़ की 'किसन-रुकमणीरी वेलि' नामक ग्रथ का सपादन करते समय, हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के सिलसिले में हमें राजस्थान के इस सुप्रसिद्ध, प्राचीन 'ढोला मारूरा दूहा' नामक काव्य की अनेक प्रतियाँ देखने को मिलीं। तभी हमारा विचार हुआ कि इस सुंदर काव्य को सुदर रूप से सपादित करके हिंदी जनता के सामने रखा जाय। यह आज से कोई पॉच छः बरस पहले की बात है।

वेलि का कार्य समाप्त होते ही हमने तुरत इस कार्य को हाथ में लिया और आज लगभग पॉच बरसों के परिश्रम के बाद हम इसे पाठकों की सेवा मे उपस्थित कर सके हैं।

ढोला मारूरा दूहा काव्य की हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान के पुस्तक भंडारों में बहुतायत से मिलती हैं। परतु उनमें से अधिकाश दूहा-चौपाइयों में हैं। असली काव्य आरभ में सबका सब दूहों में ही लिखा गया पर आगे चलकर बहुत से दूहे लोग भूल गए, केवल बीच बीच के कुछ दूहे बच रहे जिनका कथासूत्र बिलकुल छिन्नभिन्न था। इस कथासूत्र को मिलाने के लिये जैन कवि कुशललाभ ने सवत् १६१८ के लगभग चौपाइयाँ बनाईं और उनको दूहों के बीच में रखकर कथासूत्र ठीक कर दिया। आजकल अधिकाश प्रतियाँ इसी कुशललाभ की रचना की ही प्राप्त होती हैं। केवल दूहों के मूलरूप की प्रतियाँ कहीं भूले भटके ही मिलती हैं। इस प्राचीन मूलरूप की पाँच प्रतियाँ हमे बीकानेर राज्य में प्राप्त हुई। दोनों रूपों की कोई १७ प्रतियाँ एकत्र करके हमने अपना सपादन कार्य आरंभ किया। इन प्रतियों की खोज में हमे जोधपुर, जयपुर, नागोर और बीकानेर राज्य के चूरू, सरदार शहर आदि भिन्न भिन्न स्थानों की यात्राएँ करनी पड़ीं।

ढोला मारूरा दूहा एक प्राचीन जनप्रिय लोक गीत था। राजस्थान में इसका बहुत प्रचार था। यहाँ तक कि इसके नायक नायिका ढोला और मारवणी के नाम साहित्य और बोलचाल मे नायक नायिका के अर्थ मे रूढ़ हो गए हैं। सिंध, गुजरात, मध्यभारत और मध्यप्रदेश के कतिपाय भागों में इसकी कथा अभी अनेक भिन्न भिन्न रूपों मे प्रचलित मिलती है। राजस्थान

मे यह इस समय भी ढोली, ढाढी आदि गाने का पेशा करनेवाली जातियों के मुँह से नाना विकृत रूपों में सुना जाता है। ये रूप यहाँ तक विकृत हो गए हैं कि लोग इसका नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। जब हमने श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा से इसका सर्वप्रथम जिक्र किया तो वे चौंक और कहने लगे कि क्यों इसके पीछे समय नष्ट करते हैं। ग्रंथ की कथा ज्ञात होने और वास्तविक बात मालूम होने पर उनका परितोष हुआ।

संपादन का कार्य हमने जितना समझा था उतना सहज न निकला। किसी प्रति में चार सौ, सवा चार सौ, से अधिक दूहे नहीं थे पर उनमें भिन्नता बहुत अधिक थी। समस्त प्रतियों के दूहों की कुल संख्या डेढ़ दो हजार से कम न निकली। हमने प्राचीन प्रतियों के आधार पर ६७४ दूहे चुन लिए और उन्हीं को मूलपाठ में सम्मिलित किया। इनमें भी कुछ दूहे ऐसे हैं जो प्राचीन नहीं ज्ञात होते पर काव्यसौंदर्य की दृष्टि से स्वीकृत किए गए हैं। ऐसे दूहों को [ ] इस प्रकार के कोष्ठकों के भीतर रखा गया है। अन्यान्य दूहों को, तथा इस संबंध में प्राप्त समस्त सामग्री को, हमने परिशिष्ट में दे दिया है जिससे पाठकों को सब कुछ एकत्र ही प्राप्त हो जाय।

पाठांतर तैयार करने के कार्य में बहुत अधिक समय लगा। प्रत्येक दूहे में अनेक पाठांतर मिले। इस विषय में पर्याप्त सावधानी रखी गई है पर फिर भी कुछ प्रतियों के पाठांतर दृष्टिदोष से, या प्रतिलिपि उतारते समय, बच गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इस काम ने इतना समय लिया कि अंत में हमने कई एक प्रतियों के, जो विशेष महत्त्व की नहीं थीं, केवल महत्त्वपूर्ण पाठांतर ही लिए। (य) प्रति हमें बहुत बाद में मिली अतएव उसके भी पूरे पाठांतर हम नहीं दे सके।

इस ग्रंथ को तैयार करने में हमें अनेक दिशाओं से अनेक प्रकार की सहायता मिली और यहाँ पर हम अपने समस्त सहायकों के प्रति सधन्यवाद हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। राजपूत इतिहास के विश्वविश्रुत विद्वान् परम श्रद्धेय महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा, हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और काशी के हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रधान रायबहादुर श्यामसुंदरदासजी बी० ए०, राजस्थानी साहित्य के विद्वान् जयपुर निवासी पुरोहित हरिनारायणजी बी० ए०, विद्याभूषण, और राजस्थान के स्वनामधन्य उदारमना सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला ने हमें प्रत्येक प्रकार से

उत्साहित किया। श्रीओझाजी ने बहुत कष्ट उठाकर संपूर्ण ग्रथ को सुना और हमें कई उपयोगी और आवश्यक सूचनाएँ देकर अनुगृहीत किया। अपना अमूल्य समय देकर उन्होंने इतिहास-सबधी बातों का विस्तृत स्पष्टीकरण लिखवा भेजा और मूल की अनेक कठिनाइयों को सुलझाने में हमारी सहायता की। पूर्वपरिचय न होने पर भी इस प्रकार अत्यंत प्रेमपूर्वक उन्होंने जो सहायता दी उसके लिये हम नहीं जानते कि किन शब्दो मे उनका धन्यवाद करें। बाबू श्यामसुदरदासजी ने अन्यान्य सहायताओं के साथ इस ग्रथ के कुछ अश के प्रूफ देखने का भी कष्ट उठाया। सेठ घनश्यामदासजी ने हमें सब प्रकार से प्रोत्साहित करने के साथ-साथ इस ग्रथ मे दिए गए तीन चित्रों का प्रकाशन व्यय अपने ऊपर उठा लिया। इसके अतिरिक्त बिड़ला परिवार ने ग्रथ की दो सौ प्रतियाँ लेने का पहले ही वचन देकर इसके मुद्रण और प्रकाशन मे बड़ी भारी सहायता की। हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त और राय कृष्णदासजी से भी हमे इस विषय में बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला।

जोधपुर के सरदार म्यूजियम के सुपरिंटेंडेंट, इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ तथा प० रामकर्ण आसोपा ने इस ग्रथ की अनेक प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त करने में हमारी अमूल्य सहायता की। उनकी सहायता के बिना हमारा कार्य इतना सफलतापूर्वक सिद्ध न होता। बीकानेर के राँगड़ी-स्थित जैनों के बड़े उपासरे के श्रीपूजजी तथा अन्य प्रबधकों ने वहाँ के पुस्तक-भडार से कई प्रतियाँ उदारतापूर्वक हमें प्रदान कीं। श्रीयुत रामनरेशजी त्रिपाठी ने भी गुजराती की इस संबध की एकाध छपी पुस्तक हमे भेजने की कृपा की।

ग्रथ मे जो तीन प्राचीन चित्र दिए गए हैं। वे जोधपुर के सरदार-म्यूजियम में सुरक्षित चित्रमाला से लिए गए है। उन्हे ग्रथ में देने की अनुमति प्रदान करने के लिये हम जोधपुर राज्य और उक्त म्यूजियम के प्रधान पदाधिकारी श्री विश्वेश्वरनाथजी रेउ के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते है।

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा इस वृहत् ग्रथ के प्रकाशन का भार यदि अपने ऊपर न ले लेती तो इस रूप मे इसका प्रकाशित होना असंभव-सा था। अतः इसके लिये सभा के प्राण बाबू श्यामसुदरदासजी, तथा (अब,

मे यह इस समय भी ढोली, ढाढी आदि गाने का पेशा करनेवाली जातियों के मुँह से नाना विकृत रूपो में सुना जाता है। ये रूप यहाँ तक विकृत हो गए हैं कि लोग इसका नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। जब हमने श्री गौरीशकर हीराचदजी ओझा से इसका सर्वप्रथम जिक्र किया तो वे चौंके और कहने लगे कि क्यों इसके पीछे समय नष्ट करते हैं। ग्रथ की कथा ज्ञात होने और वास्तविक बात मालूम होने पर उनका परितोष हुआ।

सपादन का कार्य हमने जितना समझा था उतना सहज न निकला। किसी प्रति मे चार सौ, सवा चार सौ, से अधिक दूहे नहीं थे पर उनमें भिन्नता बहुत अधिक थी। समस्त प्रतियों के दूहों की कुल सख्या डेढ दो हजार से कम न निकली। हमने प्राचीन प्रतियों के आधार पर ६७४ दूहे चुन लिए और उन्हीं को मूलपाठ मे संमिलित किया। इनमें भी कुछ दूहे ऐसे हैं जो प्राचीन नहीं ज्ञात होते पर काव्यसौंदर्य की दृष्टि से स्वीकृत किए गए हैं। ऐसे दूहों को [ ] इस प्रकार के कोष्ठकों के भीतर रखा गया है। अन्यान्य दूहों को, तथा इस सबंध में प्राप्त समस्त सामग्री को, हमने परिशिष्ट मे दे दिया है जिससे पाठकों को सब कुछ एकत्र ही प्राप्त हो जाय।

पाठातर तैयार करने के कार्य मे बहुत अधिक समय लगा। प्रत्येक दूहे मे अनेक पाठातर मिले। इस विषय मे पर्याप्त सावधानी रखी गई है पर फिर भी कुछ प्रतियों के पाठातर दृष्टिदोष से, या प्रतिलिपि उतारते समय, बच गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इस काम ने इतना समय लिया कि अंत में हमने कई एक प्रतियों के, जो विशेष महत्त्व की नहीं थीं, केवल महत्वपूर्ण पाठातर ही लिए। (थ) प्रति हमें बहुत बाद में मिली अतएव उसके भी पूरे पाठातर हम नहीं दे सके।

इस ग्रथ को तैयार करने में हमे अनेक दिशाओं से अनेक प्रकार की सहायता मिली और यहाँ पर हम अपने समस्त सहायकों के प्रति सधन्यवाद हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। राजपूत इतिहास के विश्वविश्रुत विद्वान् परम श्रद्धेय महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशकर हीराचदजी ओझा, हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और काशी के हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रधान रायबहादुर श्यामसुदरदासजी बी० ए०, राजस्थानी साहित्य के विद्वान् जयपुर निवासी पुरोहित हरिनारायणजी बी० ए०, विद्याभूषण, और राजस्थान के स्वनामधन्य उदारमना सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला ने हमें प्रत्येक प्रकार से

उत्साहित किया। श्रीओझाजी ने बहुत कष्ट उठाकर सपूर्ण ग्रथ को सुना और हमे कई उपयोगी और आवश्यक सूचनाएँ देकर अनुगृहीत किया। अपना अमूल्य समय देकर उन्होने इतिहास सबधी बातों का विस्तृत स्पष्टीकरण लिखवा भेजा और मूल की अनेक कठिनाइयों को सुलझाने में हमारी सहायता की। पूर्वपरिचय न होने पर भी इस प्रकार अत्यंत प्रेमपूर्वक उन्होंने जो सहायता दी उसके लिये हम नहीं जानते कि किन शब्दों मे उनका धन्यवाद करें। बाबू श्यामसुदरदासजी ने अन्यान्य सहायताओं के साथ इस ग्रथ के कुछ अश के प्रूफ देखने का भी कष्ट उठाया। सेठ घनश्यामदासजी ने हमे सब प्रकार से प्रोत्साहित करने के साथ-साथ इस ग्रथ मे दिए गए तीन चित्रों का प्रकाशन व्यय अपने ऊपर उठा लिया। इसके अतिरिक्त बिडला परिवार ने ग्रथ की दो सौ प्रतियाँ लेने का पहले ही वचन देकर इसके मुद्रण और प्रकाशन में बड़ी भारी सहायता की। हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त और राय कृष्णदासजी से भी हमे इस विषय मे बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला।

जोधपुर के सरदार म्यूजियम के सुपरिंटेंडेंट, इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ तथा प० रामकर्ण आसोपा ने इस ग्रथ की अनेक प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त करने मे हमारी अमूल्य सहायता की। उनकी सहायता के बिना हमारा कार्य इतना सफलतापूर्वक सिद्ध न होता। बीकानेर के राँगड़ी-स्थित जैनों के बड़े उपासरे के श्रीपूजजी तथा अन्य प्रबधकों ने वहाँ के पुस्तक-भंडार से कई प्रतियाँ उदारतापूर्वक हमे प्रदान कीं। श्रीयुत रामनरेशजी त्रिपाठी ने भी गुजराती की इस सबध की एकाध छपी पुस्तक हमे भेजने की कृपा की।

ग्रथ मे जो तीन प्राचीन चित्र दिए गए हैं। वे जोधपुर के सरदार-म्यूजियम में सुरक्षित चित्रमाला से लिए गए हैं। उन्हे ग्रथ में देने की अनुमति प्रदान करने के लिये हम जोधपुर राज्य और उक्त म्यूजियम के प्रधान पदाधिकारी श्री विश्वेश्वरनाथजी रेउ के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा इस वृहत् ग्रंथ के प्रकाशन का भार यदि अपने ऊपर न ले लेती तो इस रूप में इसका प्रकाशित होना असभव-सा था। अतः इसके लिये सभा के प्राण बाबू श्यामसुदरदासजी, तथा (अब,

भूतपूर्व) प्रधानमंत्री राय कृष्णदासजी एवं सभा का प्रबंधमंडल, विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

अंत में हम अपने सुहृद्वर अजमेर-निवासी श्रीयुत लेफ्टिनेंट महेशचंद्र शर्मा एम० ए०, एल०-एल बी० और जोधपुर के जसवंत कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर श्रीयुत् केदारनाथ तिवारी एम० ए०, एल-एल० बी० को धन्यवाद देना सबसे आवश्यक समझते हैं जिन्होंने बड़े प्रेम और निःस्वार्थ भाव से एक नहीं अनेक प्रकार से, हमारी सहायता की।

रामसिंह
सूर्यकरण
नरोत्तम दास

प्रवचन

(१)

'ढोला मारूरा दूहा' राजस्थानी भाषा का एक प्रसिद्ध काव्य है। इस काव्य के दो रूप पाए जाते हैं—पहला केवल दोहों में है, जो प्राचीन है और दूसरा दोहे और चौपाइयो मे है। संवत् १६०० के लगभग जेसलमेर में कुशललाभ नाम के एक जैन कवि थे। उनके समय मे 'ढोला मारू काव्य' प्रसिद्ध था परंतु संभवतः वह अपने सपूर्ण रूप मे नहीं मिलता था। जितना कुछ मिल सका उतना उन्होंने एकत्र किया और कथासूत्र मिलाने के लिये उसमें अपनी ओर से चौपाइयाँ बनाकर जोड़ दीं। इन चौपाइयों के अंत में उन्होंने लिखा है कि 'दूहा घणा पुराणा अछै'—अर्थात् दोहे बहुत पुराने हैं, अनुमानतः 'घणा पुराणा' का अर्थ सौ वर्ष पुराना तो होगा ही। इस अनुमान पर असली काव्य का समय स० १५०० विक्रमी के लगभग होगा। इसकी भाषा को देखने से भी प्रायः इसी अनुमान की पुष्टि होती है। अतः यह काव्य लगभग ५०० वर्ष पुराना तो अवश्य है। इसके संपादकों ने परिश्रमपूर्वक इस काव्य के प्राचीन रूप—अर्थात् केवल दोहोंवाले रूप—का पता लगाकर उसका सुचारु रूप से सपादन किया है। दोहे चौपाइयोंवाला रूप तो हस्तलिखित प्रतियों मे भी बहुत मिलता है परंतु केवल दोहोंवाला प्राचीन रूप अभी तक अप्राप्य सा ही था।

यह काव्य भाषा एव भाव दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसकी भाषा कृत्रिम डिंगळ (राजस्थानी) नहीं है जो साहित्य में प्रसिद्ध है। यह तत्कालीन बोलचाल की राजस्थानी भाषा में लिखा गया है। भाषा के इतिहास के अध्ययन के लिये यह काव्य उपयोगी सिद्ध होगा। कविता की दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। यह एक विचित्र (रोमेंटिक) प्रेम-गाथा है और इसमें मानवहृदय के कोमल मनोभावों एव बाह्य प्रकृति के मनोहर चित्र अंकित किए गए हैं।

काव्य का नायक ऐतिहासिक व्यक्ति है परतु घटनाओं एव वर्णनों में कल्पना का बहुत बड़ा पुट है जो ऐसी रचनाओं मे प्रायः स्वाभाविक है। काव्य का मूल रूप तो प्राचीन है परन्तु बाद में समय समय पर इसमें नए

दोहे भी मिलाए जाते रहे हैं। संपादकों ने प्रायः १६–१७ हस्तलिखित प्रतियाँ एकत्र कर इसका संपादन किया है और सं० १६६७ की लिखी एक प्रति तथा सं० १७२० के लगभग की लिखी दूसरी प्रति संपादन के आधारस्वरूप ग्रहण की है। नई मिलावट विशेषकर इस समय के बाद ही हुई है। इससे पूर्व जो मिलावट हुई है वह नगण्य है, फिर भी संपादकों ने सावधानी से काम लिया है।

इन्हीं संपादकों ने राजस्थानी भाषा के एक अन्य सुप्रसिद्ध काव्य पृथ्वीराज कृत 'किसन रुकमिणीरी वेलि' का उत्तम संपादन किया है जो प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित हो रहा है। यह इनका दूसरा प्रयत्न है। इस ग्रंथ के साथ भी 'वेलि' की भाँति विस्तृत भूमिका, अर्थ, पाठांतर, शब्द-कोष एवं विस्तृत टिप्पणियाँ रहेंगी। ग्रंथ प्रकाशित होने पर राजस्थानी एवं हिंदी साहित्य के लिये उपयोगी होगा, इसमें संदेह नहीं। इसका प्रकाशन किसी भी प्रकाशन संस्था के लिये गौरव की बात होगी। मैं इस काव्य को शीघ्र ही प्रकाशित रूप में देखना चाहता हूँ।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा
ता० १३—७—३१

---

(२)

ढोला मारूरा दूहा नामक राजस्थानी भाषा के इस काव्य का प्रवचन लिखते हुए मुझे बड़ा हर्ष होता है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन साहित्य-भंडार बहुत विस्तृत है जिसमें अनेक अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। परंतु अभी तक वे अज्ञान के अंधकारपूर्ण गहरे गर्त्त में ही छिपे हैं, उनको प्रकाश में लाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं हुआ। राजस्थान के विद्वानों और धनकुबेरों के लिये यह कोई गौरव की बात नहीं है।

यह ढोला मारू काव्य भी राजस्थानी साहित्य का एक श्रेष्ठ रत्न है। इसकी मनोमुग्धकारिणी कहानी का संबंध आँबेर के आख्यानों तथा वीर कछवाहा राजवंश से लोक में प्रकट है। ढूँढाहड़ देश की कहानियों तथा

वातों के सहित्य मे राजकुमार ढोला और रूपराशि राजकुमारी मारुवणी की सुदर कहानी का स्थान बहुत ऊँचा है। उसका प्रचार यहाँ तक है कि बाजार मे पोथी बेचनेवालों के पास भी ढोला मारू की बात अथवा ढोला-मारू का ख्याल नाम की छोटी-छोटी पुस्तकें हम देखते है। वह मोहिनी कथा कितने ही लालों को पलने मे हुलराने और उनके कमलनयनों मे सर्वेंद्रिय-दुःखहारिणी सुखनिंदिया को बुलाने मे जादू का सा कार्य करती रही है। मैं अपनी ही कहूँ कि न जाने कितनी रातो मे अपनी पूज्य मातुश्री तथा अपने प्रिय कहानी कहनेवाले ब्राह्मण गगाबख्श से राज रानी की इस सुमधुर कहानी को चाव के साथ सुनकर मैने इसका पीयूष पान किया है और इसके कई अश तो अभी तक मेरे स्मृतिपटल पर खचित हैं। चारणों और भाटों ने इस कहानी को नाना रूप देने मे अपनी बुद्धि और चतुराई का खूब उपयोग किया है और इसके कथानकों एवं वृत्तातों को चित्राकित करने में अगणित चित्रकारों ने अपने कौशल का प्रदर्शन किया है। इसको यदि राजस्थान के सर्वोत्तम जातीय काव्यों मे से एक कहा जाय तो कोई असंगति नहीं।

इतिहास की कसौटी पर कसे जाने से इसकी काति में कुछ भी न्यूनता नहीं आने की। वास्तविक वृत्त एवं तिथि आदि के भेद से इसके अमरत्व और गौरव को कोई बाधा नहीं पहुँच सकती। अवश्य ही ढूँढाहड़ राज्य के मूल सस्थापक के साथ इस कहानी का उतना संबध नहीं। सोढदेवजी के पुत्र दूलहरायजी अपने पिता की गद्दी पर मि० माघ सुदी ६ सवत् १०६२ को[1] विराजे थे और उनका स्वर्गवास खोह स्थान में मि० मार्गशीर्ष सुदी २ सं० १०९३ को हुआ था जब वे ग्वालियर पर आक्रमण करनेवाले दक्षिण के राजाओं को पराजित कर लौट रहे थे। महामति टाड साहब ने भाटों से जिस रूप में इस कहानी को सुना उसी रूप मे लिख दिया। इतने पर भी यह कहानी अपनी उत्तमता के कारण राजस्थानी साहित्य-भडार मे एक निराला महत्त्व रखती है और कृतविद्य अथच कार्यकुशल और परिश्रमी

---

१ संपादकों की सम्मति में ढोला और दूलहराय एक ही व्यक्ति नहीं जैसा कि टाड ने लिखा है। परंतु, जैसी कि श्री ओझाजी की सम्मति है, दूलहराय का समय ग्यारहवीं शताब्दी न होकर तेरहवीं शताब्दी है तथा ढोला दूलहराय का पूर्वज था और दसवीं शताब्दी के लगभग हुआ है।—संपादक।

संपादकत्रय के हाथों में पड़कर इसे वह सुंदर रूप मिला है कि जिससे इसकी शोभा में द्विगुणित श्रीवृद्धि हुई है।

राजस्थान के पुस्तक भंडारों में अभी बहुसंख्यक अमूल्य ग्रंथरत्न पड़े हैं जो कीड़ों के आहार बने जा रहे हैं। उनका अविलंब प्रकाशित होना नितांत आवश्यक है जिससे उनका योगक्षेम हो सके। इस ग्रंथरत्न को इस सुसंपादित रूप में प्रकाशित करने के लिये विद्वान् संपादक तथा नागरीप्रचारिणी सभा के प्रबंधक हार्दिक अभिनंदन के पात्र हैं।

जयपुर
ता० २०-२-३१

पुरोहित हरिनारायण शर्मा
(बी० ए०, विद्याभूषण)

---

(३)

राजपूताना अपने पराक्रमी वीरों और साहसिक एवं कुशल व्यापारियों के लिये वैसे तो काफी प्रसिद्ध है, किंतु यह कम लोग जानते हैं कि राजपूताने ने कविता और कला की भी काफी सेवा की है। राजपूत सभ्यता भी एक निराली चीज है, यहाँ तक कि आज भी अन्य प्रांतीय नरेश राजपूत सभ्यता का अनुकरण करने में अपना गौरव समझते हैं। चित्रकला में राजपूताने का स्थान किसी समय बहुत ऊँचा था और राजपूत नरेशों के दरबारी कवियों ने कविता में काफी नाम कमाया था। इस समय राजपूत चित्रकला तो अजायबघरों या कद्रदान शौकीनों के संग्रहों तक ही परिसीमित है, किंतु राजस्थानी कविता का तो इससे भी बुरा हाल है। संतोष इतना ही है कि पुरानी पूँजी नष्ट नहीं हुई है। राजपूताने के पुस्तकालयों एवं भाट-चारणों के कंठों में, यह कला आज भी मौजूद है। बात यह है कि कला मर नहीं गई है, जिंदा है सही, मगर नींद में है। इसे जगा देना राजस्थानी सपूतों का काम है; ठाकुर रामसिंहजी, पंडित सूर्यकरणजी पारीक और पंडित नरोत्तमदासजी स्वामी ने इस सोती हुई कला को जगाने का बीड़ा उठाया है। **क्रिसन-रुकमिणीरी वेलि** का उद्धार तो हो चुका, राजस्थान का एक अमूल्य रत्न तो संसार के सामने आ गया। '**ढोला मारूरा दूहा**' के उद्धार का यह प्रयत्न इनका द्वितीय प्रयास है। पाठकों को इसमें पर्याप्त रस मिलेगा। मारवाड़ी चित्त को चाहे इसमें विशेष नवीनता भले ही प्रतीत न हो, किंतु मीठी चीज

बराबर खाने पर भी मीठी ही लगती है। इस न्याय से मरुजन इसके रसपान से अघा जायँगे, ऐसा भय नहीं है। यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी कि यह पहली पुस्तक होगी जिसमें राजस्थान की आत्मा का हूबहू चित्र पाया जाता है।

इसका जो प्रसंग मुझे सबसे अधिक पसंद आया और जिसकी ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँगा, वह है इसमें किया हुआ मरुभूमि का वर्णन। वह कितना स्वाभाविक एवं कितना सच्चा है! पाँच सौ साल पहले का किया हुआ वर्णन ऐसा मालूम होता है मानो आज का ही हो।

माळवणी (मालवे की) और मारवणी (मारवाड़ की) दोनों ढोला की स्त्रियाँ थीं। दोनों एक दूसरे के प्रांत की, विनोद में, निंदा करती हैं। माळवणी कहती है—

बाबा, म देइस मारुवाँ सूधा एवाळाँह।
कंधि कुहाड़उ, सिरि घड़उ, वासउ मझि थळाँह ॥६५८॥

बाबा, म देसइ मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि।
हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सींचंती य मरेसि ॥६५९॥

मारू, थाँकइ देसड़इ एक न भाजइ रिड्ड।
ऊचाळउ, क अवरसणउ, कइ फाकउ, कइ तिड्ड ॥६६०॥

जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर कँटाळा रूँख।
आके फोगे छाँहड़ी, हूँछाँ भाँजइ भूख ॥६६१॥

अनुवाद—हे बाबा, मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत ब्याहना, जो सीधे सादे पशु चरानेवाले होते हैं। वहाँ कंधे पर कुल्हाड़ा और सिर पर घड़ा रखना होगा और जंगल में वास करना होगा।

हे बाबा, मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत देना, चाहे मैं कुँवारी ही रह जाऊँ। वहाँ दिन भर हाथ में कटोरा और सिर पर घड़ा—इस प्रकार पानी भरती भरती ही मर जाऊँगी।

हे मारवणी; तुम्हारे मारवाड़ देश में एक भी कष्ट दूर नहीं होता, या तो ऊचाळा (अकाल में परदेस गमन) या अवर्षण या फाका या टिड्डियाँ, कोई न कोई उपद्रव अवश्य रहता है।

मारवाड़ की भूमि में पीनेवाले (पैंणे) साँप रहते हैं, कैर (करील) और ऊँटकटारा (एक झाड़ी विशेष) ही पेड़ों की गिनती में आते हैं, आक

और फोग की ही छाया मिलती है और भुरट घास के दानों से पेट भरना पड़ता है।

मारवणी चुपचाप सुन लेती है, किंतु मालवणी फिर ताना मारती है—

पहिरण ओढण कंबळा, साठे पुरिसे नीर।
आपण लोक उभाँखरा, गाडर छाळा चीर॥६६२॥
बाळउँ, बाबा, देसड़उ पाँणी जिहाँ कुवाँह।
आधीरात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसाँ मुवाँह॥६५५॥

अनुवाद—जहाँ पहनने और ओढ़ने को मोटे ऊनी कंबल ही मिलते हैं, जहाँ पानी साठ पुरुष गहरा होता है, लोग भी जहाँ एक जगह नहीं टिकते और जहाँ बकरी और भेड़ का दूध मिलता है, ऐसा तुम्हारा मारवाड़ देश है।

हे बाबा, ऐसे देश को जला दूँ जहाँ पानी केवल गहरे कुँओं में ही मिलता है, जहाँ कुँओं पर पानी निकालनेवाले आधीरात को ही पुकारने लगते हैं, जैसे मनुष्यों के मरने पर पुकारा करते हैं।

अबकी बार मारवणी तुर्की व तुर्की फटकार बताती है और कहती है—

बाळूँ, बाबा, देसड़उ, जहाँ पाँणी सेवार।
ना पणिहारी झूलरउ, ना कूवइ लैंकार॥६६४॥
दुख वीसारण, मनहरण, जउ ईं नाद न हुंति।
हियड़उ रतन तळाव ज्यउँ फूटी दह दिसि जंती॥११६॥

अनुवाद—बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी पर सेवार छाई रहती है, जहाँ न तो पनिहारिनों का झुंड आता-जाता रहता है और न कुँओं पर पानी निकालनेवालों का लयपूर्ण शब्द ही सुनाई देता है।

दुःख को विस्मरण करानेवाला और मन को हरनेवाला यदि यह संगीत न होता तो हृदय रत्न-सरोवर की तरह फूटकर दशों दिशाओं में बह जाता।

सच है, कुएँ पर मालियों के 'बारे' की ध्वनि की अन्य प्रांत के लोग चाहे कद्र न करें और 'आधीरात कुहक्कड़ा' को 'ज्यउँ माणसाँ मुवाँह' की उपमा देते रहें परंतु मारवाड़ी चित्त का तो यह आज भी 'दुख वीसारण मनहरण' नाद है।

कौन ऐसा मारवाड़ी है जो मस्त होकर नीचे लिखे दोहे न गाता हो—

बाजरियाँ हरियाळियाँ, बिचि बिचि वेलाँ फूल।
जउ भरि वूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल॥२५०॥

देस सुहावउ, जळ सजळ, मीठा-बोला लोइ।
मारू-कॉमण भुईं दखिण, जइ हरि दियइ त होइ ॥४८५॥

थळ भूरा, वन भंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ।
गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ ॥४८६॥

अनुवाद—बाजरियॉ हरी हो गई हैं और बीच बीच मे वेलें फूल रही हैं। यदि भादों भर बरसता रहा तो मारू देश अमूल्य (निराली शोभावाला) होगा।

मरुस्थल बड़ा सुहावना देश है, जहॉ का जल स्वाथ्यप्रद है और लोग मधुरभाषी हैं। ऐसे मारू देश की कामिनी दक्षिण देश मे यदि भगवान् ही दें तो मिल सकती है।

भूमि (बालुकामयी होने से) भूरी है, वन झंखाड़ हैं। वहाँ चंपा उत्पन्न नहीं होता। मारवणी के गुणों की सुगधि से ही सारा वनखड महक उठा है।

ऐसे मरुदेश को मेरा शतशः प्रणाम।

घनश्यामदास बिड़ला

प्रस्तावना

पूर्वार्ध—ऐतिहासिक विवेचन और साहित्यिक आलोचना

(१) प्राक्कथन

प्रत्येक जाति के प्रारंभिक इतिहास मे गीतकाव्य, प्रेमगाथाएँ, दंतकथाएँ और कल्पित आख्यायिकाएँ विशेष रूप से प्रतिष्ठित, प्रख्यात और लोकप्रिय पाई जाती हैं। उनमे एक प्रकार की अनिर्वचनीय सरलता, चमत्कार, रससौष्ठव और रुचिग्राहक शक्ति रहती है, जो अर्वाचीन काल के कलापरिपुष्ट साहित्य में मिलनी दुर्लभ है। प्राचीन काल के गीतो और गाथाओं मे यद्यपि शब्दो और भावों की वह बुद्धिसगत जोड़-तोड़, वर्णन-शैली का वह प्रगल्भ पाडित्य और अलकार शास्त्र की वह विचित्र और सूक्ष्म छानबीन आदि नही पाए जाते, जो उत्तर काल के महाकाव्यों, नाटकों और कहानियों मे पाए जाते हैं, फिर भी इनके बदले उनमें एक अद्वितीय सरलता, सादगी, निश्छलता और मानवजीवन के आदिम भावों और मनोवृत्तियों का दिग्दर्शन मिलता है।

गीतकाव्यों की प्राचीन लोकप्रियता की ओर जब ध्यान जाता है तब यह धारणा होने लगती है कि जातीय संस्कृतिनिर्माण में इनका बहुत हाथ रहा है। इन प्राचीन गाथाओं ने हमारे उत्तरकालीन जातीय चरित्र का निर्माण करने में बहुत सहायता दी है। गीतों के प्रसिद्ध वीरों को हम श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते हैं और उनके कार्यों का स्मरण कर करके हमारे हृदय में जातीय भावना की ज्योति स्फुरित होती है। अतएव जातीयता की दृष्टि से इनका बड़ा महत्व है।

मानव समाज ने कृत्रिम सभ्यता की चमक से चकाचौंध होकर अंतस्तल की बहुत सी सरल और निष्कपट ईश्वरीय विभूतियो का विस्मरण सा कर दिया है। यही नहीं, उसने हृदय की सरल उद्भावना को 'ग्रामीणता' के दूषण से लाछित करके परित्याज्य समझ लिया है। हृदय के सच्चे भावों को सहज स्वाभाविकता के साथ प्रकट करना बहुधा काव्यसमत नहीं समझा जाता, अच्छी कविता तब तक नहीं बनी समझी जाती जब तक अलंकार

और रीतिशास्त्र के जटिल बंधनों में जकड़कर अंतःकरण के स्वच्छंद और सरल भावों को बुद्धिसंगत, ऊहा-समन्वित, कृत्रिम और अलंकृत वेश में प्रकट नहीं किया जाता। प्रकृति के सरल सौंदर्य को रत्नों और सुवर्ण से निर्मित निर्जीव आभूषणों से लदे हुए रूप में जब तक हम देख नहीं पाते तब तक हमारी कृत्रिम भावनाएँ रीझतीं नहीं। मनुष्य ने दुर्भाग्यवश अपने जीवन को इतना बनावटी बना लिया है कि क्या वस्तु, क्या पदार्थ, क्या भावनाएँ और क्या विचार, सभी में कृत्रिमता की प्रतिभा देखकर ही उसे तृप्ति होती है।

मानवजीवन की सहचारिणी कविता के उद्गम स्थल की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं, और पीछे से उसके विकास और समृद्धि के इतिहास सूत्र को लेकर आधुनिक काल में उसके परिवर्तित स्वरूप की तुलना करते हैं, तो हमको आकाश-पाताल का अंतर प्रतीत होने लगता है। इस महान् परिवर्त्तन को देखकर मन खिन्न हो जाता है। कविता की उत्पत्ति अनादि काल से है और उसने ईश्वरीय प्रतिभा की झलक के रूप में मनुष्य के हृदय में जन्म लिया था। उसने मानवजीवन में एक विचित्र आलोक, सुखद संवेदना, व्यापक सहानुभूति, एकता और प्रेम के ऐक्यसूत्र के रूप में विकास पाया था। जब तक उसका वह सरल, मधुर, निष्कपट रूप बना रहा तब तक उसने मानवजीवन का बड़ा उपकार किया। विषय वेदनाओं और जटिल आध्यात्मिक आपत्तियों के निवारण करने में उसने मनुष्य को अमृत संजीवनी का काम दिया। परंतु ज्यों ज्यों मनुष्य जटिल जगत् की दुर्भेद्य माया के जाल में फँसता गया, ज्यों ज्यों वह सरलता को छोड़कर कृत्रिमता की आराधना करने लगा और अंतःकरण के सरल संस्कारों को तिलांजलि देने लगा, त्यों त्यों उसे कविता देवी के प्राकृतिक, सुंदर, सरल और सौम्य रूप के प्रति उदासीनता होने लगी। समयांतर में उसी कृत्रिम और जटिलताप्रिय बुद्धि ने व्याकरण, रीति, अलंकार और छंद शास्त्र के बंधनों में जकड़कर कविता का एक ऐसा रूप प्रकट किया जिसने काव्य को बहुरुपिए का एक स्वाँग सा बना डाला। इसी स्वाँग को सच्ची कविता और उत्तम काव्य समझकर मनुष्य संतुष्ट और प्रसन्न रहने लगा।

निष्पाप क्रौंच-मिथुन को शरद् ऋतु के निर्मल आकाश में आनंदपूर्वक विहार करते हुए देखकर क्रूरहृदय निषाद ने बाण मार ही तो दिया। आहत प्रेमी के वियोग में विरही पक्षी ने जो करुण क्रंदन किया उसके प्रबल आघात ने

कवि की मूक हृत्तंत्री को झंकृत कर दिया। रुका हुआ काव्यप्रवाह प्रबल वेग के साथ सारे प्रतिबंधों को तोडकर अविच्छिन्न रूप से चल पड़ा। वेदना और अभिशाप की तरल तरंगे दशों दिशाओं मे गूँज उठीं और क्षितिज के अदृश्य किनारों पर टकराकर प्रतिध्वनित होने लगीं। आदि कवि वाल्मीकि की सवेदनात्मक अतःकरण की पुकार ने जिस दिन जन्म लिया उसी दिन कविता का प्रथम प्रभातोदय हुआ—

'मा, निषाद, प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्' ॥

कविता का वह प्रथम उद्रेक सरल था, स्वाभाविक था, निष्कपट था, कृत्रिम अलकरणों के निर्जीव भार से निर्मुक्त था, रीति के जटिल बधनों से रहित था, छंद था, परतु स्वच्छद। हृदय के रग मे वह रँगा हुआ था। वह कविता थी और आज भी कविता होती है। अतर क्या है? दुःख की वह मर्मभेदी कहानी कौन कहेगा?

उपर्युक्त विवेचन से हमारा आशय काव्य के कल्पनात्मक और प्राकृतिक भेदों के भिन्न भिन्न स्वरूपो को बतलाने का है। कल्पनात्मक साहित्य ने भारत में बडी उन्नति की है, यह तो सभी जानते है। सस्कृत साहित्य मे महाकवि भास, शूद्रक, कालिदास, भारवि, बाण, भवभूति, श्रीहर्ष आदि ने काव्य, नाटक गद्य, आख्यायिका आदि साहित्य को कलात्मक उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। यही हाल प्राकृत और अपभ्रश साहित्यों का भी रहा। इधर वर्तमानकाल में भारतीय भाषाओं ने भी कलात्मक दृष्टि से खूब साहित्यसृष्टि की है। बँगला, गुजराती, मराठी और हिंदी भाषाओं मे काव्यकला की दृष्टि से उत्तम साहित्य भरा पड़ा है। बिहारी, भूषण, मतिराम, केशव प्रभृति कवि कलात्मक कविता के बड़े आचार्य हो गए हैं। परंतु इन बहुमूल्य जगमगाते हुए रत्नो के होते हुए सभी भाषाओ ने अपने प्राचीन सरल लोकसाहित्य को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा है। यह स्वाभाविक भी था। मानवकौशल द्वारा निर्मित सुदर से सुदर चित्रविचित्र पुष्पों, वृक्षों और फलों से लदी हुई वाटिकाओं के होते हुए भला शिष्ट समाज जगल के सरल और कटकित परंतु सरस और सुगधित वन्य कुसुमों की सुवास लेने को क्यों जाने लगा? यही कारण हुआ कि एक समय मे सारे देश की जनरुचि और काव्यभावनाओं को आकर्षित करनेवाला गीत-गाथा और दोहामय लोकसाहित्य आधुनिक काल

की कलात्मक चमचमाहट के आगे लुप्तप्राय हो गया। इससे देश, जाति और साहित्य की बड़ी हानि हुई।

हमारे सौभाग्य से साहित्य मे अब क्रांति का युग उपस्थित हो रहा है। नवीन दृष्टिगोचर भावनाएँ, नवीन जागृति और नवीन स्फूर्ति चारों ओर हो रही है। ससार भर मे क्रांति का एक चक्र चल पड़ा है जिसका मूल मत्र Back to nature प्रकृति की ओर लौटने, प्रकृति का पुनः परिशीलन करने के लिये प्रबल प्रेरणा कर रहा है। पाश्चात्य देशों ने इस क्रांति का सबसे पहले लाभ उठाया है। वे अपने प्राचीन साहित्य के पुनरुद्धार मे कटिबद्ध होकर लग गए हैं और अब तक इस ओर प्रशसनीय कार्य कर चुके हैं। भारतीय भाषाओं के द्वार पर भी यह लहर टकरा चुकी है। बॅगला, गुजराती और मराठी ने अपने प्राचीन साहित्य की बहुत कुछ खोज कर ली है। परतु हिंदी की नींद अभी तक पूर्ण रूप से खुली नहीं। उसे खुमारी में अब भी नखशिख, नायिका-भेद, षट्ऋतु वर्णन, अलकार, रस, छंद की स्मृति बनी हुई है। परतु शुभ लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से हिंदी ने भी अपने प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात करना आरभ कर दिया है।

प्रस्तुत ग्रथ कोई लब्धप्रतिष्ठ काव्य अथवा महाकाव्य नहीं है। इसमे साहित्यिक कला की जाज्वल्यमान चमत्कृति नहीं है और न प्रबध का शास्त्र-विहित निर्वाह है। इसके विपरीत यह एक सीधी सादी दोहामय कहानी है, जिसमें मानवहृदय की सरल और स्वाभाविक भावनाओं को प्राकृतिक रगों में रॅगकर प्रकट किया गया है। यह एक ऐसा वन्यकुसुम है जो अब तक विशाल कानन की शातिपूर्ण शून्यता में स्वतन्त्रतापूर्वक आत्मानद मे लीन था। इसे यह कभी आशका न रही होगी कि इस प्रकार उसके स्वतंत्र जीवन को बदी बनाकर कुछ पढ़ेलिखे लोग सदा के लिये उसकी स्वच्छदता को छीन लेंगे।

भारतवर्ष में राजस्थानी भाषा का साहित्य इस प्रकार के प्राचीन लोकगीतों और गाथाकाव्यों से परिपूर्ण है। कुछ लोगों का कथन है कि राजस्थान देश की प्राकृतिक परिस्थिति और राजस्थानी जनता की स्वाभाविक उग्रता और रूखेपन के अनुरूप ही राजस्थानी भाषा का साहित्य भी रूखा, उग्र, उद्दड एवं वीररस प्रधान है और उसमे हृदय के कोमल, कात एव स्निग्ध भावों को व्यक्त करने के लिये न तो उपयुक्त शब्दावली है और न भावप्रदर्शन की योग्यता ही। यह एक बड़ा भारी अभियोग है। पर इसके लिये हम आलोचकों को

सर्वथा दोषी नहीं ठहरा सकते। कारण, अब तक जो कुछ थोड़ा सा राजस्थानी का साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें पाठकों को अधिकाश में तलवारों की चमचमाहट, वीर हृदयों का सामरिक उत्साह, राजपूत-प्रण-प्रतिज्ञा की दृढता अथवा किसी विकट युद्ध की दिल को दहलानेवाली भयकरता का ही वर्णन मिलता है। परतु हमारा कथन यह है कि राजस्थानी का साहित्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता।

राजस्थान की पुण्यभूमि प्राचीन काल मे भारत के अतीत गौरव, पुण्यशील कीर्ति और शिखरारूढ सभ्यता का महत्वपूर्ण केंद्र और स्तंभ रही है। कोई भी विचारशील पुरुष निष्पक्ष सत्यता के साथ यह नहीं कह सकता कि भारत के इतिहास मे अग्रणी रहनेवाली इस भूमि का साहित्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण, सर्वांग संपूर्ण, उतना ही उज्ज्वल, आदर्शमय एव उतना ही पथप्रदर्शक नहीं रहा होगा। परतु यह सब होते हुए भी सत्य को प्रकाशित करने के लिये प्रमाणों की आवश्यकता होती है। दुःख तो इस बात का है कि विद्वानों ने राजस्थान के साहित्य को अब तक उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। यही कारण है कि राजस्थानी साहित्यभाडार के उत्तमोत्तम रत्नों से परिपूर्ण होते हुए भी उनकी झलक सूर्य के प्रकाश में बाह्य जगत् को अब तक नहीं मिली। कुछ एक सस्थाओं, यथा काशी की 'नागरीप्रचारिणी सभा' और कलकत्ता की 'बगाल एशियाटिक सोसाइटी', तथा कुछ विद्वानो, यथा महामहोपाध्याय श्री गौरी-शंकर हीराचद ओझा, डाक्टर टैसीटरी, पडित रामकर्ण, मुशी देवीप्रसाद आदि, का हमको बड़ा उपकार मानना चाहिए, जिन्होंने अनवरत परिश्रम-पूर्वक खोज करके सर्वप्रथम साहित्यिक जगत् को यह महत्त्वपूर्ण सूचना दी कि इस भाषा मे भी बहुमूल्य साहित्यभाडार भरा पडा है। अब यदि आवश्यकता है तो उन परिश्रमशील अन्वेषकों की, जिनके हृदय मे राजस्थान के पूर्वगौरव के प्रति अक्षुण्ण श्रद्धा हो और जो दृढ़प्रतिज्ञ महाराणा प्रताप और बाप्पा रावल, चक्रवर्ती दिल्लीपति महाराजा पृथ्वीराज, महाकवि राठोड़ महाराज पृथ्वीराज, वीरश्रेष्ठ दुर्गादास, साहित्यरथी महाराजा जसवतसिंह एव सवाई जयसिह और भक्तशिरोमणि मीरॉबाई एव कविश्रेष्ठ चदबरदाई के उज्ज्वल यश और कृतियों को सुरक्षित रखने का उद्योग करें।

इस बात को हिंदी के सभी ज्ञाता एव विद्वान् जानते हैं कि राजस्थानी और हिंदी का चोलीदामन का साथ है। वास्तव मे देखा जाय तो हिंदी का अधिकाश प्राचीन साहित्य अपने राजस्थानी रूप में प्रकट हुआ है। हिंदी

साहित्य के इतिहास-निर्माण में राजस्थानी का बड़ा महत्वपूर्ण हाथ रहा है। चदबरदाई हिंदी का आदि कवि रहा है और वही राजस्थानी का एक श्रेष्ठ कवि भी। मीराँबाई स्त्री कवियों में हिंदी की श्रेष्ठ कवयित्री समझी जाती है और वही राजस्थानी काव्य की भी आत्मा है। इस नाते से राजस्थानी हिंदी की बड़ी बहिन हुई। अतएव राजस्थानी साहित्य का जितना उद्धार होगा, हिंदी साहित्य की समृद्धि भी उतनी ही बढ़ेगी। हमारी तो यह धारणा है कि हिंदी साहित्य यदि त्रिवेणी का सुखद और महत्वपूर्ण संगम है, तो राजस्थानी उसकी एक शाखा यमुना है और अवधी उसकी दूसरी शाखा सरस्वती। इन दोनों के बीच ब्रजभाषा रूपी गंगा की पावन तरंगिणी अपने सरस काव्य-प्रवाह को लिए हुए उत्तर भारत के रसिक समुदाय को आह्लादित करती हुई अनर्गल बह रही है। जब तक हिंदी हिंदी है, तब तक इनका साथ छूट नहीं सकता।

हिंदी भाषा के आदिकाल की ओर दृष्टि डालने पर पता लगता है कि हिंदी के वर्तमान स्वरूपनिर्माण के पूर्व गाथा और दोहा साहित्य का उत्तर भारत की प्रायः सभी देशभाषाओं में प्रचार था। उस समय की राजस्थानी और हिंदी में इतना रूपभेद नहीं हो गया था जितना आजकल है। यदि यह कहा जाय कि वे एक ही थीं, तो अत्युक्ति होगी। उदाहरणों द्वारा यह कथन प्रमाणित किया जा सकता है।

(२) ढोला मारूरा दूहा काव्य का परिचय

ढोला मारूरा दूहा राजस्थान का एक बहुत प्रसिद्ध प्राचीन काव्य है। यह एक दूहाबद्ध प्रेमगाथा है जो राजस्थान में बहुत लोकप्रिय रही है। मानवहृदय के कोमल मनोभावों तथा बाह्य प्रकृति के बड़े ही मनोहर चित्र इसमें अंकित किए गए हैं। प्रेमगाथा होने पर भी इसका शृंगारवर्णन बहुत ही मर्यादापूर्ण है। इसके विषय में, राजस्थान में, यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

> 'सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी बात।
> जोबन छाई धण भली तारॉ - छाई रात' ॥

अर्थात्, दोहों में सोरठिया दोहा (सोरठा) अच्छा है, वार्ताओं में ढोला मारवणी की वार्ता अच्छी है, यौवन से छाई हुई स्त्री अच्छी होती है और तारों से छाई हुई रात अच्छी होती है।

यह काव्य राजस्थान का जातीय काव्य कहा जा सकता है। राजस्थानी भाव-भावनाएँ इसकी आत्मा मे ओतप्रोत है। जनता में इसका खूब प्रचार रहा है। राजस्थान मे शायद ही कोई दूसरा लोकगीत इतना लोकप्रिय रहा हो। शायद ही राजस्थान का कोई पुस्तकभाडार ऐसा होगा जिसमे इसकी एकाध प्रति न पाई जाय। इसके दूहे शताब्दियों पर्यंत राजस्थानी जनता की जिह्वा पर रहे हैं और आज भी अनेकों मनुष्यों को वे याद हैं। इस काव्य की घटनाओ को लेकर अनेकों चित्र और चित्रमालाएँ बनाई गई हैं[1]। राजस्थानी घरो पर आज भी ऊँट पर जाते हुए ढोला-मारवणी के चित्र अकित मिलेंगे। महामहोपाध्याय गौरीशकर हीराचद ओझा सूचित करते है कि उन्होंने अपनी ऐतिहासिक यात्रा मे अलवर राज्य के किसी ग्राम मे ढोला मारू की मूर्त्तियाँ भी देखी थीं जो कम से कम दो सौ वर्ष की पुरानी होंगी।

इस काव्य मे ढोला और मारवणी की प्रेमकथा का वर्णन है। यह ढोला कछवाहा वश के राजा नळ का पुत्र था। इसका समय विक्रमी संवत् १००० के लगभग है। मारवणी पूगळ के राजा पिंगळ की कन्या थी। दोनों का विवाह ऐतिहासिक घटना है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासलेखक मुँहणोत नैणसी की ख्यात मे ढोला के मारवणी और माळवणी नामक दो स्त्रियों के होने का उल्लेख है।

ढोला मारवणी की कथा आज भी राजस्थान और मध्यभारत के विभिन्न भागों मे विभिन्न रूपों मे प्रचलित है। लोगों की जिह्वा पर रहते रहते इस कथा मे बहुत कुछ परिवर्त्तन हो चुका है और इसके अनेक विकृत रूप बन गए है। यहाँ तक कि, जैसा श्रद्धेय ओझाजी हमे सूचित करते हैं, अजमेर मे होली के दिनों मे ढोला-मारू की एक सवारी निकलती है जिसमें औरत पुरुष को जूतों से मारती है।

ढोला-मारू काव्य एक लोकगीत (Ballad) है। यह आरभ से लोकप्रिय और लोगों की जिह्वा पर रहा है। ऐसे जनप्रिय लोकगीतों की जो हालत होती है वही इसकी भी हुई। समय समय पर इसमें अनेक परिवर्त्तन और परिवर्धन हुए। नए दूहे और नई घटनाएँ समय समय पर जुड़ती गईं।

---

१ ऐसी एक चित्रमाला, जिसमें इस कथा की विविध घटनाओ पर कोई १२१ चित्र हैं, जोधपुर के सरदार म्यूजियम में विद्यमान है। उसके तीन चित्र इस ग्रथ के साथ दिए गए हैं।

और पुराने दूहे और पुरानी घटनाएँ कभी कभी लुप्त भी होती गई। आरंभ में यह किसी एक लेखक की—संभवतः ढोली ढाढी जाति के किसी व्यक्ति की—रचना रही हो यह संभव है परंतु इसके वर्तमान रूप का निर्माता तो कोई एक कवि न होकर समस्त जनता ही है।

आरंभ में यह कृति दूहा छंद में लिखी गई थी, जो अपभ्रंश के जमाने से जनता का सबसे प्यारा छंद रहा है। इसका लेखक कौन था और यह कब लिखी गई इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ढोला का समय संवत् १००० के आसपास है और यही इसके रचनाकाल की ऊपरी सीमा है[1]।

धीरे धीरे दूहे छिन्नभिन्न होने लगे और उनका कथासूत्र टूट गया पर कथा लोगों को अब भी ज्ञात थी, यद्यपि उसमें भी बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था। जेसळमेर के रावळ हरिराज ने अपने समय में प्राप्य दूहों को एकत्र करवाकर अपने आश्रित जैन कवि कुशललाभ को उनका कथा-सूत्र मिलाने की आज्ञा दी। उक्त कवि ने चौपाइयाँ बनाकर और उनको दूहों के बीच बीच में जोड़कर यह कार्य संपन्न किया[2]। जैनों में कुशललाभ

1 रचनाकाल की निचली सीमा जैन कवि कुशललाभ का समय (१६१८ के आसपास) है जिसके समय में इस काव्य के अधूरे दूहे ही मिलते थे और जिसने कथासूत्र मिलाने के लिये बीच बीच में चौपाइयाँ जोड़ी थीं। उसने लिखा है कि—

'दूहा घणा पुराणा अछइ'।

सो कम से कम १५०-२०० वर्ष पुराने तो होंगे ही। इस प्रकार इन दूहों की रचना संवत् १४५० के बाद की नहीं हो सकती।

2 इसके विषय में प्रसिद्ध बारहठ कवि गोविंद गिल्लाभाई ने मनोरंजक कथा लिखी है जो इस प्रकार है। सम्राट् अकबर का विद्याप्रेम प्रसिद्ध है। उसके दरबार में बीकानेर नरेश राजा रायसिंहजी के छोटे भाई पृथ्वीराज राठौड़ रहते थे जो डिंगळ के बड़े भारी कवि थे। ये वही पृथ्वीराज हैं जिन्होंने महाराणा प्रताप को उत्तेजित करने के लिये वीररस के दूहों में पत्र लिखा था। पृथ्वीराज ने किसन रुक्मणीरी वेलि नामक एक बड़ा सुंदर शृंगार रसात्मक काव्य बनाकर अकबर को सुनाया। अकबर उस काव्य को प्रतिदिन काव्य-चर्चा के समय सुनता और उसकी प्रशंसा करता। उस समय जेसलमेर के राजकुमार हरराज ने भी यह प्रशंसा सुनी। बीकानेरवालों और जेसळमेरवालों में प्रतिद्वंद्विता का भाव था। हरराज को यह प्रशंसा सहन न हुई। जब वह राजा हुआ तो उसने अपने दरबार के कवियों को आज्ञा दी कि ढोला मारू की कथा के प्रचलित दूहे जितने मिल सकें उन्हें एकत्र करके यथाक्रम लगाकर ग्रंथरचना करो और जो ग्रंथ सर्वोत्तम होगा उस पर पुरस्कार

की ढोला-मारू-चउपई का बहुत प्रचार हुआ और शायद ही कोई जैन पुस्तक भाडार मिले जहाँ इसकी प्रतियाँ न पाई जायँ।

पर दूहोंवाला रूप सर्वथा लुप्त नहीं हुआ। उसकी कई प्रतियाँ अनुसधान करने पर हमे प्राप्त हुई। सबमे दूहो की सख्या लगभग समान है और कथासूत्र बराबर मिलता है, कहीं खडित नहीं होता।

कई अन्य लोगो ने, जिन्हे पूरे दूहे नहीं मिले, कथासूत्र मिलाने के लिये बीच बीच मे गद्यवार्ता जोड़ी। इस गद्य पद्यात्मक रूप की प्रतियाँ बहुत कम मिलती है। कुछ प्रतियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमे दूहे, कुशललाभ की चौपाइयाँ और गद्यवार्ता तीनो है। इनमे कुशललाभ की चौपाइयाँ पूरी नहीं है और दूहे भी बहुत कम हैं। दोनों प्रकार के रूप विशेष प्राचीन नहीं हैं, अतः कोई महत्त्व नहीं रखते॥

दिया जायगा। कुशललाभ की रचना सर्वोत्तम निकली। हरराज ने उसे अकबर को भेट किया। अकबर ने उसे पसंद किया और काव्यचर्चा के समय उसके दूहे भी पढे जाने लगे। एक दिन सम्राट् ने हँसी में पृथ्वीराज से कहा तुम्हारी वेलि को तो ढोला का करहला (ऊँट) चर गया है। इस श्लेषयुक्त वाक्य को सुनकर पृथ्वीराज ने कहा कि इस ससाररूपी उद्यान में से अन्य मकरंद परिपूर्ण पुष्पोंवाले वृक्ष सेवा मे भेंट करते कोई देर नही लगेगी। और इसके बाद सदेवत सावलिगा की शृंगारपरिपूर्ण वार्ता बनाकर पृथ्वीराज ने भेंट की जो अकबर को बहुत पसद आई।

यह कथा केवल कथा मात्र ही है। इसमें सत्य का कुछ भी अंश नही जान पडता। रावल हरराज युवराजत्व में तो अकबर के दरबार में गया ही नहीं। उसने सवत् १६२७ मे, अपने राजा होने के नौ वर्ष बाद अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। फिर पृथ्वीराज की वेलि तो सं० १६३७ या १६३८ मे बनी थी, जैसा उसके अतिम छद से ज्ञात होता है। ढोला-मारू-चउपई की रचना कुशललाभ संवत् १६१८ के पूर्व ही कर चुका था, जैसा कि इस ग्रंथ की पुष्पिका से सिद्ध होता है। सुदबुद सालगा की वार्त्ता भी पृथ्वीराज की बनाई नहीं है। पृथ्वीराज की रचनाओ में उसका कही नाम नही और न बीकानेर राज्य के पुस्तकालय में उसकी जो एक दो प्रतियाँ हैं उनमें इस बात का कहीं उल्लेख है। ये प्रतियाँ भी उस समय के बहुत बाद की है।

ऐसी ही एक कहानी पृथ्वीराज की वेलि और चारण झूला साइयाँ के रुक्मिणीहरण के विषय में कही जाती है कि दोनो बादशाह की नजर से गुजरे और हरण की रचना वेलि से अच्छी देखकर उसने यह श्लेषमय वाक्य कहा कि पृथ्वीराज, तुम्हारी बेल को चारण बाबा की हरणियाँ (= हरण) चर गई (राजरसनामृत, मुं० देवीप्रसाद कृत, पृष्ठ ४२-४४)।

इस प्रकार इस समय ढोला मारू काव्य के चार रूपांतर मिलते हैं—(१) पहला—जिसमें केवल दूहे हैं और जो प्राचीन है। (२) दूसरा—जिसमें दूहे और कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं, यह प्राचीनता में दूसरे नंबर पर आता है। (३) तीसरा—जिसमें दूहे और गद्यवार्ता हैं (४) और चौथा—जिसमें दूहे, कुशललाभ की कुछ चौपाइयाँ और गद्यवार्ता है।

इनमें केवल पहले दो रूपांतर ही महत्वपूर्ण हैं। पिछले दो रूपांतरों में असली दूहों का भाग बहुत ही कम रह गया है और जो कुछ रह गया है वह भी बहुत कुछ विकृत हो गया है। दूसरे रूपांतर में भी बाद में जाकर परिवर्तन हुआ और बहुत से नए दूहे जोड़ दिए गए पर उसका असली रूप लिखित रूप में रह जाने के कारण निश्चित किया जा सकता है।

पहले और दूसरे रूपांतरों में भी काफी अंतर पाया जाता है, विशेषतः आरंभ के भाग में। हम यहाँ पर दोनों में जो जो अंतर हैं उसका संक्षिप्त विवेचन करेंगे। विशेष मालूम करने के लिये परिशिष्ट में दिए हुए भिन्न भिन्न रूपांतरों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

(१)

रूपांतर नं० १ की कथा का आरंभ एक गाहा से होता है। उसके बाद ढोला मारवणी के विवाह का प्रसंग है। पूगळ देश में एक समय अकाल पड़ा तो राजा पिंगल अपने परिवार के साथ नळवर देश को गया जहाँ के राजा नल ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। नल के पुत्र ढोला को देखकर पिंगळ की रानी रीझ गई और उसने अपनी पुत्री मारवणी का विवाह उसके साथ कर दिया। उस समय मारवणी की अवस्था बहुत छोटी होने के कारण उसे ससुराल में न रखकर पिंगल अपने साथ पूगळ लेता आया। इधर बड़ा होने पर ढोला का विवाह माळवे की राजकुमारी माळवणी के साथ हो गया। ढोला को मारवणी की और उसके साथ विवाह होने की बात ज्ञात नहीं हुई। युवावस्था में प्रवेश करने पर मारवणी ने अपने पति ढोला को स्वप्न में देखा और उसी समय से विरह व्याकुल रहने लगी। विरह से अभिभूत होकर कभी पपीहे को फटकारती है तो कभी कुरजों से संदेशा ले जाने के लिये कहती है। राजा पिंगळ ने ढोला को बुलाने के लिये कई आदमी भेजे पर माळवणी के षड्यंत्र के कारण उसे सफलता न हुई। इतने में एक सौदागर आता है और मारवणी के ढोला के साथ विवाह होने की बात जानकर माळवणी का सब भेद बतलाता है। पिंगल

फिर अपने ब्राह्मण को ढोला के पास भेजना चाहता है पर अंत मे **रानी की सलाह के अनुसार** ढाढी भेजे जाते हैं। ये ढाढी किसी प्रकार माळवणी के रक्षकों से बचकर **ढोला के महल के पास ठहरते हैं और रात में करुण शब्द में मारवणी के संदेश को गाते हैं जिसको सुनकर ढोला व्याकुल हो उठता है। प्रातःकाल उठकर वह ढाढ़ियों को अपने पास बुलाकर पूछता है** और ढाढी उसे मारवणी का सब हाल सुनाते हैं जिसे सुनकर ढोला मारवणी से मिलने के लिये व्याकुल हो उठता है।

रूपांतर नं० २ के आरभ मे मगलाचरण, उसके बाद वस्तुसूचना और उसके बाद पूगळ के राजा पिंगळ का वर्णन करके कथा का आरभ होता है। राजा पिंगळ एक बार शिकार खेलने गया। वहाँ उसे भाऊ नामक एक भाट मिला जिसने जाळोर के देवड़ा राजा सामतसी की कन्या उमा के रूप की बहुत प्रशसा की जिससे पिंगळ का मन उमा की ओर आकर्षित हुआ। महल मे लौटने पर राजा ने अपने प्रधान और सेवक जेसळ को, उमा को माँगने के लिये, जाळोर भेजा। उमा की सगाई गुजरात के राजकुमार रण-धवळ के साथ हो चुकी थी पर उमा की माता अपनी कन्या को उतनी दूर नहीं देना चाहती थी। उसने राजा से सलाह की कि विवाह का दिन निश्चित करके हम ठीक मौके पर गुजरात को समाचार भेजेंगे जिससे वहाँकी बरात समय पर नहीं पहुँच सकेगी। लग्न के समय यदि राजा पिंगळ यहाँ आबू-यात्रा के बहाने आ जाय तो हम लग्न टलता देखकर उमा का विवाह उसके साथ कर देंगे। फिर गुजरात की बरात आवेगी तो हम कह देंगे कि आप समय पर नहीं आए, हल्दी चढी हुई कन्या नहीं रह सकती थी अतः हमने उसका विवाह पूगळ के राजा के साथ, जो यात्रा करने के लिये आबू जा रहा था, कर दिया। सामतसी ने अपनी सम्मति दे दी और रानी ने सब बातें जेसळ की मारफत पिंगळ को कहला भेजीं। इसी के अनुसार कार्यवाही हुई और पिंगळ के साथ उमा का विवाह हो गया। उधर दूत गुजरात नरेश उदयचद के पास पहुँचा और उसने जाकर कहा कि मै मार्ग मे बीमार पड़ गया अतः ठीक समय पर नहीं पहुँच सका। उदयचद की धाक बड़ी भारी थी एव वह बड़ा प्रबल राजा था। उसने सोचा कि मेरे लड़के की माँग (वाग्दत्ता) को विवाहने का साहस और किसी राजा को नहीं हो सकता। उसने रणधवळ को बरात के साथ रवाना कर दिया। रणधवळ जाळोर पहुँचा तो उसे मालूम हुआ कि उमा का विवाह पिंगळ के साथ हो गया। उसने

सब हाल पिता को कहला भेजा और एक भारी सेना ने जालोर को घेर लिया। सामतसी ने पिंगळ को पहले ही पूगळ भेज दिया था और उमा को बाद में भेजने के लिये कहा था। गुजरात की सेना चारों ओर उत्पात मचाने लगी। उधर पिंगळ के सेवक जेसळ ने बैलों की एक जोड़ी को ऐसा साधा कि वह एक दिन में जालोर जाकर लौट आवे और एक रोज रात उमा को लेकर पूगल लौट आया। उमा को हाथ से गई देख गुजरात की सेना चली गई। पिंगळ से उमा के मारवणी नाम की कन्या हुई। एक बार अकाल पड़ने पर पिंगळ सपरिवार पुष्कर जा पहुँचा।

इसके बाद ढोला के जन्म की कथा इस प्रकार कही गई है। राजा नळ के कोई संतान न थी। उसने पुष्कर यात्रा की मनौती की जिससे उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम ढोला रखा। ढोला के तीन वर्ष का हो जाने पर राजा नळ सपरिवार पुष्कर यात्रा को गया। वहाँ नळ ने मारवणी को देखा। वह पिंगळ से मिला और ढोला के लिये मारवणी को माँगा। फिर दोनों का विवाह हो गया।

मारवणी की अवस्था छोटी होने के कारण पिंगळ ने उसे नळ के साथ नहीं भेजा और पूगळ ले आया। पीछे से पूगळ को दूर जानकर और रास्ता खतरनाक समझकर नळ ने ढोला का दूसरा विवाह माळवे के राजा की कन्या माळवणी से कर दिया। मारवणी के साथ विवाह होने की बात ढोला से छिपी रही। पर माळवणी को यह बात मालूम हो गई और उसने ऐसा प्रबंध कर लिया कि पूगळ का कोई आदमी नगर में न आने पावे।

उधर मारवणी ने यौवन में पैर रखा। एक बार एक घोड़ों का सौदागर पूगळ आया और पिंगळ के यहाँ ठहरा। मारवणी को देखकर और उसका परिचय पाकर उसने ढोला और माळवणी का सब हाल कह सुनाया। माळवणी के षड्यन्त्र का भी हाल कहा। प्रियतम के समाचार सुनकर मारवणी विरहसंतप्त हो उठी। इसके बाद पपीहों को कोसना और कुरजों से सँदेशा ले जाने की प्रार्थना है। राजा अपने पुरोहित भीमसेन को ढोला के पास भेजना चाहता है परंतु मारवणी माता के द्वारा ढाढ़ियों को भेजने के लिये कहती है। मारवणी का सिखाया सदेशा लेकर ढाढी नळवर जाते हैं। पहरेदार उनको साधारण याचक जानकर छोड़ देते है। वहाँ जाकर वे भाऊ भाट से, जो अब नळवर में था, मिलते हैं। भाऊ भाट मौका पाकर माळवणी की अनुपस्थिति में ढोला से उनकी भेट करवा देता

है। उनसे मारवणी का सदेशा सुनकर ढोला मारवणी के लिये आतुर हो उठता है। फिर ढाढियो को पुरस्कार के साथ बिदा करता है।

यहॉ तक के कथा भाग में मुख्य अंतर निम्नलिखित बातो मे है—

(१) रूपातर नबर २ आरंभ मे एक लबी प्रस्तावना है जिसमे पिंगळ और उमा के विवाह, मारवणी के जन्म और ढोला के जन्म की कथा है।

रूपातर नबर १ मे यह नहीं है।

(२) रूपातर नंबर १ मे पिंगळ नळ के देश मे आता है और वहॉ पिंगळ की रानी ढोला को देखकर रीझती है और मारवणी का विवाह ढोला के साथ हठपूर्वक करवा देती है।

रूपांतर नबर २ में नळ और पिंगळ दोनों ही पुष्कर मे एकत्र होते है। एक अपने पुत्र ढोला की जात देने के लिये आता है और दूसरा अकाल के कारण। इस रूपातर मे नळ पहले मारवणी को देखता है और ढोला के लिये उसे मॉगता है। पिंगळ रानी से पूछकर सबंध करता है और रानी यद्यपि कन्या को इतनी दूर देने मे सकोच करती है फिर भी स्वीकार कर लेती है।

(३) रूपातर नबर २ मे ढोला और माळवणी के विवाह की कथा दी गई है।

रूपातर न० १ में वह नहीं है, केवल आगे जाकर सौदागर के कथन द्वारा उसकी सूचना दी गई है।

(४) नंबर १ मे मारवणी का विरह ढोला को स्वप्न मे देखकर जाग्रत होता है और वह कुरजों से सदेशा ले जाने के लिये कहती है। फिर सौदागर आकर ढोला और माळवणी का हाल सुनाता है।

रूपातर नंबर २ में सौदागर आकर ढोला का हाल कहता है। तब मारवणी का विरह जाग्रत होता है और वह कुरजो से सॅदेशा भेजना चाहती है।

(५) रूपातर नबर १ मे ढाढियो को भेजने की सलाह रानी देती है।

रूपातर नबर २ मे मारवणी ढाढियो को भेजने के लिये पिता से कहलाती है।

(६) रूपातर नबर १ मे ढाढी ढोला के महल के नीचे डेरा लेकर ठहरते हैं और रात में मारवणी का सॅदेशा गाते है। प्रातःकाल ढोला उन्हे बुलाकर सब हाल पूछता है।

रूपांतर नंबर २ में ढाढ़ी पहले भाऊ भाट से मिलते हैं। वह उपयुक्त समय पर उन्हें ढोला के पास ले जाता है और वे मारवणी का संदेश ढोला को सुनाते हैं।

(२)

रूपांतर नंबर १—ढोला मारवणी से मिलने के लिये आतुर हो उठता है। माळवणी का भी उसे भय है। इस चिंतित अवस्था में माळवणी उसे देखती है और चिंता का कारण पूछती है। पहले ढोला बहाने करके टालता है पर अंत में बतला देता है। कारण सुनकर माळवणी विरह की संभावना से बेसुध हो जाती है। होश में आने पर वह ढोला को पूगळ जाने से रोकती है। उसके प्रेम में ढोला ग्रीष्म भर के लिये रुक जाता है। वर्षा आने पर वह फिर जाने की अनुमति माँगता है। वह रोकती है और ढोला दो मास के लिये और रुक जाता है। दशहरा आ पहुँचता है। माळवणी फिर भी अनुमति नहीं देती। पर अब ढोला नहीं रुक सकता। अंत में माळवणी ने ढोला से वचन ले लिया कि जब मैं सो जाऊँ तब जाना। अब ढोला एक तेज चलनेवाले ऊँट को तैयार करता है। माळवणी ऊँट के पास जाकर उसे न जाने के लिये और लँगड़ा हो जाने के लिये प्रार्थना करती है जिसे ऊँट अंत में स्वीकार कर लेता है। पर ढोला को मालूम हो जाता है कि ऊँट वास्तव में लँगड़ा नहीं किंतु जान बूझकर लँगड़ाता है। अब माळवणी के पास ढोला को रोकने का केवल यही उपाय रह जाता है कि वह सोवे नहीं। पंद्रह दिन तक वह बराबर जगती रहती है पर अंत में रात को थोड़ी देर के लिये झपकी आ जाती है। मौका पाकर ढोला चल देता है। ऊँट की बलबलाहट को सुनकर माळवणी तुरंत जाग पड़ती है और ढोला को गया देख खूब विलाप करती है। वह एक सुग्गे को ढोला के पीछे भेजती है कि वह उसके मरने का समाचार सुनाकर ढोला को लौटा लावे। सुग्गा प्रातःकाल ढोला के पास पहुँचता है और झूठा बहाना बनाकर कहता है कि माळवणी मर गई सो आप तुरंत लौटिए। पर ढोला उसके झूठ को ताड़ लेता है और नहीं लौटता। सुग्गा यों ही लौट आता है।

रूपांतर नंबर २—में यह कथा इसी प्रकार है। केवल आरंभ में इतना विशेष है कि ढाढ़ियों के पूगळ लौटकर पिंगळ को सब समाचार सुनाने का वर्णन दिया गया है। नंबर १ में माळवणी ढोला को लौटाने का उपाय भी बतलाती है कि ढोला को मेरे मरने की बात कहना। नंबर २ में वह केवल इतना ही कहती है कि किसी प्रकार ढोला को लौटा ला।

(३)

रूपांतर नं० १—ढोला आगे चलता है। तीसरे पहर वह आडावळा की घाटी को लाँघ जाता है। वहाँ ऊँट को पानी पिलाता है। फिर दिन थोड़ा रहा देखकर ऊँट को तेजी से चलाता है[1]। मार्ग मे ऊमरसूमरे का एक चारण मिलता है जो कहता है कि मारवणी तो बूढ़ी हो गई अब तू जाकर क्या करेगा? ढोला दुःखी होकर सोच मे पड़ जाता है कि इतने मे वीसू नाम का एक चारण आ जाता है जो उसे सच्ची बात कहकर उसका सदेह दूर करता है। फिर ढोला के पूछने पर वह मारू के रूप की प्रशसा करता है। ढोला प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार देता है और अपने आने का समाचार देकर पूगल भेज देता है। थोड़ा आराम करके फिर स्वय चलता है। उधर उस दिन के पूर्व की रात को मारवणी स्वप्न मे ढोला से मिलती है और प्रातःकाल उसका हाल सखियों को सुनाती है। ढोला के आने के पूर्व उसके बाएँ अग फड़कने लगते हैं और इतने में वीसू आ जाता है। सब लोगे को बड़ा हर्ष होता है और इस समय ढोला पूगल पहुँचता है। ढोला मारवणी का मिलाप होता है। इसके बाद दोनों के मिलन और पारस्परिक विनोद का वर्णन है।

रूपांतर नंबर २ मे भी यही कथा है पर कुछ फेरफार के साथ। सुग्गे के चले जाने पर ढोला आगे चलता है। चदेरी के पास उसे एक बनिया मिलता है जो ढोला से अपना एक पत्र बीस योजन दूर एक गाँव तक पहुँचा देने को कहता है। ढोला कहता है कि तू पत्र लिखेगा तब तक मैं ठहर नहीं सकता, इसलिये तू पीछे ऊँट पर बैठ जा और पत्र लिख दे, फिर मैं पहुँचा दूँगा। बनियाँ बैठकर पत्र लिखने लगा। पत्र समाप्त हुआ तब तक तो ऊँट उसी गाँव में पहुँच गया जहाँ वह बनिया पत्र भेजना चाहता था।

अब ढोला पुष्कर पहुँचा। वहाँ ऊँट को पानी पिलाया। सूखे मारवाड़ देश को देखकर ऊँट उसकी शिकायत करता है। ढोला उसे समझाता है कि यह मेरी ससुराल है, वहाँ तो करील और आक ही खाने को मिल सकते हैं। नरवर की नागरबेल और दाख-बिजोरे यहाँ कहाँ? अब ढोला आडावळा की घाटी पार करता है। इसके बाद उसे एक चारण मिलता है जो राजा

---

१. कुछ प्रतियों (जैसे—क, झ, न) मे इसके पूर्व एक गडेरिए के मिलने की कथा भी है जो मूलपाठ में ली गई है।

पिंगळ से नाराज था। वह कहता है कि मारवणी बूढ़ी हो गई, अब जाकर क्या करेगा? ढोला दुःखी होता है। इतने में एक दूसरा चारण आता है जिसे मारवणी ने सामने भेजा था। वह कहता है कि यह चारण तो ऊमर का है जो मारवणी को अपनी स्त्री बनाने के लिये प्रयत्न करता है।

ढोला आगे चलता है। वहाँ पिंगळ का एक बारहट उसे मिलता है जो ढोला के सामने मारवणी के रूप की प्रशंसा करता है। चारण के प्रत्येक दूहे पर एक एक मोहर ढोला पुरस्काररूप देकर आगे बढ़ता है। ऊँट थक जाता है। इस पर ढोला उसे तेज चलने को कहता है।

उधर मारवणी रात को स्वप्न में ढोला से मिलती है। और माता से सब हाल कहती है। संध्या समय वह सहेलियों के साथ कुएँ पर जाती है। ढोला भी ऊँट को पानी पिलाने के लिये वहाँ पहुँचता है। वहाँ दोनों का मिलन होता है। मारवणी लौट जाती है और ढोला को लेने के लिये आदमी आते हैं। सत्कार के पश्चात् रात्रि में ढोला मारू का मिलन होता है।

अंतर

(१) रूपांतर नंबर २ में बनिये की कथा है जो रूपांतर नंबर १ में नहीं है।

(२) रूपांतर नंबर १ में आडावळा की घाटी पार करके ढोला ऊँट को पानी पिलाता और तेज चलने को कहता है फिर ऊमर का चारण और बीसू चारण मिलते हैं। रूपांतर नंबर २ में ऊँट को पानी पिलाकर उसके बाद ढोला आडावळा की घाटी को पार करता है। फिर ऊमर का चारण, मारवणी का चारण और पूगळ का बारहट क्रमशः मिलते हैं। फिर ढोला ऊँट को तेज चलने के लिये कहता है।

(३) रूपांतर नं० १ में मारवणी स्वप्न का हाल सखियों से कहती है। नंबर २ में वह हाल माता से कहा गया है।

(४) रूपांतर नं० २ में कुएँ पर ढोला और मारवणी के मिलने का वृत्तांत है जो रूपांतर नं० १ में बिलकुल नहीं है।

(५) रूपांतर नं० १ में दंपतिविनोद में पहेलियाँ दी गई हैं। नंबर २ में ये नहीं हैं।

(६) रूपांतर नंबर २ की (ज) प्रति में एक अष्टयाम भी है। जो कुछ हेरफेर के साथ सौराष्ट्र की लोककथाओं में अब भी प्रसिद्ध है। लोक

में प्रसिद्ध होने के कारण वह बाद मे ढोला मारू मे भी जोड़ दिया गया होगा ।

(४)

रूपांतर नंबर १—ढोला पंद्रह दिन तक ससुराल मे रहता है। फिर मारवणी को बिदा कराकर नरवर चलता है। दूसरे दिन रात्रि को एक खुले स्थान मे सब ठहरते हैं। रात को एक **पीवणा** साँप मारवणी को पी जाता है। ढोला मारवणी के साथ जल मरने को तैयार होता है पर एक योगी की मंत्रशक्ति से मारवणी जी उठती है। उधर ऊमरसूमरा मौका देख ही रहा था। जब उसने देखा कि ढोला मारवणी अकेले जा रहे है तो पीछा किया। मार्ग में उनको जा पकड़ा और बोला—ठाकुर, हम भी नरवर जा रहे हैं, साथ ही चलेंगे; जरा ठहरकर **अमल पाणी** (जलपान) कर लो। ढोला को विश्वासघात की कोई आशका नहीं थी। वह भी उतर पड़ा। ऊँट को पैर बाँधकर बिठा दिया गया और मारवणी उसके पास मुहरी (नकेल) पकडकर बैठ गई। ढोला और ऊमर आदि मिलकर शराब पीने लगे। मारवणी के पीहर की एक डूमणी ऊमर के साथ थी। उसे सब षड्यत्र मालूम था। उसने गाने के बहाने मारवाणी को सब बात कह दी और ऊँट को छड़ी से मारने के लिये कहा। ऊँट छड़ी से मारे जाते ही भागा। ढोला पकड़ने को दौड़ा तो मारवणी भी साथ पहुँच गई और उसने ढोला को ऊमर के षड्यत्र का हाल कह सुनाया। दोनों तुरत ऊँट पर सवार हुए और भाग निकले। ऊँट का पैर खोल देने का ध्यान न रहा। उनको भागते देखकर ऊमर ने भी पीछे घोड़े दौड़ाए पर वह ऊँट को न पा सका। ढोला को मार्ग मे एक चारण मिला जिसने ऊँट के पैर के बंधन की ओर ध्यान दिलाया। ढोला ने चारण के द्वारा छुरी से बधन कटवाया और आगे चला। दूसरे दिन प्रातःकाल ऊमर को वही चारण मिला और उससे सब हाल जानने पर ऊमर निराश होकर अपने देश को लौट गया। ढोला सकुशल घर लौट आया।

कई प्रतियों की कथा यहीं समाप्त हो जाती है। पर कुछ में माळवणी की मारवाड़ की निंदा, तथा मारवणी की माळवा की निंदा और मारवाड़ की प्रशसा के दूहे भी मिलते हैं।

रूपातर न० २ में भी कथा इसी प्रकार है।

(१) उसमे ढोला के नरवर पहुँचने के पश्चात् पिंगळ के दहेज भेजने का भी वर्णन है।

(२) कुछ प्रतियों मे योगी योगिनी की जगह शिव पार्वती का उल्लेख है।

(३) मारवाड़ की निंदा और प्रशंसा के दूहे इस रूपांतर मे हैं।

धुर संबंध या प्रस्तावना

रूपांतर नंबर २ मे सौदागर के आने के ऊपर तक की जो कथा है वह रूपांतर नंबर १ मे नहीं पाई जाती। पर रूपांतर नंबर १ की दो प्रतियों मे उसके कुछ दूहे—केवल दूहे, चौपाइयाँ नहीं—पाए जाते हैं। इनमें से पहली (क) प्रति है और दूसरी (भ) प्रति।

(क) प्रति मे मारवणी की उत्पत्ति और पूगळ मे अकाल पड़ने तक की कथा के ३३ दूहे हैं। इसके बाद गाहा से असली कथा आरंभ होती है। ये दूहे इस प्रति मे सर्वथा अस्थानस्थित (out-of place) हैं। फिर रूपांतर नंबर २ की भाँति उनके बीच बीच मे चौपाइयाँ न होने से उनका कथासूत्र बराबर नहीं मिलता।

(भ) प्रति मे भी असली कथा की गाहा के पहले ये प्रस्तावना के दूहे हैं। परन्तु इस प्रति के दूहे अधूरे नहीं, पूरे हैं जिससे कथासूत्र बराबर मिलता जाता है। रूपांतर नंबर २ मे बीच बीच में चौपाइयों से कथासूत्र मिलाया गया है पर इसमे चौपाइयों की आवश्यकता नहीं होती। इन दूहों के अंत मे लिखा है—इति धुर-संबंध। और इसके बाद असली कथा गाहा से आरंभ की गई है। इसमे भी यह प्रस्तावना या धुर-संबंध अस्थानस्थित जान पड़ता है। मूल कथा के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

इस धुरसंबंध मे कथा के पिंगळ आदि पात्रों का पूर्वपरिचय दिया गया है। अवश्य ही यह प्रस्तावना भाग आरंभिक मूल कथा का अंग न था। यह बाद में जोड़ा गया है और जोड़नेवाले का उद्देश्य नायक और नायिका के माता-पिता का परिचय देने के साथ साथ उनकी उत्पत्ति का हाल दे देने का था। यह प्रस्तावना कुशललाभ के समय मे अवश्य पुरानी है। कुशललाभ को इसके कुछ ही, बहुत थोड़े दूहे मिले। (क) प्रति मे भी वही दूहे हैं जो कुशललाभ मे हैं। (भ) ही एक ऐसी प्रति है जिसमे यह पूरी प्रस्तावना दूहों मे है। परंतु एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से प्रस्तावना के बीच के कुछ दूहे अप्राप्य हो गए हैं।

(न) प्रति मे भी पूरी प्रस्तावना दूहों में है पर यह प्रति बहुत भ्रष्ट है और विश्वसनीय नहीं है। इसकी विचित्रता यह है कि कथा इसकी रूपांतर नंबर

२ के अनुसार है पर है यह रूपातर नबर १ की भॉति केवल दूहों में। रूपातर नंबर १ की मॉति यह गाहा से आरभ नहीं होती। आरभ मे न केवल दूहों मे प्रस्तावना है और उसके आगे की कथा रूपातर नबर २ की भॉति चलती है। इसकी प्रस्तावना आशय मे (झ) की प्रस्तावना से मिलती है पर इसमें दूहों का रूप बहुत कुछ विकृत हो गया है। नए दूहे भी बहुत से हैं।

इस प्रस्तावना के पात्र जाळोरपति देवडा चाचिगदेव और देवड़ा सामतसी, गुजरात नरेश उदयचद या उदयादित्य, उसका पुत्र रणधवळ, पूगळ का राजा पिंगळ, उसकी स्त्री और सामंतसी की कन्या उमा आदि है। इनमे पिंगळ और उमा मूल कथा मे भी आते हैं। देवड़ा सामतसी जाळोर का राजा था और उसके शिलालेख सवत् १३३९ से १३५४ तक के मिलते हैं। चाचिगदेव उसका पिता था। उसने सवत् १३१६ से लेकर १३३४ तक तो निश्चित रूप से जाळोर में राज्य किया। गुजरात के राजा चावड़ा उदयचंद और रणधवळ का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। गुजरात में चावड़ों का राज्य सवत् ८२१ से १०१७ तक रहा था। इस पिछले सवत् के आसपास सोलकियों ने उनका उच्छेद कर डाला। उधर कछवाहा ढोला का समय सवत् १००० के पूर्व आता है। पूगळ मे पॅवारों का राज्य १३०० के पहले ही नष्ट हो चुका था अतः पूगळ का परमार राजा पिंगळ सामतसिह का समकालीन नहीं हो सकता। इस प्रकार इस प्रस्तावना की इतिहाससबधी बातें इतिहास से मेल नहीं खातीं। इस प्रस्तावना का निर्माण सोलहवीं शताब्दी मे कहीं हुआ है ऐसी संभावना जान पड़ती है।

(३) ऐतिहासिक विवेचन

काव्य की कथा का मूल आधार ऐतिहासिक है। राजस्थान के प्राचीन इतिहास की पूरी पूरी खोज अभी तक नहीं हुई अतः यह कहना असभव सा है कि कथा में ऐतिहासिकता कितनी है। नळ और ढोला ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और कछवाहा राजपूतों की ख्यातों में उनके उल्लेख मिलते हैं। ढोला का विवाह मारवणी के साथ हुआ था इसका उल्लेख भी ऐतिहासिक ग्रथों एवं लोककथाओं मे यत्र तत्र मिलता है।

इस काव्य मे ढोला को नरवर के राजा नळ का पुत्र बताया गया है। उसका दूसरा नाम साल्हकुमार कहा गया है। वह किस वश का था इस

विषय मे कहीं कुछ नहीं कहा गया है। कुछ उत्तरकालीन प्रतियों के अंत में एक दूहा मिलता है—

'धण भटीयाणी मारवी, प्रिय ढोलउ चहुआण।
जदकी जनमी मारवी तदकउ पढ्यु कुराण'।

इसका निम्नलिखित पाठांतर भी मिलता है—

'मारू ढोलो जनमिया, त्याका ए सहनाण।
धन भटियाणी मारुई, प्रिय ढोलो चहुआण'॥

इससे ढोला का चौहान और मारवणी का भाटी होना सिद्ध होता है पर समस्त प्राचीन प्रतियों के अनुसार मारवणी परमार वंश की थी। इस प्रकार ढोला का चौहान होना भी संभव नहीं क्योंकि नरवर में चौहानों का राज्य कभी नहीं हुआ और न चौहान वंश मे नळ और ढोला नाम के राजाओं के होने का ही कहीं उल्लेख मिलता है। उक्त दोहे का एक दूसरा पाठांतर भी एकाध प्रति में मिलता है जो इस प्रकार है—

'अेथे ज चोक पुराविया परणी पढे पुराण।
धण भटियाणी मारवणि, ढोलो कूरम राण'॥

इसके अनुसार ढोला कूर्म या कछवाहा सिद्ध होता है जो ठीक है। पर इसमे मारवणी भटियाणी अर्थात् भाटी वंश की ही कही गई है जो ठीक नहीं। बात यह है कि यह दोहा बहुत पीछे का बना हुआ है। उस समय लोगों को ढोला और मारवणी के वंशों का ठीक ठीक ज्ञान न था। उस समय पूगळ में भाटियों का राज्य हो गया था अतः सबने मारवणी को भी भाटी वंश की मान लिया।

कछवाहा वंश की ख्यातों मे नळ और ढोला का स्पष्ट वृत्तांत मिलता है[1] और इस ढोला को मारवणी का पति कहा गया है अतः इसमे तो कोई संदेह नहीं रह जाता कि वह कछवाहा राजपूत था। मारवणी के विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे।

ढोला कब हुआ इसका निश्चित पता इतिहास से नहीं चलता। कछवाहों का राज्य पहले नरवर मे था जो राजा नळ का बसाया हुआ माना जाता है। पीछे सं० १०३४ से कुछ पूर्व उन्होंने ग्वालियर को अपने अधिकार में करके उसे अपनी राजधानी बनाया[2]। सं० ११६० तक उनका राज्य

---

१ टाड राजस्थान, ओझाजी द्वारा संपादित, ओझाजी का टिप्पण नं० ५६, पृष्ठ २७१।

२ वही, पृष्ठ २७१।

ग्वालियर में रहा। नरवर में भी उनकी शाखा राज्य करती रही जिसने सं० ११७७ तक वहाँ निश्चित रूप से राज्य किया[1]। हुमायूँ के शासनकाल मे नरवर फिर कछवाहों को मिल गया था[2]।

कछवाहों के जो शिलालेख मिले हैं उनमें नळ और ढोला के नाम नहीं मिलते। कछवाहों की ख्यातों में लिखा है कि कछवाहा वंश के राजा नळ ने नरवर का किला बनवाया, जिसका पुत्र ढोला और ढोला का पुत्र लक्ष्मण हुआ तथा लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामा ने ग्वालियर का किला बनवाया। परंतु यह पिछला कथन विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि ग्वालियर का किला वज्रदामा से पूर्व ही बना हुआ था और पड़िहारों के अधिकार में था। वज्रदामा ने इस किले को पड़िहारों से जीत लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया[3]।

मुँहणोत नैणसी की ख्यात राजस्थान के इतिहास का एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। उसमे ढोला को नळवर के संस्थापक नळ का बेटा और मारवणी का पति बताया है। साथ ही यह भी लिखा है कि ग्वालियर को ढोला ने बसाया था। उसमें भी लक्ष्मण को ढोला का बेटा और वज्रदामा को ढोला का पौत्र बताया गया है[4]।

शिलालेखों मे कछवाहों की जो वंशावलियाँ मिलती हैं वे लक्ष्मण से आरंभ होती हैं। वज्रदामा का समय संवत् १०३४ के लगभग है क्योंकि इस संवत् का उसका एक लेख मिला है। अतः नळ और ढोला को उसका परदादा और दादा मानकर उनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित कर सकते हैं। इस समय के लगभग पूगळ और माळवा मे भी परमारों के राज्य स्थापित हो चुके थे।

कई लोग जयपुर राज्य के संस्थापक दूलहराय को ढोला मानते हैं। टाड ने अपने सुप्रसिद्ध राजस्थान के इतिहास में ऐसा ही लिखा है[5]। उसने तो दूलहराय का नाम ही ढोलाराय लिखा है। उसके अनुसार संवत् ३५१ के

---

१ टाड राजस्थान, ओझाजी द्वारा संपादित, पृष्ठ ३७५।

२ वही, पृष्ठ ३७६।

३ वही, पृष्ठ ३७१।

४ डा० टेसीटरी का डिस्क्रिप्टिव केटेलग ऑफ बार्डिक एंड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्, सेक्शन १, पार्ट १, पृष्ठ २३।

५ टाड-कृत एनाल्स एंड एंटिक्विटीज् ऑव् राजस्थान, विलियम क्रुक द्वारा संपादित, भाग ३, पृष्ठ १३२८-१३३१।

लगभग कछवाहा वंश में नळ नाम का राजा हुआ जिसने नैषध या नरवर का राज्य कायम किया। उसकी तेतीसवीं पीढ़ी में सोढदेव हुआ जिसका पुत्र दोलाराय था। सोढदेव की मृत्यु के समय दोलाराय बालक था अतः उसका राज्य उसके चाचा ने छीन लिया। दोला की माता बालक को लेकर पश्चिम की ओर चली गई और वहाँ उसने वर्तमान जयपुर से कुछ दूर खोगाँव के मीणों के यहाँ आश्रय लिया। बड़े होने पर दोला ने अपने आश्रयदाता को सहायकों सहित धोखे से मार डाला और स्वयं राजा बन गया। इस प्रकार संवत् १०२३ में उसने वर्तमान जयपुर राज्य की नींव डाली। कुछ समय बाद दोला ने अजमेर की राजकुमारी मारवणी से विवाह किया। एक समय जब दोला देवी के दर्शन करके लौट रहा था तब मीणों ने उस पर हमला किया और सहायकों समेत मार डाला। मारवणी गर्भवती थी। वह किसी प्रकार बच निकली। उसके कान्हिल नामक पुत्र हुआ जिसने अपना राज्य फिर से जीत लिया।

इस वृत्तांत में ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम है। जयपुर राज्य का संस्थापक दूलहराय संवत् १०२३ के बहुत बाद हुआ है। वज्रदामा के पुत्र मंगळराज का छोटा बेटा सुमित्र था। उसकी चौथी पीढ़ी में ईशासिंह या ईश्वरसिंह हुआ जो पहलेपहल राजपूताने की ओर आया था। उसका पुत्र सोढसिंह का पुत्र दूलहराय था। कछवाहों की राजधानी राजपूताने में पहले द्यौसा में हुई, फिर आँबेर में। महाराज सवाई जयसिंह (१७४५–१८००) के समय में जयपुर उनकी राजधानी हुई। वज्रदामा का समय संवत् १०३४ के आस-पास और उसके बड़े पौत्र कीर्तिवर्मा का समय संवत् १०७८ के आसपास शिलालेखों और मुसलमानी तवारीखों से सिद्ध होता है। अतः कीर्तिवर्मा के अनुज सुमित्र का समय भी संवत् १०७८ के लगभग होना चाहिए। दूलहराय उसका छठा वंशधर था अतः उसका समय संवत् १२०० के लगभग माना जा सकता है (न कि १०२३ जैसा कि टाड ने लिखा है)। मारवणी को अजमेर की राजकुमारी बताना भी ठीक नहीं क्योंकि अन्यान्य ख्यातों तथा लोककथाओं से इसकी पुष्टि नहीं होती।

हमारी संमति में जयपुर के दूलहराय के साथ इस कथा के नायक का कोई संबंध नहीं है क्योंकि यह दूलहराय न तो नरवर का था और न उसके पिता का नाम नळ था। अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कथा

का नायक ढोला, वज्रदामा के पिता लक्ष्मण का पिता था और उसका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भाग था।

नळ—यह कछवाहा वश का राजा था और नरवर या नळवर, जो नळपुर का अपभ्रष्ट रूप है, इसी का बसाया माना जाता है। जैसा कि ऊपर कह आए हैं, शिलालेखो में इसका नाम नहीं मिलता पर कछवाहो की ख्यातों मे इसे लक्ष्मण के पिता ढोला का पिता और नरवर का सस्थापक कहा गया है। इसका समय सवत् ९५० और १००० के बीच मे हो सकता है।

टॉड ने लिखा है कि इसके पहले कछवाहो का राज्य पूर्व मे था और रोहतासगढ़ उनकी राजधानी थी। नळ रोहतासगढ को छोड़कर पश्चिम मे चला आया और नरवर को बसाकर वहाँ उसने नया राज्य कायम किया। नरवर की सस्थापना का समय टॉड ने सवत् ३५१ दिया है जो सर्वथा अशुद्ध है। इस सवत् के लगभग तो नरवर के आसपास के भूखड मे गुप्तों का राज्य था।

कई लोग इस नळ का सबध सुप्रसिद्ध पौराणिक राजा और दमयती के पति नल से मिलाते हैं और नरवर को उसी का बसाया हुआ मानते हैं। किसी किसी लोककथा मे तो ढोला को भी इसी नळ और दमयती का पुत्र माना गया है। नरवर या नळपुर इस राजा का बसाया हुआ हो सकता है पर हमारी कथा के नळ का और इस नल का कोई सबध नहीं।

मारवणी—इस काव्य मे यह पूगळ के राजा पिंगल की कन्या कही गई है पर उसके वश का उल्लेख नहीं हुआ। कुशललाभ ने इसे परमार वंश की बताया है। (ग) प्रति मे एक दूहा आया है जो इस प्रकार है—

मा ऊमादे देवणी, नानो सामॅतसीह।
पिंगळरा पमाररी, कुमरी मारवणीह ॥

धुरसबध का अधिकाश भाग कुशललाभ से पुराना है। उसमे भी पिंगळ को परमार ही बताया है। लोककथाओं मे से वह परमार वश का ही सिद्ध होता है। ढोला का समय हमने ऊपर सवत् १००० के लगभग सिद्ध किया है। उस समय पूगळ मे परमारों का ही राज्य था। परतु ऊपर ढोला के विषय में लिखते हुए हमने जा दोहे उद्धृत किए हैं उनमें मारवणी को भटियाणी या भाटी वश की बताया गया है। भाटियों का राज्य पूगळ मे बहुत बाद मे हुआ है। अतः मारवणी को किसी भी हालत में भाटी नहीं माना जा सकता।

पजाब में भी मारवणी का एक गीत प्रचलित है जिसमे उसे सिंहलद्वीप मे स्थित पिंगळगढ के राजा की कन्या बताया गया है। सिंहलद्वीप लोक-कथाओं का एक अत्यत प्रिय स्थान है। प्रत्येक प्रेमकथा का सबध सिंहल द्वीप के साथ जोड़ दिया जाता है। (मिलाइए—जायसी का पद्मावत जहाँ पद्मावती सिंहलद्वीप की राजकुमारी मानी गई है)।

पिंगळ—यह मारवणी का पिता और पूगळ का राजा था। कथा मे इसके वश का निर्देश नहीं है पर मारवणी के प्रसग मे उल्लिखित कारणों से यह परमार ही सिद्ध होता है। पहले समस्त पश्चिमी राजस्थान मे परमारों का एक विस्तृत साम्राज्य था जिसका मुख्य स्थान आबू के पास चंद्रावती नामक प्राचीन नगर था। आगे चलकर इस राज्य की अनेक शाखाएँ हो गईं जिनमे पूगळ भी एक था। पूगल के इतिहास की खोज अभी बिलकुल नहीं हुई है। अतः निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वहाँ पिंगळ नाम का कोई राजा हुआ या नहीं, और यदि हुआ तो कब हुआ। नैणसी ने परमार वशों की जो वशावलियाँ दी हैं उनमे पूगळ की वशावली नहीं है और न पिंगळ का नाम कहीं आया है।

ऊमा देवड़ी—काव्य के ७९ और ८० नबर के दूहों मे मारवणी की माता का नाम ऊमा देवड़ी बताया गया है पर ये दोनों दूहे हमें बहुत पुराने नहीं जान पड़ते। रूपातर नबर १ (जो पुराना है) की किसी भी प्रति मे ये दूहे उपलब्ध नहीं होते। रूपातर नबर २ उतना पुराना नहीं है। इस रूपातर के साथ एक धुर सबध पाया जाता है जो आरभ मे मूल कथा का भाग नहीं था। इस धुरसबंध में ऊमादे और पिंगळ के विवाह की कथा वर्णित की गई है। उसमें ऊमादे को आबू के देवड़ा शाखा के चौहानवशीय राजा सामतसिंह की कन्या बताया गया है। (ग) प्रति के एक दूहे मे भी, जो ऊपर उद्धृत किया गया है, यही बात कही गई है। सामतसिंह का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का मध्यभाग है। ऊपर के ७९ और ८० नबर के दूहों में ऊमा नाम इसी धुरसबंध से लिया गया जान पड़ता है।

धुरसबंध की कथा अवश्य ही बाद मे जोड़ी हुई है अतः हमारी संमति में मारवणी की माता का नाम ऊमादे नहीं हो सकता। यदि हो तो वह देवड़ा सामंतसी की कन्या नहीं हो सकती। सामतसिंह के समय में पूगळ में परमारों का राज्य होना भी सभव नहीं जान पड़ता (और धुर-

संबंध में पिंगळ को परमार बताया है जिससे उसकी अनैतिहासिकता स्वयं सिद्ध होती है)।

माळवणी—इस नाम का अर्थ माळवा की राजकुमारी है। माळवणी माळवा के राजा की कन्या बताई गई है। (देखिए दूहा न० ६४)। पर उसका नाम नहीं दिया गया है। कुशललाभ ने उस राजा का नाम भीम लिखा है। उसके वंश का उल्लेख उसने भी नहीं किया है। माळवा मे उस समय परमारों का राज्य था पर भीम नाम का कोई राजा वहाँ नहीं हुआ। वाक्पतिराज, वैरिसिंह द्वितीय और श्रीहर्ष ने उस समय के आसपास राज्य किया था। यह भी सभव है कि माळवणी राजा की ही कन्या न होकर राजा के किसी सबधी या सामत की कन्या हो।

ऊमरसूमरा—सूमरो को अरबी तवारीखों मे अरबी जाति के मुसलमान लिखा है पर हिंदू कहते हैं कि वे पहले भाटी थे और जब सिंध में मुसलमानों का राज्य हुआ तो अन्य जातियों के साथ वे भी मुसलमान बन गए। सवत् २१११० के लगभग उन्होंने ठट्ठे से मुसलमान हाकिम को निकाल कर वहाँ अपना राज्य कायम किया। ऊमर नाम के दो राजा इस वश में हुए। एक का समय सं० १२०० के लगभग और दूसरे का स० १३०० के लगभग आता है। दोनों का ही समय ढोला के समय से मेल नहीं खाता। इसलिये या तो ऊमरवाला प्रसग बाद में जोड़ा गया है या यह ऊमर कोई साधारण सरदार था, राजा नहीं।

परमारों में भी ऊमरसूमरा नाम की दो शाखाएँ पाई जाती हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि परमारों की ऊमर शाखा से ये शाखाएँ निकली हैं। ऊमर का परमार होना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि राजपूतों के अनुसार परमार का विवाह परमार के साथ नहीं हो सकता। अतः ऊमर की मारवणी को अपनी स्त्री बनाने की चेष्टा उस हालत मे संभव नहीं हो सकती।

ओझाजी अपने पत्र में लिखते हैं कि सूमरा सिंध में थे परतु किस वश के थे यह ठीक ठीक निश्चित नहीं हो सका।

धुरसंबंध या उपोद्घात के ऐतिहासिक व्यक्ति

सामंतसी देवड़ा—देवडा चौहानों की एक शाखा है। ये देवडा क्यों और कब कहलाए इस विषय में कुछ निश्चित पता नहीं चलता। ख्यातों मे लिखा है कि जाळोर के एक सोनगरे राजा के यहाँ देवी स्त्री होकर रही थी

जिससे उसकी संतान देवड़ा कहलाई। कोई यह कहते हैं कि वंश के किसी राजा का नाम, या दूसरा नाम, देवराज था जिससे यह नाम पड़ा।

सामंतसी जालोर का राजा था। जालोर पहले परमारों के हाथ में था। संवत् १२१८ के कुछ पूर्व नाडोल के चौहान राजा आल्हण के तीसरे बेटे कीतू ने इसे परमारों से छीन लिया। जालोर का दूसरा नाम सुवर्णगिरि था जिससे वहाँ के शासक चौहान सोनगरा चौहान कहलाने लगे। कीतू के वंश में चाचिगदेव हुआ जिसका समय सं० १३१६ से १३३४ के लगभग है। चाचिगदेव का पुत्र सामंतसी हुआ जिसके शिलालेख १३३६ से १३५४ तक के मिले हैं। उसके पुत्र कान्हड़देव से अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर छीन लिया।

आबू पर भी पहिले परमारों का अधिकार था। संवत् १३६० के लगभग कीतू के पुत्र समरसिंह के दूसरे पुत्र के वंशज बीजड़ के बेटे राव लुंभा ने उसे परमारों से छीन लिया। सामंतसी का आबू पर अधिकार होने की जो बात पुरसंबंध में कही गई है वह ठीक नहीं जान पड़ती।

उदैचंद (या उदयादित्य) और रणधवळ—पुरसंबंध में इन्हें चावडा-वंशीय बताया गया है और उदैचंद को गुजरात का अधीश्वर कहा गया है। चावड़ों का राज्य गुजरात में ८१० से १०१७ तक रहा। उनमें उदयादित्य या उदैचंद और रिणधवळ नाम के कोई राजा नहीं हुए। अन्यत्र भी उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। लोककथाओं में माळवा के परमारों में उदैचंद या उदयादीत का और उसके कुमार रिणधवळ का नाम आता है। उदया-दीत का समय इतिहास के अनुसार सं० ११४० के आसपास है। यह समय न तो सामंतसी के समय से मेल खाता है और न ढोला के समय से।

इस पुरसंबंध की सभी बातें इतिहास के विरुद्ध मालूम पड़ती हैं, जिससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह आरंभ में मूलकथा का भाग न था पर बहुत बाद में जोड़ा गया था जब कि लोग मूलकथा की इतिहाससंबंधी बातें सर्वथा भूल गए थे।

(४) कवि या लेखक

किसी ग्रंथ को हाथ में लेते समय सबसे पहले यह प्रश्न पाठक के मन में उपस्थित होता है कि इसका निर्माता कौन है। लेखक की जीवनी तथा उसकी परिस्थिति के संबंध में जानकारी प्राप्त करना और उसके व्यक्तित्व को

उसकी कृति मे प्रतिफलित देखकर आनदलाभ करने की हममे स्वाभाविक रुचि होती है। काव्य जीवन की आलोचना है और इस काव्यमयी आलोचना के व्यापक क्षेत्र मे कवि न केवल बाह्य जीवन को ही सीमाबद्ध करता है वरन् कवि का आतरिक जीवन भी इसी आलोचना के अतर्गत आ जाता है। परतु लोकगीत और इतर साहित्यिक रचनाओं मे बड़ा अतर होता है। इतर रचनाओं के लिये साहित्यनिर्माता के लिये साहित्यकला मे कुशल होना आवश्यक होता है परतु लोकगीत एक ऐसा प्राचीन काव्य है कि जिसका निर्माता यदि कोई हो सकता है तो देशविशेष की प्राचीनकालीन परिस्थिति और साधारण जनता का सामूहिक रागात्मक अभिरुचि ही हो सकती है। यद्यपि रीति और साहित्यशास्त्र के बहाव मे सदियों तक बह चुकने के बाद आज हमारी कल्पना काव्योत्पत्ति के इस प्रकार को सभाव्य और युक्तिसगत समझने मे असमर्थ है, परतु यदि हम प्राचीन समय के मौखिक परपरागत साहित्य के प्रवाह और परिस्थिति को ध्यानपूर्वक देखें तो यह बात सहज ही समझ में आ सकेगी। इन सिद्धातों के अनुसार ढोलामारू की प्रेमगाथा को किसी व्यक्तिविशेष कवि की कृति न मानकर भी हमको यह कल्पना करने मे कठिनाई नहीं होती कि यह काव्य मौखिक परपरा के प्राचीन काव्ययुग की एक विशेष कृति है और सभव है कि तत्कालीन जनता की साधारण अभिरुचि को ध्यान मे रखकर उससे प्रेरित होकर किसी प्रतिभा-सपन्न कवि ने जनता के प्रीत्यर्थ उसी के मनोभावों को वर्तमान काव्यरूप मे बद्धकर उसके समक्ष उपस्थित कर दिया हो और जनता ने बड़ी प्रसन्नता से इसे अपनी ही सामूहिक कृति मानकर कठस्थ किया हो। ऐसी दशा मे व्यक्तिविशेष कवि होने पर भी उसके व्यक्तित्व का सामूहिक अभिरुचि के प्रबल प्रवाह मे लुप्तप्राय हो जाना सभव है। अतएव हमारा अनुमान है कि व्यक्तिविशेष का इसके बनाने में कुशल हाथ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हुए भी सामूहिक भावनाओं की एकता और सहानुभूति एकत्रित होने के कारण कवि का व्यक्तित्व समूह मे लुप्त हो गया है और अत मे मौखिक परपरा से चला आता हुआ यह काव्य हमको किसी व्यक्ति-विशेष कवि की कृति के रूप मे नहीं मिला बल्कि जनता के काव्य के रूप मे उपलब्ध हुआ है।

रूपातर नंबर २ में जो धुरसंबध या प्रस्तावना मिलती है उसके चतुर्थ छद में लिखा है—

गाहा गूढा गीत गुण कवित कथा कल्लोळ[1]।
चतुर तणा चित रंजवण कहियइ कवि कल्लोळ[2] ॥

इस दूहे के आधार पर कल्पना की जा सकती है, जैसा एकाध महानुभाव ने किया भी है, कि इस काव्य का निर्माता कोई कल्लोल नाम का कवि होगा। ऐसा होना असम्भव नहीं है पर फिर भी हम वर्त्तमान स्थिति में कल्लोल को इसका निर्माता नहीं मान सकते। पहले तो, ग्रन्थबंधवाला भाग आरंभ में मूलकथा का भाग नहीं था और बाद में जोड़ा हुआ है। दूहोंवाले रूपांतरों की प्रतियों में वह प्रायः मिलता भी नहीं। अतः उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती। दूसरे, अब तक की हुई खोज से कल्लोल नाम के किसी कवि का पता नहीं चलता। यह नाम किसी व्यक्ति का होना अधिक संभव भी नहीं जान पड़ता। अतः जब तक इस विषय में और अधिक बातें न मालूम हो जायँ तब तक 'ढोला मारूरा दूहा' इस लोकगीत के रचयिता के नाम को हम अंधकार में रहने देना ही उचित समझते हैं। उक्त दूहे में कल्लोल का सीधा सादा अर्थ आमोद-प्रमोदपूर्ण, अर्थात् उमंग के साथ कही हुई, मनोरंजक रचना लेना ही ठीक जान पड़ता है।

(५) काव्य की संक्षिप्त कथा

किसी समय पूगळ में पिंगल और नरवर में नळ नामक राजा राज्य करते थे। पिंगळ के मारवणी नाम की एक कन्या थी और नळ के ढोला या साल्ह-कुमार नाम का एक पुत्र था। एकबार पूगळ देश में अकाल पड़ा तो पिंगल सपरिवार नळ के देश में चला गया, जहाँ नळ ने उसे बड़े आदर के साथ ठहराया। ढोला को देखकर पिंगळ की रानी रीझ गई और उसने राजा पर जोर डालकर अपनी कन्या मारवणी का विवाह ढोला के साथ करवा दिया। उस समय ढोला की अवस्था तीन वर्ष की और मारवणी की डेढ वर्ष की थी। छोटी अवस्था होने के कारण पिंगळ ने मारवणी को ससुराल में नहीं रखा और पूगळ लौटते समय अपने ही साथ पूगळ ले आया। कई वर्ष बीत गए। उधर राजा नळ ने पूगळ को दूर जानकर और रास्ता भयपूर्ण समझकर ढोला का दूसरा विवाह माळवा की राजकुमारी माळवणी के साथ

---

१. पाठांतर—उकति कथा, कउतिग कथा, कलोळ, किल्लोळ, उल्लोळ।
२. किल्लोळ।

कर दिया और उसके पूर्व विवाह की बात उससे छिपा रखी । ढोला और माळवणी प्रेमपूर्वक बड़े आनंद से रहने लगे।

इधर मारवणी बडी हुई तो उसके पिता पिंगळ ने ढोला को बुलाने के लिये कई दूत भेजे, परतु माळवणी ने सौतियाडाहवश पूगळ से आनेवाले रास्ते पर ऐसा प्रबंध कर रखा था कि जिससे दूत ढोला के पास सदेश लेकर पहुँचने से पहले ही मार डाले जाते थे। मारवणी अब युवती हो गई। एक दिन सोती हुई उसने स्वप्न में ढोला को देखा। उसकी विरहपीड़ा जागरित हो उठी। उसी समय नरवर की ओर से घोड़ों का एक सौदागर पूगळ में आया। उसने ढोला के दूसरे विवाह की बात पिंगल से कही। राजा पिंगळ ने ढोला को बुलवाने के लिये अपने पुरोहित को भेजना चाहा पर रानी के कहने से ढाढियों को इस कार्य के लिये चुना। मारवणी ने भी अपना सदेश ढाढ़ियों को कह दिया।

ढाढियों ने अपने गान द्वारा माळवणी के आदमियों (पहरेदारों) को प्रसन्न कर लिया और उन्होंने उन्हे निष्पाप याचक समझकर जाने दिया। ढोला के महल के नीचे डेरा डालकर ढाढियों ने रातभर मॉड राग के करुण स्वर में मारवणी का प्रेमसदेश गाया जिसको ढोला ने सुना। गान को सुनकर ढोला व्याकुल हो उठा और प्रातःकाल होते ही उसने उन्हे बुला भेजा और सब हाल मालूम करके यथायोग्य उत्तर और इनाम देकर विदा किया। ढोला के चित्त मे उत्कठा और व्यग्रता बढ़ गई। मालवणी ने चतुरतापूर्वक पति के दिल की बात जान ली। ढोला ने मारवणी को लिवा लाने की इच्छा प्रकट की, परंतु माळवणी ने अनुनय-विनय करके ग्रीष्म और वर्षाभर ढोला को रोक रखा। अंत मे शरद् ऋतु की एक आधी रात्रि को माळवणी को सोती हुई छोड़कर ढोला चुपके से एक तेज चालवाले ऊँट पर सवार होकर पूगळ की ओर चल पड़ा। प्रस्थान करते समय ऊँट की बलबलाहट को सुनकर माळवणी जागी और ढोला को न पाकर दुखी हुई। पीछे से उसने अपने तोते को समझाकर पति को लौटाने के लिये भेजा। तोते ने चदेरी और बूँदी के बीच में एक तालाब पर ढोला को दॅतुवन करते हुए पाया और कहा कि उसके विरह में माळवणी मर गई है। ढोला समझ गया और उसने उत्तर में तोते से कहा कि तू जाकर यथाविधि उसकी अंत्येष्टि कर दे। तोता लौटा। माळवणी निराश हो गई। ढोला आगे चला। तीसरे पहर उसने आडावळा पहाड़ को पारकर लिया। मार्ग मे ढोला को ऊमरसूमरा का एक चारण मिला, जो ऊमर की

ओर से मारवणी के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव लेकर पिंगळ के पास गया था, परंतु हताश होकर लौटा आ रहा था। उसने ईर्ष्यावश ढोला से कहा कि मारवणी तो अब बुढ़िया हो गई है, तू जाकर क्या करेगा? यह सुनकर ढोला को चिंता और विरक्ति होने लगी। परंतु थोड़ी दूर आगे जाने पर बीसू नाम का दूसरा चारण मिला जिसने मारवणी का सच्चा सच्चा हाल बताकर ढोला की चिंता मिटाई।

अब ढोला पूगळ पहुँच गया। ससुराल में बड़ा स्वागत हुआ। बधाइयाँ हुईं। पिंगळ ने खूब आनंदोत्सव मनाए। मारवणी के हर्ष का पार न रहा। जिस प्रकार सूखी हुई वल्लरी समय पर वर्षाजल पा जाने से पुनः लहलहा उठती है, उसी तरह मारवणी भी पुनर्जीवित हो उठी। पंद्रह दिन आनंद भोगकर—बहुत सा दहेज, धन, दास दासी लेकर—मारवणी, सहित ढोला नरवर को बिदा हुआ। मार्ग में एक विश्रामस्थल पर सोती हुई मारवणी को पीवणे साँप (राजस्थान के एक जहरीले साँप) ने पी लिया। सवेरे जागने पर ढोला ने मारवणी को मरी पाया। वह विलाप करने लगा और चिता बनाकर साथ जलने को उद्यत हुआ। जिस समय चिताप्रवेश की तैयारी हो रही थी, उस समय एक योगी और योगिन इस मार्ग पर आ निकले। योगिनी के अनुरोध से योगी ने मारवणी को अभिमन्त्रित जल द्वारा जीवित कर दिया। ढोला प्रसन्न हुआ और आगे चला।

इस समय तक ढोला की यात्रा की खबर दुष्ट ऊमरसूमरा को हो गई थी। मारवणी को छीन लेने की इच्छा से वह फौजसहित बीच में आ डटा। ढोला से मिलने पर उसने कपटपूर्वक उसका खूब सत्कार किया। ढोला उसकी धोखे की बातों में आकर उसके साथ ठहर गया। ऊमर की सेना के साथ मारवणी के पीहर की एक डूमणी (गायिका) थी। उसने गाते हुए, इशारे से मारवणी को इस धोखे और षड्यन्त्र की बात समझा दी। समझकर मारवणी ने अपने ऊँट को जोर से छड़ी से मारा। ऊँट भाग खड़ा हुआ। ढोला जब ऊँट को सम्हालने के लिये आया तब मारवणी ने उसको चुपके से षड्यन्त्र की बात कह सुनाई। झटपट दोनों ऊँट पर सवार हो गए। ऊँट पूरे वेग से दौड़ पड़ा और देखते देखते कोसों दूर निकल गया। ऊमर ने सेनासहित पीछा किया परंतु उसे हताश होकर वापिस लौटना पड़ा।

ढोला मारवणीसहित सकुशल नरवर पहुँच गया। उसके पिता ने धूमधाम से दोनों का स्वागत करके महलों में प्रवेश कराया। अब ढोला,

मारवणी और माळवणी तीनों आनंदपूर्वक सुख से रहने लगे। एक दिन माळवणी ने मारवाड देश की निंदा की। उत्तर मे मारवणी ने मालवा की बुराई और मारवाड़ की प्रशसा की। ढोला ने दोनों को समझाकर झगड़ा मिटा दिया।

(६) लोकगीत (Ballad)

ऊपर कहा जा चुका है कि 'ढोला मारूरा दूहा' एक जनप्रिय लोकगीत है। उसके विषय के कुछ कहने के पूर्व इस बात पर विचार कर लेना उचित होगा कि लोकगीत या गीतकाव्य (Ballad) किसे कहते है और उसकी क्या क्या विशेषताएँ हैं। हिंदी के लिये यह एक रोचक और नया विषय है। इसकी विवेचना करने के लिये हमे पाश्चात्य विद्वानों की खोज से लाभ उठाना पड़ेगा और उनके सिद्धांतों का अनुशीलन करने से हमें इस विषय में कई नई बातें मालूम होंगी।

डाक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर के कुछ आधुनिक गीतों की समीक्षा करते हुए एक स्थान पर भारतीय इतिहास के विद्वान् सर जदुनाथ सरकार ने लोकगीत (Ballad) की व्याख्या यों की है—

"Rapidity of movemennt, simplicity of diction, primary emotions of universal appeal, action rather than subtle analysis, broad striking characterisation, 'thumb nail sketches' of backgrond and the sparest use (or rather complete avoidance) of literary artifices—these are the essential requisites of the true ballad."

(अर्थात्—प्रबध की द्रुतगति, शब्दविन्यास की सादगी, विश्वव्यापक मर्मस्पर्शी प्राकृतिक और आदिम मनोराग, सूक्ष्म भावविश्लेषण के बजाय व्यापार की प्रधानता, स्थूल किंतु प्रभावोत्पादक चरित्रचित्रण, क्रीड़ास्थली अथवा देशकाल का स्थूल अंकन, साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनातिन्यून प्रयोग या सर्वथा बहिष्कार—सच्चे लोकगीत की ये नितात आवश्यक विशेषताएँ हैं।)

ये तो साधारण बातें हैं जो प्रत्येक लोकगीत (Ballad) मे पाई जाती हैं। यदि सूक्ष्म रीति से विश्लेषण करके देखा जाय तो कई विशेषताएँ

लोकगीत मे दृष्टिगोचर होती हैं, जो इतर साहित्य विभागों में नहीं पाई जातीं। उनमें से कुछ का संकलन नीचे किया जाता है—

(१) सबसे पहली जानने योग्य बात यह है कि लोकगीत को कलात्मक साहित्य (Literature) का अग न कहकर अनुश्रुति (Lore) की परपरा मे समझना चाहिए। हम पहले कह आए है कि कलात्मक कविता (साहित्य) और लोकगीत की प्राकृतिक कविता मे रात दिन का अतर है। अँगरेजी गीतकाव्यों के अनुसधान करनेवाले एक विद्वान्, प्रोफेसर किटरिज, लिखते हैं—

"In studying ballads then, we are studying the poetry of the folk and the poetry of the folk is different from the poetry of art."

(अर्थात्—इस प्रकार, लोकगीतों के अध्ययन करने का अर्थ जनता के काव्य का अध्ययन करना है और जनता का काव्य कलापूर्ण काव्य से भिन्न है।)

इसी विषय के दूसरे विद्वान् मिस्टर सिजविक लिखते हैं—

"It is older than literature, older than alphabet It is lore and belongs to the illiterate"

(अर्थात्—लोकगीत की सृष्टि साहित्य की सृष्टि से, यहाँ तक कि वर्णमाला की सृष्टि से भी पहले की है, वह अनुश्रुति का अग है और निरक्षर जनता की सपत्ति है।)

इन उद्धरणों का आशय यह है कि साहित्य की उत्पत्ति से बहुत पहले, जब मनुष्यों ने पढनालिखना नहीं सीखा था तभी से, मौखिक आवृत्ति के रूप में लोकगीत हमारी पैतृक सपत्ति के रूप में अब तक चले आ रहे हैं। अतएव धारणा यह होती है कि लिखित साहित्य से पूर्वकालीन होने के कारण हम लोकगीतों को साहित्य सज्ञा में नहीं गिन सकते। परतु पाश्चात्यों का यह विचार सर्वथा युक्तिसगत नहीं जँचता। उनकी साहित्य की परिभाषा जितनी सकुचित है उतना ही उनका यह विचार भी सकुचित है। भारतीयों ने साहित्य और काव्य की सीमा को मानवजीवन की सीमा से मिलाकर उतना ही व्यापक और विस्तृत रखा है। कोई भी रसपरिपुष्ट मानवविचार, चाहे वह जीवन के किसी अग सबध क्यों न रखता हो, साहित्य और काव्य का विषय बन सकता है, फिर चाहे वह लिखित रूप में हो अथवा मौखिक रूप में।

(२) गीतकाव्यों के संबध मे दूसरी स्मरण रखने योग्य बात है उनकी मौखिक परपरा (Oral Tradition)। प्रत्येक गीतकाव्य अपना वर्तमान लिखित स्थूलरूप धारण करने से पहले मौखिक परपरा के तरल रूप मे अवश्य रहा है और समयातर मे भूतकाल से वर्तमान में आने का उसका मार्ग मौखिक आवतन अवश्य रहा है। आज भी हम देहातों में जाकर देखें तो हजारों गीत, आख्यायिकाएँ एव दतकथाएँ गॉव के अपठित लोगों के मुख से, अथवा चारण, भाट, वदीजनों के मुख से सुनने को मिलेंगी। इनमे से कुछ, अधिक हृदयस्पर्शी होने के कारण, विशेष प्रचलित हो जाते हैं और अत में किसी अक्षरज्ञाता उत्साही पुरुष के हाथ मे पड़कर पुस्तक के लिखित रूप को धारण कर लेते हैं। देश, काल और वक्ता के भेद के अनुसार इन मौखिक परंपरागत गीतों के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कई लेखबद्ध हो जाते हैं। इस विषय में प्रो० किटरिज लिखते हैं—

"To this oral literature education is no friend, culture destroys it with amazing rapidity, When a nation learns to read, it begins to disregard its traditional tales, it feels a little ashamed of them and finally it loses both the will and the power to remember and transmit them. What was once the folk as a whole becomes the heritage of the illiterate only and soon, unless it is gathered up by the antipuary, vanishes altogether."

(अर्थात्—शिक्षा इस मौखिक साहित्य की मित्र नहीं होती। सभ्यता की वृद्धि उसे आश्चर्यजनक शीघ्रता के साथ नष्ट कर देती है। जब कोई जाति लिखनापढ़ना सीख जाती है तो अपनी परपरागत कथाओं की अवहेलना करने लग जाती है—उनसे वह थोड़ी बहुत लज्जा भी अनुभव करने लगती है—और अत में वह उनको याद रखने तथा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तातरित करने की इच्छा एव शक्ति से हाथ धो बैठती है। जो चीज कभी समस्त जनता की थी वह केवल निरक्षरों की सपत्ति रह जाती है और यदि पुरातत्व-प्रेमियों द्वारा सगृहीत न कर ली जाय, तो सदा के लिये विलुप्त हो जाती है।)

सक्षेप में, लोकगीतों के वर्तमानकालीन ह्रास का यही मुख्य कारण है।

(३) तीसरी विशेषता यह है कि लोकगीतों मे कवि अथवा काव्य-निर्माता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उत्तरकालीन कलात्मक कविता मे कवि का व्यक्तित्व उसकी कृति मे प्रतिफलित होता रहता है। गीतकाव्यों मे अव्यक्तित्व की विशेषता रहती है। लोकगीतों के सबसे बड़े पाश्चात्य पडित और अन्वेषणकर्ता प्रोफेसर चाइल्ड (prof. F. J. Child) ने दोनों प्रकार के काव्यों का भेद स्पष्ट करते हुए यों लिखा है—

'The historical and natural place of the ballad is anterior to the appearance of poetry of art to which it has formed a step and by which it has been regularly displaced and in some places all but extinguished."

और भी—"The condition of society in which a truly national and popular poetry appears explains the character of such poetry. This is a condition in which the people are not divided by political organisation and book culture into marked distinct classes, in which, consequently, there is such community of ideas and feelings that whole people from one individual. Such poetry, accordingly, while it is in its essence an expression of our common human nature and so of universal and indestructible interest, will, in each case, be differentiated by circumstances and idiosyncracy. On the other hand, it will always be an expression of the mind and heart of the people as an individual and never of the personality of individual men. The fundamental characteristic of popular ballads is, therefore, the absence of subjectivity and of self consciousness... ... ... The author counts for nothing and it is not by mere accident but with the best reasons that they have come down to us anonymous."

प्रोफेसर चाइल्ड की संमति को हमने सविस्तर उद्धृत किया है क्योंकि उपर्युक्त सारी बातें **ढोला मारूरा दूहा** के सबंध मे लागू होती हैं और आगे चलकर हम इनके सिद्धातो के आधार पर ग्रथसबधी बहुत सी उलझनों को सुलझाने की चेष्टा करेंगे।

(४) चौथी विशेषता लोकगीतों की यह है कि उनका यदि कोई रचयिता हो सकता है तो वह जन समुदाय ही हो सकता है न कि व्यक्तिविशेष। इस विषय मे पाश्चात्य विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं।

प्रसिद्ध कहानी लेखक जेम्स ग्रिम का मत है कि लोकगीत का रचयिता व्यक्ति नहीं, बल्कि जनसमुदाय (Das Volksdichter) है, क्योंकि लोकगीतों में जनसमुदाय की आत्मा सपूर्ण रूप में प्रकाशित होती है। इन्हीं से कुछ मिलतीजुलती प्रो० किटरिज की राय है। मानव-जाति-विज्ञान (Anthropology) का आधार लेकर और मानव समुदाय के आदिम सस्कार सबधी अन्वेषणों को दृष्टात मे रखकर वे अनुमान करते हैं कि जन-समुदाय का काव्यनिर्माता होना असभाव्य बात नहीं है। समाज की आदिम अवस्था में जब कोई स्मरणीय घटना होती—यथा, कोई व्यक्ति वीरता का कोई काम करते या समाज में कोई आनदोत्सव का अवसर उपस्थित होता—तो समुदाय एकत्रित होकर उसमें भाग लेता होगा। उस समय उस समुदाय की मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ करीब करीब एक ही लक्ष्य की ओर उद्दिष्ट रहती होंगी। ऐसी दशा में सवेदना, सहानुभूति और एकता के भावों से प्रेरित होकर यदि उस समुदाय के सारे व्यक्तियों के भाव एक ही प्रकार से प्रकाशित हों, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतएव ऐसी परिस्थिति मे निर्मित काव्य का निर्माता व्यक्ति न होकर समुदाय ही कहा जायगा—The folk is the author.

इस कल्पनात्मक अनुमान में तथ्याश बहुत थोड़ा प्रतीत होता है। कल्पना मे सब कुछ सभव हो सकता है, परतु वास्तव मे क्या होता रहा होगा, यह कौन कह सकता है। समय में चाहे कितना ही भारी अतर क्यों न हो गया हो, मानवसमाज की व्यापक और सस्कारारूढ़ साधारण प्रवृत्तियाँ हर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख, भय, क्षोभ—जो हजारों वर्ष पहले रही होंगी, वे ही करीब करीब आज भी हैं। फिर यह कैसे मान लिया जाय कि जो बात आज होनी असभव सी प्रतीत होती है वह हजार वर्ष पहले सभव होती थी। यह मानने मे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती कि विशेष प्रकार की रागात्मक

मनोभावनाओं के तीव्ररूप में उद्भासित होने के अवसरों पर लोकगीत बनते हैं और उनको बनाने की प्रेरणा करनेवाला जनसमुदाय ही होता है, परंतु जनसमुदाय की उत्तेजित मनोवेदनाओं को ऐक्य सूत्र में बद्धकर गीतरूप में संघटित करनेवाला जरूर कोई न कोई उसी समाज का प्रतिभासंपन्न व्यक्ति रहता होगा। यही युक्ति संगत भी जंचता है।

इसी विषय के एक और पाश्चात्य विद्वान् प्रो० गम्मीयर (Prof Gummere) हैं, जिन्होंने लोकगीत की उत्पत्ति मानवसभ्यता के प्रारंभ काल में मानी है। संगीत और नाट्य तत्वों को आधारस्तंभ मानकर उन्होंने लोकगीत की व्याख्या यों की है—

"The popular ballad is a narrative lyric made and sung at the dance and handed down in popular tradition ... ... The making of the original ballad is a choral dramatic process and treats a situation, the traditional course of the ballad is really an epic process which tends more to treat a seraes of events as a story."

पाश्चात्य देशों में लोकगीतों के संबंध में साधारणतः यही मत प्रचलित है। लोकगीत (Ballad) शब्द का सर्वसंमत पारिभाषिक अर्थ लिया जाय, तो यही आशय होता है। अँग्रेजी का (Ballad) शब्द पुराने फ्रेंच शब्द Ballare से निकला हुआ है, जिसका अर्थ होता है नाचना। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में जातीय धार्मिक उत्सवों, अथवा किसी विशेष घटना, को मनाने के लिये जनसमुदाय एकत्र होकर गान और नाच द्वारा घटना संबंधी संस्मृतियों को तत्क्षण काव्यबद्ध करता था और बड़ी रुचि के साथ उसे स्मृति में रक्षितकर, यदा कदा, यत्र तत्र, गाया करता था। समयांतर में इस ढंग पर गीत बनाने का एक ढर्रा पड़ गया और सारे गीत एक छंद विशेष में बनने लगे, जिसका नाम भी Ballade छंद पड़ गया।

संगीत और कविता का आदिम काल से ही इतना घनिष्ट संबंध रहा है कि लोकगीत की उत्पत्ति के संबंध में ये कल्पनाएँ युक्तिसंगत और स्वाभाविक प्रतीत होती हैं संस्कृत शब्द लोकगीत या गीतकाव्य से भी संगीत की प्रधानता द्योतित होती है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है

कि मानवहृदय की आदिम मनोवृत्तियों को प्रकाशित करने में सगीत ने बडा भारी सहयोग किया है। भारतीय सभ्यता और धर्म के आधारस्तभ वेदों की अनत ज्ञानराशि सगीतमय ऋचाओं के अनर्गल प्रवाह में प्रवाहित हुई और चारों वेदो में से एक प्रमुख वेद—सामवेद—गान के विशिष्ट रूप में प्रकट हुआ। किसी समय में सामगान भारतीयों को बड़ा प्रिय था।

दूसरी प्रधानता जो लोकगीतो मे पाई जाती है वह है उनका नाट्य और अभिनेय गुणों से युक्त होना। नाट्य मे हाव-भाव, हेला, प्रदर्शन तथा नृत्य सभी प्रदर्शनीय अभिनयगुण रहते हैं। अभिनय और नृत्य द्वारा मानवअभिरुचि का आकर्षण सहज ही मे किया जा सकता है। यदि भारतीय नाटको की उत्पत्ति की ओर दृष्टिपात किया जाय तो यह बात तथ्ययुक्त प्रमाणित होगी कि धार्मिक प्रेरणाओ से उत्साहित होकर जनता प्राचीन काल में देवमदिर अथवा किसी अन्य पवित्र स्थान मे एकत्र होकर किसी समकालीन अथवा पूर्वघटित घटना की स्मृति मे कीर्तन, गुणगान, नृत्य आदि किया करती थी और ऐसे ही अवसरों पर हाव-भाव, अभिनय द्वारा किसी वीर अथवा धार्मिक पुरुष के कार्यों का रूपक रचकर प्रदर्शन किया करती थी। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण के पुत्र-पौत्रों ने नागरिकों को एकत्रकर समारोह सहित द्वारका मे इस प्रकार के रूपक का अभिनय किया था। 'नाटक' शब्द की प्रकृति नट् धातु यही प्रमाणित करती है। भारतीय नाटकाचार्यों—भरत और धनजय—का भी यही मत है कि मानवहृदय की भावनाओं को प्रकाशित करने में नृत्य ने आदिकाल से सहयोग किया है। अतएव पाश्चात्यों का यह कहना कि संगीत और नृत्य के रूप में लोकगीतों का साहित्य के इतिहास मे सर्वप्रथम विकास हुआ, भारतीय आचार्यों के सिद्धातों से बहुत कुछ मेल खाता है और यह ग्राह्य भी होना चाहिए।

प्रो० गम्मीयर ने लोकगीतो की उत्पत्ति के विषय में इस बात पर विशेष जोर दिया है कि लोकगीत के निर्माण का कार्य अचिंतितपूर्व (Improvised) कृत्य है अर्थात् किसी घटना को मानने के लिये उपस्थित जनसमूह का उत्तेजित हृदय नाचते गाते हुए तत्क्षण ही सामूहिक प्रयास के रूप में गीत काव्य की रचना कर देता है। इस मत (Improvisation theory) को बहुत कम विद्वान् मानते हैं। प्रो० चाइल्ड यद्यपि अभिनय और सगीत के गुणों को प्रधानता देते है परतु उन्होंने नृत्य और सगीत ही से लोकगीत की निश्चित रूप से उत्पत्ति नहीं बताई है। उनके मतके झुकाव से ऐसा

प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे चारणों अथवा भाटों की जातिविशेष में वशपरपरा से यह काम रहा होगा कि वह जनअभिरुचि के अनुरूप समय समय पर गीत काव्य बनाकर समुदाय मे उनका प्रचार करे। लोकगीत साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद उनकी धारणा है कि—There is the genuine ring of the best days of minstrelsy.

लोकगीत की उत्पत्ति और परिभाषा के विषय पर मत-मतातर के इस झगडे को यहीं छोड़कर लोकगीतों के विकास के रोचक विषय पर कुछ कहना उचित होगा।

गीत काव्य जनता का, जनता के लिये निर्मित, और जनता द्वारा निर्मित, लोकप्रिय काव्य है। कलात्मक कविता के विपरीत इसकी विशेषता यह होती है कि इसमें मानवसमाज की आदिम मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ, उनके हर्ष उल्लास, शोक, विषाद, प्रेम, ईर्ष्या, भय, आशका, घृणा, ग्लानि, आश्चर्यविस्मय, भक्ति, निवृत्ति आदि भाव अपने सरल से सरल और विशुद्ध रागात्मक रूप में प्रकाशित होते हैं। इसमें सभ्य जीवन का कृत्रिम आडबर, अलकार की अस्वाभाविक चमत्कृति और प्रपचमय जीवन की कपटपूर्ण प्रवचना का बहुत कम आभास मिलता है। वास्तव मे सच्चा काव्य वही है जिसमे मानवजीवन का निष्कपट अभिव्यजन होता है। सच तो यह है कि जब से मनुष्य ने अपना आपा सँभाला है, जब से यह बुद्धिमत्ता का ढोंग रचने लगा है, बुद्धिमत्ता की बहक में जबसे उसने मस्तिष्क के सामने हृदय की सत्ता का तिरस्कार करना श्रेयस्कर समझ लिया है तभी से सच्ची, हृदयस्पर्शी, नैसर्गिक कविता का ह्रास होने लगा है और उसका स्थान कृत्रिम तथा भावशून्य, आडबरपूर्ण कविता ने ग्रहण कर लिया है। विशाल गगन मे स्वच्छद परों को फटफटाती हुई और गाती हुई, यथेच्छ कडुवे, कसैले अथवा मधुर फलों के स्वाद को चखती हुई और वन्य सरिताओं का निर्मल जल पान करती हुई वन वन में विचरण करनेवाली मनमौजी चिड़िया के सगीत में और सोने के पिंजड़े में जकड़ी हुई अपनी इच्छा के विरुद्ध उत्तमोत्तम पदार्थों का भोग करती हुई, अपने मानव स्वामी के रटाए हुए कुछ शब्दों को रटती हुई चिड़िया मे जो अंतर है, वही अतर इस स्वच्छद प्राकृतिक कविता और अर्वाचीन काल की प्रथाबद्ध कविता में है।

ससार की जातियाँ और देश भिन्न भिन्न हैं परतु मानवसमाज की

व्यापक एकता लगभग सभी देशों और जातियों मे एक सी है। यही कारण है कि लोकगीतों के अन्वेषकों ने ससार के भिन्न भिन्न भूभागों की भिन्न भिन्न जातियों के लोकगीतों में विषय और वर्णनशैली तथा अन्यान्य विशेषताओं की आश्चर्यजनक समानता पाई है। कहीं कहीं तो कथाएँ तक मिलती जुलती हैं। क्या यूरोप, क्या मिस्र, क्या भारत और क्या अन्यान्य देश, प्रायः सभी देशों के प्राचीन गीतकाव्यों का मिलान करके हम देखें तो वही प्राकृतिक सरलता, वही आडबरशून्यता, वही अधविश्वासों की बहुलता, वही प्रेम, ईर्ष्या, वीरता आदि भावों की द्योतक रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ तक कि विचारशील मस्तिष्क मे यह भाव जागरित हुए बिना नहीं रह सकता कि उत्तर काल के मतमतातरों, सभ्यता और धर्मसबधी भेदों से विशृखलित ससार की जनता यदि भाई भाई की तरह प्रेमपूर्वक किसी स्थान पर मिल सकती है तो इन्हीं गीतकाव्यों और परंपरागत गाथाओं के विशिष्ट रंगमंच पर।

विद्वानों ने अन्वेषण करके मालूम किया है कि ससार के सभी देशों के गीतकाव्यों मे विषय और शैली की समानता है। उनमे से कुछ समानताओं का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) अपने सच्चे प्रेमी को पाने के लिये प्रेमी अथवा प्रेमिका का प्राणपण से प्रयत्न करना और अनेक बाधाओं को हटाकर उसे प्राप्त कर लेना तथा आसुरी रीति से व्याह कर लेना।

(२) सौतियाडाह अथवा सौतेली माता की ईर्ष्या के कारण प्रेममार्ग पर भयकर दुर्घटनाओं का घटित होना।

(३) प्रेम मे विश्वासघात के फलस्वरूप अनेक विषम दुर्घटनाएँ होना।

(४) आदर्श वीरता के आख्यान।

(५) पहेलियों द्वारा मानवभाग्य का निपटारा किया जाना। विशेषतः पहेलियों के शुद्ध उत्तर के परिणाम मे प्रेमी दपति का मिलन होना। इसकी सभी देशों के लोकगीतों मे चर्चा मिलती है।

(६) पुनर्जीवन के सिद्धात मे ससारव्यापी विश्वास।

(७) अलौकिक सत्ता मे आस्था और विश्वास (Supernatural belief), और साथ ही भूत, प्रेत, डाइन और परियों में विश्वास।

(८) कहानी का उपदेशदायक (Didectic) न होकर सीधे और रोचक ढंग से कहा जाना।

(९) धार्मिक सिद्धांतों की दृढ़ता की प्रशस्तिस्वरूप बातें।

(१०) पशु पक्षियों द्वारा मानव हित-संपादन।

ये बातें साधारणतः संसार के सभी देशों के लोकगीतों (Ballads) में पाई जाती हैं। ढोला मारूरा दूहा में इनमें से प्रायः सभी का प्रयोग हुआ है। न केवल विषय और प्रतिपादन शैली की एकता, वरन् उस काल की भी एकता पाई जाती है, जब संसारभर में इन लोकगीतों की एक बाढ़ सी आ गई थी। ईसा की तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी (सं० १२००-१६०० तक) के बीच के युग को पाश्चात्य अन्वेषणों के आधार पर लोकगीत का संसारव्यापी युग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

लोकगीतों की बनावट और बाह्यरूप के संबंध में भी कुछ स्मरण रखने योग्य साधारण बातें हैं, जिनमें उनकी उत्पत्ति और विशेषता के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) प्रायः देखा जाता है कि प्राचीन ढंग के लोकगीत में ध्रुवक (Refrain) का बहुधा प्रयोग मिलता है।

ध्रुवक-प्रयोग के आधार पर लोकगीत साहित्य के शास्त्रीय अन्वेषकों ने यह अनुमान किया है कि यह प्रयोग उस प्राचीन प्रथा और सरल मानवप्रवृत्ति का परिचायक है जब एक जनसमुदाय एकत्र होकर किसी घटना के संबंध में गान और नृत्य करता रहा होगा और सारा समुदाय नियत समय पर ध्रुवक को उठाकर गाने में पूर्ण सहयोग देता रहा होगा। अधिकांश गीतकाव्यों में ध्रुवक मिलता है, परंतु कुछ ऐसे भी हैं जिनमें इसका प्रयोग नहीं मिलता। ये रचनाएँ या तो पीछे की हैं जब ध्रुवक का प्रयोग न रहा होगा, अथवा ये किसी एक व्यक्ति (चारण अथवा भाट) की बनाई हुई हैं। पीछे से ध्रुवक-प्रयोग स्थगित कर दिया गया, ऐसा प्रतीत होता है।

(२) आवृत्ति (Repetition) भी साधारणतः प्राचीन गीतकाव्यों का एक प्रमुख लक्षण है। ध्रुवक भी एक प्रकार की आवृत्ति ही है, परंतु वह आवृत्ति छंद के किसी विशेष स्थल पर नियमतः होती है—खासकर अंत में। ढोला मारूरा दूहा में आवृत्ति का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है।

कहीं तो पक्ति की पक्ति का आवर्त्तन मिलता है और कहीं पक्ति के एक या दो शब्दों मे परिवर्तन करके बार बार दुहराया गया है, यथा—

बीजुळियॉ चहलावहलि आभय आभय कोडि ।
कद रे मिलउँली सजना कस कचूकी छोडि ॥४६॥
बीजुळियॉ चहलावहलि आभइ आभई च्यारि ।
कद रे मिलउँली सजना लॉबी बॉह पसारि ॥४५॥

इसी प्रकार दूहा न० ५४, ५५, ५६, ५८, ५९ के "कूँझड़ियाँ" वाले दूहों में आवृत्ति मिलती है ।

इसी प्रकार 'ऊनमियउ उत्तर दिसै' वाले दूहो मे (देखो नं० १८, ४२, ४३ में) आवृत्ति है । यही प्रयोग ग्रथ के और स्थलो मे भी मिलता है । किसी एक बात अथवा भाव को बार बार दुहराकर थोडे से हेरफेर के साथ उसी भाषा में कहना प्राचीन ढंग की कविता में बहुत पाया जाता है । सामुदायिक रचना के सिवा इसका कारण यह भी हो सकता है कि विषय की ओर विशेष ध्यान आकर्षित करने के लिये दुहराना आवश्यक होता था ।

(३) तीसरी बात जो साधारणतः इन प्राचीन काव्यों मे पाई जाती है वह सख्या के अक सात (७) और तीन (३) का प्रचुर प्रयोग । इसका कोई निश्चित कारण तो मालूम नहीं होता कि प्राचीन जनसमाज को ये सख्याएँ क्यों विशेष प्रिय थीं, परतु यह निःसदिग्ध तथ्य है कि ससार के प्राचीन साहित्य मे ये सख्याएँ विशेष प्रतिष्ठित हुई हैं । हिंदूसस्कृति के अनुसार नौ की सख्या के साथ साथ ये दोनों सख्याएँ पवित्र और शुभ मानी गई हैं । त्रिदेव, त्रिलोक, त्रिगुण तथा सप्तद्वीप, सप्तर्षि, सप्तसमुद्र और नवनिधि, नवरत्न आदि गणनाओं के ससर्ग से ये सख्याएँ हिंदूसमाज में सस्कारारूढ परपरा से प्रतिष्ठित हुई है ।

लोकगीत की उपर्युक्त विशेषताएँ काव्य के प्राचीन रूप की परिचायक है और इनसे उस समय के भोलेभाले, सरल, निष्कपट और अधविश्वासी समाज का पता लगता है ।

पाश्चात्य विद्वानों की खोज के परिणाम में लोकगीतों के कई विभाग किए जा सकते है । उनमे से मुख्य विभागों का वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) परपरागत लोकगीत (Traditional Ballad)—प्राचीनतम सच्चे गीतकाव्य यही गिने जाते हैं । वशपरपरा के क्रम से मौखिक

आवर्त्तन के रूप मे ये हमें उपलब्ध हुए हैं। इनमें से कुछ तो लिपिबद्ध हो गए हैं और कुछ अब भी मौखिक गान के रूप में प्रचलित हैं। इनका निर्माता कोई व्यक्ति-कवि नहीं होता। तात्कालिक समाज को ही इनका रचयिता समझना चाहिए, क्योंकि कवि के व्यक्तित्व की छाप का इनकी बनावट मे सर्वथा अभाव रहता है। वर्तमान काल मे इस विशुद्ध कोटि का गीतकाव्य मिलना कठिन है।

(२) चारणी लोकगीत (Minstrel Ballad)—इनकी रचना चारण, भाट, ढाढी आदि ऐसी जातियों के व्यक्तियों द्वारा होती है जिनका काम जनता को गाकर सुनाना रहता है। इनमें और प्रथम कोटि के गीतों मे स्पष्ट भेद है कि ये एक कवि की व्यक्तिगत कृति होने के कारण गीतकाव्यों के और गुण रखते हुए साथ ही व्यक्तित्व की पूरी छाप भी रखते हैं और वे उतने सरल, प्राकृतिक और आडंबरशून्य नहीं होते। ये अपेक्षाकृत पीछे के काल की कृतियाँ है।

(३) विकृत लोकगीत (Broadside Ballad)—ये गीत आरंभ में तो परपरा गीत ही होते हैं पर समय के बड़े अतर से और निम्न कोटि की जनता के मुख मे पडकर वे असली गीत न केवल अपने मौलिक रूप को ही विकृत कर बैठते हैं वरन् कहीं कहीं तो मौलिक कहानी की घटनाएँ तक इतनी विकृत हो जाती हैं कि उसके असली रूप और वर्तमानरूप मे आकाश-पाताल का अ तर पड़ जाता है। उत्तर भारत और मध्यप्रदेश मे प्रचलित आल्हा का गीत इसी कोटि का है। ढोला मारू गीत के भी कई विकृत रूप प्रचलित हैं जो देहात के ढाढ़ियों के मुख से गान के रूप मे सुने जाते हैं और जिसमें स्थान स्थान पर कथा का अगभग करके उसे विकृत बनाया गया है।

(४) साहित्यिक लोकगीत (Literary Ballad)—पहले तीन प्रकार के लोकगीत साहित्यिक विद्वानों से भिन्न व्यक्तियों की रचनाएँ होते है। उनमें साहित्यिक विधानों का अभाव रहता है। वे कलापूर्ण काव्य से सर्वथा भिन्न लोककाव्य (Folk Poetry) कहे जा सकते हैं। पर साहित्यिक लोकगीतों की रचना प्राचीन लोकगीतों के ढग पर साहित्यिक कवियों द्वारा होती है। उनमे साहित्यिक विधानों का अभाव नहीं रहता यद्यपि बाहुल्य भी नहीं होता। ये गीत अपेक्षाकृत बहुत बाद की रचनाएँ हैं। सुभद्राकुमारी चौहान का **झाँसी की रानी** गीत इसी कोटि का है।

प्रस्तुत ढोला मारू गीत को उपर्युक्त विभागो मे से किसी भी एक के अतर्गत नहीं किया जा सकता। प्रथम दोनों विभागों की विशेषताएँ इसमें पाई जाती हैं और किसी अश तक तीसरे की भी। बहुत सभव है कि आरभ मे यह गीत किसी एक व्यक्ति की रचना हो क्योकि हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि किसी जनसमाज ने किसी एक स्थान पर एकत्र होकर इसके मूलरूप को निर्मित किया हो। पर आगे चलकर यह जनता की वस्तु बन गया और जनता द्वारा परिवर्त्तन एव परिवर्धन उसमें बराबर होते रहे। इसके अतिरिक्त चारणी लोकगीतो में कवि के व्यक्तित्व की पूरी छाप पाई जाती है पर ढोला मारू मे वह अविद्यमान है। अत॰ इस गीत की निर्मात्री वास्तव मे जनता को ही समझना चाहिए। ढोला मारू के आगे चलकर अनेक विकृत रूप भी बन गए जिनमे मूल गीत की कथा सर्वथा विकृत हो गई परंतु हमने जो प्राचीन रूप लिया है उससे इन विकारों का कोई सबंध नहीं।

ऊपर लोकगीत की जो विशेषताएँ बताई गई हैं उनमे से प्रायः सभी ढोला मारू में पाई जाती हैं। कहानी अथ से इति पर्यंत बड़ी द्रुतगति के साथ दौड़ती है। कथा की गति में विघ्न डालनेवाला अश कथाभर मे नहीं मिलता। बीच बीच मे सदेश, ऋतुवर्णन-माळवणी-विरहवर्णन, मारवणी रूपवर्णन आदि के जो लबे व्यापारहीन वर्णन आए हैं, वे आरंभ में मूलकथा के भाग न थे परंतु समय समय पर बढते रहे हैं। उनमे भी लोकगीत की एक महत्वपूर्ण विशेषता आवृत्ति का प्राधान्य है। इसी प्रकार न तो कहीं क्रीड़ास्थली अथवा देशकाल का वर्णन और न कहीं मानसिक भावों का विश्लेषण ही कथा के व्यापार को शिथिल करता है। कहानी की क्रीड़ास्थली का अकन अस्पष्ट रेखाओं के रूप में ही यत्रतत्र हुआ है। चरित्रचित्रण भी बहुत स्थूल है।

कहानी में भावसकुलता भी नहीं मिलती। प्रेम और प्रेमजन्य विकलता, ईर्ष्या, उत्साह, हर्ष आदि मोटे मोटे भावों का ही वर्णन किया गया है। रचनाशैली अत्यत सरल और सीधी है। कृत्रिम साहित्यिक विधानों का सर्वत्र अभाव सा है। एकाध मोटे मोटे अलकार कई एक स्थानों पर आए हैं पर वे अपने आप आए हुए और सर्वथा स्वाभाविक जान पड़ते हैं। कला के लिये जानबूझकर किए हुए प्रयास का कहीं आभास नहीं मिलता।

लोकगीतों मे मुख्यतया शृंगार या वीर या दोनों की प्रधानता होती है। अन्य रसों की व्यंजना बीच बीच मे आवश्यकतानुसार होती है। ढोला मारू मे शृंगार रस का प्राधान्य है; अन्य रसों की व्यंजना बहुत ही कम नाममात्र को, कहीं कहीं हुई है। बहुतों की व्यंजना तो बिलकुल ही नहीं हुई। वस्तुवर्णन के लिये भी कहीं विराम नहीं किया गया है।

लोकगीत की कतिपय अन्यान्य विशेषताएँ ढोला मारू मे कहाँ कहाँ पाई जाती है, इसका उल्लेख ऊपर उन विशेषताओं के वर्णन के प्रसंग मे हो चुका है।

(७) प्रबंध कल्पना और वर्णन

किसी भी संबद्ध कविता मे, चाहे वह प्रबंध के रूप मे हो अथवा गति के रूप मे, घटनाओं का संक्रमण साधारणतः दो रीतियों से किया जाता है। कवि या तो घटनाक्रम को आदर्श परिणाम पर पहुँचाकर कोई लोकोपकारी आदर्श उपस्थित करता है, अथवा केवल कथानक की स्वाभाविक गति को ध्यान मे रखते हुए मनुष्यजीवन का सच्चा निष्कपट चित्र उपस्थित करता है, जिसमें घटनाओं का क्रम आदर्शोन्मुख न रखकर केवल उनके लोकसमन्वित व्यवहारशील स्वाभाविक रूप के सौंदर्य को प्रदर्शित करता है। पहले मे उपदेश और नीतिपूर्ण परिणाम की प्रधानता होने के कारण वह कृत्रिम सा प्रतीत होता है, दूसरा लोकसमन्वित और स्वाभाविक होने से हमारे मन का अधिक अनुरंजन कर सकता है। पिछले प्रकार में यद्यपि कवि को यह स्वतंत्रता नहीं रहती कि वह जानबूझकर नीति और सत्य के आदर्श मार्ग की अवहेलना करे परंतु उसका लक्ष्य रहता है प्रबंधकल्पना द्वारा केवल उस नीति, धर्म और सत्यता को सामने लाना जो लोकव्यवहृत और जनानुरंजनकारी हो। ढोला मारू का प्रबंध पिछली कोटि का है। यदि उसमें घटनाओं द्वारा किसी आदर्श परिणाम को दिखाने का लक्ष्य होता तो ऊमर सूमरा और उसके दुष्ट चारण का परिणाम अवश्य दिखाया जाता परंतु ऐसा नहीं किया गया। साथ ही नीति धर्म और सत्य की अवहेलना भी नहीं की गई है, प्रेमियों को अपनी प्रेमसाधना के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित होते हुए भी अभीष्ट का लाभ होता है।

प्रबंध की उत्तमता उसके दो अंगों के सम्यक् निर्वाह से की जाती है। वे दो अंग हैं—इतिवृत्त के घटनाक्रम का स्वाभाविक विकास और

रसात्मक स्थलों का मर्मस्पर्शी ढंग से वर्णन। इतिवृत्त घटना के उल्लेख मात्र को कहते हैं, जैसे राम का बनवास के लिये प्रस्थान करना शुद्ध इतिवृत्त है परतु वनवास को प्रस्थान करते हुए राम के हृदय की दशा का वर्णनकर कवि ग्रामवासी पुरुष और स्त्रियो की रागात्मक सहानुभूतियों को आकर्षित कर लेता है, तब वही रूखासूखा इतिवृत्त रसपरिपुष्ट होकर काव्य का सर्वोत्कृष्ट हृदयग्राही रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार उपयुक्त इतिवृत्तात्मक स्थलो को रसात्मक स्थलो मे परिवर्तित करके श्रेष्ठ काव्य हमारी रागात्मक प्रवृत्तियो को जागरित करता रहता है जिससे काव्यशरीर में रसात्मकता की विस्मृति नहीं होने पाती। तुलसीदासजी का काव्य सर्वोत्तम कोटि का सरस प्रबध काव्य है। दूसरी ओर कथासरित्सागर की, घटनावैचित्र्य और कुतूहल से पूर्ण, कहानियाँ केवल इतिवृत्त का कथन करके हमारी जिज्ञासावृत्ति को सतुष्ट करती हैं। रसात्मक स्थलों द्वारा हृदय की रागात्मक वृत्तियों—रति, शोक, करुणा आदि—का सतोष होता है। मुक्तक और प्रबध काव्य मे बड़ा भारी भेद यही है कि जहाँ मुक्तक मे केवल रसपद्धति का उत्तम निर्वाह ही पर्याप्त है, वहाँ प्रबंध काव्य मे इतिवृत्त और रस दोनों का सोने और सुगध का सा सयोग अभिप्रेत होता है। कोई भी कथा तब तक सुंदर काव्य का रूप धारण नहीं कर सकती जब तक इन दोनों अगों का उचित और अन्योन्योपकारी रूप में सपोषण नहीं होता। यद्यपि यह कहना अनुचित न होगा कि प्रबध को प्रबध काव्यगुणों से विभूषित करने का अधिक श्रेय रसात्मक स्थलो के सम्यक् निर्वाह पर ही निर्भर रहता है परतु यदि कोई रस अथवा भाव परिस्थिति और घटना के विरुद्ध पड़ता हो तो वहाँ रस की स्थिति भौंड़ी सी अखरती है और प्रबध के विकास मे बाधक होती है।

अब यह देखना है कि ढोला मारू के प्रेमप्रबध मे मानवजीवन के मर्मस्पर्शी घटनास्थलों को रसात्मकरूप मे प्रकट करने मे कहाँ तक सफलता हुई है।

ढोला मारवणी की प्रेमगाथा एक लोकगीत है। अन्य प्रकार के प्रबध से इस काव्य मे यह विशेषता है कि इसका लक्ष्य गीत द्वारा मानव की रागात्मक वृत्तियों को आकर्षित करना होने के कारण इसमे इतिवृत्त की अपेक्षा रसात्मक स्थलो को प्रधानता दी गई है। सारे प्रबध मे रसात्मक स्थल हार के बहुमूल्य मुक्ताफलों की तरह पिरोए हुए है और इतिवृत्त का पतला

सा सूत्र सुवर्ण सूत्र की तरह इन मोतियों को एक लड़ी के रूप में पिरो देने के लिये व्यवहृत हुआ है। अतएव इसका काव्य मे घटनाओं की सकुलता, मनोरंजकता और विभिन्नता के सौंदर्य को दिखाने का इतना अवसर नहीं मिला जितना तुलसी को अपने रामचरित मानस मे अथवा जायसी को पद्मावत में, और यह अभिप्रेत ही था।

कथाविकास के क्रम से देखा जाय तो ढोला मारू की कहानी में निम्नांकित रसात्मक स्थल बड़ी स्वाभाविकता और हृदयस्पर्शी मार्मिकता के साथ चित्रित हुए है—

(१) मारवणी मे प्रेम की प्रारंभिक अवस्था में उसका स्वप्न में पति-दर्शन, विरहवर्णन तथा उसकी चातक, सारस और क्रौंच (कुरझ) सबंधी उक्तियाँ।

(२) ढोला के प्रति मारवणी का सदेश।

(३) मारवणी का सदेश सुनकर ढोला को प्रेमजन्य व्याकुलता।

(४) प्रस्थान करते हुए ढोला को रोकने के लिये माळवणी का प्रयत्न और दपति का प्रेमपूर्ण सवाद।

(५) माळवणी का विरह।

(६) ढोला और मारवणी का मिलन।

(७) माळवणी और मारवणी का सवाद।

इन रसात्मक स्थलों का कवि ने बड़े सुदर और हृदयहारी रूप में वर्णन किया है, जिसका विस्तृत विवेचन सयोग और विप्रलभ शृगार के प्रसंग में आगे चलकर किया गया है।

रसप्रधान होते हुए भी हम इस प्रेमकहानी की घटनाओं के उचित आयोजन को भुला नहीं सकते। देखना यह है कि घटना का एक प्रसग दूसरे प्रसग से ठीक ठीक शृखलाबद्ध हुआ है या नहीं। यदि नहीं, तो हमें इस त्रुटि को अक्षम्य काव्यदूषण समझना पड़ेगा।

भारतीय आचार्यों ने कथावस्तु (Plot) के दो अग माने हैं—आधिकारिक या मुख्य और प्रासगिक या गौण अथवा सहायक। ढोला मारू की कहानी मे इन दोनों का उचित निर्वाह हुआ है या नहीं, यह देखना है। प्रासगिक वस्तु में साधारणतः कथा के नायक और नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र सबधी वृत्तांतों का विवरण होता है और वह हमेशा आधिकारिक या मुख्य वस्तु का सहायक बनकर उसकी गति को आगे बढ़ाता है अथवा

परिणाम की ओर मोड़ता है। इस कहानी मे ढोला और मारवणी का, प्रेम-वृत्तात आधिकारिक वस्तु है। यह काव्य पात्रप्रधान है, घटनाप्रधान नहीं। ढोला इसका नायक और मारवणी इसकी नायिका है। कथा का कार्यरूप परिणाम है ढोला का मारवणी का विरहदुःख से उद्धारकर उसको अपने घर लाना। इस परिणाम अथवा लक्ष्य की ओर सभी प्रासगिक वृत्तातो का सहायक के रूप मे प्रवाह होना चाहिए। ठीक ऐसा ही हुआ भी है। इस प्रेम कहानी की प्रासगिक कथाएँ मुख्यतः ये हैं—

(१) घोड़ों के सौदागर का पूगळ मे आकर समाचार देना।

(२) माळवणी की प्रार्थना पर ऊँट का लँगडा होना।

(३) माळवणी द्वारा प्रेरित सुए का ढोला को लौटा लाने के लिये जाना।

(४) ऊमर के दुष्ट चारण का षड्यन्त्र और मारवणी सबधी झूठी सूचना देकर ढोला को प्रयत्न से विमुख करने की चेष्टा करना।

(५) ऊमरसूमरा का ढोला को धोखा देकर मारवणी का हरण करने का दुष्ट प्रयत्न।

अब यदि देखा जाय तो ये सभी प्रासगिक घटनाएँ किसी न किसी रूप मे सहयोग देकर अथवा संघर्ष उत्पन्न कर कार्य को अतिम लक्ष्य की ओर प्रेरित करने में सहायक होती हैं। पाश्चात्य काव्याचार्य अरिस्टॉटल ने प्रबंध के सुगठन की कसौटी कार्यसमन्वय (Unity of Action) को बताया है। उस सिद्धात का निर्वाह इन प्रासगिक वृत्तातों द्वारा बड़ी अच्छी तरह से हुआ है।

अरिस्टॉटल ने सिद्धाततः काव्य की कथावस्तु को तीन प्राकृतिक विभागो मे विभाजित किया है—(१) आदि, (२) मध्य और (३) अत। यह भी लिखा है कि इन तीनों का सबध अन्योन्याश्रित, एक दूसरे से सश्लिष्ट और स्वाभाविक रीति से जुड़ा हुआ होना चाहिए और साथ ही कथावस्तु का कार्य महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर ढोला मारू की कथा का कार्य महत्त्वपूर्ण अवश्य है। अपनी विवाहिता स्त्री के अनेक कष्टो और अवरोधों को दूर कर उसे ले आना—इससे बढ़कर पवित्र, महत्वशील और लोक-शास्त्र-मर्यादा-विहित दूसरा कौन सा कार्य होगा। कार्य के अनुरूप नायक और नायिका का प्रेमप्रयास भी उतना ही महत्वशील है।

ढोला की कहानी के तीन प्राकृतिक विभाग किए जा सकते है—

(१) आदि भाग—मारवणी के स्वप्नदर्शन जन्य पूर्वराग से लेकर मारवणी के ढोला को सदेश भेजने तक।

(२) मध्य भाग—ढोला की मारवणी विषयक आतुरता से लेकर उसके पूगळ के पास पहुँचने तक।

(३) अतिम भाग—ढोला के पूगळ पहुँचने से लेकर अत तक।

कहने की आवश्यकता नहीं कि तीनों विभागों का सबधसूत्र सूत्र घनिष्ठता के साथ सश्लिष्ट, अन्योन्याश्रित और जुड़ा हुआ है। कथा का परिणाम सुखात है। यद्यपि ढोला की कहानी मे रसात्मक स्थलों की ही प्रधानता है, परतु ऐसा होते हुए भी कथा मे किसी स्थल पर भी इतना अनावश्यक विराम नहीं होने पाया है कि घटना का सूत्र विस्मृत अथवा विलुप्त हो जाय।

काव्य मे वर्णनात्मक स्थलों का निरूपण दो प्रकार से किया जाता है—

(१) वस्तुवर्णन के रूप मे।

(२) भावव्यजना के रूप में।

ढोला की कहानी मे प्रथम कोटि के वस्तुवर्णन पहले तो हैं ही बहुत कम और जो कुछ है वे भी भावसश्लिष्ट रूप मे हुए है। मानव स्वभाव और भावों का वर्णन करना ही इस काव्य का प्रधान विषय है।

ढोला की कथा मे निम्नलिखित वस्तुवर्णन बहुत सक्षेप में हुए है—

(१) राजस्थान देशवर्णन।

(२) राजस्थान का रमणीरूप-सौंदर्य-वर्णन।

(३) ऋतु वर्णन।

(४) करहा वर्णन।

(५) ढोला की यात्रा का वर्णन।

इन सबके सबध में एक बार फिर कह देना होगा कि ये वर्णन कथावस्तु के साथ इतनी घनिष्टता से सश्लिष्ट हैं कि जहाँ जहाँ ये आए है, वहाँ वहाँ काव्यकर्ता ने विराम देकर स्वतत्र रूप मे वर्णन के वास्ते वर्णन नहीं किए, वरन् कथाप्रवाह के बीच में प्रसंग आ पड़ने पर सक्षेप मे कुछ वर्णन करके वह आगे चल पड़ा है। अतएव जिस अर्थ मे हम जायसी के सिंहलद्वीप वर्णन, समुद्र वर्णन, विवाह वर्णन, युद्ध वर्णन इत्यादि लेंगे, उस अर्थ में लेने पर तो ढोला मे कोई ऐसा विस्तृत वर्णन न मिल सकेगा जो ठीक वर्णन कहा जा सके।

राजस्थान देश वर्णन

पहले राजस्थान देश का प्राकृतिक वर्णन ही लीजिए। यह वर्णन किसी एक स्थान पर परंपराबद्ध वर्णन के रूप मे नहीं है परंतु काव्य के भिन्न भिन्न स्थलों पर प्रसगानुसार बिखरा हुआ मिलता है। उसी को यहॉ संकलित कर दिया गया है।

मारवणी और ढोला के सवाद में पहले पहल ग्रीष्मकाल के राजस्थान का बड़ा स्वाभाविक वर्णन हुआ है—

> थळ तत्ता, लू सॉमुही, दाझोला पहियाह।
> म्हॉकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह ॥२४१॥

जलती हुई बालू, रेत की झाड़ और तीव्र लू की लपटे—बस, राजस्थानी ग्रीष्म का चित्र इन दो सकेतो से ही खिंच जाता है।

वर्षाऋतु राजस्थान का प्राण है। वह इस प्रदेश की श्रेष्ठ ऋतु है और इस ऋतु मे इस देश की शोभा भी निराली रहती है। माळवणी और ढोला के सवाद मे वर्षाकालीन राजस्थान का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

> प्रीतम, कामणगारियॉ थळ थळ वादळियॉह।
> घण वरसतइ सूकियॉ, लूसूॅ पॉगुरियॉह ॥२४८॥
> बाजरियॉं हरियाळियॉ, विचि विचि वेलॉ फूल।
> जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥२५०॥
> धर नीली, धण पुडरी, घरि गहगहइ गमार।
> मारू देस सुहामणउ सॉवणि सॉझी वार ॥२५१॥
> डूॅगरिया हरिया हुया, वडे झिंगोखा मोर ॥२५३॥
> नदिनॉं, नाळा, नीझरण पावस चढ़िया पूर ॥२५६॥
> अति घण ऊनिमि आवियउ,झाझी रिठि झड़ वाइ।
> वग ही भला त वप्पडा धरणि न मुकइ पाइ ॥२५७॥
> च्यारइ पासइ घण घणउ, वीजळि खिवइ अगास।
> हरियाळी रुति तउ भली, घर सपति, पिउ पास ॥२६०॥
> काळी कठळि बादळी वरसि ज मेल्हइ वाउ।
> प्री विण लागइ बूॅदड़ी जॉणि कटारी-घाउ ॥२६७॥

राजस्थान का यह वर्णन कितना हृदयग्राही और स्वाभाविक है, इसे वही जान सकता है जिसने वर्षाऋतु में रहकर राजस्थान के सौंदर्य का अनुभव

किया है। किस प्रकार सावन और भादों की बदलियाँ, जिन्हें देशी भाषा में 'लोर' कहते हैं, बरसकर सूख जाती हैं और पुनः लू की गरमी से जलसंपन्न हो जाती हैं, कोसों तक विस्तृत हरेभरे बाजरे के खेत और उनमें फैली हुई ककड़ी और मतीरे की बेलें कैसा सुहावना दृश्य उपस्थित करती हैं, ग्रामीण जन वर्षाऋतु में कितने मस्त रहते हैं, हरे चोले को पहने हुए पर्वतों पर मोर कैसा मनोहर बोलकर नाचता रहता है, सावन के महीने में राजस्थान की संध्या कैसा स्वर्गीय सौंदर्य धारण कर लेती है और बरसाती नाले (वाहळे) और नदियाँ कैसी ललित गति से कलकल करती हुई प्रवाहित होती हैं—इन दृश्यों को आँखों से देखकर जिन्होंने अनुभव नहीं किया वे राजस्थान देश को क्या जानें।

वीसू चारण मारवणी का रूप वर्णन करते हुए सगर्व राजस्थान देश और राजस्थान के लोगों का वर्णन करता है—

देस सुहावउ, जळ सजळ, मीठाबोला लोइ।
मारू काँमण भुइँ दखिण, जइ हरि दियइ त होइ॥४८५॥

यह केवल अतिशयोक्ति नहीं है। तथ्य का अनुसंधान करनेवालों के लिये वास्तविक सत्य है। इसमें संदेह नहीं कि मरुस्थल में जल का अन्य देशों की अपेक्षा अभाव है, परंतु वहाँ जल गहरे कुँओं से निकलने के कारण अधिक आरोग्यकारी (सजळ) होता है। मरुस्थल की बोली के संबंध में भी लोगों को भ्रम है कि वह कर्णकटु होती है, परंतु मरुस्थल की बोली के मिठास का जिन्हें अनुभव करना हो वे खास मारवाड़ी (जोधपुरी) भाषा का अनुशीलन कर देखें। इन्हीं कारणों से यदि स्वदेशगौरव से उत्साहित होकर कवि कह बैठे कि राजस्थान की रमणी बड़े भाग्य से अथवा ईश्वर की कृपा से ही दक्षिण देश में मिल सकती है तो इसमें अनुचित ही क्या है।

वीसू चारण फिर कहता है—

थळ भूरा, वन झंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ।
गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ॥४६८॥

मारवाड़ रेतीली भूमि अनुपजाऊ होने के कारण वर्ष के अधिक भाग में भूरे रंग की दिखाई देती है, वहाँ के वन विशीर्ण और झखाड़ होते हैं, चंपा पैदा नहीं होता, लेकिन चंपा से भी बढ़कर अपने गुणों से सुगंधित करनेवाली आदर्श रमणियाँ वहाँ उत्पन्न होती हैं।

राजस्थान के गहरे कुओं को देखकर ढोला अपने अनुभव यों प्रकट करता है—

ऊँडा पाणी कोहरइ, थळे चढीजइ निट्ठ।
मारवणी कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ठ ॥५२३॥
ऊँडा पाणी कोहरे दीसइ तारा जेम।
ऊसारता थाकिस्यइ, कहउ, काढिस्यइ केम ॥५२४॥

राजस्थानी कूपों का कैसा हूबहू चित्र है। कुँओं में पानी बहुत गहराई पर मिलता है और ऊपर से देखने पर नीचे पृथ्वी के गर्भ मे पानी चमकते हुए तारे की तरह दिखाई देता है। उसे निकालना तो बड़ा कठिन होता है। प्रेम से प्रेरित ढोला को ऐसा देश भी देखना पडा जहाँ पानी इतनी कठिनाई से प्राप्त होता है।

ढोला दुष्ट ऊमरसूमरे के कुचक्र मे पड़कर उसके कपटपूर्ण आतिथ्य को स्वीकार करता है। उस स्थान पर राजस्थान की यात्रा के बीच पड़ाव (Camp) की महफिल का बड़ा मनोज्ञ चित्र अकित हुआ है—

तत तणकइ, पिउ पियइ, करहउ ऊगाळेह ॥६३१॥

एक ओर तंत्री (सारगी) झकार कर रही है, दूसरी ओर ढोला ऊमर-सूमरे का आतिथ्य स्वीकार कर उसके साथ मदिरापान कर रहा है (जैसा कि राजपूतों का पारस्परिक शिष्टाचार होता है), दूर पर बैठा हुआ ढोला का ऊँट लबी यात्रा के बीच मे विश्राम पाकर जुगाली कर रहा है। कैसा सुदर और स्पष्ट चित्र है! यही नहीं, ऊँट को बैठाने के ढग तक का सूक्ष्म निदर्शन किया गया है—

ऊमर साल्ह उतारियउ, मन खोटइ मनुहारि।
पगसूँ ही पग कूँटियउ, मुहरी झाली नारि ॥६२६॥

जगल के विश्रामस्थलों पर पास मे कोई वृक्ष अथवा कोई बाँधने का खंभा न होने के कारण (क्योंकि राजस्थान मे और विशेषतः पूगळ के पास की ऊजड़ वनभूमि मे दरख्त कहाँ मिलते), ऊँट के पैर को उसी के मुड़े हुए स्थान पर दोहराकर रस्सी से बाँध दिया जाता है—राजस्थान में यह दृश्य रोज देखने को मिलता है। चित्र की पूर्णता प्रसग मे स्वभावोक्ति का रससिंचन करती है।

अत में मारू देश का विस्तृत और सपूर्ण वर्णन उस स्थल पर होता है जहाँ सौतियाडाह से प्रेरित होकर माळवणी मारू देश की निंदा करने पर उतरती है। उस निंदावर्णन में इतना स्वाभाविक तथ्य है कि व्याजस्तुति की

तरह पढने पर वही राजस्थान की आत्मा का चित्र उपस्थित करता है। माळवणी व्यग्य के साथ कहती है—

> बाळउँ, बाबा, देसड़उ, पाँणी जिहाँ कुवाँह।
> आधीरात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसाँ मुवाँह ॥६५३॥
> बाळउँ, बाबा, देसड़उ, पाँणी-सदी ताति।
> पाणी केरइ कारणइ प्री छडइ अधराति ॥६५५॥
> बाबा, म देइस मारुवाँ, सूधा एवाळाँह।
> कधि कुहाड़उ, सिरि घड़उ, वासउ मझि थळाँह ॥६५८॥
> बाबा, म देइस मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि।
> हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सीचती य मरेसि ॥६५९॥
> मारू, थाँकइ देसड़इ एक न भाजइ रिड़ु।
> ऊचाळउ क अवरसणउ, कइ फाकउ, कइ तिड्डु ॥६६०॥
> जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाला रूँख।
> आके-फोगे छाँहड़ी, हूँछाँ भाँजइ भूख ॥६६१॥
> पहिरण ओढण कबळा, साठे पुरिसे नीर।
> आपण लोक उभाँखरा, गाडर छाळी खीर ॥६६२॥

इस वर्णन में असत्य का अश बहुत थोड़ा है। यद्यपि जिस मानसिक परिस्थिति में माळवणी के हृदय के उद्गार प्रकट हुए हैं वह निंदामूलक हैं, परतु इसमें किंचिन्मात्र भी सदेह नहीं है कि वस्तुवर्णन की दृष्टि से यही वर्णन राजस्थान का सच्चा परिचायक है, यही उसकी विशेषताएँ हैं। मानव अभिरुचियाँ भिन्न होती हैं—भिन्नरुचिर्हि लोकः—किन्हीं के लिये यह अरुचिकर होगा, परतु बहुतों के लिये यही भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' है।

कुँओं की गहराई, आधी रात ही मे मालियों का सगीतमय मधुर लय के साथ जल खींचना प्रारभ करना, भोर मे ही पनिहारिनों का मिल जुलकर राग अलापते हुए कुँओं से पानी भरने जाना, ऐसे सूक्ष्म निदर्शन हैं कि राजस्थान देश की आत्मा का चित्र स्मृति मे जागरित हो जाता है—यही है सगीतमय राजस्थान की विशेपता। रग, सुगंधि और गीत की विचित्रताओं से साधारण से साधारण कोटि का राजस्थानी जीवन अनुप्राणित रहता है। राजस्थान में गड़रिये भेड़, बकरी, गाय, भैंस चराने को सवेरे से ही जगल की ओर निकल जाते हैं और किसान लोग प्रातःकाल होते ही अपने खेतों की ओर निकल पड़ते हैं। उनकी स्त्रियाँ उनके लिये भोजन

सामग्री, पानी का घड़ा, कुल्हाड़ा इत्यादि खेती के औजार लेकर पीछे से जाती हैं। अवर्षा के कारण कभी कभी अकाल पड़ जाता है। उस समय निम्नकोटि के लोग पास ही के उपजाऊ देशों में निर्वास (ऊचाळउ) कर जाते हैं। कई बार टिड्डीदल खेती को नष्ट कर देता है। जगल मे विषैले साँप बहुतायत से मिलते हैं। वृक्ष बहुधा काटेदार ही होते हैं और उनमे भी अधिकाश छोटे कद के होने के कारण पथिक को दिन की धूप में पर्याप्त छाया का भी सुख नहीं मिलता। काँटेदार घास के गोखरू (भुरट) मे से जो धान निकलता है, उसे भी लोग रुचि से खाते हैं और भेड़-बकरी इत्यादि का दूध मजे मे पीते हैं। ऊन बहुतायत से पैदा होने के कारण लोग कबल ओढ़ते हैं और उन्हीं के वस्त्र भी बनाकर पहनते हैं[1]। ऐसे कष्टमय देश मे कठोरता से जीवननिर्वाह करनेवाली जाति स्वभाव से ही साहसी, सहिष्णु, वीर और दृढ़ होती है। इसी कठोरता और सहिष्णुता के बल राजस्थान की वीर जातियों ने सदियों तक भारतवर्ष की स्वातन्त्र्य-ध्वजा को गर्व से उठाए रखा।

वर्णन की दृष्टि से उपर्युक्त विवरण अक्षुण्ण सत्य है। अब यदि महलों के ऐशआराम में पली हुई किसी स्त्री (माळवणी) को यह देश रूखासूखा और अरुचिकर प्रतीत हो तो उससे देश की निंदा नहीं होती। यों तो दोषों से कोई स्थल खाली नहीं है। मारवणी उलटकर जब माळव देश की निंदा करती है तो उसमे उस देश के प्रति भी अरुचि हुए बिना नहीं रहती। सच तो यह है कि निंदा और स्तुति आपेक्षिक गुण हैं और वैयक्तिक रुचि पर निर्भर रहते हैं। पहाड़ी मुल्क, रेतीले उपजाऊ मैदान, नदी तट के सुरम्य कूल, समुद्र के बीच के टापू इन सब भिन्न भिन्न प्रदेशों में प्रकृति का भिन्न भिन्न प्रकार का सौंदर्य निहित रहता है। साहित्य रसिक को तो केवल वास्तविकता की निष्पक्ष दृष्टि से सच्चा परिचय प्राप्त करना अभीष्ट होता है, न कि भले और बुरे का निर्णय करना।

रमणी-रूप-वर्णन

राजस्थान की रमणी का रूप-सौंदर्य-वर्णन हमें उस स्थल पर उपलब्ध होता है जहाँ वीसू चारण ढोला से मारवणी का रूपवर्णन करता है। इस

१ यह चित्र राजस्थान के ठेठ देहाती जीवन का है। नागरिक जीवन, विशेषतः आधुनिक नागरिक जीवन, पर ये बातें घटित नहीं होतीं।

वर्णन में दो विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि रूपवर्णन साधारणतः राजस्थानी स्त्रीसौंदर्य का चित्ररूप में परिचायक है, दूसरा यह कि अर्वाचीन काल की अलंकारशास्त्र और नखशिख संबंधी रूढ़ियों से बहुत कुछ मुक्त होने के कारण स्वच्छंद और अस्वाभाविक है।

मारवणी के सौंदर्य और शील के वर्णन में उपमानों की पवित्रता और उनका ऐश्वर्य सौंदर्य के आदर्श को परंपरायुक्त विषयवासना की कोटि से उठाकर अकलुषित और पवित्र सात्त्विक सौंदर्य के पद पर स्थापित कर देते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

गति गंगा, मति सरसती सीता सीळ सुभाइ।
महिलाँ सरहर मारुई अवर न दूजी काइ ॥४५१॥
नमणी, खमणी, बहुगुणी, सुकोमळी सु सुकच्छ।
गोरी गंगा नीर ज्यूँ, मन गरवी, तन अच्छ ॥४५२॥
रूप अनूपम मारवी, सुगुणी नयण सुचंग।
साभण इण परि राखिजइ, जिम सिव मसतक गंग ॥४५३॥

जिसकी पतितपावनी गंगा के समान गति है, सरस्वती के समान निर्मल मति और सीता के समान शील स्वभाव है; जो विनयशीला, क्षमाशीला, स्वभावकोमला और आत्मगौरवशालिनी है—ऐसी श्रेष्ठ रमणी को पुरुष यदि, गंगा को शिव की तरह, आदरसहित मस्तक पर स्थान दे तो उसे अपना सौभाग्य ही समझना चाहिए। मारवणी के इस शीलसंपन्न सौंदर्य के विवरण के साथ उस कलुषित और वासनापरिपुष्ट सौंदर्य की तुलना करना चाहिए, जिसने रीतिकाल के कवियों के हाथ में पड़कर स्त्रीसौंदर्य को पुरुष के विलास और वासनातृप्ति का साधनमात्र बना दिया था।

शील को छोड़कर अब अवयवसौंदर्य के वर्णन पर आइए। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इस काव्य का रूप-सौंदर्य-वर्णन सर्वथा अलंकारपरंपरा से निर्मुक्त है, परंतु यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि अधिकांश नवीन और स्वतंत्र है।

नीचे उद्धृत दूहों में परंपरारूढ़ उपमानों की शृंखला हिंदी के पिछले खेवे के शृंगारी कवियों से किसी प्रकार कम नहीं है—

गति गयंद, जँघ केळिग्रभ, केहरि जिम कटि लंक।
हीर डसण, विद्रम अधर, मारू भ्रकुटि मयंक ॥४५४॥

मारू घूँघटि दिठ मई, एता सहित पुणिंद ।
कीर, भमर, कोकिल, कमळ, चद, मयद, गयद ॥४५५॥
मृगनयणी, मृगपति-मुखी, मृगमद-तिलक निलाट।
मृगरिपु-कटि सुदर वणी, मारू अइहइ घाट ॥ ४६६ ॥

परतु प्रथाबद्ध उपमानों का थोड़ा समावेश होते हुए भी परपराभुक्त उपमानों से निर्मुक्त अवयवसौंदर्य का वर्णन मारू रूप-वर्णन मे बहुतायत से मिलता है। इस प्रकार के वर्णन की स्वच्छदता मे स्वभावोक्ति और राजस्थान रमणी-सौंदर्य की विशेषता की गहरी छाप लगी होने से हम इसी को राजस्थान के स्त्रीसौंदर्य का सच्चा रूप समझते हैं—

मारू-देस उपन्नियाँ, ताँह का दत सुसेत ।
कूँझ बचाँ गोरगियाँ, खजर जेहा नेत ॥४५७॥

तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तड़ा विन्नीह ।
ढोला, थाँकी मारुई जाँणि विलूधउ सीह ॥४५८॥

डींभू लक, मराळि गय, पिक सर एही वाँणि ।
ढोला, एही मारुई, जेहा हझ निवाँणि ॥४६०॥

चपावरनी, नाक सळ, उर सुचग, विचि हीण ।
मदिर बोली मारुवी, जाणि भणकी वीण ॥४६२॥

मारू देस उपन्नियाँ, नइ जिम नीसरियाँह ।
साइ धण, ढोला, एहवी, सरि जिम पघ्घरियाँह ॥४८३॥

जंघ सुपत्तळ, करि कुँअळ, झीणी लब प्रलब ।
ढोला, एही मारुई जाँणि क कणयर-कंब ॥४७३॥

मारू-देस उपन्नियाँ, सर ज्यउँ पध्धरियाँह ।
कड़ुवा बोल न जाणही, मीठा बोलणियाँह ॥४८४॥

अगि अभोखण अच्छियउ,तन सोवन सगळाइ ।
मारू अबा-मउर जिम, कर लग्गइ कुमळाइ ॥४७१॥

मारवाड़ देश की स्त्रियों की दतपक्ति शुभ्र और स्वच्छ होती है (इसे जलवायु की स्वास्थ्यप्रद विशेषता समझी जाय चाहे ताबूल के न्यूनतम प्रचार का फल, परतु है यह बिलकुल सत्य। आजकल दाँतों की यह स्वच्छता विलीन होती जा रही है)। कुरझ पक्षी के समान लबी सुढार उनकी गर्दन होती है, नेत्र तीव्र होते हैं। लबी सुकुमार गर्दन को कुज पक्षी की

गर्दन की, पयोधरों को पपीहे की, कटि को डींभू (वर्र) की, अगयष्टि को सीधे तीर की और जघा को कमल के कोमल गर्भ की उपमा दी गई है। इन सबमें उपमानों की नवीनता देखने योग्य है। कड़ुवा बोलना तो वे जानती ही नहीं, जब बोलती है तब वीणा की झंकार का भ्रम होता है।

आलकारिक सूझ की नवीनता उस स्थान पर विशेषता से देखी जाती है जहाँ मारवणी के मुख को आलकारिक प्रथा के अनुसार चद्रमा से समता न देकर सूर्य से उपमा दी गई है—

> मारू सी देखी नहीं, अण मुख दोय नयणाँह।
> थोड़ो सो भोळ पड़इ, दणयर उगहंताँह ॥४७८॥

सूर्य से समानता स्थापित करने का कारण यह हो सकता है कि कवि का अभीष्ट मारवणी के सौंदर्य मे वह विशुद्ध शालीनता और पवित्रता प्रकट करने का है जो सूर्य की ओजस्विनी प्रभा द्वारा लक्षित होना है।

ऋतुवर्णन

यद्यपि राजस्थान देश के विवरण मे ऋतुओं का बहुत कुछ वर्णन आ गया है परतु उस प्रसग मे केवल वर्षा और ग्रीष्म के ही उदाहरण दिए गए हैं क्योंकि वे ही दो ऋतुएँ राजस्थान मे अधिक विशेषता रखती हैं। एक अपनी सुखदता, सौंदर्य और उपकारिता के लिये राजस्थान का जीवनप्राण है, दूसरी अपनी विशेष उग्रता और भयकर आतक से राजस्थान के विशेष भयकर रूप को सामने लाती है। इनके अतिरिक्त राजस्थानी वर्षाऋतु की कुछ और विशेषताओं का अन्य स्थलों पर वर्णन हुआ है, जो सक्षेप में नीचे उद्धृत की जाती है। परंतु, जैसा कि आगे कहा जा चुका है, इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि ऋतुओं का प्रसग नायक-नायिका के विरहविलापों मे नीर-क्षीर न्याय से मिला हुआ है। स्वतत्र रूप मे ऋतु के लिये ऋतु का वर्णन कहीं भी नहीं हुआ है।

वर्षावर्णन—मारवणी सखियों से अपनी विरहदशा व्यक्त करती हुई कहती है—

> राजा परजा, गुणिय जण, कवि जण, पडित, पात।
> सगळा मन ऊछव हुअउ वूठैतौ वरसात ॥४०॥
> बीजुळियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि।
> कद रे मिलउँली सज्जना कस कचूकी छोडि ॥४६॥

ऊनमियउ उत्तर दिसइँ काळी कठलि मेह।
हूँ भीजूँ घर अगणइ पिउ भीजइ परदेह ॥ ४३ ॥
जळ थळ, थळ जळ हुइ रह्यउ, बोलइ मोर किँगार।
स्रावण दूभर हे सखी, किहाँ मुझ प्राण अधार ॥ ४६ ॥

उत्तर दिशा से काली-काली घटाएँ उमड आई हैं और मूसलाधार बरसने लगी हैं। चारों ओर जल ही जल हो रहा है, आकाश के चारों कोनों में करोड़ों बिजलियाँ चमक रही हैं। ऐसे सुसमय में क्या राजा, क्या प्रजा, क्या गुणिजन, पंडित और क्या वनस्पति सभी को आंतरिक आनंद प्राप्त होता है।

माळवणी ढोला के संवाद मे वर्षा का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—

पगि पगि पाँणी पथसिर, ऊपरि अंबर छाँह।
पावस प्रगट्यउ पदमिणी, कहउ त पूगळ जाँह ॥२४४॥

लागे साद सुहाँमणउ, नस भर कुझड़ियाँह।
जळ पोइणिए छाइयउ, कहउ त पूगळ जाँह ॥ २४ ॥

मेहाँ बूठाँ अन बहळ, थळ तादा जळ रेस।
करसण पाका, कण खिरा, तद कउ वळण करेस ॥२६४॥

ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत।
वीजळि लियइ झबूकडा, सिहराँ गळि लागंत ॥२६८॥

रास्तों मे जगह जगह पर स्वच्छ वर्षाजल की तलैया भरी लहराती हैं जिनके चारों ओर रातभर कुरझें कलरव करती हुई बडी सुहावनी प्रतीत होती हैं, रह रहकर पपीहा बोल उठता है। ढोला कहता है, इससे सुंदर समय प्रस्थान के लिये दूसरा कौन सा हो सकता है। परंतु मालवणी की राय मे ऐसे समय मे घर ही पर रहना अधिक उचित है जब खेती पक रही हो और भूमि वर्षा से तृप्त होकर जल जैसी शीतल हो रही हो। जब बिजलियाँ चमक चमककर पर्वत शिखरों से लिपट रही हों तब ऊँचे महलों मे सुखपूर्वक प्रेम में मग्न रहना ही चाहिए।

हरे भरे लहराते हुए बाजरे के विस्तृत खेतों के बीच बीच में नाना प्रकार की वेलें फैल रही हैं, श्रावण के महीने में मारू देश की सांध्यकालीन छटा बड़ी ही अनुपम हो रही है, हरेभरे पर्वत प्रदेशों में स्थान स्थान पर मयूर नाच गा रहे हैं, कहीं पर चिकनी भूमि पर ऊँट के फिसलने का भी डर रहता

है, रह रहकर वायु के शीतल झोंके हृदय में उल्लास पैदा करते हैं। सचमुच, राजस्थानी लोग इस ऋतु में स्वर्गोपम आनंद का उपभोग करते हैं। बादलों से समय समय पर बौछार होती रहती है जो वनस्पति और मानवजीवन के लिये अमृत संजीवनी का कार्य करती है। बरसाती क्षुद्र नदियों और नालों में जल कलकल करता हुआ प्रवाहित होता है। आकाश में जिधर दृष्टि उठाकर देखो बिजलियों की चहल पहल बड़ी ही सुहावनी लगती है। वर्षा से प्रक्षालित होकर पर्वतशिखर हरित परिधान और रंग-बिरंगे पुष्पों के आभूषण धारण कर लेते हैं, सरोवर भर जाते हैं और नदी-नाले तरंगों से आंदोलित होते रहते हैं; मेंढक अपनी सुमधुर रट अलग ही लगाए रहते हैं और बिजलियाँ चमक चमककर पर्वत शिखरों का आलिंगन करती हैं। क्या जड़ और क्या चेतन, प्रकृति की समस्त सृष्टि में संयोग और विश्वमैत्री का दृश्य चारों ओर दृष्टिगोचर होता है। ऐसी है राजस्थान की वर्षा ऋतु।

शीतवर्णन—शीत ऋतु के वर्णन में राजस्थान की अधिक विशेषता नहीं झलकती। यह वर्णन सार्वदेशिक और साधारण सा है। कुछ उदाहरण उद्धृत किए जाते हैं—

> सिसिर रिति मोती नीपजइ सीप समदाँ माँहि ॥२८१॥
>
> सिसिर दीहे तिल्ली त्रिडइ, हिरणी झालइ गाभ ॥२८२॥
>
> सिसिर रिति नाग न नीसरइ, दाझइ वनखँड दाह ॥२८४॥
>
> दिन छोटा, मोटी रयण, याढा नीर पवन्न ॥२८५॥
>
> उत्तर आज न जाइयइ, जिहाँ स सीत अगाव।
> ता भइ सूरिज उरपतउ, ताकि चलइ दखिणाध ॥३०१॥

राजस्थान का शीतकाल यद्यपि अल्पस्थायी होता है परंतु कष्टसह्य होता है। जब पाला पड़ने लगता है तो घोड़ों की रक्षा के लिये उनकी पीठ पर पाखर डाल दी जाती है। शीतकाल संयोगी प्रेमियों को सुखदायी और विरहियों को दुःखदायी होता है। समुद्रों में सीप के गर्भ में मोती पैदा होते हैं, तिल के पेड़ों में बीज पड़कर फलियाँ चटखने लगती हैं और हरिणियों को गर्भाधान इसी ऋतु में होता है। सर्प इस ऋतु में बिलों से बाहर नहीं निकलते, वन कठोर शीत के कारण झुलसकर झंखाड़ हो जाते हैं। रातें बड़ी और दिन छोटे हो जाते हैं और पवन और जल का शीतलत्व

काटने लगता है। उत्तर दिशा की शीतल पवन के झोंके मरुस्थली पर उगी हुई वनस्पति को जला देते हैं, साल भर हराभरा रहनेवाला आक (मदार) भी जल जाता है। पाला इतने जोर का पड़ता है कि लोग अग्नि, प्रेयसी और मद्य का सेवनकर शीत से बचाव करते है। और तो और, इस कठोर सर्दी के भय से बिचारे सूर्य को भी दक्षिण दिशा के उष्ण कक्ष मे छिपकर शरण लेनी पड़ती है।

करहा-वर्णन

ऊँट राजस्थान का मुख्य पशु है और वहाँ का सर्वोपयोगी वाहन भी। राजस्थान का वर्णन ऊँट के वर्णन के बिना अधूरा रह जाता, परतु 'ढोला-मारूरा दूहा' मे करहा वर्णन स्वभावोक्ति की दृष्टि से अपना विशेष चमत्कार रखता है। उसी वर्णन का कुछ अश नीचे देते हैं—

पलाणियउ पवने मिलइ, घड़िए जोइण जाय।
रइबारी, ढोलउ कहइ, सो मो आवइ दाय ॥३०८॥
दूजा दोवड़ चोवड़ा, ऊँटकटाळउ खाइ।
जिण मुखि नागर बेलियाँ सो करहउ केकाँण ॥३०६॥
किणि गळि घालूँ घूघरा, किणि मुखि वाहूँ लज्ज।
कवण भलेरउ करहलउ मूँध मिलावइ अज्ज ॥३१२॥
ढोलउ करहउ सज कियउ कसबी घाति पलाँण।
सोवन-वानी घूघरा चालण-रइ परियाँण ॥३४३॥
करहा, पाणी खच पिउ, त्रासा घणा सहेसि।
छीलरियउ ढूकिसि नहीं, भरिया केथि लहेसि ॥४२६॥
करहा, नीरूँ जउ चरइ, कटाळउ नइ फोग।
नागरवेलि किहाँ लहइ, थारा थोब्रड़ जोग ॥४२८॥
करि कइराँ ही पारणउ, अइ दिन यूँ ही ठेलि ॥४३०॥
करहा लम्ब-कराड़िआ, वे वे अगुल कन्न ॥४३३॥
सड़ सड़ वाहि म कबड़ी, राँगाँ देह म चूरि।
बिहुँ दीपा बिचि मारुई, मोथी केती दूरि ॥४६२॥
करहा, वामन रूप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि ॥४६७॥
करहा काछी काळिया, चाली गइ किरणाँह ॥४६६॥

सकती बाँधे पोटली, ढीली मेल्हे लज्ज ।
सखी पेट न लेटियइ, मूँध न मेलइँ अज्ज ॥५००॥
पगलू ही पग कूटियइ, मुहरी झाली नारि ॥६२६॥
तत तणक्कइ, पिठ पियइ, कण्हइ ऊगाळेइ ॥६३१॥

ढोला को अपनी लंबी यात्रा के लिये ऐसे ऊँट की जरूरत है जो थोड़ा सा त्वरित करने पर घड़ी भर में एक योजन चला जाय। वैसे टोहरे-चौहरे शरीरधारी, काँटेदार घास को चरनेवाले ऊँट साधारणतः बहुत मिलते हैं, परंतु जो नागरबेलि के पत्तों को चरनेवाला उत्तम जाति का ऊँट होता है, वही ऊँटों में शिरोमणि गिना जाता है और वही इस यात्रा में सफल हो सकता है। यदि ऐसा ऊँट मिल जाय तो ढोला उसे आभूषणों से खूब सजावेगा, गले में सुवर्णनिर्मित घुँघुरू की माला और मुख में कीमती नकेल डालेगा। अंत में ऐसा ऊँट मिल गया। ढोला ने उस पर जड़ाऊ और चित्रित पलाँण सजाया और चलने को तैयार हुआ।

ढोला ने ऊँट पर पलाँण कस लिया, नकेल डाल दी और चढ़ने के लिये राजद्वार के आगे आधीरात के समय उसे बैठा लिया। उठती बार जब ऊँट स्वभावतः बलबलाया तो माळवणी की नींद खुल गई। अब क्या थी, वर्षा की हवा के झोंकों से जैसे मेघखंड उड़ते जाते हैं वैसे ही ऊँट दौड़ पड़ा, नहीं, हवा हो गया। बहुत सा रास्ता पार कर लेने पर एक स्थान पर ऊँट को स्वच्छ जलाशय का जल पिलाने के लिये ठहराया। समझदार ऊँट से ढोला ने कहा—'यह अच्छा मौका है, तृप्त होकर जल पी ले, आगे निर्जल मरुस्थल पड़ता है, कोसों तक पानी नहीं मिलेगा, फिर तू तो उत्तम जाति का ऊँट है, गँदले पोखरों का जल तो पिएगा नहीं, और भरे हुए स्वच्छ जलाशय मिलेंगे कहाँ ?' इसके बाद ऊँटकटारा (घास विशेष) और फोग (पौधा विशेष) ऊँट के सामने चरने को लाकर रखा, नागरबेलि वहाँ कहाँ मिलती ? फिर करील की झाड़ी काटकर उसके सामने चरने के लिये डाली, जाल (वृक्ष विशेष) के पत्ते भी डाले। ढोला का ऊँट लंबी गरदनवाला था, जिसके दो दो अंगुल के छोटे छोटे कान थे। इतने में संध्या होने लगी, पूगळ अब भी दूर था। ढोला ने हताश होकर ऊँट को सोंटी से सड़ासड़ पीटना शुरू किया। स्वामिभक्त पशु ने धीरज देते हुए कहा—'सोंटी की सड़ासड़ बौछार मेरे शरीर पर न करो। रानों के दबाव से और टोकरों से मेरी पसलियों को चकनाचूर न करो। मुझे तो योंही अपने कर्तव्य और

स्वामिकाज का पूरा ध्यान है। त्रैलोक्य के उस पार भी यदि जाना पड़े तो मै नियत समय पर तुम्हें अपनी प्रेयसी से मिला दूँगा।' ढोला ने ऊँट से कहा—'अरे कच्छ देश के काले ऊँट (जो ऊँटों की सर्वोत्तम जाति है)! तू किस होश मे है?' सूर्य की किरणें अस्त हो रही हैं। अब तो तुझे (त्रिविक्रम) का रूप धारण कर दीर्घकाय होना पड़ेगा, चारों कदम उठाकर, लबी चौकड़ी भरकर पवन मे उड़ जाना पड़ेगा, तभी तो रात्रि से पहले पहले पूगळ पहुँच सकता है।

ऊँट को यह शासन असह्य हुआ। उसने स्वामी को चेतावनी देते हुए कहा—'पगड़ी को कसकर बाँध लो, नकेल को ढीली छोड़ दो। यदि पवनवेग से चलकर तुम्हे अपनी प्रेयसी से संध्या होते हीते न मिला दूँ तो उत्तम सरढ़ी (ऊँटनी) के पेट से जनमा हुआ न समझना।'

आगे चलकर एक स्थल पर ऊँट का और वर्णन हुआ है। ऊमर के कपटपूर्ण स्वागत को स्वीकार करने को ढोला तैयार हुआ। उधर आसपास में कोई खूँटा अथवा ऊँट बाँधने का स्थान न होने पर उसने ऊँट के पैर को घुटनों के पास दोहराकर रस्सी से बाँध दिया जिससे वह भाग न जाय और नकेल मारवणी को पकडा दी। ऊँट के पैर को ऊँटने की यह प्रथा अब तक राजस्थान में देखी जाती है। यहाँ पर ऊँट के विश्रब्ध होकर जुगाली करने का अच्छा स्वभाव चित्र उपस्थित हुआ है। अत मे ऊमर के षडयत्र से बच भागने की जल्दी में ढोला मारवणी पैर बँधे हुए ऊँट पर ही चढकर भाग निकले।

उपर्युक्त करहा वर्णन मे ऊँट के स्वभाव, उसकी वेशभूषा, आकृति, सहनशीलता आदि अनेक बातों का बड़ा ही मनोरम और स्वाभाविक निदर्शन हुआ है जो राजस्थान से थोड़ा बहुत भी परिचय रखनेवाले पाठकों को रुचिकर हुए बिना न रहेगा।

(८) ढोला मारू : एक प्रेमकहानी

ढोला मारू की प्रेमकहानी हिंदी के प्रारभिक भक्तिकाल के प्रेममार्गी कवियों की प्रेमकहानियों की परपरा से बहुत कुछ मिलतीजुलती है। कबीर के समय के कुछ ही बाद कुछ भक्त एव दार्शनिक कवियों की काव्यरुचि का झुकाव प्रेमकहानियों द्वारा जनता को ईश्वरीय प्रेम का दिग्दर्शन कराने की

ओर हुआ और अनेक भावुक कवि इस क्षेत्र मे उतर पडे। उनकी प्रेम की पीर की कहानियो ने बहुत शीघ्र जनता के हृदय मे घर कर लिया। यद्यपि इन कहानियो के लेखक अधिकतर सूफी सिद्धात के मुसलमान थे परन्तु ये कहानियाँ हिंदुओ के गार्हस्थ्य जीवन की छाया को लेकर लिखी गई थीं। इनकी मधुरता, कोमलता और मार्मिकता ने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया कि 'एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरगो के भेदो की ओर से ध्यान हटाकर एकत्व का अनुभव करने लगता है।' इन जनता के कवियों ने अपनी प्रेमकहानियों द्वारा प्रेम का शुद्ध मार्ग प्रकट करते हुए उन सामान्य जीवनदशाओं को सामने रखा जिनका प्रभाव मनुष्य मात्र पर एक सा दिखाई पड़ता है। कबीर ने तो इस जीवन से भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता (Mysticism) का अपनी अटपटी बानी मे उपदेश किया था। प्रत्यक्ष जीवन के सौंदर्य और प्रेम, दुःख, सुख, भय, आशका, ईर्ष्या और सहानुभूति को हृदयस्पर्शी स्वाभाविकता के साथ प्रकट करनेवाले ये प्रेममार्गी लेखक ही थे। विक्रम की १६वीं शताब्दि के मध्य में मुसलमान कवि कुतुबन ने 'मृगावती' नामक प्रेमकहानी दोहे चौपाइयों मे लिखी। कहानी मे प्रेममार्ग के अपूर्व आत्मत्याग, कष्टसहिष्णुता और प्रेमसाधना का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। इसी समय के लगभग मझन कवि ने 'मधुमालती' नाम की प्रेमकहानी लिखी जिसमे प्रेमनिर्वाह की कथा बड़ी सहृदयता के साथ विशद कल्पनाओं से परिपूर्ण हृदयग्राही वर्णनों द्वारा दोहा चौपाइयों में कही गई है।

तीसरी साहित्य मे प्रसिद्ध पद्मावत की प्रेम कहानी है जिसे प्रख्यात कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने स० १५९७ के लगभग लिखा। जायसी ने अपने महाकाव्य मे अपने से पूर्व रचित प्रेमकहानियों की तालिका दी है, जिससे यह प्रतीत होता है कि इस साहित्यिक परपरा में कई उत्कृष्ट प्रेमकहानियाँ लिखी गई थीं।

विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा ॥
मधू पाछ मुगधावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी ॥
राजकुँवर कचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ ॥
साध कुँवर खडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू ॥
प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। उपा लागि अनिरुध वर बाँधा ॥

इससे विदित होता है कि मृगावती, मधुमालती, पद्मावती और पुराण-विश्रुत उषा-अनिरुद्ध की कहानियों के अतिरिक्त सपनावती, मुग्धावती और प्रेमावती की कहानियाँ भी जायसी के समय में प्रसिद्ध रही होंगी। इनमे से अधिकांश कहानियाँ पूर्वी हिंदी और अवधी मे मुसलमान कवियों द्वारा दोहा-चौपाइयो के रूप मे लिखी गई थीं और उनमे प्रेमकथा के मिस से सूफीमत के रहस्यमय आध्यात्मिक विचारों का खासा आभास मिलता था।

जायसी के पीछे कई शताब्दियो तक इन प्रेमकहानियों की परपरा जारी रही। जहाँगीर के शासनकाल मे उसमान कवि ने जायसी का अनुकरण कर 'चित्रावली' नामक कहानी लिखी है। इस परपरा की अंतिम सूचना दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय तक मिलती है जब नूरमुहम्मद कवि ने सं० १७९६ में 'इंद्रावती' नामक सुदर कहानी लिखी।

ढोला मारवणी की प्रेमकहानी भी उपर्युक्त प्रेममार्गी कवियों की कहानी से बहुत कुछ मिलती जुलती है। अब हम हिंदी प्रेमकहानियों में सर्वोत्तम जायसी की पद्मावती की कहानी से ढोला मारू की प्रेमगाथा की तुलना करके उसके काव्यगुणों का सविस्तर विश्लेषण करेंगे, जिससे इस गीतकाव्य के प्रमुख गुणों का पाठक के हृदय मे यथोचित सस्थान हो सकेगा।

साधारणतः देखा जाय तो ऊपर उल्लेख की हुई सभी प्रेमकहानियों मे कथित विषय का बहुत कुछ सादृश्य है। प्रायः सभी कहानियों मे नायक अथवा नायिका को अपने सच्चे प्रेमी को पाने के लिये अनेक प्रकार के भौतिक कष्ट उठाने पड़े हैं और अत मे उसकी साधना सफल हुई है। भारतीय कहानियाँ प्रायः सुखांत ही होती है और उनके द्वारा इस आध्यात्मिक तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि मायालिप्त सासारिक जीवनयात्रा में भटकते हुए जीवात्मा को प्रेम की साधना द्वारा अत मे परमात्मा की उपलब्धि और जीवन के लक्ष्यरूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसके विरुद्ध इसी प्रकार की पाश्चात्य कहानियों और गीतों (Ballads) का प्रवाह दुःखात की ओर होता है और उनका आध्यात्मिक तथ्य इतना सुस्पष्ट और प्रकाश्य नहीं होता है।

पद्मावत की कहानी और ढोला मारू की कहानी में बहुत कुछ सादृश्य है—

(१) पद्मावत में हीरामन सूआ और ढोला की कहानी में मालवणी का सूआ मानवप्रेम के मार्गप्रदर्शक अथवा सहायक साधन की तरह प्रयुक्त हुए हैं। भेद इतना ही है कि पहली कथा में सूआ नायिका द्वारा प्रेरित होकर नायक को प्रेमपथ पर सफलतापूर्वक मार्ग प्रदर्शन करता है। दूसरी में, विप्रयुक्त प्रेमी (नायक) के प्रेम को नायिका के लिये प्राप्त करने के लिये सूआ चेष्टा करता है परन्तु असफल रहता है।

(२) जिस प्रकार पद्मावत में चित्तौड़ का पंडित पद्मावती के सूए को खरीदकर राजा रत्नसेन को देता है जिससे वह प्रिया के प्रेम का संवाद पहले-पहल सुनता है, उसी प्रकार 'ढोला' में नरवर का सौदागर पहलेपहल ढोला की खबर मारवणी और उसके पिता को देता है।

(३) राजा रत्नसेन ने योगी बनकर अनेक कष्ट सहन करते हुए अपनी प्रियतमा पद्मावती को पाया। इसी प्रकार ढोला ने अपनी प्रेयसी मारवणी को बड़ी कष्टपूर्ण साधना के बाद प्राप्त किया।

(४) दोनों कहानियों में अलौकिक तत्त्व (Supernatural element) का सहायक के रूप में हस्तक्षेप है। सिंहलद्वीप में महादेव के मंदिर में पूजार्थ आई हुई पद्मावती का प्रथम दर्शन कर रत्नसेन मूर्च्छित हो गया और जब पद्मावती लौट गई तब पछताकर चिता में भस्म होने को उद्यत हुआ। तब योगी और योगिन के रूप में महादेव पार्वती ने इस सच्चे प्रेमी को मरने से रोका। इसी प्रकार ढोला के साथ नरवर को लौटती हुई मारवणी को जब जंगल में पीणा साँप काट गया और वह मर गई तब ढोला ने उसके वियोग में चिता लगाकर जल मरने की ठानी, परंतु योगी और योगिन ने आकर उसकी जान बचाई।

(५) नागमती ने अपने विरहविलाप में उपवन के पक्षियों को अपने दुखड़े का संदेश रत्नसेन तक पहुँचाने की प्रार्थना की थी। इस संदेश को पक्षियों ने समुद्र तट पर शिकार खेलते हुए रत्नसेन को पहुँचाया और नागमती और चित्तौड़ की शोचनीय दशा का हाल सुनकर रत्नसेन लौट पड़ा। परंतु उस समय तक रत्नसेन अपने प्रेममार्ग पर सिद्धि प्राप्त कर चुका था। मारवणी ने भी कुंज पक्षियों से इसी प्रकार प्रार्थना की थी और मालवणी ने तो शुक द्वारा संदेश भेज भी दिया था, परंतु तब तक अपना कार्य सिद्ध न होने से ढोला लौटा नहीं।

(६) पद्मावती को सिंहल से लेकर लौटते समय समुद्र के बीच मे विभीषण नामक राक्षस ने रत्नसेन को बहकाकर विकट समुद्र में डाल दिया जहाँ से उसके जीवित बच निकलने की कोई आशा न रही थी। इस समुद्र के राजपत्नी ने उस प्रेमी की जान बचाई। ढोला का भी दुष्ट ऊमरसूमरा के धोखे मे आकर जीवन सकट मे पड़ गया था परतु उस समय 'पीहर सदी डूमणी' गायिका की चेतावनी से उसके प्राण बचे।

(७) दुष्ट ब्राह्मण राघव चेतन ने प्रतिशोध लेने की इच्छा से रत्नसेन को धोखा देकर बादशाह अलाउद्दीन को उसके विरुद्ध भड़काया और पद्मावती को पाने की इच्छा से बादशाह को लालायित किया। राघव की तरह ऊमर के दुष्ट चारण ने भी ढोला को धोखा देकर उसको अपने प्रेममार्ग से विचलित करने की चेष्टा की।

(८) प्रेमकहानी को काव्योपयुक्त स्वरूप देने के लिये ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना के रग में रँगने की आवश्यकता कवि को बहुधा पड़ती है। इससे रूखासूखा ऐतिहासिक तथ्य भी सरस, मधुर और हृदयग्राही हो जाता है। इस प्रकार के अधिकार का दोनों काव्यों में उपयोग मिलता है। इतिहास और कल्पना का मनोज्ञ समिश्रण दोनों में हुआ है।

इन समताओं के होते हुए भी दोनों कथाओं के परिणाम में भेद है। अलाउद्दीन और देवपाल के प्रयत्न अंत मे सफल होते हैं और परिणामतः रत्नसेन देवपाल के साथ युद्ध में मारा जाता है। अलाउद्दीन चित्तौड़ ले लेता है और नागमती और पद्मावती चितारोहण कर भस्म हो जाती है। परतु ढोला के विरुद्ध ऊमरसूमरा का षड्यत्र निष्फल सिद्ध होता है और उस प्रेमकहानी का सुख में अत होता है। दोनों कहानियों का सुखात और दुःखात परिणामभेद भारतीय और वैदेशिक प्रणालियों का सस्कृतिजन्य भेद है।

(६) ढोला मारू का प्रेमवर्णन

साहित्य में भारतीय पद्धति के अनुसार दापत्य प्रेम का विकास चार प्रकार से माना गया है[1]—

(१) पहले भेद के अतर्गत प्रथाबद्ध विवाह सबंध द्वारा मर्यादाबद्ध प्रेम का क्रमशः विकसित और घनीभूत होना और जीवन की जटिल समस्याओं

---

१ पं० रामचंद्र शुक्ल—'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका।

को कर्त्तव्यबुद्धि और धार्मिक आस्था के बल से सुलझाकर जीवन को सफल बनाना है। यह प्रेम अत्यंत स्वाभाविक, निर्मल, तथा शील और शक्ति संपन्न होता है और इसमें विलासिता और कामुकता का पूर्णतः अभाव रहता है। उदाहरणतः राम और सीता का आदर्श प्रेम।

(२) दूसरे प्रकार का प्रेम प्रथमदर्शन द्वारा प्रेरित होकर विवाह के पूर्व ही अंकुरित हो जाता है। संसार क्षेत्र में घूमतेफिरते नायक और नायिका अकस्मात् किसी उपवन, तड़ाग, वाटिका के पास मिलते हैं और उनका जीवन-सूत्र प्रेम की दृढ़ गाँठ में बँध जाता है। अंत में विवाह भी हो जाता है। इस प्रेम में स्वच्छंदता की मात्रा पहले प्रकार से अधिक रहती है। साहित्य में शकुंतला-दुष्यंत, विक्रम-उर्वशी का प्रेम इसी कोटि का समझना चाहिए।

(३) तीसरे प्रकार का प्रेम विलासिता और कामवासना का फलस्वरूप होता है। पुराने समय के विलासी राजा अपने अंतःपुर में बैठे बैठे ही अपने विलास की सामग्री स्वरूप किसी सुंदर दासी अथवा परिचारिका को अपने प्रेम का आधार बना लेते थे। परिणाम में अंतःपुर में सपत्नी-डाह, कलह, ईर्ष्या इत्यादि दुर्भावनाओं का अभिनय होता था। इस प्रकार के कलुषित, आदर्शभ्रष्ट और विलासी प्रेम का विकास उत्तर काल के संस्कृत काव्यों और नाटकों में, यथा, श्रीहर्ष के नाटकों में हुआ है।

(४) चौथे प्रकार का प्रेम स्वच्छंद रीति का प्रेम है जो नायक-नायिका के बीच एक दूसरे के गुणश्रवण, स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन द्वारा अंकुरित होकर एक दूसरे को पाने के प्रयत्नरूप में विकास को प्राप्त होता है। ऊषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा और बाणासुर के अनेक रुकावटें डालने पर भी उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया और अंत में पा लिया। नल दमयंती का प्रेम भी इसी कोटि का था। इस पद्धति में विवाह प्रयत्न के परिणाम में होता देखा गया है। ढोला मारवणी का प्रेम भी इसी कोटि का है। भेद इतना ही है कि ढोला और मारवणी का विवाहसंस्कार नाम मात्र के लिये बचपन में ही हो जाता है, जो न होने के बराबर है, कारण उसकी स्मृति दोनों प्रेमियों में से किसी को भी नहीं रहती—

> ढड्ढ बरसरी मारवी, त्रिहुँ बरसाँरउ कंत।
> बाळपणइ परण्याँ पछइ, अंतर पड़यउ अनंत ॥ ६१ ॥

वास्तव में मारवणी का प्रेम उसकी युवावस्था के प्रथम स्वप्नदर्शन द्वारा, उषा के प्रेम की तरह, अकुरित होता है और अत तक इसी पद्धति मे ढलकर प्रवाहित होता है—

इसइ आरखइ मारुवी सूती सेज बिछाइ।
साल्हकुँवर सुपनइँ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ॥ १४ ॥

इस प्रकार के प्रेमवर्णन मे एक विशेषता यह होती है कि नायक-नायिका के विरहविलाप द्वारा प्रेमी हृदय की कोमल भावनाओं का सूक्ष्म निदर्शन करने का कवि को अच्छा मौका मिल जाता है। ऐसे काव्यों मे विप्रलंभ शृगार और मानसिक भावनाओं का पक्ष प्रधान रहता है, सयोग शृंगार और शारीरिक पक्ष को गौण स्थान मिलता है। यह बात ढोला और पद्मावत दोनों की कहानियों मे समान रूप से सिद्ध हैं।

परतु ढोला और पद्मावत की प्रेमकहानी के प्राथमिक विकास में भेद है। यद्यपि दोनों कहानियों में प्रेम का प्रथम आभास नायिकाओं के हृदय में ही होता है परतु पद्मावत में प्रेमी को पाने का प्रयत्न नायक रत्नसेन की ओर से प्रारभ होता है। 'ढोला' मे यह प्रयत्न नायिका मारवणी की ओर से आरंभ होता है। इस भेद का भी वही कारण है जो दोनों कहानियों के परिणामभेद के सबध मे हम ऊपर कह आए हैं। जायसी ने अरबी-फारसी की वैदेशिक कहानियों के आदर्श को दृष्टि मे रखकर लैलामजनूँ, शीरीफरहाद की तरह नायक को प्रेममार्ग पर पहले प्रयत्नशील करके कठिन साधना द्वारा उसके प्रेम की परीक्षा की है। फारस के प्रेम में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र दिखाई पड़ता है और भारतीय प्रेम में नायिका के प्रेम का। परतु आगे चलकर दोनों कहानियों मे नायक-नायिका का प्रेम सम तीव्र हो जाता है। नायक भी उतने ही उत्सुक और प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं जितनी कि नायिकाएँ।

फारस की कहानियो मे एक विशेषता यह भी पाई जाती है कि उनमे प्रदर्शित प्रेम ऐकातिक, आदर्शस्थित (Idealistic) और लोकबाह्य होता है। वास्तविक जीवन की परिस्थितियों के बीच होकर उसका प्रवाह नहीं बहता बल्कि जीवन से परे ऐकातिक आदर्शोन्मुख होता है। इसके विपरीत भारतीय प्रेमपद्धति लोकसमन्वित और व्यवहारात्मक होती है। उसका विकाससूत्र वास्तविक जीवन के व्यवहार मे बद्धमूल होता है। इस

प्रकार का प्रेम व्यवहार कर्त्तव्यमार्ग का विरोधी नहीं, वल्कि उसका सपोषक वनकर जीवन के बीच से होकर वहता है। आदिकाल मे उसका यही स्वरूप रहा, यथा, वाल्मीकि रामायण मे। परतु पीछे से कादवरी, नलदमयती, मालतीमाधव, माधवानल-कामकदला आदि आख्यानो मे उसका दूसरा ऐकातिक और लोकग्राह्य रूप भी प्रकट हुआ। यद्यपि पद्मावत की प्रेमपद्धति को सर्वथा लोकपक्ष-शून्य नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें प्रेम की भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का सम्मिश्रण है, परतु इसमे कोई सदेह नही है कि ढोला का मारवणी के प्रेम को प्राप्त करने का प्रयत्न कर्त्तव्यबुद्धि द्वारा प्रेरित और संपोषित है, अतएव सर्वथा लोकसमन्वित और व्यवहारसिद्ध है। वह जीवन का और जीवन से है। रामायण की तरह ढोला के आख्यान में जीवन के बहुत से इतर व्यापारों का विशेष उल्लेख नहीं मिलता और रति के सिवा जो थोड़े से इतर व्यापरों और भावों का उल्लेख मिलता है वह भी प्रेमभाव के उपकारी भावों की तरह। इसका कारण यह है कि इस कहानी का केंद्र सीमित होने से सारे व्यापार प्रेमतत्व में केंद्रीभूत हैं।

अव यह देखना है कि मारवणी का स्वप्नदर्शन से उत्पन्न राग वास्तव मे प्रेम कहलाने के योग्य है अथवा नहीं और इसी प्रकार ढाढियों से मारवणी की दशा को सुनकर ढोला का उसके लिये व्याकुल होना प्रेम की युक्तिसगत अभिव्यजना है अथवा नहीं।

पूर्वराग रति का अग अवश्य है परतु पूर्ण रति नहीं। साहित्यदर्पण में विप्रलभ श्रृगार के चार भेद किए गए हैं और पूर्वराग की परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

(१) स च पूर्वरागः मानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्द्धा स्यात् ॥

सा० द० ३।२१३

(२) श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः सरूढरागयोः।

दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ॥ सा० द० ३।२१४ ॥

तोते के मुँह से पहलेपहल पद्मावती का रूपवर्णन सुनकर 'रत्नसेन का असह्य वियोगव्यथा से व्यथित होकर मूर्छित हो जाना अस्वाभाविक सा जान पड़ता है। ऐसी दशा में पद्मावती के लिये उसका अभिलाषा मात्र करना स्वाभाविक हो सकता है। पद्मावती के पूर्वराग का विवेचन करते हुए पं० रामचद्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका में लिखा है—

'दूसरे के द्वारा—चाहे वह चिड़िया हो या आदमी—किसी स्त्री या पुरुष के रूपगुण आदि को सुनकर चट उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करनेवाला भाव लोभमात्र कहला सकता है, परिपुष्ट प्रेम नहीं। लोभ और प्रेम के लक्ष्य मे सामान्य और विशेष का ही अतर समझा जाता है। पूर्वराग रूपगुणप्रधान होने के कारण सामान्योमुख होता है, परतु प्रेम व्यक्तिप्रधान होने के कारण विशेषोन्मुख होता है।'

इस दृष्टि से पद्मावती और रत्नसेन का प्रेम पहलेपहल प्रिय पुरुष को पाने की अभिलाषा के रूप मे लोभ का भाव सिद्ध होता है। यह बात मारवणी के प्रेम के सबध मे सर्वथा सिद्ध नहीं होती। दोनों मे अतर—बड़ा अतर है। रत्नसेन के आकस्मिक प्रेम की तीव्र अभिव्यक्ति वास्तविकता की सीमा का उल्लंघन कर गई। इसी प्रकार पद्मावती भी शुक के सामने अपनी कामव्यथा को व्यक्त करती हुई स्त्रियोचित शील और मर्यादा से बाहर निकल जाती है और उसके खुलेपन को देखकर पाठक के मन में संकोच उत्पन्न होता है। यह सब अस्वाभाविक सा जँचता है। मारवणी का प्रेम मर्यादा और शील की सीमा में सर्वथा सुरक्षित रहकर प्रकट होता है और उसका क्रमागत विकास भी मनोवैज्ञानिक और लोकव्यवहार की दृष्टि से युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

यौवन के आरभ में मारवणी को स्वप्न में पतिदेव के दर्शन होते हैं और उसके हृदय में एक वेदना उद्भूत होती है—'साल्ह कुँवर सुपनै मिल्यौ जागि निसासौ खाइ।' वियोग का दुःख उसके लिये अज्ञात वेदना है। उसे वेदना अवश्य होती है, परतु वह स्त्रीसुलभ शील और मर्यादा को रखती हुई उसे गभीरतापूर्वक सहन करने की क्षमता भी रखती है, न तो मूर्च्छित होती है, न हायतोबा मचाकर आकाश-पाताल को एक करती है। इस दशा का सूक्ष्म परिचय कवि बड़े उत्तम ढंग से यों कराता है—

थाह निहाळइ, दिन गिणइ, मारू आसालुध्ध।
परदेसे घॉघल घणा, विखउ न जाणइ मुध्ध ॥१७॥

'थाह निहाळइ' में प्रतीक्षाजन्य धैर्य, आसालुद्ध' में आशा और अभिलाषा, विखउ न जाणइ मुध्ध' में अकस्मात् आए हुए प्रथम वियोग दुःख से अपरिचय—इन भावों को स्पष्टतया दिखलाकर कवि ने मारवणी के प्रेम को मर्यादा, शील, शक्ति और लोकव्यवहार की दृढ़ सीमा से निकलने नहीं दिया

है। शीलशक्तिसंपन्न मर्यादित भारतीय प्रेमपद्धति का कैसा सुंदर और आदर्श चित्र है।

दूसरी ओर इसके विपरीत ऐसे ही मौके पर पद्मावती की पूर्वरागावस्था में वियोगप्रलाप की अस्वभाविक तीव्रता को आक्षेप से बचाने के लिये जायसी ने यह कारण दिया है—'पदमावती तेहि जोग सँजोगा। परी प्रेम-बस गहे विजोगा॥' परन्तु इस परोक्षवाद अथवा योग के चमत्कार से वर्णन का अनौचित्य कम नहीं हो जाता।

लौकिक दृष्टि से देखनेवाली सखियों को मारवणी के आकस्मिक प्रेमोद्रेक पर आश्चर्य हुआ; इसलिये नहीं कि वह कोई असमाव्य बात थी, वरन् इस-लिये कि उसे अकस्मात् और अलक्षित कारणों द्वारा व्यक्त होने से सखियों को मर्यादा भंग होने की आशंका हुई और उन्होंने यह टेढ़ा प्रश्न पूछा,—यदि वे न पूछतीं तो कहानी पढ़कर मनोवैज्ञानिक आलोचक तो अवश्य पूछते—

अम्हाँ मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम।
तई अणदिट्ठा सज्जणाँ, किउँ करि लग्गा पेम॥२०॥

और इसके उत्तर में मारवणी क्या ही लाजवाब उत्तर देकर प्रेम के सर्वोत्कृष्ट आदर्श को व्यक्त करती है—

जे जीवण जिन्हाँ तणाँ तन ही माँहि वसंत।
धारइ दूध पयोहरे बाळक किम काढंत॥२१॥

प्रेम के इस पवित्र आदर्श को जानकर—जिसका निर्वाह कहानी में सर्वत्र हुआ है—अब कुछ कहना नहीं रह जाता। सखियाँ भी निरुत्तर होकर कह उठती हैं—

मारुनूँ आखइ सखी, एह हमारी बुज्झ।
साल्हकुँवर सुहिणइ मिल्यउ, सुंदरी सउ वर तुज्झ॥२४॥

जब तक सखियों ने निश्चयरूप से मारवणी की इस भावना का—कि स्वप्न में देखा हुआ प्रिय पुरुष तुम्हारा धर्मानुसार वरण किया हुआ पति है—समर्थन नहीं कर दिया तब तक मारवणी का प्रेम एक कुलीन आर्य ललना के मर्यादोचित प्रेम के रूप में मनसा, वाचा, कर्मणा अकलुषित होकर प्रवाहित होता है। सखियों द्वारा प्रमाणित हो जाने पर उसे कामजनित व्याकुलता होने लगती है और यह अनुचित भी नहीं है—

सखी वयण सुंदरि सुण्या, उठी मदन की झाळ ।
सुंदरिनूँ सजण विरह ऊपन्नउ ततकाळ ॥ २५ ॥

तदनतर उत्तरोत्तर बढती हुई यह व्याकुलता विरहविलाप के रूप में प्रकट होती है। मारवणी पहले चातक पक्षियों से अपना दुखडा सुनाती है, फिर सारस और क्रौंचो के सामने विनय के रूप मे अपना हृदय खोलकर अपनी वेदना सुनाती है और प्रार्थना करती है कि उसका सदेश कोई प्रिय को ले जाकर सुनावे। मारवणी के विरह की उक्तियाँ अत्यत सरस, मर्मस्पर्शी, स्वाभाविक और प्रेम की कोमल भावनाओं से भरी हुई है।

प्रेम विशेषोन्मुख होता है और पूर्णता प्राप्त करने के लिये उस प्रिय के साक्षात्कार की आवश्यकता होती है। मारवणी का ढोला के प्रति राग चाहे कितना ही तीव्र और वैवाहिक सस्कार द्वारा परिष्कृत क्यो न हो, जब तक उसका ढोला से मिलाप नहीं होता तब तक हम उसे पूर्वराग ही कहेगे। विवाह-संबंध पूर्वघटित हो जाने से उसके विरहविलाप इतने आक्षेप योग्य और अस्वाभाविक नहीं कहे जा सकते जितने कि पद्मावती की पूर्वरागावस्था के तीव्र प्रलाप। ढोला से मिलने पर मारवणी का पूर्वराग पूर्णप्रेम की दृढता प्राप्त कर लेता है जिसका परिचय मारवणी की उस क्षिप्र बुद्धिजन्य समयोचित चेतावनी में मिलता है, जो उसने ऊमरसूमरा के षड्यत्र मे पड़े हुए अपने पति को देकर उसके प्राण बचाए थे।

अब यह देखना चाहिए कि ढोला का प्रेम पहलेपहल किस रूप मे प्रकट हुआ? ढाढ़ियों के आशयगर्भित सवाद को गान के रूप मे रातभर ढोला ने सुना। सुनकर मन मे बेचैनी तो रही, परंतु उसका कारण, सबेरे उनको बुलाकर सारा हाल पूछने से मालूम हुआ—

ढाढी गाया निसह भरि, सुणियउ साल्ह सुजाँण।
ओछइ पाँणी मच्छ ज्यउँ वेळत थयउ विहाँण ॥१२२॥

मारवणी का वृत्तात सुनकर ढोला को रत्नसेन की तरह मूर्च्छा नहीं आ गई और न उसने पागल की तरह प्रलाप ही किया। एक प्रकार का क्षोभ अवश्य हुआ, यह जानकर कि इतने दिन तक अपनी परिणीता प्रयसी की सुध न लेकर जीवन के दिन व्यर्थ ही गँवाए—

ढोलइ मनि आरति हुई, साँभळि ए विरतत।
जे दिन मारू विण गया, दई न ग्याँन गिणत ॥२०८॥

ढाढियों द्वारा संदेश सुनकर ढोला के मन में आनंदोत्साह हुआ, जैसे किसी को अपनी खोई अथवा भुलाई हुई बहुमूल्य निधि को पाकर आनद होता है।

परंतु अब ज्यों ज्यों वह मारवणी की शोचनीय दशा का स्मरण करता है त्यों त्यों प्रेयसी से मिलने की उत्कठा, और उसको अपनी दुखी दशा से विमुक्त करने की चिंता और चेष्टा का उत्साह उसके भावों को त्वरित करने लगा। कवि ने सक्षेप मे ढोला के मन की दशा को यों व्यक्त किया है--

आडा डूँगर वन घणा, ताँह मिळीजइ केम।
ऊलाळीजई मूँट भरि मग मींचाणउ जेम ॥२१२॥
इहाँ सु पजर मन उहाँ जइ जाणइला लोइ।
नयणा आडा वीभ वन, मनह न आडउ कोइ ॥२१३॥
जिउँ मन पसरइ चिहुँ दिजइ,जिम जउ कर पसरति।
दूरि थकाँ ही सज्जणाँ, कठा ग्रहण करति ॥२१४॥

माळवणी अपने सुपुष्ट व्यवस्थित प्रेम के प्रभाव से येन केन प्रकारेण एक वर्ष तक ढोला की यात्रा स्थगित कर सकती है। माळवणी को, ढोला को उसकी यात्रा मे विरत करने का अधिकार था और वह अधिकार उसके प्रेम की दृढता का द्योतक है। सपत्नीद्वेष स्त्रीहृदय की एक स्वाभाविक कमजोरी है। कमजोरी ही नहीं, वह प्रेम में एकनिष्ठता और अनन्यता की पोषकशक्ति भी है। माळवणी स्त्री थी, अतएव सपत्नी डाह के लिये हम उसे बुरा नहीं कह सकते। इसके अतिरिक्त मालवणी के प्रेमपूर्ण उद्‌गारों मे एक प्रकार की शक्ति, पवित्रता, गभीरता, करुणा और अनुभवशीलता भरी है। वह मर्यादा से कहीं भी च्युत नहीं हुई है।

परतु ढोला के प्रसग में देखना यह है कि मारवणी का सदेश ढाढियों द्वारा सुनकर जो ढोला तत्काल ही अत्यत प्रेमातुर और उत्कठित प्रतीत होता है, उसका एक वर्ष तक यात्रा को स्थगित रखना या तो मारवणी के प्रति प्रेम की शिथिलता को प्रकट करता है अथवा कर्त्तव्य को कार्यरूप में परिणत करने का अनुत्साह अथवा असामर्थ्य। परतु विचार कर देखने पर ढोला पर प्रेमशैथिल्य अथवा अनुत्साह दोनों में से एक भी आक्षेप का आरोप नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि उस समय ढोला के लिये प्रेममार्ग में बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो गई थी। उसके प्रेम की समान रूप से

अधिकारिणियाँ माळवणी और मारवणी दोनों थीं। वह किस संयोगिता को छोडकर वियोगदुःख से दुःखी करे और किस वियुक्ता को ग्रहणकर संयोग-सुख से सुखी करे। दोनों ओर से प्रेम और कर्त्तव्यबुद्धि की खींचातान उपस्थित हो गई। माळवणी के प्रेम का तिरस्कार भी वह आसानी से नहीं कर सकता था। माळवणी को जिस किसी तरह प्रसन्न करके उसकी आज्ञा लेकर ही वह चलता है। ढोला के मारवणी के प्रति पूर्वराग को हम रत्नसेन की तरह केवल रूपलोभ नहीं कह सकते। उसमे कर्त्तव्यबुद्धि द्वारा प्रेरित प्रिय-मिलनोत्साह समिलित है। अतएव हम उसे ढोला के मन की वह उदात्त भावना कहेंगे जिसमे मर्यादापालन, धर्मरक्षा और समाज के विशिष्ट सस्कार-जन्य वैवाहिक प्रतिज्ञा का पालन मिश्रित है। यद्यपि मारवणी की विरहदशा अधिक शोचनीय होने के कारण हमारी सहानुभूति का खिंचाव उसकी ओर ही अधिक होता है और हम ढोला की ढील को मारवणी के प्रति क्रूरता और अन्याय कहेंगे, परतु यदि ढोला की परिस्थिति में अपने को रखकर विचार करें तो उसका व्यवहार युक्तिसगत ही प्रतीत होगा। ढोला के राग को हम पूर्ण प्रेम की अवस्था भी नहीं कह सकते क्योकि प्रेम में प्रेमी व्यक्तियों के साक्षात्कार की आवश्यकता होती है और अभी ढोला और मारवणी का साक्षात्कार नहीं हुआ है। पूर्वराग की यह अपूर्णता न होती तो जब रास्ते में ऊमर के चारण से मिलने पर उसे मारवणी की गलित यौवनावस्था का हाल मालूम होता है, तब ढोला के मन मे सशयजन्य विरक्ति का भावोदय न होता। पूर्ण प्रेम की कोटि को पहुँचे हुए प्रेमियों में प्रेमी की पतितावस्था को जानकर उसके प्रति प्रेम और घनीभूत हो जाता है और समवेदना और सहायता के रूप मे प्रगतिशील होता है, न कि विरक्त हो जाता है। मारवणी से मिलने पर यहाँ पूर्वराग दृढ और एकनिष्ठ होकर सात्विक प्रेम की कोटि पर स्थापित हो जाता है। अब सशय, स्वार्थ और लोभजनित किसी प्रकार की क्षुद्र कमजोरी उसे प्रेम के कर्त्तव्यमार्ग से विचलित अथवा विरक्त नहीं कर सकती। मारवणी के साँप से डसे जाने पर ढोला मरने को तैयार हो जाता है और पूगळवासियों के इस प्रस्ताव पर कि—

> मारू त्रिहुँ वरसे वडी, चंपारइ उणिहार।
> सा कुँमरी परणाविस्याँ, चालउ, राजकुँमार ॥६१३॥

वह ध्यान तक नहीं देता। इसी प्रकार महादेव के मडप में पद्मावती का

साक्षात्कार प्राप्तकर रत्नसेन का रूपलोभ-जनित पूर्वराग सात्विक प्रेम की दृढ़ता को प्राप्त कर लेता है।

ऊमरसूमरा भी मारवणी के रूपवर्णन को सुनकर उसके प्रेम को पाने के लिये प्रयत्नशील हुआ था। देखना यह चाहिए कि एक ही प्रेयसी की प्रेमप्राप्ति के लिये प्रगतिशील हुए ऊमरसूमरा और ढोला के पूर्वराग में ऐसा कौनसा अंतर है कि एक को तो हम लंपट समझकर घृणा की दृष्टि से देखते हैं और दूसरे को सच्चा प्रेमी समझकर उसके साथ सहानुभूति रखते हैं। ऊमरसूमरा के विपक्ष में पहली बात तो यह है कि उसने दूसरे की विवाहिता स्त्री को कलुषित दृष्टि से देखा और दूसरे उसका धोखे से भरा प्रयत्न दुष्ट प्रयत्न था। यही कारण है कि वह अपने प्रयास में असफल रहा। इसी प्रकार विवाह हो जाने पर दो अवसरों पर पद्मावती के प्रेम की दृढ़ता की परीक्षा होती है और दोनों में वह उत्तीर्ण निकलती है। राजा रत्नसेन के बंदी हो जाने पर वह बड़ी दुखी और विह्वल हो जाती है, परंतु बड़ी भारी विपत्ति का दृढ़ता से सामना करती हुई गोरा-बादल के साहाय्य से पति को जीवनसंकट से बचाकर मारवणी की तरह अपनी क्षिप्र बुद्धि और साहस का परिचय देती है। राजा रत्नसेन के मारे जाने के बाद रोने और विलाप करने में वृथा समय नष्ट न करके वह नागमती सहित आनंदपूर्वक पति से परलोक में जा मिलती है। उसकी सतीत्व की दृढ़ता का प्रमाण इससे बढ़कर क्या हो सकता है कि कुंभलगढ़ के दुष्ट सरदार देवपाल के कलुषित प्रस्ताव को वह उस आपत्तिकाल में भी घृणापूर्वक ठुकरा देती है।

इसी प्रसंग में माळवणी और मारवणी के प्रेम की तुलना कर लेना भी अनुचित न होगा। पद्मावत की नागमती और पद्मावती के प्रतिरूप ढोला की कथा में माळवणी और मारवणी हैं।

पद्मावती के नवप्रस्फुटित प्रेम को हम क्रमशः विकसित होते हुए देखते हैं। वह विपत्ति की कसौटी पर कई बार कसा गया और उन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उसका सोना और भी ज्यादा चमक उठा। नागमती का प्रेम गार्हस्थ्यपरिपुष्ट गंभीर प्रेम है। उसमें एक प्रकार का गर्व और अधिकार है जो दांपत्यसुख के परिणामस्वरूप होता है। इसी प्रकार मारवणी के प्रेम के आद्योपांत विकाससूत्र पर जब हम मनन करते हैं तो वह हमें बड़ा स्वाभाविक, मनोहर और प्रिय मालूम होता है। पद्मावती के प्रेम की

अपेक्षा वह अधिक संयत और मर्यादाबद्ध, अतएव अधिक परिष्कृत और परिपुष्ट कोटि का प्रेम प्रतीत होता है। माळवणी का प्रेम गार्हस्थ्यपरिपुष्ट होने के कारण गभीर और अधिकारसपन्न है। उसी अधिकार और गर्व की बदौलत वह मारवणी के प्रेम मे आतुर प्रेमी को एक वर्ष तक रख लेती है। नागमती की तरह माळवणी भी रूपगर्विता सी प्रतीत होती है। जिस प्रकार पद्मावत मे पद्मावती और नागमती के विलापों से हम उनके प्रेम-प्रवाह की तीव्रता का अदाजा लगा सकते हैं, उसी प्रकार माळवणी और मारवणी के विरहविलापों से हम उन दोनों के प्रेम के घनत्व का अनुमान कर सकते है।

मारवणी की पूर्वरागावस्था मे प्रकट की हुई प्रेमभावनाएँ यद्यपि कोमल, हृदयस्पर्शी और दर्दभरी हैं परतु माळवणी के विलाप की तीव्रता के सामने उनकी तीव्रता कम है। इसका कारण यही हो सकता है कि माळवणी के गार्हस्थ्यप्रेम को एक प्रकार का स्थायित्व और अधिकार प्राप्त था और उसके स्थायी प्रेम ने नायक के जीवन के अनेक अगों और विषयो को समवेदना के सूत्र में बाँध रखा था। सक्षेप मे यह कह सकते है कि माळवणी का प्रेम ढोला के जीवन के अगों को अधिक व्यापक रूप में प्रभावित कर सका है। मारवणी का प्रेम नवस्फुटित और अपेक्षाकृत एकात स्थायी होने के कारण उसका क्षेत्र अधिक संकुचित और मर्यादा सयत रहा है। जिस प्रकार पद्मावत मे नागमती का विरहवर्णन काव्य का सर्वोत्कृष्ट भावुक स्थल है उसी प्रकार प्रकृत काव्य में माळवणी का वियोग-वर्णन भी काव्य का उत्कृष्ट मर्मस्पर्शी स्थल है। पहला हिंदी साहित्य मे विप्रलभ श्रृगार का उत्कृष्ट नमूना है तो दूसरा राजस्थानी विप्रलभ शृंगार का।

बहुविवाह की प्रथा सामाजिक दृष्टि से कलहमूलक होने के कारण जितनी अनिष्टकारी रही है, उतनी ही काव्य में प्रेममार्ग की व्यावहारिक जटिलताओं के परिणामस्वरूप सपत्नीडाह और प्रेमसघर्ष की सूक्ष्म भावनाओं को सामने लाने के कारण वह कवियों के लेखनी का ग्राह्य और अनुरजनकारी विषय रही है। माळवणी और मारवणी मे पारस्परिक ईर्ष्याजनित विवाद होता है, दोनो एक दूसरे के देश और समाज को बुरा बताती हैं। यह प्रेमपूर्ण मीठी कलह ज्यादा नहीं बढ़ने पाती, चतुर और व्यवहारदक्ष प्रेमी नायक दोनों

को प्रेमपूर्वक समझाकर शात कर देता है। प्रेम मार्ग का इससे मिलताजुलता व्यावहारिक अभिनय पद्मावत में भी आया है और वहाँ भी चतुर नायक अपनी प्रेमपूर्ण व्यवहारदक्षता से झगड़े को शात करता है। ये घटनाएँ दोनों काव्यों को लोकसमन्वित और व्यावहारसबद्ध वास्तविकता का सौंदर्य देने मे बहुत सफल हुई है।

साहित्य मे शृगार के दो भेद माने गए है—विप्रालंभ शृगार और सभोग शृगार। 'ढोला' और जायसी की 'पद्मावत मे' विप्रलभ शृगार प्रधान है। यह देखा गया है कि विप्रलभप्रधान कहानियों में नायक और नायिका का प्रेमप्रवाह विषमता से समता की ओर बहता है, सभोगप्रधान वृत्तों मे समता से विषमता की ओर। जायसी की 'पद्मावत' मे प्रेमप्रवाह पहली कोटि का है और इसी प्रकार 'ढोला' मे भी। इस प्रकार के काव्यों मे एक विशेषता यह भी रहती है कि प्रेमियों का कथा के प्रारभ मे ही साक्षात् मिलन नहीं हो पाता, जिससे कवि को उनके प्रेमजन्य औत्सुक्य, प्रेमी को प्राप्त करने की व्याकुलता, चिंता इत्यादि भावों के सविस्तर वर्णन करने का अच्छा मौका मिल जाता है और इससे काव्य मे भावुकता की स्फूर्त्ति आ जाती है। जहाँ प्रेम समता से विषमता की ओर ढलकर बहता है उन काव्यों मे विप्रलभ का अश बीच में आता है अथवा अत मे, परतु वहाँ प्रेमी का प्रेमी को प्राप्त करने के लिये प्रेम-प्रयास, आकाक्षा, उत्कठा, भावुकता इत्यादि भावों की वह सहज तीव्रता नहीं रहती।

भक्तों का ईश्वरोन्मुख प्रेम भी विषमता से समता की ओर प्रवाहित होता है। अतएव यह स्वाभाविक है कि इस पद्धति की विप्रलभप्रधान कहानी से ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यजना भी की जाय। जायसी ने पद्मावत की सारी प्रेम कहानी को एक अन्योक्ति का रूपक बनाकर ग्रथ के उत्तर भाग में चर्चा की है—

'तन चितउर मन राजा कीना। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा ॥'

यद्यपि ढोलामारू की प्रेमपद्धति भी उसी कोटि की है, परतु इस कहानी में न तो कवि ने अन्योक्ति द्वारा ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यजना करने का अपना अभिप्राय और सकल्प कहीं व्यक्त किया है और न उसका ऐसा प्रयास ही कहीं दृष्टिगोचर होता है। यह तो एक सीधीसादी प्रेमकथा है और इसी में रस का सौंदर्य मँजा है। परंतु जिन लोगों को इस प्रकार की परोक्ष व्यजना के बिना पूरा स्वाद नहीं मिलता, वे चाहे तो इसमें ईश्वरभक्ति का

गंभीर आभास भी आसानी से देख सकते हैं और कहानी को जीवात्मा के ईश्वरोन्मुख प्रेम में घटा सकते है। ढोला अथवा मारवणी को, मारवणी अथवा ढोला के प्रेम तक, पहुँचानेवाला प्रेमपथ जीवात्मा को परमात्मा से मिलानेवाला भक्तिमार्ग है। इस मार्ग में अग्रसर होने से रोकनेवाली माळवणी ससार की मोहमाया का जाल है। ऊमरसूमरा और उसका दुष्ट चारण शैतान है अथवा प्रेम के सच्चे पथ से विचलित करनेवाले काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या आदि सासारिक दुर्गुण हैं। इन सब अवरोधों को प्रेमसाधना के योगबल से पार कर सच्चा प्रेमी अपने प्रेमपात्र को पा लेता है। जिस प्रकार जीवात्मा को परमात्मा में लीन होने पर मोक्ष प्राप्ति-जन्य ब्रह्मानद प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रियतम को प्राप्त कर लेने पर मारवणी के हर्षोल्लास और ब्रह्मानद सहोदर सयोगसुख को कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

आजे रली वधाँमणाँ, आजे नवला नेह।
सखी अम्हीणी गोठमइँ दूधे वूठा मेह ॥५५६॥

साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियाह।
पूनिम केरे चद ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह ॥५२८॥

(१०) ढोलामारू का वियोगशृंगार

काव्य की भावुकता को दरसाने के लिये मारवणी और माळवणी के विरह-विलापों से लेकर कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

वर्षाऋतु में विरहव्यथित स्त्रियों को प्रिय की याद दिलानेवाला पपीहे का निरंतर 'पी कहाँ, पी कहाँ' पुकारना असह्य वेदनाजनक होता है—

बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जब ही बरसइ घण घणउ, तबही कहइ प्रियाव ॥ २७ ॥

'पद्मावत' की नागमती को भी प्रियविरह मे पपीहे का पुकारना इसी तरह सालता था—

'पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा नित बोलै पिउ पीऊ' ॥

बिजलियों को अपने प्रेमी घन से ललक ललककर आलिंगन करते देखकर मारवणी का अपने प्रेमी की स्मृति करना कितना स्वाभाविक है।

वीजुळियाँ चहलावहळि आभय आभय कोडि ।
कद रे मिलउँली सज्जना कस कचूकी छोडि ॥ ४६ ॥

वीजुलियाँ चहलावहलि आभइ आभइ च्यारि ।
कद रे मिलउँली सज्जना लाँबी बाँह पसारि ॥ ४५ ॥

परन्तु सयोगानद में लीन बिजलियाँ इस वियोगिनी दुखिया के दुखड़े को क्यों सुनने बैठी थीं । इनसे निराश होकर, झुँझलाकर मारवणी बादल की शरण जाती है—

विज्जुळियाँ नीळज्जियाँ, जळहर, तूँ ही लज्जि ।
सूनी सेज, विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥ ५० ॥

समान भावना और परिस्थितिवाले जीवों मे सहानुभूति उत्पन्न होना स्वाभाविक होता है । मारवणी निशीथ की शाति में तालाब के समीप सारसों के क्रंदन को सुनकर कहती है—

राति सखी, इणि ताळ मइँ काइ ज कुरळी पंखि ।
उवै सरि, हूँ घरि आपणइ, बिहूँ न मेळी अंखि ॥ ५१ ॥

इतने मे, ताल मे विहार करती हुई, क्रौंचों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ीं । क्रौंचों ने कलरव करना शुरू कर दिया । तब तक मारवणी की विरहवेदना का प्रवाह द्रवित होकर अनर्गल रीति से बह निकला—

कूँझड़ियाँ करळव कियउ घरि पाछिले वणेहि ।
सूती साजण संभत्या, द्रह भरिया नयणेहि ॥ ५४ ॥

कूँझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सरवर पइलइ तीर ।
निसिभरि सज्जण सल्लियाँ नयणे वूहा नीर ॥ ५६ ॥

मारवणी के करुण विलाप से द्रवीभूत होकर कुरझँ (क्रौच) उसके संदेश को सुनती है और समवेदना प्रकट करती है । नागमती पर भी एक पक्षी को इतनी दया आ जाती है कि वह उसके प्रेमसंदेश को ले जाने को तैयार हो जाता है । कुरझों के प्रति मारवणी की कैसी जोरदार करुण प्रार्थना है—

कुरझाँ, द्यउ नइ पंखड़ी, थाँकउ विनउ वहेसि ।
सायर लंघी प्री मिलउँ प्री मिलि पाछी देसि ॥ ६२ ॥

उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण साँमहियाँह ।
कुरझाँ, एक सँदेसड़उ ढोला नइ कहियाँह ॥ ६४ ॥

उत्तर में कुरझें अपना असामार्थ्य प्रकट करती हैं। फिर भी जहाँ तक बन सकता है वे मारवणी की सहायता करने को तैयार हैं—

म्हे कुरझाँ सरवर तणी, पाँखाँ किणहिँ न देस।
भरिया सर देखी रहाँ, उड आघेरि वहेस॥ ६३॥

माणस हवाँ त मुख चवाँ, म्हे छाँ कूँझडियाँह।
प्रिउ सदेसउ पाठविसु, लिखि दे पखडियाँह॥ ६५॥

विरहीहृदय की अभिलाषाएँ भी वड़ी विचित्र होती हैं। मारवणी जब अत्यत उत्कठित हो जाती है तो सामने के पहाड़ों को देखकर अभिलाषा करती है—

ज्यूँ ए डूँगर संमुहा, त्यूँ जइ सज्जण हुति।
चंपावाड़ी भमर ज्यउँ, नयण लगाइ रहंति॥ ७३॥

प्रेमीहृदय की उच्च कोटि की आत्मसमर्पण और आत्मनिसर्ग की भावनाएँ मारवणी की इन अभिलाषाओं में प्रकट होती है—

जिणी देसे सज्जण वसइ तिणि दिसि वज्जउ वाउ।
उआँ लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख पसाउ॥ ७४॥

शृगार रस की परिपुष्टि के लिये कवि लोग उद्दीपन विभाव के अतर्गत षड्ऋतु वर्णन अथवा बारहमासे का वर्णन करते हैं। नागमती के विरह-वर्णन के अतर्गत जायसी ने बारहमासे का वर्णन किया है जो हिंदी साहित्य में अपनी कोमल मर्मस्पर्शी भावनाओं के लिये अद्वितीय समझा जाता है। प्रेम में सुख और दुःख दोनो की अनुभूतियाँ विस्तृत और घनीभूत हो जाती है। सयोगसुख मे वही ऋतुएँ आनद सर्वस्व प्रदान करती हैं और वियोग में वही नित नूतन दुःख के साधन उपस्थित करती हैं। इस प्रकार के ऋतुवर्णनों द्वारा कवियों के प्रायः दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं—

(१) प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन।

(२) सुख और दुःख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना और उद्दीपन।

जायसी का बारहमासा नागमती के विरहदुःख से सश्लिष्ट होकर उद्दीपन विभाव की तरह विप्रलभ शृगार को परिपुष्टि करता है। अतएव उसका काव्य में प्रयोग दूसरे प्रकार का है। 'ढोला' का ऋतुवर्णन भिन्न

प्रकार का है। उसका उपयोग पहले ढग के अनुसार वस्तु और व्यापार-निदर्शन के लिये हुआ है। मारवणी के समीप जाने की तैयारी करने से ढोला को रोकने के लिये प्रत्येक ऋतु की वस्तु और व्यापार को आक्षेप रूप में आलंबन बनाकर वर्णन किया गया है। परतु यह कहना भी सर्वथा युक्ति-सगत न होगा कि यह केवल वस्तुवर्णन ही है। माळवणी की कोमल प्रेम-भावनाएँ भी परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप मे इसमें जहाँ तहाँ मिली हुई हैं। ग्रीष्म, वर्षा और शीत इन्हीं तीनों की व्यापक परिधि मे छहों ऋतुओं का वर्णन कर दिया गया है। इन तीनों में भी वर्षा सबसे अधिक हृदयग्राही बना है। इसका कारण यह हो सकता है कि मरुस्थल में वर्षा ही सबसे अधिक आह्लादकारिणी ऋतु होती है। वस्तुवर्णन की पूर्णता की दृष्टि से इस ऋतुवर्णन का विवेचन दूसरे प्रसग मे किया जा चुका है।

मारवणी का संदेश

मारवणी का प्रेमसदेश राजस्थान के शृगारसाहित्य मे सर्वोत्तम वस्तु है। यद्यपि हम उसको मारवणी के विरहविलाप का एक अग ही मानते हैं तथापि सदेश होने के कारण उसमे एक विशेष तीव्रता, कोमलता और मधुरता आ गई है। इस तीव्रता और कोमलता का कारण यह है कि जहाँ और और विरहविलाप प्रेमी के बिछुड़कर चले जाने पर विरहीहृदय की नैराश्यमयी और निरुद्देश्य भावनाओं के रूप मे विक्षिप्त प्रलाप प्रतीत होते हैं और करुणा और शोक, हतोत्साह और निराशा के भार से दबे रहते हैं, वहाँ मारवणी के सदेश आशागर्भित, सोद्देश्य और स्फूर्तिमय हैं। इनमें एक प्रेमी का अपने प्रेमपात्र के साथ सान्निध्य का भाव भरा हुआ है। इन सदेशों में आत्मसमर्पण का भाव कूट कूटकर भरा है—

ढाढ़ी, जे साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
आँख्याँ सीप विकासियाँ, स्वाति ज वरसउ आइ ॥११६॥

ढाढी, एक सँदेसड़उ कहि ढोला समझाइ।
जोबण आँबउ फळि रह्यउ, साख न खाअउ आइ ॥११७॥

ढाढी, जइ साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण कमळ विकासियउ, भमर न बइसइ आइ ॥११८॥

इसी प्रकार—

जोबन चॅपउ मउरियउ, कळी न छुट्टइ आइ ॥१२०॥
कण पाकउ, करसण हुअउ, भोग लियउ घरि आइ ॥१२१॥
जोबन खीर समुंद्र हुइ, रतन ज काढइ आइ ॥१२१॥

आत्मसमर्पण में त्याग की मात्रा तब और भी ज्यादा बढ जाती है जब उसमें 'यद् यद् श्रीमदूर्जित सत्व तत्तदेव...' का भाव रहता है। प्रियतम के चरणों मे अपने जीवन की सर्वोत्तम विभूति—यौवन—को भेंट करने की यह उत्सुकता, वह सर्वोत्तम सात्विक मानवभावना है जो मनुष्य को ईश्वरत्व की कोटि मे पहुॅचाती है। श्री रवींद्रनाथ ठाकुर की गीताजलि के भाव इसी आत्मोत्सर्ग की महान् भावना से ओतप्रोत है।

पत्नी के लिये पति के बिना यौवन व्याधिस्वरूप हो जाता है। उच्छृखल स्वभाववाले यौवन पर शासन करनेवाला प्रेमी जब नहीं होता तो वह उत्पाती अबला को विवशकर उसके सर्वस्व का हरण कर लेता है। यह सूक्ष्म भावना कैसे सुदर ढग से व्यक्त की गई है—

ढाढ़ी जे राज्येंद मिलइ, यू दाखविया जाइ।
जोबण हस्ती मद चढ्यउ, अकुस लइ घरि आइ ॥११५॥

ढाढी, जइ प्रीतम मिलइ, यूॅ दाखविया जाइ।
जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न वइसउ काइ ॥११८॥

पंथी, एक सॅदेसड़उ, लग ढोलउ पैहचाइ।
विरह महादव जागियउ, अगिन बुझावउ आइ ॥१२३॥

पही, भमंतॉ जइ मिलइ, तउ प्री आखे भाय।
जोबण वधन तोड़सइ, वधण घातउ आय ॥१२४॥

मारवणी के सदेशों में उसकी जागरित मानसिक दशाओं की उथल-पुथल और भावविकारों का मनोवैज्ञानिक चढावउतार बड़ी मार्मिक सूक्ष्मता के साथ दिखलाया गया है। अपनी हृद्गत पीड़ा को मारवणी अनुनय, विनय, क्षोभ, पाश्चात्ताप, आशंका, भय, प्रार्थना इत्यादि के रूप में नाना प्रकार से व्यक्त करती है। मारवणी के विलाप और सदेशों में शृंगार के निर्वेद आदि तैंतीस व्यभिचारी भावों मे से बहुतों का समावेश हुआ है।

अनुनयविनय करते करते मारवणी व्यथा उत्तेजित हो जाती है। इस दशा में क्षोभ और लाचारी का भाव कैसी मनोज्ञता के साथ व्यक्त हुआ है—

ढाढ़ी, एक सँदेसड़उ प्रीतम कहिया जाइ।
सा धण बळि कुइला भई, भसम ढ़ढोळिसि आइ ॥११२॥
ढाढी, एक सँदेसड़ उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
जोबण फट्टि तळावड़ी, पाळि न बंधउ कोइ ॥१२१॥

इसी प्रकार—

तन मन उत्तर वाळियउ, दक्खिण वाजइ आइ ॥१२६॥
थँण कँगलॉणी कमदणी, सिसहर ऊगइ आइ ॥१२६॥
थँण कँमलॉणी कँमलणी, सूरिज ऊगइ आइ ॥१३०॥

क्षुब्धहृदय के आतरिक विक्षोभ को शाब्दिक यथार्थता मे व्यक्त करना इससे अधिक स्पष्ट नहीं हो सकता। विरहविकारों से हिलोरें लेता हुआ तरगित और क्षुब्ध यौवनसागर विरहिणी के शरीर के सीमाबधनों को तोड़कर निकल पड़ा, इससे बढकर विरह की बाढ का व्यजन क्या हो सकता है। इस समय यदि रक्षा हो सकती है तो पाल बाँधने से और यह कार्य प्रियतम (ढोला) के बिना हो नहीं सकता।

इसी प्रकार की एक उत्तम व्यग्यप्रधान भावना जायसी ने भी नागमती के विरहाकुल हृदय के उद्‌गार के रूप मे व्यक्त की है—

'सरवर हिया घटत नित जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका ॥'

दोनों विरहिणियों की दर्दभरी भावनाएँ लगभग एक सी तीव्र हैं।

मारवणी ढाढ़ी को सदेश कहती जा रही है, हृदय व्याकुल है, कट अवरुद्ध हुआ जा रहा है। नतमुख हुई भावावेश मे वह पैर की उँगलियों से धरती को कुरेदती जा रही है। साथ ही आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। इस स्वभावचित्र की जितनी प्रशसा की जाय थोड़ी है। ऐसी ऐसी स्वभावोक्तियाँ और व्यग्य भावनाओं पर उत्तम का प्रासाद खड़ा होता है।

पंथी हाथ सँदेसड़इ, धण बिललती देह।
पगसूँ काढइ लीहटी, उर आँसुआँ भरेह ॥१३७॥

मारवणी की इस करुणदशा और दर्दभरे हृदयोद्‌गारों को जब हम पढ़ते है तो यह विचार आए बिना नहीं रहता कि ढोला का हृदय बड़ा कठोर है कि उसने ऐसी एकनिष्ठ पतिप्राणा प्रेयसी की अब तक सुधि नहीं ली। मारवणी व्यथित अवश्य है परंतु विरह ने उसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं कर दिया

है। ढोला ने उसकी अब तक सुधि न ली तो न सही, वह स्वय तो एक पतिप्राणा आर्य रमणी की तरह अपना कर्तव्य पहचानती है। यह झूठी धमकी नहीं है। जो मारवणी अपने पति के पास सदेश पहुँचाने की कठिन समस्या को अपनी बुद्धि से हल कर सकी वह ऐसा भी कर सकती है—

जइ तूँ ढोला, नावियउ, कइ फागुण कइ चेत्रि।
तउ म्हे घोडा बाँधिस्याँ, काती कुड़ियाँ खेत्रि ॥१४६॥
जउ तूँ साहिब, नावियउ सावण पहिली तीज।
बीजळ तणइ झबूकडइ मूँध मरेसी खीज ॥१४६॥
फागुण मासि बसत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
चाचरिकइ मिस खेलती, होळी झपावेसि ॥१४५॥
पावस मास, विदेस प्रिय, घरि तरुणी कुळसुध्ध।
सारग सिखर, निसद्द करि, मरइ स कोमळ मुध्ध ॥१७४॥

पतिव्रता अबला का पतिवियोग मे अंतिम बलपूर्ण अस्त्र यही है। जौहर और सती की पवित्र प्रथा ने न जाने कितनी हिंदू सतियों के सतीत्व और शील की रक्षाकर ससार में स्त्री हृदय की पवित्रता और दृढता का आदर्श स्थापित किया है।

परतु मारवणी के दिल की सच्ची लगन प्रियमिलन की आशा है। वह प्रिय से मिले बिना मरने को उद्यत नहीं है। प्रेम मे आशा का निरंतर प्रकाश रहता है। प्रेमी का प्रेमपात्र के प्रति अखड विश्वास होता है, यद्यपि विरह की तीव्र वेदना अधकार के रूप में इस आशाजन्य प्रकाश को छाया की तरह धूमिल करती रहती है। इस आशा और नैराश्य के छायाप्रकाश की क्रिया-प्रतिक्रिया का बड़ा अच्छा निदर्शन मारवणी के संदेशों मे उपलब्ध होता है। यह काव्य-स्थल कलात्मक दृष्टि से एक अनूठा प्राकृतिक चित्र है।

एक बार अपने अनत विश्वास को पुनः प्रकटकर मारवणी आशागर्भित भावों में सदेश का अत करती है—

हियड़इ भीतर पइसि करि ऊगउ सजण रूँख।
नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख ॥१५८॥

रोम रोम मे व्याप्त प्रेम की क्षण में निराशा से मुरझाती और दूसरे क्षण मे आशा की दीप्ति से प्रदीप्त होती दशा का इससे बढ़कर क्या स्वभाव-चित्र होगा ?

ढो॰ मा॰ दू॰ ७ (११००—६२)

मारवणी के एकनिष्ठ सात्विक प्रेम के आदर्श की व्यंजना इन दूहों में बड़े मार्मिक ढंग से हुई है—

> जिम सालूराँ सरवराँ, जिम धरणी अर मेह।
> चंपावरणी बालहा, इम पालीजइ नेह॥१६८॥
> तुँही ज सज्जण, मित्त तूँ प्रीतम तूँ परिवाँण।
> हियड़इ भीतरि तूँ वसइ, भावईं जाँण म जाँण॥१७५॥
> हूँ बलिहारी सज्जणाँ, सज्जण मो बलिहार।
> हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गलहार॥१७६॥

संदेश देकर ढाढ़ियों को विदा करती हुई मारवणी की दशा को कवि ने कुशल मनोवैज्ञानिक चित्रकार की तरह बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रितकर भावुकता में कमाल कर दिया है—

> सँभारियाँ सँताप, वीसारिया न वीसरइ।
> कालेजा वीचि काप, परहर तूँ फाटइ नहीं॥१८०॥
> भरइ पलट्टइ, भी भरइ, भी भरि, भी पलटेहि।
> ढाढ़ी हाथ संदेसड़ा धण विललती देहि॥१८२॥

मारवणी के संदेशों में दो एक स्थान पर कविकल्पना का अपव्यय भी हुआ है। दूर की सूझ में कल्पना की ऊहावृत्ति यद्यपि चमत्कार अवश्य उत्पन्न करती है परंतु अंतस्तल के सच्चे उद्‌गारों के बीच ये चमत्कार नकली मोती की तरह प्रतीत होते हैं। इन ऊहात्मक और अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों के गर्भ में हमको मारवणी की वेदना का भाव स्पष्टतः दिखाई देता है। इस बात से संतोष होता है कि मारवणी के निष्कपट भावनारूपी सुवर्ण सूत्र ने इन बनावटी मोतियों को भी संवेदना के सूत्र में ग्रथितकर उनको काव्योपयुक्त रूप दे दिया है। वे स्थल ये हैं—

> प्रीतम, तोरइ कारणइ ताता भात न खाहि।
> हियड़ा भीतर प्रिय वसइ, दाझणती डरपाहि॥१६०॥
> राति ज रुँनी निसह भरि, सुणी महाजनि लोइ।
> हाथाली छाला पड्या, चीर निचोइ निचोइ॥१५६॥

यह कल्पना चमत्कार रीतिकाल के शृंगारी कवियों की, बाल की खाल निकालनेवाली, दूर की सूझ से कम नहीं है।

माळवणी का विरह

इसी विप्रलभ शृंगार के विषय मे माळवणी के विरह का दिग्दर्शन सक्षेप में करा देना उचित होगा, जिससे पाठक मारवणी और माळवणी के प्रेम का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें। सिद्धात रूप मे दोनों के भेद का उल्लेख तो हम ऊपर कर चुके हैं। यहाँ केवल उदाहरण दे देते हैं।

माळवणी को छोड़कर मारवणी के लिये प्रस्थान करना ढोला के लिये एक विकट समस्या है। दोनों मे ढोला का सच्चा प्रेम है। एक को सयोग-सुख देने मे दूसरी को वियोगदुःख देना पड़ता है, एक के प्रेम का आदर करने से दूसरी के प्रेम का निरादर होता है। प्रेम की इस सकटावस्था मे ढोला मध्यम मार्ग निकालकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहता है। इस समय ढोला का प्रेम कसौटी पर कसा जाता है। ढोला चतुरतापूर्वक नीति की एक चाल चलता है। माळवणी को बहाने से ललचाकर यात्रा करने की अनुमति प्राप्त किया चाहता है। इससे ढोला का माळवणी के प्रति सुदृढ़ प्रेम प्रकट होता है—

ईडर की धर अउळगउँ, जइ तूँ कहइ तु जाँह।
अउथि घड़ाऊँ आभरन, माल्हवणी, मेलाँह ॥२२४॥

परंतु यह तुच्छ प्रलोभन माळवणी पर असर नहीं करता। उसे प्रियतम आभरणों से कहीं ज्यादा प्यारा है। उत्तर में तुरंत कहती है—

ईडर की धर अउळगण, हूँ तउ जाण ण देसि।
घरि बइठाही आभरण, मोल मुहगा लेसि ॥२२५॥

ढोला उत्तम जाति के तेज कच्छ देश के नामी ऊँट खरीदने का मिस लेता है परतु यह दलील भी काम नहीं देती। माळवणी उत्तर देती है—

साहिब, कच्छ न जाइयइ, तिहाँ परेरउ द्रग।
भीमळ नयण सुवंक धण, भूलउ जाइसि सग ॥२२६॥

चार बार यात्रा के लिये प्रस्ताव करने पर और ढोला की आतरिक चिंता को पहचानकर चतुर माळवणी रोग का स्पष्ट निदान करती हुई पूछती है—

वळि माळवणी वीनवइ हुँ प्री, दासी तुझ्झ।
का चिंता चित अतरे सा प्री, दाखउ मुझ्झ ॥२३६॥
साहिब, रहउ न राखिया कोड़ि प्रकार कियाह।
का थाँ काँभिण मन वसी, का म्हाँ दूहवियाह ॥२३५॥

अब तो ढोला की पोल खुल गई। कहाँ तक छिपाता। जब नीति से काम न चला तो सारा हाल सच सच कह दिया और प्रियतमा से विनय करने लगा—

सुणि सुंदरि सचउ चवाँ, माँनिइ मनची भ्रंति।
मो मारू मिळिवातणी, खरी विलग्गी खंति ॥२३८॥

बस, अब क्या था। माळवणी को अब तक केवल आशंका थी। अब सच्ची बात प्रकट होने पर विरह की भावी चिंता और दुःख के कारण मन को भारी धक्का लगा। उस हार्दिक चोट की प्रतिध्वनि इस दोहे में गूँजती है—

माळवणीकउ तन तप्यउ, विरह पसरियउ अंगि।
ऊभी थी खड़हड पड़ी, जाणे डसी भुयंगि ॥२३९॥

माळवणी के सामने अब एक ही प्रश्न था—जिस किसी तरह प्रियतम को अपनी धारणा से विरक्त करके यात्रा को स्थगित करवाना। यद्यपि यह विरह की पूर्वावस्था थी, पूर्ण विरह नहीं परंतु भावी विछोह की दारुण चिंता ने उसे साहसी बना दिया था। उस समय ग्रीष्म ऋतु का आधार लेकर उसने विदेशयात्रा संबंधी आक्षेपोक्तियाँ प्रारंभ कीं और जाने की अनुमति न दी—

थळ तत्ता लू साँमुही, दाझोला पहियांह।
म्हाँकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियांह ॥२४१॥

प्रिया को खुश करके उसकी प्रसन्नता से अनुमति लेकर ही प्रस्थान करना ढोला ने उचित समझा। वह रुक गया। ग्रीष्म के तीन मास समाप्त हुए। वर्षागम हुआ। ढोला ने फिर अनुमति माँगी। माळवणी ने इस ऋतु को भी यात्रानुकूल न बताया—

जिण रुति बग पावस लियइ धरणि न मेल्हइ पाइ।
तिण रुति साहिब वल्लहा, कोइ दिसावर जाइ ॥२४६॥

प्रीतम कामणगारियाँ थळ थळ बादळियाँह।
घण बरसंतइ सूकियाँ, लूसूँ पाँगुरियाँह ॥२४८॥

कप्पड़, कीण, कमाण गुण भीजइ सब हथियार।
इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार ॥२४९॥

अब तो ढोला ने भी देखा कि चुपचाप आक्षेपों को सुनते रहने से काम न चलेगा। उसने भी प्रत्याक्षेप करने शुरू किए—

> बाजरियाँ हरियाळियाँ, बिचि बिचि बेलाँ फूल।
> जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥२५०॥
> धर नीली, धण पुंडरी, घरि गहगहइ गमार।
> मारू देस सुहामणउ साँवणि साँझी वार ॥२५१॥

माळवणी फिर विरहिणियों के लिये वर्षा ऋतु का दुस्सह चित्र उपस्थित करती है—

> फौज घटा, खग दाँमणी बूँद लगइ सर जेम।
> पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम ॥२५५॥
> काळी कठळि बादळी वरसि न मेल्हइ वाउ।
> प्री विण लागइ बूँदडी जाँणि कटारी घाउ ॥२६७॥

इसी प्रकार जायसी ने भी विरह मे वर्षा के दुस्सह दुःख को नागमती के संबंध मे चित्रित किया है—

> खडग बीज चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घनघोरा ॥
> ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कत उबारु मदन हौं घेरी ॥

वर्षा काल है। रास्तों में कीचड भरा होगा। ऊँट का पैर फिसल जायगा। यात्रा के लिये वर्षा ऋतु से बढ़कर तो दूसरी बुरी ऋतु नहीं होती। कैसी चतुर उक्ति है—

> नदियाँ, नाळाँ, नीझरण पावस चढिया पूर।
> करहउ कादिम तिलकस्यइ, पथी, पूगळ दूर ॥२५६॥

विरह की कल्पना मे वर्षाकाल के सारे सुखद दृश्य माळवणी के लिये दुःखद हो जाते हैं—

> जिण रुति बहु बादळ झरइ, नदियाँ नीर प्रवाह।
> तिण रुति साहिब वल्लहा, मो किम रयण विहाय ॥२५९॥
> महि मोराँ मंडव करइ, मनमथ अंगि न माइ।
> हूँ एकलड़ी किम रहउँ, मेह पधारउ माइ ॥२६३॥

आकाश में बिजलियों को बादलों के साथ और पृथ्वी पर बेलों को वृक्षों के साथ और सयोगिनी नायिकाओं को नायकों के साथ आलिंगन करते देखकर विरहिणी माळवणी का धैर्य नहीं रहता—

ऊँचउ मदिर अति घणउ आवि सुहावा कत।
वीजळि लियइ झबूकड़ा सिहराँ गळि लागत ॥२६८॥
सावण आयउ साहिबा, पगइ विलबी गार।
बच्छ विलबी वेलड्याँ, नराँ विलंबी नार ॥२६९॥

माळवणी के सुदृढ प्रेम मे बँधे हुए ढोला ने वर्षाऋतु के अत तक यात्रा को स्थगित रखा। दशहरा भी बीत गया। शरद् ऋतु का प्रवेश हुआ। लगभग एक वर्ष बीतने को आया। अब तो ढोला उकता गया। माळवणी ने शरद् ऋतु को भी यात्रा के अनुपयुक्त सिद्ध किया, यही नहीं वर्ष की सभी ऋतुओं को यात्रा के लिये अनुपयुक्त प्रमाणित कर दिया। माळवणी की आक्षेपोक्तियों मे उत्तम कोटि का व्यग्य भरा है। उन पर मनन करने से सच्चे काव्यानंद की प्राप्ति होती है। शरद् ऋतु की आक्षेपोक्ति लीजिए—

जिण रित नाग न नीसरइ, दाझइ, वनखँड दाह।
जिण रित माळवणी कहइ, कुँण परदेसाँ जाह ॥२८४॥
सीयाळइ तउ सी पड़इ, ऊन्हाळिइ लू बाइ।
वरसाळइ भुइँ चीकणी, चालण रुत्ति न काइ ॥२७७॥

अब तो ढोला को साहस करना ही पड़ा। माळवणी की प्रेमपरीक्षा मे वह उत्तीर्ण हुआ परतु अब यदि मारवणी की सुधि न ले तो उसके प्रेम मे शैथिल्य प्रमाणित होता है। अतएव स्पष्ट शब्दों मे कह ही तो दिया—

माळवणी, म्हे चालिस्याँ म करि हमारी तात।
का हसि करि म्हाँ सीख दे, खड़िस्याँ माँझिम रात ॥२७८॥

कैसा मीठा, कैसा सूक्ष्म, परतु दृढ उत्तर है। ढोला के प्रेममय चरित्र की यही कसौटी है। मेरे अनिष्ट की चिंता न करो, प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करने की आज्ञा दो (अब भी माळवणी को प्रसन्न रखना चाहता है !) अन्यथा अर्द्धरात्रि को सोती छोड़कर चल देना पड़ेगा। माळवणी के प्रति अपने प्रेम मे ढोला पूरा उतरता है। जागती को छोड़कर जाने से माळवणी को मर्मांतक वेदना होगी। प्रेमिका की उस असह्य वेदना को बचाकर रात्रि में चलने का प्रस्ताव किया। दूसरा कोई उपाय न था। ऐसी ही अवस्था मे राजकुमार सिद्धार्थ अपने परमार्थप्रेम से उत्साहित होकर यशोधरा को रात मे सोती छोड़कर निकले थे।

ढोला की इस दृढ़ता को देखकर माळवणी को कोई सहारा न रहा। एक बार फिर अंतिम प्रयत्न किया। सोचा, ढोला के प्रेमशैथिल्य की कुछ चुभती हुई व्यंग्योक्तियाँ कहूँ। शायद उनसे क्षुब्ध होकर ही रुक जाय—

डूँगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह।
वहता वहइ उतामळा, झटक दिखावइ छेह॥३३८॥
पिय खोटाँरा एहवा, जेहा काती मेह।
आडंबर अति दाखवइ आस न पूरइ तेह॥३३९॥

कैसी पैनी, काटती हुई उक्ति है। ढोला का हृदय इससे चुभकर व्यथित अवश्य हुआ होगा, परंतु करता क्या? इस संवाद को ज्यादा बढ़ाने से फायदा होता नहीं दिखाई दिया। ढोला व्यंग्योक्ति को चुपचाप मन ही मन पी गया। आखिर ढोला को दृढ़ देखकर माळवणी को अनिच्छा होते हुए भी झल्लाकर अनुमति देनी पड़ी—

हल्लउँ हल्लउँ मत करउ, हियड़इ साल म देह।
जे साचे ई हल्लस्यउ, सूताँ पल्लाँणेह॥३०५॥

अंत में बिदाई का दृश्य बड़ी मार्मिक स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया गया है। शब्दसौष्ठव की स्वाभाविक योजना, भाव की बारीकी और दृश्य की सरलता और स्पष्टता के लिये काव्यकला और भावुकता की दृष्टि से यह दोहा सर्वोत्तम काव्य का लक्षण है। भावना और शब्दचमत्कार सोना और सुगंध की तरह मिल गए हैं—

ढोलउ हल्लाणउ करइ धण हल्लिवा न देह।
झबझब झूँबइ पागड़इ, डबडब नयण भरेह॥३०४॥

यह कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि माळवणी की प्रेमपूर्ण आक्षेपोक्तियों और युक्तियों मे स्वाभाविकता का बड़ा अच्छा निर्वाह हुआ है। माळवणी की, ढोला की यात्रा स्थगित करने की युक्तियों के पीछे उसके प्रेम की गभीर प्रेरणा है। प्रेम की दृढता के कारण उसको इन प्रयत्नों में कुछ सफलता भी मिली। एक वर्ष तक ढोला को उसने रोक रखा।

माळवणी ने ढोला को रोकने का एक अंतिम प्रयत्न और भी किया था। जिस ऊँट पर चढकर ढोला यात्रा करने को था उससे लँगडा होने का बहाना करवाने की उसकी आयोजना यद्यपि सफल न हुई परंतु उस प्रयत्न मे उसके मन की आतुरावस्था स्पष्टतः व्यक्त होती है। उस प्रयत्न में 'मरते को तिनके का सहारा' वाली लोकोक्ति सिद्ध होती है।

ऊँट के पास जाकर मारवणी विनय करती है। यह करुणोक्ति वैसी ही है जैसी प्रेमातुर अवस्था में राम का सीता की खोज में वन के मृग और वृक्षों से सीता का पता पूछना अथवा विरहविधुरा गोपिकाओं का व्रज की लताओं से कृष्ण के विषय मे पूछना।

मारवणी ने प्रियतम को यात्रा से रोकने के हजार प्रयत्न किए। अब भी हृदय से यही चाहती है कि ढोला रुक जाय तो अच्छा। परतु जब प्रेमी प्रस्थान करने को है, तो पतिपरायणा साध्वी की तरह उसकी मगलकामना करती है। यदि सच्चा प्रेम न होता तो यह सोचती कि यात्रा असफल हो—अनिष्टकर हो। परतु नहीं, वह प्रस्थान के समय हितकामना करती हुई कहती है—

> थे सिध्धावउ, सिध करउ, बहु गुणवता नाह।
> सा जीहा सतखड हुइ जेण कहीजइ जाह ॥३४०॥

दूसरी पक्ति मे सर्वोत्तम कोटि का वेदनापूर्ण आक्षेप व्यग्य है।

ढोला चला गया। अब प्रवत्स्यत्पतिका विरहिणी मारवणी का विप्रलभ प्रारभ होता है। अब तक तो उसे भावी विरह की चिंता और क्षोभ था। मारवणी की वास्तविक विरहदशा का कवि इस प्रकार वर्णन करता है। मारवणी सखियों से कहती है—

> ढोलउ चाल्यउ हे सखी, वाज्या विरह निसाँण।
> हाथे चूड़ी खिस पडी, 'ढीला हुया सँघाण ॥३४६॥

विरहजन्य दशापरिवर्तन का क्या ही मर्मस्पर्शी दिग्दर्शन है। मारवणी' के अग प्रत्यग शिथिल हो गए—जड़ हो गए, हाथ की चूड़ी खसककर नीचे आ गई। यद्यपि शिथिलता की अत्युक्ति है परतु सवेदनापूर्ण होने से वह मारवणी की तीव्र वेदना की परिचायक है। मारवणी सखियों के प्रति अपना विरहदुःख यों कहती है—

> सजण चाल्या हे सखी, वाज्या विरह निसाँण।
> पालखी विसहर भई, मदिर भयउ मसाँण ॥३५२॥
> सजणियाँ वउलाइ कइ मदिर वइठी आइ।
> मदिर काळउ नाग जिउँ हेलउ दे दे खाइ ॥३७१॥
> चपा केरी पाँखड़ी, गूँथूँ नवसर हार।
> जउ गळ पहरूँ पीव विन, तउ लागे अगार ॥३९६॥

प्रिय के विरह में सब सुख के साधन दुःख के उत्तेजक कारण बन जाते हैं। सुखशय्या साँप की तरह विषाक्त प्रतीत होती है, सौख्यपूर्ण महल श्मशान-भूमि की तरह शून्य और भयावह प्रतीत होते हैं और उनकी डरावनी निर्जनता काटने को दौड़ती है।

सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पूगळ दोडेह।
सायधण लाल कर्वाण ज्यउँ ऊभी कड मोडेह ॥३५५॥

विरहिणी की बेचैनी और आलस्य का कैसा भावुक शब्द चित्र है। माळवणी को प्रिय के बिना जीवन भार स्वरूप हो गया है। कोई चीज अच्छी नहीं लगती। पानी पीती है परतु गले से नीचे नहीं उतरता, साँस हृदय मे समाती नहीं।

सज्जण चाल्या हे सखी, सूना करे अवास।
गळेथ न पाणी ऊतरइ, हिये न मावइ सास ॥३५८॥

विरहावस्था के ऐसे स्वाभाविक वर्णन बहुत कम काव्यों मे मिलेंगे। जायसी ने इसी से मिलताजुलता भाव नागमती के विरहवर्णन मे प्रकट किया है—

'खन एक आव पेट मँह साँसा। खनहि जाइ जिउ होइ निरासा ॥'

प्रियविरहजन्य शून्यता और निराशा का सुदर व्यंग्य चित्र देखिए—

ढोलइ चढि पड़ताळिया डूँगर दीन्हा पूठि।
खोजे बाबू हथ्थड़ा धूड़ि भरेसी मूठि ॥३६१॥
सयणाँ, पाँखाँ प्रेम की तहँ अब पहिरी तात।
नयण कुरगउ ज्यूँ वहइ लगइ दीह नइँ रात ॥३६४॥
साल्ह चलतइ परठिया आँगण वीखड़ियाँह।
सो मइँ हियइ लगाडियाँ भरि भरि मूठड़ियाँह ॥३६६॥

प्रेम की एकनिष्ठता, तल्लीनता, तादात्म्य का इससे बढकर क्या परिचय हो सकता है कि वातावरण में सब ओर प्रेमी ही प्रेमी की प्रतिमा दिखाई दे, जिससे विरहविधुरा प्रेमिका वायु को भी प्रेमी की प्रतिमा के भ्रम से आलिंगन करने लगे, रातदिन नेत्र प्रेमी की खोज में दशों दिशाओं मे घूमते रहे और प्रेमी के पीछे छोडे हुए पदचिह्न की धूलि को मुट्ठियाँ भर-भरकर छाती से लगाकर प्रेयसी अपने उद्वेग को शात करने की चेष्टा करे। विरह के ये व्यापार उन्माद और विक्षिप्तता के द्योतक हैं। चैतन्य महाप्रभु और मीरा का कृष्ण के प्रेम में नाचना, मजनूँ का लैला के लिये हवा से बातें

करना, यक्ष का बादलों द्वारा संदेश भेजना, उन्माद नहीं तो क्या था ? परंतु यही उन्माद सच्चे प्रेम का शृंगार होता है।

प्रियतम के विरह में पत्नी को अपनी तुच्छता और हीनता का ज्ञान होना स्वभाविक ही है—जिसकी पहले लाखों की कीमत होती अब उसे कौड़ी को भी कोई नहीं पूछता। सच है जब माली ने वल्लरी को सींचना ही छोड़ दिया तो वह सूखेगी ही—

प्रीतम हूती बाहिरी कवडी ही न लहाँइ।
जब देखूँ घर आँगणइ लाखे मोल लहाँइ ॥३७०॥
सज्जण वल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार।
सूकण लागी वेलड़ी, गया ज सींचणहार ॥३७४॥

जायसी के नागमती विरहवर्णन में भी इसी प्रकार का वर्णन है—

कँवल जो बिगसा मानसर, बिन जल गएउ सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जो पिउ सींचै आइ॥

प्रियतम के विरह में उनके स्मारकचिह्न ही प्रेयसी के लिये जीवनाधार हो जाते हैं। उनको देख देखकर प्रियतम की याद करके वह दुःख के रूप में अपने प्रियतम की स्मृतियों को हरी रखती है—

खूँटइ जीण न मोजडी, कड्याँ नहीं केकाँण।
साजनियाँ सालइ नहीं, सालइ आही ठाँण ॥३७५॥

भारतेंदु की चंद्रावली नाटिका में कृष्ण के विरह में चंद्रावली कहती है—'प्यारे देखो, जो जो तुम्हारे मिलने में सुहावने जान पडते थे वही अब भयावने हो गए हैं। हा, जो वन आँखों से देखने में कैसा भला दिखाता था, वही अब कैसा भयंकर दिखाई पडता है। देखो, सब कुछ है, एक तुम्हीं नहीं हो प्यारे।' (दूसरा अंक)

प्रियप्रवास में विरहविधुरा गोपिकाओं की इसी प्रकार की उक्ति है—

कुंजें वही, थल वही, यमुना वही है।
वेलें वही, वन वही, विटपी वही है॥
हैं पुष्प पल्लव वही, व्रज भी वही है।
ए किंतु श्याम बिन है न वही जनाते ॥१४-१४२॥

विरहिणी की कामदशा को शास्त्र में दस प्रकार से वर्णन किया जाता है—

अभिलाषश्चिन्तास्मृति गुणकथनोद्वेग सम्प्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जड़तामृतिरिति दशात्र कामदशा ॥
—सा० द० ३-२१४ ॥

इन दशाओं मे प्रायः सभी का विकास माळवणी के विप्रलभ मे मिलता है। उन्माद, स्मृति, व्याधि और प्रलाप के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। विरह-जन्य जड़ता को कैसी मार्मिक व्यंजना की गई है—

बीछड़ताँ ही सज्जणा, क्याँ ही कहण न लब्ध ।
तिण वेला, कँठ रोकियउ, जाणक सिंधा खध्ध ॥३८१॥

अंतर्दग्ध करनेवाली चिंता का चित्र इस दोहे मे चित्रित किया गया है—

सज्जण ज्यूँ ज्यूँ समरइ, देख्याँ आही ठाँण ।
झुरि झुरि नइ पजर हुई, समर समर सहिनाँण ॥३८२॥

विरहिणी की कामजन्य अभिलाषाएँ भी विचित्र होती हैं। विरहदुःख जब हृदय मे नहीं समाता तो माळवणी अभिलाषा करती है कि पर्वत शिखर पर जाकर धाड़ मार मारकर रो ले जिससे हृदय हलका हो जाय—

बाबा, बाळूँ, देसड़उ, जिहाँ डूँगर नहिं कोइ ।
तिणि चढि मूकउँ धाहड़ी, हीयउ उरळउ होइ ॥३६१॥

माळवणी को अपने प्रलाप मे चेतन और अचेतन का ज्ञान नहीं रहता। वह वन में खड़े हुए एक हरेभरे 'जाळ' के दरख्त को देखकर कहती है—

थळ मथ्थइ जळ बाहिरी तूँ काँइ नीळी जाळि ।
कँइ तूँ सींची सज्जणे, कँइ बूठउ अग्गाळि ॥३६१॥

इस पर अपनी कल्पना के बल से कवि माळवणी को जाल की ओर से यह सतोषदायक उत्तर दिला देता है—

ना हूँ सींची सज्जणे, ना बूठउ अग्गाळि ।
मो तळि ढोलउ वहि गयउ, करहउ बाँध्यउ डाळि ॥३६२॥

ढोला के जाळ के नीचे से निकल जाने पर और ऊँट को बाँधकर जाळ के नीचे क्षणिक विश्राम लेने पर जाळ की यह दशा हुई कि वह बिना वर्षा अथवा जलदान के हरीभरी हो गई। जब ढोला के क्षणिक संयोगसुख से जड़ जीवो की दशा समुन्नत हो जाती है, तब तो ऐसे प्रियतम के लिये माळवणी का विलाप करना यथार्थ है। ससार के सभी साहित्यों के गीतकाव्यों

में जड़ और चेतन का इस प्रकार प्रश्नोत्तर द्वारा समवेदना के एक सूत्र में बँधा होना सिद्ध होता है।

माळवणी का विरह बड़ी तीव्र और करुण वेदना से भरा है, परतु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इस उन्माद और उद्वेग की विरहदशा मे वह अपने कर्त्तव्य को भूल नहीं जाती। अपने प्रेमी को प्रवास से विरत करने में वह सदा सयत्न रही और जब उसे रोक न सकी तब भी उसने यत्न को न छोड़ा। माळवणी का यह सयत्नोत्साह उसके प्रेम की दृढता का परिचायक है। ढोला के चले जाने पर माळवणी ने उसे लौटाने का एक प्रबल प्रयत्न किया। इसी आशय से उसने अपने शुक को भेजा था।

यद्यपि इस काव्य मे विप्रलभ शृगार ही प्रधान है, परतु सभोग का भी वर्णन हुआ है। वैसे तो कहानी के इतिवृत्त की रचना ही इस ढग से हुई है कि माळवणी और मारवणी के सबध के सभोग शृगार का निदर्शन बहुत कम होने पाया है। नायक ढोला और नायिका मारवणी की प्रेमवार्त्ता को प्रधानता देने के लिये उन्हीं के प्रेमसूत्र के विकास का आद्योपात और क्रमागत वर्णन किया गया है। माळवणी का पहलेपहल वर्णन दूहा २१५ मे उस अवस्था में हुआ है जब ढाढियों द्वारा मारवणी का सदेश ढोला को मिल जाने पर वह पति को चिंताकुल देखती है। परतु माळवणी के उत्तरकालीन प्रौढ प्रेम-प्रवाह की गति से हम उसके पूर्वकालीन दापत्य प्रेम के सौख्य और घनत्व का अनुमान कर सकते हैं। जो माळवणी पति के प्रेम पर इतना अधिकार रखती है कि प्रेमातुर पति को एक वर्ष तक अपनी यात्रा से विरत कर सकती है उसके प्रेम का सभोग पक्ष भी खूब सौख्यपूर्ण और परिपुष्ट रहा होगा।

(११) ढोलामारू का संयोग शृंगार

सयोग शृगार का स्पष्ट निदर्शन हमको मारवणी-ढोला-मिलन के दृश्य में मिलता है। यद्यपि वह अत्यत सक्षिप्त है, परतु उसी का हम यहाँ उल्लेख करेंगे। यह वर्णन पद्मावती-रत्नसेन-विषयक सयोग शृगार से बहुत कुछ मिलता-जुलता है अतएव इनकी तुलना भी की जा सकती है।

ढोला के पूगल पहुँच जाने पर मारवणी के हर्ष का पारावार न रहा। मारवणी अपने आतरिक सुख और हर्षोल्लास को सखियों पर प्रकट करती है—

साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियाँह।
पूनिम केरे चद ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह ॥५२८॥

सखिए, साहिब अःविया, जाँहकी हूँती चाइ।
हियडउ हेमाँगिर भयउ, तन पजरे न माइ ॥५२६॥

आजूणउ धन दीहड़उ साहिब कउ मुख दिट्ठ।
माथा भार उलाथ्थियउ, आँख्याँ अमी पयट्ठ ॥५३१॥

सखी, सु सजण आविया, हुंता मुझ्झ हियाह।
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह ॥५३३॥

मारवणी के पवित्र और मर्यादाविहित प्रेम का विकास उसके हृदय की सीमा को व्याप्तकर चारो ओर पूर्णिमा की चद्रिका के समान छिटक गया है। उसका विरहव्याकुल हृदय अब हिमालय की तरह शीतल हो गया है। मानसिक प्रफुल्लता इतनी बढ़ गई है कि शरीर पजर में नही समाती। आज मानों उसके सिर पर से विरहरूपी भारी बोझ उतर गया और उत्सुक नेत्रों मे प्रियदर्शन के कारण अमृत छलकने लगा। सूखी हुई वल्लरी आज पुनः पल्लवित और पुष्पित हो गई, सयोगजनित मद आँखों की मस्ती में झलक रहा है। मारवणी का सयोगसुख अपनी स्वाभाविक सूक्ष्मताओ के साथ उसके अंग-प्रत्यंग की प्रफुल्लित और आह्लादपूर्ण दशा से प्रकाशित हो रहा है।

इसी प्रकार पद्मावती का संयोगसुख भी उसने अगप्रत्यग में विकसित हुआ है—

अग अग सब हुलसै, कोइ कतहूँ न समाइ।
ठाँवहिं ठाँव विमोही, गइ मुरछा तनु आइ ॥

परंतु दोनों मे भेद इतना है कि जहाँ मारवणी का सयोगजन्य हर्षोल्लास अधिक सयत और शील की सीमा में बद्ध है, वहाँ हर्षोल्लास की बाढ़ में पद्मावती के पैर उखड़ जाते हैं वह मूर्च्छित हो जाती है। साहित्यिक दृष्टि से यद्यपि ऐसे अवसर पर मूर्च्छित हो जाना ठीक समझा गया है और वह भावातिशय को प्रकाशित करता है, परतु उसमें सयम और मर्यादा का अभाव अवश्य द्योतित होता है।

मारवणी के प्रथम समागम का वर्णन जहाँ हुआ है, वहाँ भी इसी प्रकार की सयमशीलता और शीलसपन्नता प्रकट होती है। यथा—

कट विलग्गी मारुवी करि कचूवा दूर।
चकवी मनि आणंद हुवउ, किरण पसारया सूर ॥५५१॥

इसी प्रकार दूहा ५५२, ५५३, ५५४, ५६१, ५६२ में देखना चाहिए। दूहा ५६३ में मजिठा राग की उपमा प्रेम की विशुद्ध पूर्णता की सूचक है—

धरती जेहा भरखमा, नमणा जेही केळि।
मजीठाँ जिम रचणाँ, दई, सु सजण मेलि ॥५६३॥

वर्णन की गंभीरता, नम्रता और शीलसंपन्नता ने शृंगार को अश्लीलता की व्यंजना से बचा लिया है। जहाँ तक हो सका है, मारवणी के संभोग शृंगार की पराकाष्ठा शुद्धता, शील और संस्कृति की सीमा से बाहर नहीं होने पाई है।

ऐसे ही स्थल पर पद्मावती के प्रिय-मिलन-जन्य प्रेम को जायसी ने काम-जन्य दशाओं में प्रकट किया है जिससे उसमें सात्त्विक पवित्रता का वह भाव प्रकट नहीं होता जो मारवणी के प्रेम में हुआ है—

छूटा चाँद सूर जस सा[illegible]। अस्टौ भाव मदन जनु गाजा ॥
हुलसे नैन दरस मदमाते। हुलसे अधर रंग रस राते ॥
हुलसा बदन ओप रवि पाई। हुलसि हिया कंचुकि न समाई ॥
हुलसे कुच कसनी बँध टूटे। हुलसी भुजा वलय कर फूटे ॥
हुलसी लंक कि रावन राजू। राम लखन दर साजहिं आजू ॥
आजु कटक जोरा है कामू। आज विरह सों होइ संग्रामू ॥
भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज बिधँसि विरह संग्रामा ॥

इस विवरण में 'अस्टौ भाव मदन जनु गाजा', 'राम लखन दर साजहिं आजू', 'कटक जोरा है कामू', 'होइ संग्रामू' इत्यादि भावों की उग्र व्यंजना प्रेम की सात्त्विक शीलता, स्वाभाविक सरलता और कोमलता में एक प्रकार का तूफान पैदा कर देती है जो फारसी ढंग की कविता में भले ही मान्य हो, भारतीय साहित्य और संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध प्रतीत होती है। जायसी के प्रेमवर्णन की उग्रता अवसर और पात्र के अनुपयुक्त जँचती है।

प्रियमिलन के अवसर पर मारवणी ने शृंगार किया। यह शृंगारवर्णन भी बहुत कुछ संयत, विशुद्ध और मर्यादाबद्ध है—

सखिए जगट माँलिराउ खिनमति करइ अनंत।
मारू तन मंडप रच्यउ, मिलण सुहावा कंत ॥५३५॥
चमचमतइ चाचरइ, उळट्यउ चाँण गयंद।
मारू चाली मंदिरे, भीणे बादल चंद ॥५३७॥

बोली वीणा, हस गत, पग बाजंती पाळ।
रायजादी घर अगणइ छुटे पटे छछाळ ॥५४०॥
सोई सज्जण आविया, जॉहकी जोती बाट।
थॉभा नाचइ, घर हॅसइ, खेलण लागी खाट ॥५४१॥

इसके विपरीत पद्मावती के शृगार का विशद वर्णन करते हुए कवि ने बारह आभरणो का वर्णनकर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है—

(१) बारह अभरन करै सो साजू।

(२) जो न सुना तो अब सुनइ बारह अभरन नॉव।

जायसी का यह वस्तुवर्णन शृगार रस के विकास और परिपाक मे बाह्य वस्तु सा प्रतीत होता है। इससे रस की परिपुष्टि और सम्यक् आस्वादन नहीं होता। भावुकता और सवेदना का स्पर्श इनमे नहीं के बराबर है, अतएव प्रस्तुत विषय के साथ इनका बहुत थोड़ा और निर्जीव सपर्क रह जाता है।

इसी प्रकार 'सोलह शृगार', पारा, गधक, हरताल, सिद्धगुटिका और रासायनिक क्रियाओ और पदार्थों का अनवसर पर वर्णन करके कवि ने बहुज्ञता और वस्तुज्ञान का पूरा परिचय तो दिया है, परतु इनसे काव्य का बहुत थोड़ा उपकार सिद्ध होता है।

शृंगार के उद्दीपक साधनों में जिस प्रकार प्रथाबद्ध षड्ऋतु वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार प्रेमियों का पारस्परिक विनोद, हास्य, कुतूहल, क्रीड़ा आदि साहित्य में बताए गए हैं। मारवणी के सभोग शृगार के अंतर्गत ऋतु-वर्णन के स्थान पर 'अष्टयाम' का वर्णन हुआ है। इससे पहले प्रथम समागम के उपयुक्त प्रेमियों मे कुछ विनोद और क्रीड़ा भी होती है। 'मान' का भी सक्षेप में दिग्दर्शन होता है।

ढोला हॅसी ही हॅसी मे एक मीठी चुटकी लेता हुआ मारवणी से कहता है—

काया झबकइ कनक जिम, सुदर, केहे सुक्ख।
तेह सुरगा किम हुवइँ, जिण वेहा बहु दुक्ख ॥५४६॥

इस विनोदभरी परतु तीखी व्यंग्योक्ति को सुनकर मारवणी को संकोच होता है कि 'खुणसउ राखइ कंत'—पति के मन मे खुनस बैठ गई है। वह उसी क्षण कैसा सच्चा और लाजवाब उत्तर देती है—

पहुर हुवउ ज पधारियाँ मो चाहती चित्त।
डेहरिया खिण मइ हुवइ घॅण वूठइ सरजित्त ॥५४८॥

ढोला का सदेह 'खुणसउ' बनावटी था। उसे मजाक करना था। क्या उत्तर देता? यदि देता तो इस उत्तर के सामने वह ठहर न सकता। जब निम्न सृष्टि के जीवों—मेढकों—तक मे प्रेम की सजीवनी शक्ति इस विलक्षणता के साथ प्रकट होती है तो मानव का तो कहना ही क्या है।

पद्मावती भी प्रियसमागम के अवसर पर व्यगविनोद और परिहास करती है, परतु उनमे वह विनम्रता और शील व्यजित नहीं होते जो ढोलामारू के वचनों मे होते हं। पद्मावती झिडककर रत्नसेन से कहती है—

'ओहट होसि जोगि तोरि चेरी। आवै बास कुरकुटा केरी॥
देखि भभूति छूति मोहि लागे। कॉपै चॉद सूर सों भागै॥
जोगि तोरि तपसी कै काया। लागि चहै मोरे अग छाया॥
बार भिखारि न मॉगसि भीखा। मागै आइ सरग पर सीखा'॥

यद्यपि ये प्रेम की झिड़कियॉ है और कहने को इनमें 'तोरि चेरी' शाब्दिक विनम्रता भी है, परतु भाव का उतना सयत गठन नहीं है कि शीलसाधन की सीमा मे रह सके।

सयोग शृगार की प्रेमपद्धति मे वाक्चातुर्य, वचनविलास और परिहास का मनोहर आयोजन रहता है। 'ढोला' के प्रेम मे ऐसा आयोजन है और जायसी मे भी। पाश्चात्य गीत काव्यों (Ballads) मे भी पहेलियों और अनेक ढग की वचनचातुरी का विशद साहित्य उपलब्ध होता है। कभी कभी एक पहेली के ठीक ठीक उत्तर दे देने पर ही प्रेमी नायक अथवा नायिका को अपने प्रेमी के प्रेम का पूर्ण लाभ होता है। प्रेम में साधारणतः वाग्विलास और परिहास की वृत्ति का स्फुट होना स्वाभाविक ही होता है।

अँगरेजी के प्रमुख लोक गीतों मे (I) TheElfin Knight, (2) Captain Wedderburn's Courtship, (3) King John and the Bishop ऐसे गीत है जिनमे विनोद और परिहास द्वारा प्रेमी अपने भावों को परस्पर व्यक्त करते हैं। प्रथम और द्वितीय में प्रेमी कठिन पहेली का उत्तर देने के परिणाम मे अपने प्रेमपात्र का प्रणयलाभ करते है। तीसरे में पहेलियों द्वारा दो दलों का भाग्यनिर्णय किया गया है। किवदंती के अनुसार महाकवि कालिदास को भी अपनी प्रियतमा का प्रेम इसी प्रकार वाक्चातुर्य द्वारा प्राप्त हुआ था।

प्राचीन प्रेम कहानियों में पहेलियों के विश्वव्यापी प्रचार और महत्त्व के विषय मे गीतकाव्यों के सर्वश्रेष्ठ आचार्य प्रो० चाइल्ड लिखते हैं—

"Riddles play an important part in popular story and that from remote times. No one needs to be reminded of Samson, Oedipus, Appolonius of Tyre. Riddle tales, which if not so old as the oldest of these, may be carried in all likelihood some centuries beyond our era, still live in Asiatic and European tradition and have their representatives in popular Ballads."

प्राचीन भारतीय कहानियों मे और विशेषतः प्रेम कहानियों में वाक्चातुर्य और विनोद वृत्ति का बहुत सा साहित्य भरा पड़ा है। प्राकृत और अपभ्रश काल के गाथा और दूहा साहित्य में इस प्रकार के विनोदपूर्ण साहित्य का कुछ अग अब भी सुरक्षित मिलता है। 'ढोला' का यह विनोदपूर्ण साहित्याश अपभ्रश साहित्य पर बहुत कुछ आश्रित है। नबर ५७५ और ५७७ की दोनों गाथाएँ प्रसिद्ध प्राचीन प्रहेलिकाएँ हैं जो सीधी अपभ्रश साहित्य से लेकर कथा में ऊपर से मिला दी गई हैं। माधवानल कामकदला की प्रेमगाथा में भी ये मिलती हैं।

मारवणी प्रेम की उद्भावना में पति से साहित्यिक मनोविनोद करने का प्रस्ताव करती है क्योंकि ऐसा करना समयोपयुक्त ही होगा—

मारवणी इम वीनवइ, धनि आजूणी राति।
गाहा-गूढ़ा-गीत गुण ळहि का नवली वाति ॥५६७॥

क्योंकि—गाहा-गीत-विनोद रस सगुणाँ दीह लियंति।
कइ निद्रा, कइ कळह करि, मूरखि दीह गमंति ॥५६८॥

हितोपदेश के निम्नलिखित श्लोक का भाव इस अंतिम दूहे में बड़ी सुंदरता के साथ प्रकट किया गया है—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

इस प्रसंग मे साहित्यिक विनोद की यही उपयोगिता है कि इससे रति-भाव का उद्दीपन होता है। अधिकाश पहेलियाँ साहित्यविश्रुत हैं। इनमे

नायिका की मौलिक कल्पना को ढूँढना व्यर्थ है क्योंकि ऐसे अवसरों पर साहित्यप्रसिद्ध पूर्वागत पहेलियों का प्रयोग ही पर्याप्त समझा जाता है। आजकल के हिंदू विवाहों में भी मनोविनोद की यह प्रथाबद्ध पद्धति कहीं कहीं देखी जाती है।

वाग्विनोद के सिवा प्रेमियों की पारस्परिक क्रीड़ा और विलास आदि भी शृंगार के उद्दीपक की तरह कवियों द्वारा प्रयुक्त होते हैं। 'ढोला' में इस प्रेमक्रीड़ा का बहुत सक्षेप में वर्णन हुआ है—

म्हँने ढोलो झँखिया लूँगे लकड़ियेह।
म्हाँने प्रिउजी मारिया चंपारै कळियेह ॥५९१॥
म्हँने ढोलो झँबिया म्हाँनूँ आवी रीस।
चोवा केरै कूँपळै ढोळी साहिब सीस ॥५९२॥

जायसी ने प्रथम समागम के पूर्व पद्मावती और रत्नसेन में वाक्चातुर्य और परिहास की जो नोकझोंक दिखाई है, उसका ऊपर वर्णन कर आए हैं। दोनों में जो अंतर है उसका भी उल्लेख कर दिया गया है। रतिभाव की पुष्टि के लिये यह आवश्यक होता है कि प्रेम में आत्मीयता के भाव की रक्षा करने के लिये दोनों प्रेमियों को भाव की समतल भूमि पर रहकर पारस्परिक विनोद में लीन होना चाहिए, क्योंकि यह मार्ग प्रेमोत्कर्ष के लिये अधिक लाभदायी होता है। ढोला मारवणी के विनोद परिहास में भाव की यह समता मिलती है। परंतु पद्मावती रत्नसेन के विनोद व्यवहार में एक प्रकार की विषमता आ गई है। नीचे कुछ उदाहरण देते हैं—

पद्मावती और उसकी सखियाँ रत्नसेन का परिहास करती हुई नाना प्रकार से उसका मजाक उड़ाती हैं परंतु इन सबके उत्तर में रत्नसेन को अपनी गंभीर प्रेमनिष्ठा की दुहाई देते हुए देखकर हमको उसकी निस्सहायता पर दया आती है।

जिस प्रकार माळवणी के भावी विरह के संबंध में कविने आक्षेपोक्तियों में ऋतुओं का वर्णन विप्रलंभ शृंगार के उद्दीपन की तरह किया है, उसी प्रकार संभोग शृंगार में मारवणी के संबंध में अष्टयाम वर्णन की कल्पना की है। जायसी में इनके स्थान पर क्रमशः बारहमासा और षट्ऋतुओं का वर्णन उद्दीपन की तरह किया गया है।

'अष्टयाम' में साहित्यिक प्रथानुसार एक रूढिविशेष का अनुसरण किया गया है। दिन के आठ पहरों में प्रेमियों की प्रेमपूर्ण दिनचर्या को विभक्त

करके संभोग शृंगार की पुष्टि की गई है। यह अश प्राचीन कथा का भाग नहीं क्योंकि प्राचीन प्रतियों में यह नहीं मिलता। यह प्रकरण पढ़ने पर कुछ फीका सा भी जान पडता है। वह सरसता, वह स्वमाविकता, वह सरलता और स्वच्छदता नहीं प्रतीत होती जो इस काव्य मे प्रायः सब स्थलों में मिलती है। यह वर्णन इतना साधारण रीति से हुआ है कि किसी भी पद्यमय प्रेमकहानी मे ऊपर से बैठाया जा सकता है। इसमें नायक नायिका का न तो कहीं प्रत्यक्ष नाम निदर्शन ही किया गया है और न परोक्ष रीति से ही इसका किसी प्रकार का घनिष्ठ सबध उनके व्यक्तित्व के साथ दिखाया गया है। यही नहीं, ढोला मारवणी के प्रेम मे जिस पवित्रता, शीलसपन्नता और सात्विकता के आदर्श का सर्वत्र निर्वाह हुआ है, वह आदर्श उच्चता से भ्रष्ट होकर अष्टयाम के निःसत्त्व विवरण मे कुछ अश्लीलता, नीरसता, गँवारूपन और साधारण तुच्छता धारण कर लेता है। किसी सर्वसुदर आभरण के मद्दे मोरचे की तरह यह प्रसग कथा मे खटकता है, काव्य के आदर्श से मिलान नहीं खाता। कहाँ तो मारवाणी को शील, शाति, सात्विक प्रेम की प्रतिमा बनाकर खडा किया, यथा—

'गति गगा, मति सरस्वती, सीपा सीळ सुभाइ' ॥४५१॥

और कहाँ—

दूजै पोहरे रयणकै मिळियत गुफ्फा गुध्ध।
धण पाळी, पिउ पाखरयौ, विहूँ भलाँ भड़ जुध्ध ॥५८३॥

वहीं जायसी के 'काम सग्रामू' वाली बात कही है। एक ही काव्य के दो स्थलों में आदर्श का इतना भारी अतर शोभा नहीं देता। ५८७–५८८ राजस्थान की इतर कथाकहानियों में बहुतायत से उद्धृत किए हुए मिलते हैं अतएव साधारण कहावत की तरह प्रचलित हैं। इनमें किसी प्रकार की काव्यगत विशेषता भी नहीं है।

इस काव्य के वस्तुवर्णनों का सक्षेप मे निदर्शन कर अब निष्कर्ष रूप मे यही कहना बाकी रह जाता है कि इन वर्णनों मे राजस्थान देश की आत्मा का स्वाभाविक स्थूल चित्र चित्रित हुआ है। इस धारणा के आधार पर यह कहने मे सकोच नहीं होता कि 'ढोलामारूरा दूहा' मे राजस्थान की जातीय कविता (National Poetry) केंद्रीभूत है। क्या देशवर्णन, क्या रमणीसौंदर्य वर्णन, क्या ऋतुवर्णन, क्या करहा वर्णन—सभी में राजस्थान की जातीयता की गहरी छाप लगी हुई है।

(१२) यात्रावर्णन और भौगोलिक स्थिति

ढोला मारवणी की प्रेमकहानी का नायक ढोला नरवर देश के राजा नळ का पुत्र था और मारवणी पूगळ के पिंगळराव की पुत्री थी। नरवर का प्राचीन राज्य राजस्थान प्रांत के पूर्व कोण में पुष्कर से लगाकर वर्तमान ग्वालियर राज्य की पूर्वीय सीमा तक विस्तृत था। इसे 'नळवाडा' भी कहते थे। इधर राजस्थान के पश्चिम में पूगळ परमार क्षत्रियों की प्राचीन राजधानी थी। वर्तमान पूगळ नगर बीकानेर के अंतर्गत राजधानी बीकानेर के पश्चिमोत्तर में लगभग २५ कोस की दूरी पर स्थित है। पूगळ और नरवर के बीच में लगभग २०० कोस का अंतर है।

ढोला के बचपन में अकाल पड़ने पर पिंगळराव नरवर राज्य में, संभवतः पुष्कर तीर्थ पर, जाकर रहा था जहाँ नळ राजा भी सपरिवार आया था। वहीं दोनों राजाओं का प्रथम मिलन हुआ—

पिंगळ ऊचाळउ कियउ, नळ नरवरचइ देसि ॥ २ ॥

मारवणी के प्रेम से आकर्षित होकर ढोला ने नरवर से पूगळ की यात्रा की थी। इस यात्रा का स्पष्ट निर्देश दूहों में मिलता है। यात्रा किस मार्ग से की गई थी, इस विषय के कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

(१) चंदेरी बूँदी बिची, सरवर केरइ तीर।
ढोलइ दाँतण फाडनाँ, आइ पुहत्तउ कीर ॥४००॥

(२) अति आणंद ऊमाहियउ, वहइ ज पूगळ वट्ट।
बीजइ पुहरि उलाँघियउ, आडवळारउ घट्ट ॥४२४॥

(३) करहउ पाँणि तिसाइयउ, आयउ पुहकर तीर।
ढोलइ ऊतर पाइयउ, निरमळ सरवर नीर ॥४२५॥

(४) साझी वेळा सामहलि कटाळि थई अगासि।
ढोलइ करह कँवाइयउ, आयउ पूगळ पासि ॥५२२॥

इन अवतरणों से अनुमान होता है कि ढोला माळवणी को आधी रात के लगभग सोती (सूताँ पल्लाणेह—२०५) छोड़कर ऊँट पर नरवर से विदा हुआ था। नरवर से वह चंदेरी के मार्ग होकर बूँदी की ओर मुड़ा था, दोहा नं० ४०० से यह स्पष्ट विदित होता है। ढोला नरवर से पुष्कर के सीधे पश्चिमी मार्ग को छोड़कर चंदेरी की ओर दक्षिण को क्यों गया और वहाँ से बूँदी की ओर की पश्चिमोत्तर राह को पकड़कर पुष्कर पहुँचने में उसका क्या आशय था,

यह बात दूहों से प्रकट नहीं होती। परंतु अनुमान किया जा सकता है कि विरह विधुरा माळवणी के प्रपच से वच निकलने के लिये उसने ऐसा किया होगा, अथवा सीधे पश्चिम के मार्ग मे घना जंगल अथवा दुर्गम पहाड पड़ते होगे जिनके बीच में से कोई सुगम और सुरक्षित राह उन दिनो न रही होगी। इस उलटे मार्ग से यात्रा करने से उसे लगभग २५–३० कोस का चक्कर पड़ गया। यदि वह नरवर से पश्चिम के मार्ग होता हुआ सीधा पुष्कर को जाता तो केवल १०० कोस के लगभग मार्ग तय करना पडता। इसके विपरीत नरवर से चदेरी अनुमानतः ३० कोस दक्षिण में, चदेरी से बूँदी अनुमानतः ८० कोस पश्चिमोत्तर मे, और बूँदी से पुष्कर लगभग ४५ कोस उत्तर पश्चिम में—इस प्रकार लगभग १५० कोस का फासला हो गया।

यहाँ पर एक बात का ध्यान रखना चाहिए। दोहा ४०० मे निर्दिष्ट 'चदेरी' और 'बूँदी' से केवल इन नामोंवाले नगरों का ही आशय नहीं है वरन् चदेरी और बूँदी राज्यों का आशय हो सकना है, जो उस समय में पर्याप्त विस्तृत राज्य रहे होंगे। इस दृष्टि से विचार करने पर, ढोला नरवर से प्रस्थान कर चंदेरी और बूँदी राज्यों की भूमि में से होता हुआ गया था और जिस स्थान पर वह प्रातःकाल के समय माळवणी के शुक को दँतुवन करते मिला था वह बूँदी और चदेरी राज्यों का मध्यवर्ती सीमाप्रदेश रहा होगा। इस विस्तृत दृष्टि से विचार करने पर १५० कोस का चक्करदार फासला घटकर १२५ कोस के ही लगभग रह जाता है।

पुष्कर से पश्चिमोत्तर मरुस्थल के रेतीले और शुष्क निर्जन मार्ग को पार करता हुआ वह पूगळ पहुँचा। पुष्कर और पूगळ के बीच मे लगभग ८० कोस का अतर है। इस प्रकार ढोला की समस्त यात्रा का फासला लगभग २२५ कोस हुआ। इसमे उसे अनुमानतः २५–३० कोस का चक्कर खाना पड़ा। यदि वह नरवर से पुष्कर होता हुआ सीधा पूगळ को जाता तो अनुमानतः २०० कोस की यात्रा करनी पड़ती।

अब यह देखना है कि समय और दूरी की आपेक्षिक दृष्टि से ढोला के लिये यह २२५ कोस की यात्रा, एक दिन और आधी रात अर्थात् २०–२१ घटों के समय में सपूर्ण करना संभव था या असभव ?

ढोला का वाहन उत्तम जाति का तेज ऊँट था, जिसकी चाल के विषय मे 'घड़िए जोइण जाय' अर्थात् एक घड़ी मे योजन भर चला जाता था, कहा।

गया है। एक घडी २४ मिनट के बराबर होती है और योजन वर्तमान-कालिक गणना के अनुसार कम से कम ४ कोस के बराबर। इस रफ्तार से ढोला का ऊँट घटे में १० कोस की चाल से चलता रहा होगा। एक उत्तम जाति के ऊँट के लिये यह चाल असभव नहीं है, असाधारण अवश्य कही जा सकती है। राजस्थान मे इस गएगुजरे जमाने मे अब भी ऐसे ऊँट मिलते हैं जो घटे मे ७-८ कोस चल सकते हैं। ऊँट की चाल के सबध में साधारण किंवदती प्रसिद्ध है कि दिनभर मे (अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक) जो बिना थकावट के १०० कोस की यात्रा कर सके उसे ही ऊँट समझना चाहिए।

ढोला की यात्रा आधी रात के समय से अथवा उसमे कुछ पहले प्रारभ होकर दूसरे दिन की सध्या के लगभग ६ बजे समाप्त हुई होगी जैसा कि दूहा ५२२ से ज्ञात होता है। सक्षेप मे ढोला ने लगभग २२५ कोस की यात्रा २०-२१ घटों मे समाप्त की थी। यह असंभाव्य नहीं, कठिन अवश्य है।

यात्रा के वर्णन को बीच बीच मे से उठाकर क्रमशः जाँच करने पर भी यही प्रतीत होता है कि उसमें वास्तविक सत्यता बहुत कुछ है। आधी रात को रवाना होकर ढोला प्रातःकाल के समय चदेरी और बूँदी के सीमाप्रदेश पर सरोवर के तीर दँतुवन करने को ठहरा, जहाँ माळवणी का भेजा हुआ शुक उससे मिला था। यह फासला लगभग ६०-६५ कोस का था और सूर्योदय के समय तक ढोला लगभग ७ घटे की यात्रा कर चुका था। इससे एक घटे मे १० कोस की रफ्तार का अनुमान पुष्ट होता है। यात्रा के क्रमविकास में दूसरा प्रमाण 'बीजइ पुहरि उलाँघियउ आडवळारउ घट्ट' (४२४) में मिलता है। चदेरी और बूँदी राज्यों के सीमाप्रदेश से अरावली पर्वतमाला की घाटी अर्थात पुष्कर के आसपास के मार्ग तक ढोला ने प्रातःकाल से लगाकर दिन के तीसरे पहर अर्थात् ३-४ बजे तक यात्रा की थी। साराश, लगभग १०० कोस की यात्रा ढोला ने ९-१० घटो मे सपन्न की। इससे भी घटे में १० कोसवाले औसत की पुष्टि होती है।

पुष्कर से पूगळ का फासला लगभग ८० कोस का है। उसे ढोला ने दिन के तीसरे प्रहर से रात के पहले प्रहर के बीच मे पार किया होगा। यद्यपि इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि ढोला पूगळ मे ठीक किस समय पहुँचा, परंतु उसने बीसू चारण के द्वारा मारवणी को निम्नाकित सदेश पहले ही भेज दिया था—

वीसू, सुणि, ढोलउ कहइ, हिव खडि पूगळ जात।
देह बधाई दिन थकइ, म्हे आएस्याँ रात ॥४६०॥

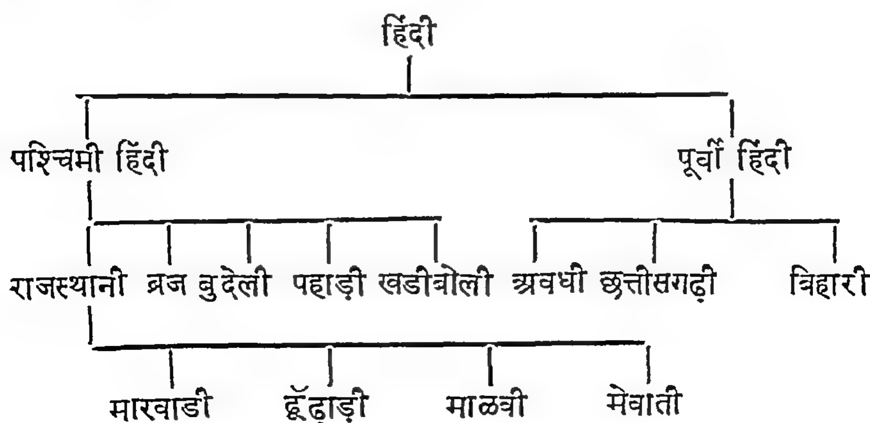
इससे तो ढोला का कुछ रात बीते पूगळ पहुँचना निश्चित होता है। साथ ही इसमें भी कोई सदेह नहीं है कि अपनी यात्रा के अतिम भाग मे—अर्थात् पुष्कर से पूगळ की राह मे—उसने बहुत तेजी की थी, ऊँट को जगह जगह फटकारा भी था और सड़सड़ बेतों से मारा भी था। इससे उसके मन की यह व्यग्रता, कि सध्या होते होते पूगळ पहुँच जाय, अवश्य विदित होती है। परतु ऐसा अनुमान होता है कि वह कुछ रात्रि बीतने पर पूगळ पहुँचा होगा, पहले नहीं।

उत्तरार्ध—भाषा और व्याकरण का विवेचन

(१) प्राक्कथन

ढोला मारूरा दूहा काव्य की भाषा राजस्थानी हिंदी है। यहाँ पर राजस्थानी भाषा के विकास का संक्षिप्त इतिहास दे देना अनुचित न होगा।

राजस्थानी राजस्थान प्रांत की भाषा है। राजस्थान केवल आधुनिक राजपूताना प्रांत तक ही परिमित नहीं है किंतु माळवा और हिसार का भी बहुत सा भाग राजस्थान के ही अंतर्गत समझा जाना चाहिए। राजस्थानी इस समस्त भूखंड की भाषा है। भाषाविज्ञान के विद्वानों ने राजस्थानी को हिंदी से स्वतंत्र एवं सर्वथा भिन्न भाषा गिना है पर जब व्रज और अवधी एवं खड़ी बोली तथा बिहारी जैसी विभाषाएँ हिंदी के अंतर्गत गिनी जा सकती हैं तो राजस्थानी को भी हिंदी की विभाषा माना जा सकता है। हम आधुनिक हिंदी भाषा के दो मोटे विभाग करके उसकी विभिन्न विभाषाओं को इस प्रकार विभक्त करेंगे—



राजस्थानी का विकास अपभ्रश से हुआ है। अपभ्रश से विकसित प्राचीन राजस्थानी से ही आधुनिक राजस्थानी, ब्रजभापा और गुजराती का जन्म हुआ है। अपभ्रश काल के पश्चात् एक जमाने तक उस समस्त भूखड में जो आजकल पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी और गुजराती का अधिकारक्षेत्र है, बोलचाल एव साहित्य की भापा राजस्थानी रही है।

राजस्थानी हिंदी की समस्त शाखाओं मे प्राचीनतम है। वह अपभ्रश की जेठी बेटी है। जिस समय भारतीय जनता की साधारण भापा प्राकृत थी उस समय कतिपय आभीर आदि निम्नकोटि की जातियाँ उसे बिल्कुल उस रूप मे न बोलती थीं जिसमे कि अन्य लोग उसे बोलते थे। जो रूप उनमें प्रचलित था वह अशुद्ध या अपभ्रष्ट था। प्रारभ मे उन्हीं की बोलचाल की भाषा अपभ्रश कहलाती रही होगी। भाषा सदा बदलती रहती है, इस नियम के अनुसार प्राकृत भापा विकृत होने लगी। प्राकृत का यह विकृत रूप आगे चलकर अपभ्रश नाम से प्रसिद्ध हुआ। अनुमानतः विक्रम की पाँचवीं छठी शताब्दी के लगभग प्राकृत, सस्कृत की भाँति, केवल साहित्यिक भाषा रह गई और उस समय अपभ्रश जनसाधारण की बोलचाल की भाषा बन चुकी थी। जब अपभ्रश जनता की भाषा हुई तो साहित्यसेवी भी उस ओर झुके और अपभ्रश ने साहित्य मे भी पैर रखा। साहित्य में आकर अपभ्रश का रूप स्थिर हो गया जनसाधारण की भापा कभी स्थिर रूप मे नहीं रह सकती। उसमे परिवर्तन होना शुरू हुआ। विकृत होकर वह नवीन रूप धारण करने लगी। धीरे धीरे बाद की अपभ्रश पहले की अपभ्रंश से दूर जा पडी और अत मे वर्तमान काल की देशभाषाओं मे परिवर्तित हो गई। इस प्रकार आधुनिक हिंदी, गुजराती, राजस्थानी, बँगला, मराठी आदि देशभापाओं का अपभ्रश से विकास हुआ।

अपभ्रश का युग कब समाप्त होता है और देशभाषाएँ कब से आरम्भ होती हैं यह बतलाना बहुत कठिन है। अपभ्रश धीरे धीरे विकृत होती हुई इन भाषाओं में परिवर्तित हुई है और इस कार्य मे कई शताब्दियाँ लगी हैं। इस बीच के विकास के समय को हम परिवर्तन काल (Transition Period) कहेंगे। इस काल की भाषा शुद्ध अपभ्रश न होते हुए भी अपभ्रश से विशेष विभिन्न नहीं है। यह परिवर्तन युग विक्रम की दसवी शताब्दी से बारहवीं

शताब्दी के अंत तक माना जा सकता है[1]। तेरहवीं शताब्दी में राजस्थानी आदि देशभाषाएँ अपभ्रंश से स्पष्टतया भिन्न हो चुकी थी।

इस परिवर्तनकाल की भाषा को सुप्रसिद्ध विद्वान् चद्रधर शर्मा गुलेरी पुरानी हिंदी का नाम देते हैं। गुजराती भाषा के विद्वान् मोहनलाल दलीचद देसाई ने उसे जूनीहिंदी-जूनीगुजराती कहा है। अन्य विद्वान् इसे प्राचीन राजस्थानी कहते हैं। हमारी समझ मे ये नाम उपयुक्त नहीं है। उक्त भाषा कुछ थोड़े बहुत फेरफार के साथ समस्त उत्तरी भारत मे प्रचलित थी और उसी से वर्तमान देशभाषाओं का विकास हुआ है। वह केवल हिंदी और गुजराती की ही जन्मदात्री नहीं है किंतु उससे अन्य भाषाओं का भी जन्म हुआ है। वास्तव मे उसे उत्तरकालीन अपभ्रश कहना चाहिए। अतः हम इन प्रातीयता-सूचक नामों को ग्रहण न करके इस भाषा को लोकभाषा कहेगे।

(२) अपभ्रंश का विकास

अपभ्रश शब्द आरभ में किसी भाषा के लिये प्रयुक्त नहीं होता था। निरक्षर या साधारण जनता शिष्ट भाषा के शब्दों का उच्चारण कुछ विकृत रूप में करती थी। शब्दों के इन्हीं विकृत रूपों को आरंभ में अपभ्रंश कहा जाता था। पतजलि ने अपने महाभाष्य में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। जैसे—

एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रशाः। तद् यथा—गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः। शिष्ट और साक्षर लोग भाषा की शुद्धता का ध्यान रखते हुए गौ शब्द का प्रयोग

---

[1] यह बात साहित्य की भाषा के लिये ही कही जा सकती है। बोलचाल की भाषा का परिवर्तन काल तो विक्रम की आठवी नवीं शताब्दी से ही आरंभ हो जाता है।

साहित्यिक लोग बोलचाल की भाषा के पर्याप्त प्रचार हो जाने के बाद ही उसका प्रयोग साहित्यरचना में करते है। कोई भी भाषा साहित्यिक भाषा होने के पूर्व बहुत काल तक बोलचाल की भाषा रहती है। परंतु कभी कभी महात्मा बुद्ध, रामानंद, कबीर जैसे सत महात्मा जन्म लेते हैं जो साहित्यिक भाषा की पर्वाह न करके लोकभाषा को ही अपनाते हैं और उसी में अपने अमूल्य उपदेशों को ग्रथित करते है। ऐसे कई सिद्ध महापुरुष नवीं एव उसके बाद की शताब्दियों मे हुए और उन्होंने देशभाषा में ही रचना की जो कुछ अंशों में प्राप्त हुई है। श्रीयुत हरप्रसाद शास्त्री ने ऐसी कतिपय रचनाओं को संगृहीत करके 'बौद्धगान ओ दोहा' नाम से प्रकाशित करवाया है। (इनके उदाहरण आगे चलकर दिए जायँगे)

करते थे पर निरक्षर और साधारण लोग गावी, गोणी आदि शब्दों का प्रयोग करते रहे होंगे जिस प्रकार आजकल भी पढ़ेलिखे लोग सूर्य या सूरज शब्द का प्रयोग करते हैं और निरक्षर लोग सुरुज, सूरुज, सुरिज, सूरिज आदि अपभ्रष्ट रूपों को काम में लाते हैं।

अपभ्रंश भाषा का सबसे पहले पता भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में चलता है जिसका समय विक्रम की दूसरी एवं तीसरी शताब्दी के अनंतर नहीं हो सकता। उसमें अपभ्रंश नाम तो नहीं आया है पर संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त देशभाषा का उल्लेख किया गया है—

एवमेतत्तु विज्ञेयं संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देशभाषा प्रकल्पनम्॥

आगे चलकर सात भाषाओं और सात विभाषाओं का उल्लेख किया गया है। इनमें सातों भाषाएँ तो सात प्राकृत भाषाएँ हैं। विभाषाओं में शबर, आभीर चांडाल, चेर (आधुनिक केरळ), द्रविड़, ओड्र इन छः जातियों की तथा जंगली जातियों की बोलियों को गिनाया गया है।

नाट्यशास्त्र के जमाने के आसपास प्राकृतें शिष्टसमुदाय की ही भाषाएँ रह गई होंगी और निरक्षर लोग उसी का अपभ्रष्ट रूप काम में लाते होंगे जिस पर धीरे धीरे उक्त आभीर आदि जातियों की बोलियों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

नाट्यशास्त्र में यह भी कहा गया है कि सिंधु (आधुनिक सिंध), सौवीर (आधुनिक पश्चिम दक्षिणी पंजाब) और उनके आसपास के पहाड़ी प्रदेश में उकारबहुल भाषा प्रयुक्त होती है जो अपभ्रंश का एक मुख्य लक्षण है। आगे चलकर बत्तीसवें अध्याय में जो उदाहरण दिए गए हैं वे अपभ्रंश से मिलते-जुलते या बिलकुल अपभ्रंश ही हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि नाट्य-शास्त्र के जमाने में प्राकृत के अतिरिक्त देशभाषा का प्रचार था पर उसका कोई अलग नाम अभी तक नहीं पड़ा था। यह देशभाषा केवल निम्नकोटि की जनता की बोलीमात्र थी एवं साहित्यरचना इसमें नहीं होती थी।

इसके बाद सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश के उल्लेख मिलते हैं और इस समय वह केवल बोलचाल की भाषा ही नहीं थी किंतु उसमें साहित्यरचना भी होने लगी थी। वलभी के राजा दूसरे धरसेन का एक शिलालेख मिला है जिसमें उसने अपने पिता गुहसेन के लिये लिखा है—

सस्कृत प्राकृताऽपभ्रंश भाषात्रय प्रतिबद्ध-

प्रबधरचना निपुणतरातः करणः ।

(संस्कृत, प्राकृत और, अपभ्रश इन तीन भाषाओं मे काव्यरचना करने मे अति चतुर अतःकरणवाला ।)

इस राजा गुहसेन के शिलालेख स० ६१६ से ६२६ तक के मिलते है जिससे उसका समय सातवीं शताब्दी के आरभ मे सिद्ध होता है ।

इसी समय के आसपास प्रसिद्ध विद्वान भामह हुआ जो काव्य के तीन विभाग करता है—

सस्कृत, प्राकृतं चान्यदपभ्रश इति त्रिधा ।

महानकवि दडी का समय भी इससे बहुत दूर नहीं है । उसने अपने काव्यादर्श मे भारतीय साहित्य को चार भागो मे बॉटा है—

ततेतद् वाङ्मय भूयः संस्कृत प्राकृत तथा ।
अपभ्रश च मिश्र चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ॥

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि विक्रम की छठी सातवीं शताब्दी मे अपभ्रश साहित्य मे पैर रख चुकी थी और उसका इतना आदर हो गया था कि एक राजा उसमे काव्यरचना कर सकने को अपने लिये गौरव की बात समझे । भामह और दडी के जमाने तक उसका साहित्य इस योग्य हो गया था कि काव्य का विभाजन करते समय उसका नाम लिया जाय ।

इस समय वह साधारण निम्न जातियो की ही बोलचाल की भाषा नहीं थी किंतु समस्त जनता की बोलचाल की एवं जीवित साहित्य की भाषा हो चुकी थी और प्राकृत केवल मृत भाषा ही रह गई होगी या अधिक से अधिक उसका प्रयोग बहुत थोड़े विद्वानों मे ही होता रहा होगा ।

राजशेखर के जमाने तक अपभ्र श खूब साहित्यसपन्न भाषा हो गई थी । साहित्य में अपभ्रश का एकच्छत्र राज्य कोई ग्यारहवीं शताब्दी तक रहा । ग्यारहवीं शताब्दी से देशभाषा प्रधानता प्राप्त करने लगी और बारहवीं शताब्दी के बाद तो अपभ्रश का साहित्यिक महत्त्व भी बहुत कुछ जाता रहा ।

इस प्रकार अपभ्र श का काल विक्रम की दूसरी शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक माना जा सकता है ।

अपभ्रंश का मुख्य स्थान राजस्थान, मालवा, गुजरात, सिंध और पश्चिमी पंजाब था । आरभ मे इसका विकास सभवतया यहीं हुआ धीरे धीरे

समस्त भारत मे उसका प्रसार हो गया। प्रांतीय भेद उसमे अवश्य रहे होंगे पर परस्पर का अंतर इतना नहीं रहा होगा कि एक प्रांत के निवासियों को दूसरे प्रांतवालों की बोली को समझने में कठिनता हो।

ऊपर हम भरत नाट्यशास्त्र के इस कथन का उल्लेख कर चुके हैं कि उकारबहुला भाषा सिंध और पश्चिमी पंजाब मे बोली जाती थी। दंडी अपभ्रंश को आभीर आदि जातियों की भाषा कहता है। आभीर जाति का प्रारंभिक निवास सिंध, पंजाब और बाद मे राजस्थान, गुजरात आदि का भूभाग ही था। आभीर आदि निम्न जातियाँ शिष्ट भाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकती थीं जिससे उनकी भाषा को अपभ्रंश नाम दिया गया होगा और बाद में जब प्राकृत अपभ्रष्ट होने लगी तो यह नाम व्यापक होकर समस्त-जनता की बोलचाल की भाषा के लिये प्रयुक्त हो गया। राजशेखर ने काव्य मीमांसा मे लिखा है कि अपभ्रंश का प्रयोग समस्त मरु (आधुनिक मारवाड़ या पश्चिमी राजस्थान), टक्क (आधुनिक पूर्वी पंजाब का कुछ भाग) और भादानक प्रदेशों में होता है। एक अन्य स्थान पर वह लिखता है कि सौराष्ट्र (आधुनिक काठियावाड़) और त्रवण आदि देशों के लोग संस्कृत को सौष्ठव के साथ पढ़ते हैं पर अपभ्रंश के मिश्रण के साथ। भोजराज अपने सरस्वती कंठाभरण मे लिखते हैं—

अपभ्रंशेन तुष्यति स्वेन नान्येन गुर्जराः।

इन सब कथनों से स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश मुख्यतया राजस्थान, मालवा, गुजरात और सिंध तथा पंजाब की भाषा थी और वहीं से धीरे धीरे उसका सर्वत्र प्रचार हुआ। कम से कम साहित्यरचना तो विशेषतया इन्हीं प्रदेशों मे हुई है। अपभ्रंश के मुख्य भेद नागर, उपनागर और व्राचड इन्हीं प्रांतों में प्रचलित थे एवं आधुनिक देशभाषाओं मे राजस्थानी, मालवी एवं गुजराती ही अपभ्रंश के सबसे अधिक सन्निकट भाषाएँ है।

इन प्रांतों की अपभ्रंश ने साहित्य मे इतनी श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी कि अन्यान्य प्रांतीय भेद उसके सामने दब गए। उनमें या तो साहित्य रचना हुई ही नहीं या बहुत कम हुई और उसका भी अधिकांश भाग नष्ट हो गया।

इसके अतिरिक्त यह संभावना भी हो सकती है कि जिस प्रकार आधुनिक हिंदी की बोलियों मे खड़ी बोली को ही साहित्यिक भाषा होने का गौरव

प्राप्त है एव अन्यान्य बोलियाँ केवल बोलचाल के ही काम मे आती हैं, उसी प्रकार उस जमाने मे भी पश्चिमी अपभ्रश ही साहित्यरचना के लिये प्रयुक्त होती थी और अन्य प्रांतों की अपभ्रशें केवल बोलचाल की भाषाएँ रही होंगी। इसके अलावा उस जमाने में पढ़ेलिखे हिंदू विद्वान् अपनी संस्कृत मे ही मस्त थे और साहित्यरचना उसी में करते थे। जैन विद्वान् ही प्राकृत और अपभ्रंश की ओर ध्यान देते एव उसमे साहित्यरचना करते थे। ये जैन विद्वान् विशेष करके पश्चिम भारत के ही रहनेवाले थे अतः अपभ्रश साहित्य की रचना उधर की ही अपभ्रश मे हुई होगी एवं बाकी अपभ्रशे बोलचाल मे ही काम आती होंगी[1]।

(३) उत्तरकालीन अपभ्रंश अथवा लोकभाषा (पुराना हिंदी या जूनी गुजराती) का विकास

आधुनिक देशभाषाओ का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अपभ्रश भाषा प्रायः समस्त उत्तरी भारत की भाषा थी। उसमें प्रातीय भेद अवश्य थे, जिसके कारण लोगों ने कई अपभ्रशें मानी हैं, पर प्राकृतों की भाँति उन भेदों मे बहुत ही कम अतर था। पर अपभ्र श के बाद जिस भाषा का विकास हुआ वह भिन्न भिन्न प्रातों में भिन्न भिन्न प्रकार की हो गई। अवश्य ही आरंभ में इतना भेद नहीं था पर यह भेद धीरे धीरे बढता गया जिससे देश मे एक भाषा के स्थान पर कई भाषाओं का जन्म हो गया। सम्राट् हर्षवर्धन (स० ६६३-७०४) के जमाने तक उत्तरी भारत एक ही शासन के नीचे रहा पर उनके बाद देश की राजनीतिक एकता छिन्नभिन्न हो गई। विभिन्न प्रातों का पारस्परिक आवागमन और मिलनाजुलना धीरे धीरे कम होता गया। इस प्रकार पारस्परिक व्यवहार नष्ट हो जाने से भाषा की एकता भी धीरे धीरे नष्ट हो गई।

अपभ्रंश से वर्त्तमान देशभाषाओं का जन्म हुआ। पर यह विकास आकस्मिक नहीं किंतु शताब्दियों का काम था। ये भाषाएँ आरभ मे अपभ्र श से बहुत कुछ प्रभावित रहीं और अंत में देशभेद से भिन्न भिन्न रूपों मे विकसित हुई। इनके स्पष्ट विकास के पूर्व का जो परिवर्तन काल है उसकी

---

१. दक्षिण निवासी पुष्पदंत कवि के जो मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तीसरे के समय में हुआ है, अपभ्रंश में लिखे हुए कई ग्रंथ मिले है। उनकी भाषा इस मुख्य अपभ्रंश से प्राय. सर्वांश में मिलती जुलती है और हमारे कथन को सिद्ध करती है।

भाषा को हमने लोकभाषा का नाम दिया है। आधुनिक देशभाषाओं के पूर्व यह लोकभाषा थोड़ेबहुत अतर के साथ समस्त उत्तरी भारत की भाषा थी। बाद मे पारस्परिक व्यवहार टूट जाने के कारण यह अतर विभिन्न भागों में बढता गया और इस प्रकार बगाली, हिंदी, राजस्थानी, गुजराती आदि देश-भाषाओं का जन्म हुआ।

इस लोकभाषा का बीजारोपण विक्रम की आठवीं शताब्दी के लगभग हुआ होगा। उस समय शिष्ट जनों एवं साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी पर साधारण जनता सभवतया अपभ्रंश के विकृत रूप का ही प्रयोग करती होगी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण कविता की रचना भी इस लोकभाषा मे होने लगी होगी। पूर्व भारत मे नालदा और विक्रमशिला से सबद्ध वज्रयानी बौद्ध सिद्धो की कतिपय रचनाएँ प्राप्त हुई है जो इसी लोकभाषा मे हैं। उनका समय लगभग नवीं शताब्दी के आरभ से लेकर तेरहवीं शताब्दी के पूर्व भाग तक है।

जब अपभ्रश के साहित्य का ही पता अभी बहुत कम लगा है तो फिर लोकभाषा के साहित्य की बात तो जाने ही दीजिए। इस काल मे भी साहित्यिक लोग अपनी रचनाएँ अपभ्रश मे ही लिखते होंगे क्योंकि वह शिष्ट भाषा समझी जाती थी। फिर वैदिक मतानुयायी विद्वानों ने तो जनता की भाषा की कभी पर्वाह नहीं की उन्होंने जो कुछ लिखा प्रायः सब का सब सस्कृत में लिखा। प्राकृत और अपभ्रश भी जब उनकी कृपादृष्टि के बाहर रही तो बेचारी लोक-भाषा की क्या कथा? दूसरे लेखक प्रधानतया जैन आचार्य आदि थे। वे भी बहुत दिनों तक प्राकृत और बाद मे अपभ्रश के—तत्कालीन शिष्ट भाषाओं के—फेर में पड़े रहे। एकाध रचना हुई भी होगी तो कहीं किसी पुस्तक भडार में अधकार के गर्त मे छिपी पडी होगी।

अब रहीं असाहित्यिकों की रचनाएँ। बौद्ध सिद्धों की कृतियों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। साधारण जनता मे जो गीत, दोहे आदि निर्मित होकर प्रचलित हुए वे लेखबद्ध न होने के कारण बहुत कुछ तो नष्ट हो गए होंगे और जो थोड़े बहुत बचे वे परिवर्तित होते हुए आगे की पीढ़ियों तक पहुँच गए[1]।

---

१. सरह पा आदि वज्रयानी बौद्ध सिद्धों की रचनाओं को डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री और उनके सुपुत्र डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य प्राचीन बँगला बतलाते हैं। डाक्टर विनयतोष एक स्थान पर लिखते है—

हेमचंद्र, सोमप्रभ सूरि और मेरुतुगाचार्य ने अपनी कृतियों मे इन प्रचलित गीतांशों और दोहों को उद्‌धृत किया है। इन उदाहरणों मे शृगार, वीरता, नीति सभी प्रकार के नमूने मिलते हैं। हेमचद्र ने जो उदाहरण दिए हैं उनसे ज्ञात होता है कि उसके समय मे लोकभाषा मे रामकथा, कृष्णकथा, महाभारत आदि ग्रथ बन चुके थे। मुज और ब्रह्म इन दो कवियों के नाम भी उसमे पाए जाते हैं। मुज के सबंध के और भी कई दोहे मेरुतुग ने उद्‌धृत किए हैं। सभव है ये सब मुज ही की रचनाएँ हों। मुंज धारा का सुप्रसिद्ध विद्वान्‌ राजा है जिसका एक विरुद वाक्पतिराज भी है। यह भोज के पिता सिंधुराज का बड़ा भाई था। इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। आगे इस लोकभाषा की रचनाओं के कतिपय उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) सिद्धों की रचनाएँ

१—सरहपा

जह मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाह पवेस।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेस ॥ १ ॥
घोरधारे चद मणि जिमि उज्जोअ करेइ।
परम महासुह एकु खणे दुरिआ अशेष हरेइ ॥ २ ॥
जइ नग्गा विअ होइ मुत्ति, ता सुनह सियालह।
लोमोप्पाटने अच्छ सिद्धि, जा ध्रुवइ नितबह ॥
पिच्छीगहणे दिठ्ठ मोक्ख, ता करिह तुरगह।
उभँ भोअणे होइ जाण ता..................॥

Thus the time of the earliest Doha in Bengali goes back to the middle of the seventh century, when Saraha flourished, and Bengal may be justly proud of antipuity of her literature.

पता नहीं, डाक्टर साहब ने इन दूहों की भाषा को बँगला क्यो मान लिया। जिस भाषा में ये दूहे लिखे गए है वह उस समय प्राय· समस्त उत्तरी भारत मे कुछ हेरफेर के साथ प्रचलित थी। फिर सरह न तो बगाली था, न बंगाल के साथ उसका कोई संबध था। चौरासी सिद्धों का संबंध नालंदा और विक्रमशिला के प्राचीन विश्वविद्यालयो से रहा है अतः वे बिहारी तो कहे जा सकते हैं। अब विद्वानो का यह मत होता जा रहा है इन दोहों की भाषा कोई पश्चिमी उत्तरकालीन अपभ्रंश है।

डो० मा० दू० ६ (११००–६२)

एक सरह भणइ खवनान मोक्ख महु काप न भावइ ।
तत्तरहि अकाया ण ताव पर केवल साहइ ॥ ३ ॥

पडिअ सअळ सत्य वक्खाणइ ।
देहहि वुद्ध वसत न जाणइ ॥
अमणागमण ण तेन विखडिअ ।
तो वि णिलज्ज भणइ हउँ पडिअ ॥ ४ ॥

२—कण्हपा

आगम वेअ पुराणे पडित मान वहति ।
पक्क सिरीफल अलिअ जिम बाहेरि त भमअति ॥ १ ॥
वर गिरि सिहर उतुगमुणि सवरें जहिँ किअ वास ।
नउ सो लँघिअ पचाननेहिँ, करिवर दूरिअ आस ॥ २ ॥
जिम लोण विलिज्जइ पाणि एहि तिम धरणी लइ चित्त ।
समरस जाई तक्खणें जइ पुणु ते सम नित्त ॥ ३ ॥

३—महीपा

खर रवि किरण सँतापे रे गअणागण गइ पइठा ।
भणति महिता मइ एत्थु कुडते किंपि न दिठा ॥

४—नयानतपा

पेक्खु सुअणे अदस जइसा । अतराले मोह तइसा ॥
मोह विमुक्का जइ माणा । तबे टूटइ अवणागमणा ॥

(२) सजममजरी—इसका कर्त्ता महेश्वर सूरि नामक श्वेतांबर जैन है। इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी का अंतिम अथवा बारहवीं शताब्दी का पूर्व भाग माना जाता है। इस पुस्तक में ३५ दोहे हैं। उदाहरण—

सजमु सुरसत्थिहि पुवउ सजमु मोक्ख दुआरु ।
जेहि न सजमु मणि धरिउ तह दुत्तर संसारु ॥
संजम मार धुरधरह सद्दुच्छालिउ न जाह ।
निअ जणणी जुव्वणहरणु जम्मु निरत्थउ ताह ॥
इक्किणि इदिय मुक्कळिणु, लब्भइ दुक्ख सहस्स ।
जमु पुण पचइ मुक्कळा, कह कुसळत्तणु तस्स ॥

वरिस सहस्सिहिँ ज कियउ तवु सजमु उवयारु ।
कोहमहानळ सगमिण सो दहि किज्जइ च्छारु ॥

(३) उक्त सजम मजरी की टीका—इसका कर्त्ता कोई हेमहस सूरि का शिष्य है । समय याद नहीं पर १५०५ से पूर्व का है ।

दिट्ठई जो नवि आळवइ, कुशळ न पुच्छइ वत्त ।
तासु तणइ नवि जाईय, रे हियडा नीसत्त ॥
रासहु कध चडावियइ, लब्भइ लत्त सहस्स ।
आपहणे करि कम्मर्डा, हिया, विसूरहि कस्स ? ॥

(४) सत्यपुरमडन महावीरोत्साह—यह १५ गाथा का एक स्तोत्र है । इसका कर्त्ता धनपाल है । मालवाधिपति मुज एव भोज के दरबार मे धनपाळ नामक कवि था । यदि यह वही है तो इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी है ।

रखि सामि पसरतु मोहु नेहुडु य तोडहि ।
सुम्म दसणि नाणु चर भडु कोहु विहोडहि ॥
करि पसाउ सच्चउरि वीरु जइ तुहुँ मणि भावइ ।
तउ तुट्ठइ धणपाळ जाउ जहि गयउ न आवइ ॥

(५) तिसट्ठि महापुरुष गुणालकार महापुराण—इसका कर्त्ता पुष्पदत नामक जैन कवि है जो मान्यखेट राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तीसरे का समकालीन था (समय ग्यारवीं शताब्दी का प्रथमार्ध) । उदाहरण—

महु समयागमे जायहे ललियहे । वोल्लइ कोयल अबयकलियहेँ ।
काणणे चचरीउ रुणुरुटइ । कीरु किएण हरिसेण विसट्ठइ ॥
कमळगंधु घिप्पईं सारगैँ । णउ सालूरैँ णीसारगैँ ।
गमणलील जा कय सारगैँ । सा किं णासिज्जइ सारगैँ ॥

(६) जसहरचरिउ—

विणु धवळेण सयडु किं हल्लइ । विणु जीवेण देहु किं चल्लइ ॥१॥
विणु जीवेण मोक्खु को पावइ । तुम्हारिसु किं अप्पउ आवइ ॥२॥
माणुस सरीर दुहु पोट्टळउ । धोयउ धोयउ अइ विट्टलउ ॥

वारिउ वारिउ वि पाउ करइ। तेरिउ पेरिउ विन धम्म चरइ ॥
चम्मैं वद्धु वि कालि सडइ। रक्खिउ जम मुह पडइ ॥३॥

(७)[1] नायकुमारचरिउ—

सो णंदउ जो पढइ पढावइ। सो णंदउ जो लिहइ लिहावइ ॥
सो णंदउ जो विवदि विवादइ। सो णंदउ जो भावें भाइ ॥

(८) हेमचंद्र—यह प्रसिद्ध जैन विद्वान् विक्रम की बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी मे विद्यमान था। गुजरात नरेश सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल इसके आश्रयदाता थे। इसने संस्कृत और प्राकृत का एक बड़ा व्याकरण सिद्ध-हैम शब्दानुशासन नाम से लिखा। उसके अंतिम अध्याय के ३२६ से ४४८ नंबर के कुल (१२०) सूत्रों में अपभ्रंश का व्याकरण दिया है एवं उदाहरणार्थ उस समय से प्रचलित अनेक दोहों को उद्धृत किया है। देशीनाममाला नामक देशभाषा के शब्दों का एक कोष भी उसने बनाया है।

व्याकरण मे उद्धृत दोहों के उदाहरण

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसंतेण।
ताण गणंतिए अंगुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥१॥

सायरु उप्परि तणु धरइ, तलि घल्लइ रयणाइँ।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ, सम्माणेइ खलाइँ ॥२॥

अग्गिएँ उण्हउ होइ जगु वाएँ सीअलु तेवँ।
जो पुणि अग्गिं सीअला तसु उण्हत्तणु केवँ ॥३॥

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु ॥४॥

वायसु उड्डावंतिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥५॥

जहिं कप्पिजइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु।
तहिं तेहइ भड-घड-निवहि कंतु पयासइ मग्गु ॥६॥

जइ भग्गा पारकडा तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥७॥

---

१. अंतिम (५, ६, ७ संख्यक) तीनों ग्रंथ अपभ्रंश मे हैं परंतु इनमे भी कहीं कहीं उत्तरकालीन लोकभाषा के उदाहरण मिल जाते हैं।

बप्पीहा, पिउ पिउ भणिवि कित्तिउ रुअहि हयास ।
तुह जळि, मुह पुणि वल्लहइ, विहुँ वि न पूरिअ आस ॥ ८ ॥
वप्पीहा, कइ बोल्लिएण निग्घिण वारइ बार ।
सायरि भरियइ विमळ जळि लहहि न एकइ धार ॥ ६ ॥
हिअइ खुडुक्कइ गोरडी गयणि घुडुक्कइ मेहु ।
वासा रत्ति पवासुअहँ विसमो सकडु एहु ॥१०॥
पुत्ते जाएँ कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुएण ।
जा बप्पीकी भूंहडी चपिज्जइ अवरेण ॥११॥
गयउ सो केसरि पियउ जळ निच्चितइ हरिणाइँ ।
जसु केरएँ हुंकारडएँ मुहहँ पडति तिणाइँ ॥१२॥
ढोल्ला एह परिहासडी अइ भण कवणहि देसि ।
हउँ झिज्जउँ तउ केहिं पिअ, तुहुँ पुणु अन्नहि रेसि ॥१३॥
पाइ विलग्गी अन्त्रडी सिरु ल्हसिउँ खधस्सु ।
तोवि कटारइ हत्थडउ वलि किज्जउँ कतस्सु ॥१४॥
जेवडु अतरु रावण रामहँ ।
तेवडु अतरु पट्टण गामहँ ॥१५॥

(६) कुमारपालप्रतिबोध से—इसे सवत् १२४१ में सोमप्रभसूरि ने बनाया था । इसमें उस समय के प्रचलित अनेक देशी भाषा के छद अवतरण रूप में दिए गए है—

पिय, हउ थक्किय सयळु दिणु तुह विरहग्गि किळत ।
थोडइ जळ जिम मच्छळिय तल्लोविल्लि करत ॥१॥
अज्जु विहाणउ, अज्जु दिणु, अज्जु सुवाउ पवत्तु ।
अज्जु गळत्थिउ सयळु दुहु, ज तुहु, मह घरि पत्तु ॥२॥
एक्के दुन्नय जे कया तेहिँ नीहरिय घरस्स ।
बीजा दुन्नय जइ करउँ तो न मिलउँ पियरस्स ॥३॥
अम्हे थोडा, रिउ बहुय, इउ कायर चिंतति ।
मुद्धि, निहाळइ गयण अळु, कइ उज्जोउ करति ॥४॥
रिद्धि विहूणह माणुसह न कुणइ कुवि सम्माणु ।
सउणि हि मुच्चहि फलरहिउ तरुवरु, इत्थु पमाणु ॥५॥

(१०) उक्त सोमप्रभ सूरि की अपनी रचना—

कोसा भणइ महापुरिस तुहुँ कवळु सोएसि ।
ज दुल्लहु सजम्म खणु हारिस तं न मुणेसि ॥१॥

गयण-मग्ग-सलग्ग लोल कल्लोल परंपरु ।
निक्करु णुक्कड नक्क चंक्क- चंकमण-दुहंकरु ॥
उच्छलंत-गुरु-पुच्छ मच्छ रिंछोलि निरंतरु ।
खिलसमाण जालाजडाल वडवानळ दुत्तरु ॥
आवत्त दयावळु जळहि लहु गोपउ जिंव ते नित्थरहि ।
नीसेस वसण-गल निद्दवणु पासनाहु जे समरहि[1] ॥२॥

(११) प्रबंधचिंतामणि में उद्धृत मुंज की रचनाएँ—

मुंज भणइ, मुणालवइ, जुव्वण गयउ न झूरि ।
जइ सक्कर सय खंड थिय, तोइ स मीठी चूरि ॥१॥

झाली तुट्टी किं न मुउ, किं न हुयउ छरपुंज ।
हिंडइ दोरी बंधियउ, जिम मक्कड, तिम मुंज ॥२॥

मोळी मुंध, म गव्वु करि पिक्खिवि पडुगुपाँइ ।
चउदसइ सहँ छहुत्तरइँ मुंजह गयह ह्याइँ ॥३॥

जा मति पच्छइ संपजइ, सा मति पहिली होइ ।
मुंज भणइ, मुणालवइ, विघन न वेढइ कोइ ॥४॥

सायर खाई, लंक गढ, गढवइ दससिरि राउ ।
भग्गक्खय सो भज्जि गय, मुंज, म करे विसाउ ॥५॥

बाह विछोडवि जाहि तुहुँ, हउँ तेवइँ को दोसु ।
हिययट्ठिय जइ नीसरइ जाणउँ, मुंज, सरोसु ॥६॥

मुंज, खडल्ला दोरडी पेक्खेसि न, गमारि ।
आसाढिइ घण गज्जिइँ, चिक्खिलि होसे वारि ॥७॥

(१२) प्रबंधचिंतामणि में उद्धृत अन्य दूहे—

नव नळ भरीया मग्गडा, गयणि धडक्कइ मेह ।
इत्थंतरि जइ आविसिइ, तउ जाणिस्सिइ नेह ॥
राणा सव्वे वाणिआ, जेसळ वड्डउ सेठि ।
काहूँ वणिजडु माँडियउ अम्मीणा गढ हेठि ॥
तईं, गड्डुआ गिरनार, काहूँ मणि मत्सरु धरिउ ।
मारीताँ खेंगार एक्कउ सिहरु न ढालिउँ ॥

---

[1] इस रचना में उत्तरकालीन डिंगल भाषा का पूर्वाभास मिलता है।

जइ यहु रावण जाइयउ, दहमुह इक्कु सरीरु ।
जणणि वियभी चिंतवइ, कवणु पियावउ खीरु ॥

(१३) महाकवि विद्यापतिरचित कीर्त्तिलता (समय १४३७ के आसपास)—

सक्कय वाणी वहुअ न भावइ । पाऊँअ रस को मम्म न पावइ ॥
देसिल वअना सब जन मिट्ठा । तं तैसन जपओ अवहट्ठा ॥१॥

ठाकुर ठक भए गेल, चोरें चप्परि घर लिज्झिअ ।
दास गोसाञिन गहिअ, धम्म गए धंध निमज्जिय ॥
खले सज्जन वरिभविअ, कोइ नहिं होइ विचारक ।
जाति अजाति विवाह अधम उत्तमकाँ पारक ॥

अक्खर-रस बुज्झनिहार नहि, कइकुल भमि भिक्खारि भउँ ।
तिरहुत्ति तिरोहित सब्ब गुण रा गणेस जवे सग्ग गउँ ॥२॥

जो अपमाने दुक्ख न मानइ । दान खग्गको मम्म न जानइ ।
पर उअँआरे धम्म न जोवइ । सो धणो निच्चिन्ते सोवइ ॥३॥

पुव्वे सेना सज्जिअइ, पच्छिम हुअउँ पयान ।
आणा करइते आण भउँ, विहिचरित्त को जान ॥४॥
गिरि टरइ, महि पडइ, नाग मन कंपिया ।
तरणिरथ गगनपथ धूलि भरे झंपिया ॥
तबल सत वाज, कत भेरि भरे फुक्किआ ।
प्रलय[1] घण सद्द हुअ णर रव लुक्किआ ॥५॥

(४) राजस्थानी का विकास

राजस्थानी के विकास काल को चार भागो मे बॉटा जा सकता है—(१) प्राचीन राजस्थानी—सवत् १००० से १२०० तक, (२) माध्यमिक राजस्थानी—सवत् १२०० से १६०० तक, (३) उत्तरकालीन राजस्थानी—संवत् १६०० से १९५० तक, (४) आधुनिक राजस्थानी—संवत् १९५० से आगे ।

---

१ कीर्तिलता की भाषा कही कही तो परिवर्त्तन काल की पुरानी हिंदी से आगे बढ़कर बिलकुल माध्यमिक हिंदी हो गई है ।

क—प्राचीन राजस्थानी

प्राचीन राजस्थानी का नाम हमने ऊपर लोकभाषा लिखा है। उस समय लोकभाषा थोड़े-बहुत रूपांतर के साथ समस्त उत्तर भारत में प्रचलित थी। राजस्थान, गुजरात एवं ब्रज प्रांतों में लोकभाषा का जो रूप प्रचलित था वही प्रचलित राजस्थानी है। इस काल में राजस्थानी अपभ्रंश से अलग हुई पर अपभ्रंश का प्रभाव उस पर पर्याप्त था। इस प्राचीन राजस्थानी के कुछ उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं।

ख—माध्यमिक राजस्थानी

माध्यमिक राजस्थानी का काल संवत् १२०० से १६०० तक माना जा सकता है। इसमें राजस्थानी अपभ्रंश से स्वतंत्र भाषा हो गई। इस काल में भी (अंतिम डेढ़ दो शताब्दियाँ छोड़कर) राजस्थानी का क्षेत्र समस्त राजस्थान गुजरात एवं ब्रज तथा उसके आसपास का प्रांत था। संभव है, बोलचाल की भाषा में कुछ अंतर रहा हो पर साहित्यिक भाषा इन प्रांतों में एक ही थी। यह बात इन प्रांतों की तत्कालीन रचनाओं पर ध्यान देने से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

इस समय में लोकभाषा का पूर्वी रूप पश्चिमी रूप से बहुत कुछ भिन्न हो गया था, जैसा मैथिल कवि विद्यापति की रचनाओं से प्रकट होता है[1]। पर फिर भी माध्यमिक राजस्थानी के रूप में पश्चिमी रूप साहित्य में प्रधानता प्राप्त किए रहा। अपभ्रंशकाल में भी साहित्य का प्रधान क्षेत्र पश्चिम ही था एवं इस उत्तरकाल में भी यही बात रही। पश्चिमी हिंदी के अधिकारक्षेत्र से बाहर रहनेवाला कबीर जैसा कवि इस भाषा में रचना करता है, इससे बढ़कर इसकी जनप्रियता का प्रमाण क्या हो सकता है। आगे चलकर इसी काल के अंत में जब ब्रज राजस्थानी से पृथक् हुई तो उसने भी साहित्य में अपनी पैतृक प्रधानता को कायम रखा। उसकी रचनाओं का प्रचार ऐसे प्रदेशों में भी हुआ जहाँ सर्वथा भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं।

इस काल में लगभग कबीर के जमाने तक तो राजस्थानी प्रधानता प्राप्त किए रही पर उसके अंत में ब्रज ने एकाएक उन्नत होकर उसको दबा दिया।

---

१ पर उनकी कीर्त्तिलता की भाषा राजस्थानी या पश्चिमी हिंदी से किसी प्रकार भिन्न नहीं है केवल उस पर अपभ्रंश का कुछ विशेष प्रभाव लक्षित होता है पर वह विद्यापति के काल में बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी।

आरंभ मे दोनों भाषाएँ एक ही थीं पर सूरदास एव अन्यान्य वैष्णव कवियों ने जब अपना सगीत छेडा तो उन्होंने साहित्यिक भाषा को आदर न देकर ब्रज प्रात की ठेठ बोलचाल की भाषा को अपनाया। अब तक साहित्यिक राजस्थानी में जो कविता हुई उसके रचयिता या तो चारण भाट थे या जैन कवि या जनता में गाने-बजानेवाली ढोली, ढाढी आदि जातियाँ। सस्कृत से इन लोगों का संबंध नहीं के बराबर था पर वैष्णव कविजन सस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। उन पर सस्कृत का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। अतः उनकी रचनाओं मे संस्कृत शब्द प्रचुरता से पाए जाते हैं। प्रचलित तद्भव शब्द भी बहुत कुछ तत्सम हो गए हैं। इसी तत्समता के कारण ब्रज तत्कालीन राजस्थानी से, जो अब तक साहित्यिक भाषा थी, भिन्न हो गई।

यही नहीं, राज्यस्थानी केवल प्रातीय भाषा मात्र रह गई। वैष्णव कवियों की भक्तिधारा ने ब्रज को एकाएक बहुत ऊँचा उठा दिया और न केवल ब्रज प्रात मे किंतु अन्यत्र भी उसका समान होने लगा। इन कवियों की रचनाओं ने जनता के जीवन को बहुत प्रभावित किया और धीरे धीरे साहित्य की प्रभुता राजस्थानी से छूटकर ब्रज को प्राप्त हुई। ब्रज हिंदी की समस्त शाखाओं मे प्रधान हो बैठी और उसकी वह प्रधानता अब भी सर्वथा नष्ट नहीं हो पाई है।

इन वैष्णव कवियों की भक्तिधारा ने राजस्थानी जनता को भी आकृष्ट किया। उसका प्रचार राजस्थान में भी खूब हुआ। सूर और तुलसी के भजन घर घर गाए जाने लगे और आज भी गाए जाते है। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि बहुत से भजनों की भाषा गाते गाते राजस्थानी बन गई।

राजस्थानी मे इस समय मुख्यतया तीन प्रकार की रचनाएँ होती थीं—

१—चारण भाटो की रसपूर्ण कविता—आरंभ मे ये लोकप्रिय हुईं परतु अत मे जब वीरता के लिये अवकाश न रह गया तो ऐसी रचनाएँ धीरे धीरे कम लोकप्रिय होने लगी। फिर इनके लेखक इनको एक बँधी हुई भाषा में, जो आगे चलकर डिंगल कहलाई, लिखने लगे जिससे वे जनता के लिये धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गई। अतएव ऐसी रचनाओं का समादर राजदरबारों तक ही सीमित रह गया।

२—जैन लेखकों की रचनाएँ—ये विशेषकर जैन धर्म से सबंध रखती थीं अतएव साधारण जनता मे इनका विशेष प्रचार नहीं हुआ।

३—लौकिक कविता—इसकी रचना करनेवाली या तो जनता स्वयं ही होती थी या ढोली, ढाढी, दमामी आदि लोग होते थे जिनका काम गानाबजाना तथा लोकप्रिय कविताओं और गीतों को जनता में गाकर सुनाना था। ऐसी कविताएँ बहुत लोकप्रिय होती थी तथा साक्षर एवं निरक्षर जनता में उनका खूब प्रचार होता था।

जब ब्रज की भक्तिधारा प्रवाहित हुई तो जनता उधर आकर्षित हुई और अन्यान्य रचनाएँ उसके सामने दब गई। साहित्यिकों पर भी उसका प्रभाव पड़ा। राजस्थान एवं गुजरात के लेखक भी ब्रज की ओर झुके और शुद्ध ब्रज में या ब्रजमिश्रित राजस्थानी में रचना करने लगे। इस नवीन भाषा का नाम पिंगळ पड़ा और आगे चलकर इसके साम्य पर चारणी कविता डिंगळ कहलाने लगी। बोलचाल की राजस्थानी की लौकिक रचनाएँ तथा जैनों की रचनाएँ न तो डिंगळ है और न पिंगल। जिस समय ये नाम पड़े उस समय राजस्थान के साहित्यज्ञ विद्वानों के ध्यान में ये दो ही प्रकार की रचनाएँ थीं। जैन रचनाएँ तो जैनों तक ही परिमित रहीं, बाहर उनकी पहुँच नहीं हुई। रही साधारण जनता की देहाती रचनाएँ, सो साहित्यिक विद्वान् उसे साहित्य ही क्यों मानने लगे? आज भी ग्रामीण कविता साहित्यज्ञों द्वारा साहित्य में परिगणित नहीं की जाती। तेजेरो गीत, डूँगजी जवारजीरो गीत आदि लोक-गीतों की ओर आज भी किस साहित्यिक की दृष्टि जाती है? वह तो गँवारों की कविता है! इस ढोला मारू काव्य को ही न लीजिए। कितनी सुंदर रचना है पर किसी साक्षर राजस्थानी के आगे उसका नाम तो लीजिए। फिर देखिए, वह किस बुरी तरह नाकभौं सिकोड़ता है। आपको गँवार समझे यह तो निश्चित ही है।

इस प्रकार ये दोनों प्रकार की रचनाएँ विद्वानों से दूर रहीं। बाकी रह गई ब्रजभाषा की रचनाएँ या चारणों की कृतियाँ। इनके पिंगळ और डिंगळ नाम रखकर साहित्य के दो विभाग कर दिए गए। जो पिंगळ नहीं सो डिंगळ, जो डिंगळ नहीं सो पिंगळ।

परंतु हम यहाँ बाकी दो प्रकार की राजस्थानी रचनाओं को भी नहीं भूलना चाहिए। हम समस्त राजस्थानी साहित्य को दो विभागों में बाँटेंगे—(१) डिंगळ, (२) साधारण राजस्थानी।

(१) डिंगळ का विकास उस राजस्थानी में हुआ जिसका प्रयोग चारण, भाट अधिकतया करते थे एवं जो विशेषतः वीररसात्मक होती थी।

शब्दों के साधारण रूपों की अपेक्षा द्वित्व वर्णवाले रूपों का विशेष प्रयोग होता था। प्राचीन राजस्थानी मे डिंगळ के बीज पाए जाते हैं।

आरभ मे साधारण राजस्थानी और डिंगळ मे कोई अतर न था पर बाद मे जाकर डिंगल स्थिर या Stereotyped हो गई। कवि लोग जान-बूझकर द्वित्त वर्णवाले शब्दों का प्रयोग करते थे और साधारण शब्दो की भी इस प्रकार कपालक्रिया होने लगी, साथ ही उनके कई शब्द भी बँध गए जिनका वे बारबार प्रयोग करते थे। बोलचाल की राजस्थानी मे ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होता था या उठ गया था जिससे डिंगळ जनता के लिये धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गई और अत मे उसका समझ लेना जरा टेढ़ी खीर हो गया। आरभ मे डिंगळ बोलचाल की राजस्थानी से नाम मात्र की ही भिन्नता रखती थी पर अब तो यह सर्वथा भिन्न भाषा सी हो गई है। फिर राजस्थान मे राजस्थानी साहित्य के अध्ययन का प्रबध न होने से लोग इस कविता से सर्वथा पराङ्मुख हो गए है, यहाँ तक कि इनका अर्थ निकालनेवाले अब विरले ही मिलते है।

डिंगळ नाम बहुत पुराना नहीं है। जब ब्रजभाषा साहित्यसपन्न होने लगी एव सूरदास आदि ने उसको ऊँचा उठाकर हिंदी क्षेत्र मे सर्वोच्च आसन पर बिठा दिया तो उसकी मोहिनी राजस्थान पर भी पडी। राजस्थान की कविता पर ब्रज का प्रभाव पड़ने लगा, यहाँ तक कि बहुत से लोग ब्रज मे रचना करने लगे। इस प्रकार ब्रज या ब्रजमिश्रित भाषा मे जो रचना हुई वह पिंगळ कहलाई। आगे चलकर उसके नामसाम्य पर पिंगळ से भिन्न (अर्थात् चारण भाटों की वीररसात्मक) रचना डिंगळ कहलाने लगी।

(२) साधारण राजस्थानी मे हम बोलचाल की राजस्थानी की रचनाओं, जैन लेखको की रचनाओं तथा ब्रजमिश्रित पिंगळ की रचनाओ को स्थान देंगे।

प्राचीन और माध्यमिक राजस्थानी की अधिकाश रचनाएँ जैन लेखकों की कृतियाँ है। राजस्थानी साहित्यनिर्माण का श्रेय अधिकाश मे इन्हीं लेखकों को देना चाहिए। अवश्य ही इनकी भाषा पर प्राकृत और अपभ्रश का पूर्ण प्रभाव है, फिर भी तत्कालीन भाषा के अध्ययन के लिये इन्हीं की कृतियाँ सबसे अधिक उपकारक हो सकती हैं। पिंगळ रचनाओ और लौकिक कविता की भाषा, उनके जनता मे प्रचलित होने के कारण, धीरे धीरे

आधुनिक होती गई है, डिंगळ कविता की भाषा आगे चलकर स्थिर हो गई परंतु जैन रचनाएँ इन दोषों से बहुतकुछ मुक्त हैं। इनमें भाषा का तत्कालीन रूप बहुतकुछ सुरक्षित है। यह साहित्य बहुत विस्तृत है पर अप्रकाशित है।

माध्यमिक राजस्थानी की वर्त्तनी अपभ्रंश से मिलती हुई थी। उसमें ह्रस्व ए और ओ वर्त्तमान थे जो आधुनिक राजस्थानी में भी पाए जाते हैं। ऐ और औ अइ और अउ के रूप में लिखे जाते थे[1]। जैसे—

भरइ पळट्टइ भी भरइ भी भरि भी पळटेहि।
ढाढी हाथ सँदेसड़उ धण विललती देहि॥

—ढोला मारूरा दूहा

तउ पाछइ सु बालकु जातमात्रु हूँतउ प्रसिद्धउ हुयउ।

—तरुणप्रभ सूरि (सं० १४११)

पछइ राजा आपणपइँ रात्रिइँ नीलउ पटउळउ पहिरी...फिरतउ चोर जोतउ एकइ स्थानकि जइ सूतउ॥

—सोमसुंदर सूरि (सं० १४५७-६६)

एकि घोड़े चडइँ, एकि ऊतावळा पड़इँ।
कायर रडइँ, सुभट भिडइँ, योध जुडइँ॥

—पृथ्वीचंद्र चरित्र (सं० १४७८)

अलीक वचन म बोलिसि, बाली, तात अम्हारउ लाजइ।
सूरापणइ सूर ते मॉटी जे रणि साहसु गाजइ॥

सीताहरण (सं० १५२६)

ढमढमइ ढमढमाकार ढ्रकर ढोल ढोली जंगिया।
सुर करहि रणसरणाइ समुहरि सरस रसि समरंगिया॥
कलकलहि काहल कोडि कलरवि कुमळ कायर थरथरइ।
सचरइ शकसुरताण साहण साहसी सवि सगरइ॥

—रणमल्ल छंद (सं० १४५५ के लगभग)

सखी, दीह दुपइ अनीठउँ, दीठउँ गमइ न चीर।
भोजन आज उछीठउँ, मीठउँ सदइ न नीर॥

—वसंतविलास (सं० १५०८ के पूर्व)

---

१ अपभ्रंश के अइ और अउ उत्तरकालीन राजस्थानी में ऐ और औ बन गए।

बहुरउ वयरी वल्लहउ हियइ खटक्कइ तिरिण।
वीसारतॉ न वीसरइ वसतॉ ऊवसि रन्नि॥
—प्रबोध चिंतामरिण (सं० १४६२ के लगभग)

माधव दिन प्रति जोवत बाट, अपछर नावइ मन्न उचाट।
एक दिवस आवीनइॅ मिळी, बिहुँ जननी मन पूगी रळी॥
—माधवानळ कामकुदला चौपई (स० १६१५ के लगभग)

राठउड़ वीक कुण करइ रीस, छेहड़ा छत्र माडइ छत्रीस।
मइगळाँ नीर पायउ मसद्दि, खेड़ेचउ आयउ जइत खद्दि॥
—छद राउ जइतसीरउ (स १५६० के लगभग)

माध्यमिक राजस्थानी मे कर्त्ता, कर्म, करण, अधिकरण आदि कारकों को सूचित करने के लिये शब्दों मे तथा पूर्वकालिक क्रिया में, अत में, इ या ए अक्षर रहता था। आधुनिक राजस्थानी में यह इ सर्वत्र लुप्त हो चुकी है (केवल घरे शब्द मे प्राचीन ए वर्त्तमान है)। सब कारकों का एक सा रूप होने से भ्रम होता था जिसको बचाने के लिये नवीन शब्दों द्वारा कारक सूचित करने का प्रयत्न अपभ्रशकाल मे ही आरंभ हो चुका था। आधुनिक राजस्थानी में तो नए शब्द भी घिसकर केवल प्रत्यय मात्र रह गए हैं।

ग—उत्तरकालीन राजस्थानी—उत्तरकालीन राजस्थानी भी साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। डिंगळ, पिंगळ और बोलचाल की राजस्थानी में इस इस काल मे खूब साहित्य रचना हुई और इन रचनाओं का खूब प्रचार हुआ।

इस काल की मुख्य विशेषता गद्यरचना है। माध्यमिक काल मे भी बहुत कुछ गद्य लिखा गया होगा पर जैन रचनाओं को छोड़कर अन्य गद्य रचनाएॅ बहुत ही कम बचने पाई है परतु इस काल की रचनाएॅ प्रचुरता से प्राप्त होती हैं। इनमे सबसे महत्वपूर्ण ख्यातें है। प्रत्येक राजपूत राज्य अपने यहॉ की ख्यात बराबर लिखता था जिसमें उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का पूरा वर्णन किया जाता था। राजस्थान के इतिहासनिर्माण मे इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। पर खेद है कि इनकी ओर विद्वानों एवं प्रकाशको का ध्यान अभी तक नही।

ख्यातों के अतिरिक्त वात साहित्य भी महत्त्व पूर्ण है। वात राजस्थानी में कहानी को कहते हैं। यह साहित्य बहुत विस्तृत है और इन वातों का संग्रह किया जाय तो कई कथासरित्सागर और सहस्ररजनी चरित्र बन सकते हैं।

डिंगल रचनाओं मे गीत महत्त्वपूर्ण हैं। इन गीतों में राजाओं एव अन्य वीरों के वीर कार्यों तथा गुणों का उल्लेख होता था एव उनकी प्रशसा होती थी। इनसे साधारण छोटीमोटी और महत्त्वपूर्ण सभी प्रकार की ऐतिहासिक वातों एव घटनाओं पर बड़ा प्रकाश पड़ सकता है। ये गीत हजारों की सख्या मे उपलब्ध होते है। आवश्यकता है इनको उचित रूप से सग्रहीत, सपादित और प्रकाशित करने की। राजाओं के दरबारों में रहनेवाले चारण, भाटों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशसा मे या उनके नाम पर बहुत से ग्रथों की इस काल मे रचना की। राजा लोग भी कभी कभी काव्य-रचना करते रहे हैं। इस काल की डिंगल रचनाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध एव महत्त्वपूर्ण बीकानेर के सुप्रसिद्ध राठोड़ महाराज पृथ्वीराज की 'क्रिसन-रुकमणीरी वेलि' और मिश्रण चारण सूर्यमल्ल रचित 'वशभास्कर' है। वेलि साहित्यिक डिंगळ का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस काव्य की राजस्थानी मे, कई टीकाएँ हुई। यही नहीं, राजस्थानी में यही एक ऐसा ग्रथ है जिसे सस्कृत मे टीका होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वशभास्कर पृथ्वीराज-रासो का बड़ा भाई है। कृत्रिम डिंगळ का वह चरम उदाहरण है। अन्य डिंगळ रचनाओं का वचनिका राठोड़ रतन सिंहजीरी विशेष प्रसिद्ध है।

पिंगल साहित्य मे भी अच्छी रचनाएँ हुई एव वे लोकप्रिय भी खूब रहीं। पिंगल साहित्य के लेखक मुख्यतया सत कवि हैं। इनमें बाबा हरिदास दयालजी, दादूदयाल, चद्रसखी, बखतावर आदि कवि महत्त्वपूर्ण हैं। चद्रसखी और बखतावर बडे ही भावुक कवि थे एव इनकी रचना का माधुर्य अपूर्व है। सूर और तुलसी के पद भी राजस्थानी रूप धारण करके जनता मे खूब फैल गए।

शुद्ध ब्रज के भी कई कवि इस काल में हुए। बिहारीलाल ने जयपुरनरेश के आश्रय में बिहारी सतसई लिखी। मतिराम और पद्माकर हिंदी के प्रथम श्रेणी कवि समझे जाते है।

बोलचाल की राजस्थानी में जो लोकप्रिय रचनाएँ इस काल में हुईं उनमे दो बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक का नाम रुकमणीमगळ है जिसे पद्म

भक्त नामक कवि ने सत्रहवीं शताब्दी मे बनाया था। इसकी शैली बड़ी सुदर, सरस, सरल और घरेलू है। वर्णन बडे ही सजीव हैं। दूसरे का नाम मेहता नरसीजीरो मायेरो है। इसका रचयिता एक लकड़हारा था। इसमे गुजरात के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता की पुत्री नानीबाई की और नरसी मेहता के भात भरने की कथा का बडा रोचक वर्णन है। जनता मे इनका बहुत प्रचार है और लोग रात्रि को एकत्र होकर इनकी सुदर कथाओं को गायकों के मुँह से सुनते और आनदलाभ कहते हैं। गाते गाते इनकी भाषा अवश्य ही बहुतकुछ आधुनिक हो गई है।

बोलचाल की भाषा में भी अनेक लोकगीत ballads बने जिनमे तेजेरो गीत और डूँगजी जवारजीरो गीत आज भी लोगों के कठहार हो रहे हैं। इन गीतो को गाकर सुनानेवाली एक अलग जाति ही हो गई है।

बोलचाल की राजस्थानी के साहित्य का एक अत्यत महत्त्वपूर्ण अग दूहा साहित्य है। कबीर आदि भक्त कवियों की साखियों का तो खूब प्रचार हुआ ही किंतु इस काल में राजिया, भैरिया, किसनिया, बींजरा, नाथिया, नोपला, जेठवा, नागजी[1] आदि के दूहे बने जिनका राजस्थानी जनता मे खूब प्रचार है[2]।

खेद है कि राजस्थानी का यह विस्तृत साहित्य अभी तक अधकार मे पड़ा है और राजस्थानी विद्वानों का ध्यान इसके सपादन एवं प्रकाशन की ओर अभी तक नहीं गया।

घ—आधुनिक राजस्थानी—अब हम आधुनिक राजस्थानी काल की ओर आते हैं। इस समय राजस्थानी का गौरवसूर्य अस्त हो चुका है। अब राजस्थानी केवल बोलचाल की भाषा रह गई है। राजदरबारो में अब तक फारसी की तूती बोलती थी, अब उर्दू का राज्य है। एकाध राज्य मे हिंदी को स्थान मिला है

---

१ इनमें से कुछ स्वयं कवि थे और कुछ के नाम के दूहे उनको संबोधन करके दूसरों द्वारा लिखे गए।

२ इन दूहो का एक सुंदर वृहत् सग्रह 'राजस्थानरा दूहा' नाम से इस ग्रंथ के अन्यतम संपादक नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए० द्वारा संपादित होकर पिलाणी-राजस्थान ग्रंथमाला में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तावना में राजस्थानी भाषा और साहित्य का परिचय भी दिया गया है।

पर नाममात्र को। स्कूलों में हिंदी-उर्दू पढ़ाई जाती है। राजस्थानी और उसका साहित्य दिनोंदिन विस्मृति के गर्त्त में जा रहा है। सौ पौन सौ वर्ष पहले हिंदी जिस प्रकार गँवारू बोली समझी जाती थी वही हालत आज राजस्थानी की होने लगी है। 'हम तुम' में जो शान समझी जाती है वह 'म्हे थे' में नहीं।

आधुनिक राजस्थानी के सबसे बड़े लेखक शिवचंद्र भरतिया हैं। आपने अनेक उपयोगी गद्य-पद्यात्मक पुस्तकें लिखीं। आपकी शैली बड़ी ही सरल एवं स्वाभाविक है। आपने राजस्थानी में नवीन ढग के नाटक तथा उपन्यासों का सूत्रपात किया और साहित्य में वर्तमान जगत् के भावों को भरने का प्रयत्न किया। एक दूसरे लेखक श्रीयुत् कचरदास कलत्री हैं जिन्होंने दक्षिण भारत से पचराज नामक एक बड़ा ही सुंदर मासिक पत्र राजस्थानी में निकाला था। राजस्थानी में ऐसा उपयोगी, महत्त्वपूर्ण और साहित्यिक पत्र दूसरा नहीं निकला[1]।

खेद की बात है कि राजस्थानी लोग अपनी मातृभाषा और उसके साहित्य की ओर से सर्वथा विमुख हो गए हैं। अपने साहित्य का उन्हें ज्ञान ही नहीं, उसके महत्त्व को समझें तो क्यों कर समझें? मातृभाषा का अनादर ही हमारी निर्जीवता का कारण है। जाति की जीवनी शक्ति उसकी भाषा है। यदि राजस्थानी भाषा नष्ट हो गई तो राजस्थानी जाति और राजस्थानी गौरव नष्ट हो गया—इसमें तनिक भी संदेह नहीं। कब तक हम अपने साहित्यिकों और लेखकों की उपेक्षा करते रहेंगे?

(५) ढोलामारू की भाषा

'ढोला मारूरा दूहा' काव्य की भाषा माध्यमिक राजस्थानी है जो तेरहवीं शताब्दी से पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक पश्चिम भारत की प्रधान भाषा थी। यह अनुमान होता है कि उस काल में इस भाषा का समादर साहित्य-रचना में खूब था और यह पश्चिम भारत की सर्वप्रमुख साहित्यिक भाषा थी। कबीर जैसे कवि की, जो इस प्रदेश के बाहर पूर्वी हिंदी के क्षेत्र का निवासी

---

१ डिंगल भाषा और साहित्य तथा व्याकरण के विस्तृत परिचय के लिये इसी लेखक द्वारा लिखित राव जइतसीरउ छंद नामक ग्रंथ की प्रस्तावना देखिए।

था, भाषा का राजस्थानी होना यही सिद्ध करता है कि उस काल में उत्तर भारत की भाषाओं में इसका स्थान बहुत महत्वपूर्ण था और इसका प्रचार भी सबसे अधिक था जिसके कारण कबीर जैसे कवि की कविता, जो सर्व-साधारण के लिये लिखी गई थी, इसी में लिखी गई। परतु यहॉ पर यह न भूलना चाहिए कि उस समय राजस्थान एव ब्रजभूमि की भाषा एक थी और इस भाषा को ब्रजभाषा भी वैसे ही कहा जा सकता है जैसे कि राजस्थानी। अवश्य ही जो साहित्यिक ब्रजभाषा बाद में विकसित हुई वह सस्कृत के प्रभाव के कारण इस राजस्थानी ब्रज से काफी दूर थी। इसके कारण कबीर की भाषा आज जितनी राजस्थानी जान पड़ती है उतनी ब्रजभाषा नहीं जान पड़ती। आधुनिक राजस्थानी कबीर की इस भाषा से इतनी मिलती है कि राजस्थानियों को कबीर की भाषा समझने में ब्रजभाषा-भाषियों और पूर्वी हिंदी बोलनेवालों की अपेक्षा बहुत कम कठिनाई पडती है। जो कुछ कठिनाई पड़ती है वह इसी कारण कि कबीर की कविता आज से कोई चार साढे चार सौ वर्ष पूर्व लिखी गई थी।

इसके अतिरिक्त उस काल में इस माध्यमिक राजस्थानी के उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा होने का दूसरा प्रमाण यह है कि जायसी की रचनाओं मे अनेक ऐसे शब्द और वाक्याश पाए जाते हैं जो उस काल की राजस्थानी में मिलते हैं एव आज भी राजस्थान में समझे जाते हैं लेकिन जो बाद की ब्रजभाषा के लिये, जो अवधी एवं राजस्थानी की मध्यवर्ती भाषा है, सर्वथा नवीन हैं।

विषयातर होने पर भी हम यहॉ पर यह कहने का साहस करते हैं कि कबीर की भाषा राजस्थानी है एव कबीर को वैसा ही राजस्थानी का कवि कहा जा सकता है जैसा कि ढोलामारू काव्य के कर्ता को।

यह कहा जा सकता है कि कबीर की भाषा वास्तव में ऐसी नहीं थी जैसी कि बाद की हस्तलिखित प्रतियों में मिलती है तथा तुलसी एव सूर के पदो की भॉति वह भी बाद मे राजस्थानी बना ली गई है। परतु कबीर की हस्तलिखित प्रति, जो नागरीप्रचारिणी सभा को मिली है एव जिसके आधार पर कबीरग्रंथावली का संपादन आचार्य श्यामसुदरदास ने किया है, कबीर के समय के बहुत बाद की नहीं है। कबीर ग्रंथावली के सपादक तो उसे कबीर के जीवनकाल की ही मानते हैं।

अतः उसमे और कबीर की भाषा में विशेष अतर होने की संभावना नहीं। फिर यह भी ध्यान मे रहना चाहिए कि यह प्रति काशी में लिखी गई थी। यदि लेखक द्वारा परिवर्तन होता भी तो उलटा होता यानी राजस्थानी पूर्वी हिंदी मे परिवर्तित होती, न कि पूर्वी हिंदी राजस्थानी मे। पद गाने की चीज होते है। उनमे परिवर्तन सभव है, जैसा संभवतः हुआ भी है, परतु साखियाँ तो (बहुत थोड़े अपवाद के साथ) पुस्तकों की चीज हैं जो पुस्तकों मे ही लिखी रहती हैं। अत. उनमे इतना शीघ्र ऐसा परिवर्त्तन हो जाना कि भाषा ठेठ राजस्थानी हो जाय सभव नहीं।

ढोला मारू काव्य की भाषा कबीर की भाषा से बहुत अधिक मिलती है। अनेक शब्द, वाक्याश और वाक्य तो ज्यों के त्यों मिलते हैं। भावसाम्य तथा भाषासाम्य कहीं कहीं इतना अधिक है कि यह प्रतीत होने लगता है कि अवश्य ही एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ा है।

अब नीचे हम कतिपय समानतावाले पद्यों को उद्धृत करके अपने कथन को स्पष्ट करेंगे[1]—

(१) कबीर—अंबर कुजाॅ कुरलियाॅ गरजि भरे सब ताल।
जिनिपै गोविंद बीछुटे तिनके कौण हवाल ॥ २ ॥ १ ॥

ढोला—राति जु सारस कुरळिया गुंजि रहे सब ताल।
जिणकी जोड़ी बीछड़ी तिणका कवण हवाल ॥ ५३ ॥

(२) कबीर—यहु तन जालौं मसि करौं ज्यूॅ धूॅवा जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै बरसि बुझावै अग्गि ॥ ३ ॥ ११ ॥

कबीर—यहु तन जालौ मसि करौ लिखौ राम का नाउॅ ॥ ३ ॥ १२ ॥

ढोला—यहु तन जारी मसि करूॅ, धूॅआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दळ होइ करि बरसि बुझावइ अग्गि ॥१८१॥

(३) कबीर—कबीर सुपनै रैनिकै पारस जीयमै छेक।
जे सोऊॅ तो दोइ जणा जे जागूॅ तौ एक ॥ १२ । २३ ॥

ढोला—सुहिणा, तोहि मराविसूॅ, हियइ दिराऊॅ छेक।
जद सोऊॅ तद दोइ जण, जद जागूॅ तद हेक ॥५१४॥

---

१. कबीर के उदाहरण आचार्य श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित और काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' के प्रथम संस्करण से लिए गए हैं।

साखियों में पहला अंक अंग को और दूसरा साखी को सूचित करता है। पदों में अक पदसंख्या का सूचक है। प०=परिशिष्ट।

(४) कबीर—ससै खाया सकल जुग ससा किनहूँ न खद्ध ॥१।२२॥
जे बेधे गुरु अष्षिराँ तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध ॥१।२२॥

ढोला—चिंता बध्यउ सयळ जग, चिंता किणहि न बध्ध।
जे नर चिंता बस करइ, ते माणस नहिं सिद्ध ॥२२०॥

(५) कबीर—काटी कूटी मछली छीकै धरी चहोड़ि।
कोइ एक अषिर मन बस्या दहमैं पड़ी बहोड़ि ॥१३।२४॥

ढोला—तालि चरती कुभ्झड़ी सर संधियउ गँमारि।
कोइक आखर मनि बस्यउ, ऊडी पख सँभारि ॥ ६७ ॥

(६) कबीर—जाँणौं जे हरि कौं **भजौं मों मनि मोटी आस** ॥१६।५॥
ढोला—सुणि ढोला, करहउ कहइ **मो मनि मोटी आस** ॥४३१॥

(७) कबीर—कबीर गुण की बादली तीतरवानीं छाँहि।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मदिर माँहि ॥१६।२?॥
कबीर—मदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका। (पद १७५)

ढोला—आज धरा दस ऊनम्यउ महलाँ ऊपर मेह।
बाहर थाजइ ऊगरइ, भीगा माँझ घरेह ॥२७२॥

(८) कबीर—कमोदनी जलहरि बसै, चदा बसै अकास।
जो जाही का भावता, सो ताही के पास ॥४४।१॥
ढोला—जळ मँहि वसइ कमोदणी, चदउ वसइ अगासि।
ज्यउ ज्याँहीकइ मनि वसइ, सउ त्याँहीकइ पासि ॥२०१॥

(९) कबीर—कबीर, सुपिनैं हरि मिल्या, सूताँ लिया जगाइ।
आँषि न मींचौं डरपता, मति सुपिनाँ ह्वै जाइ ॥५०।६॥
ढोला—सुपनइ प्रीतम मुझ मिळ्या, हूँ गळि लग्गी धाइ।
डरपत पलक न छोडही, मति सुपिनउ हुइ जाइ ॥५०३॥

ढोला—सुपनइ प्रीतम मुझ मिळ्या, हूँ लागी गळि रोइ।
डरपत पलक न खोलही, मतिहि विछोहउ होइ ॥५०२॥

(१०) कबीर—कबीर हरि का डर्पताँ ऊन्हाँ धान न खाँऊँ।
हिरदा भीतरि हरि बसै ताथै खरा डराँऊँ ॥ (ख ५०।७)
कबीर—गोब्यँद के गुण बहुत हैं लिखे जु हिरदै माँहिं।
डरता पाँणीं नाँ पीऊँ मति वै धोये जाँहिं ॥५०।७॥

ढोला—प्रीतम, तोरइ कारणइ ताता भात न खाइ।
हियड़ा भीतर प्री वसइ दाझणती डरपाहि ॥१६०॥
(११) कबीर—ऊँनमि आई बादली, बर्सण लगे अगार ॥५।१२॥
ढोला—ऊँनमि आई वद्दळी, ढोलउ आयउ चित्त ॥४१॥
(१२) कबीर—चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारै।
जैसे बच रहि कुंज मन माया ममतारे ॥ (प) ५० ॥
ढोला—चुगइ, चितारइ, भी चुगइ, चुगि चुगि चित्तारेह।
कुरझी बच्चा मेल्हिकइ, दूरि थकाँ पाळेह ॥२०२॥
(१३) कबीर—जे दिन गये भगति विन ते दिन सालै मोहि।
ढोला—जे दिन मारू विण गया, दई न ग्यॉन गिणत ॥२०८॥
(१४) कबीर—अकथ कहाणी प्रेम की कह्यॉ न को पत्याय ॥४१।११॥
कबीर—अकथ कहॉणी प्रेम की कछू कही ना जाई।
गूँगा केरी सरकरा बैठे मुसकाई ॥१५६॥
ढोला—अकथ कहाणी प्रेम की किणसू कही न जाइ।
गूँगा का सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ ॥१५६॥

अब कतिपय राजस्थानी शब्दों को देखिए जिनका प्रयोग कबीर और ढोला मारू काव्य में हुआ है—

कबीर	ढोला मारू
१ जतन करत पतन है जैहे भावैं जाण म जाणी। ३६७	१ हियड़इ भीतरि तूँ वसइ, भावइँ जॉण म जॉण। १७५
२ काया मजन क्या करै कप्पड़ धोइ म धोइ।१२।५३	२ जण जण साथ म बोलही मारू बहुत गुणेह। ४८२
३ साधैं सिधि ऐसी पाइये किंवा होइ म होइ। ५	३ भरम म दाखिस कोइ। ४६७
४ एक ज्योति एका मिली किंवा होइ म होइ। ३१ परि०	४ रागाँ देह म चूरि। ४६२ म करि पराई बात। ६१६
५ रहु, रे सख, म,झूरि। ३।४४	५ चरि, चरि, म चरि, म झूरि। ४३४
६ रहि रहि, हिया, म खीजि। ५५।७ टि०	६ हइ, हइ, दइव, म मारि। ४८ रहि, रहि, सुंदरि, माठ करि ३२१

७ उलट **अपूठा** ऑणि । १३।१	७ राज, **अपूठा** बाहुड़उ । ४०४
८ यहु ससार धार मैं डूबै **अधफर** थाकि रहै है । ३१० भौ जल **अधफर** थाकि रहे हैं । ३१८	८ आडावळ **आघोफरै** मारग माहि असन्न । ४३६
९ दीपक पावक **ऑणिया** तेल भी **ऑण्या** संग । ४।१ गाडर **ऑणी** ऊनकूँ । १७।२	९ मोती **ऑण्या** जेण । ५७२ कर ग्रह **आँणी** अंक मइँ । ५४४
१० कूड़े **आखै** वैन । ४३।१० सब दुख **आखौं** रोइ ५।४।६	१० मारूनूँ **आखइ** सखी ।
११ **आइ पहुंता कीर** ।४६। १९ टि०	११ **आइ पुहत्तउ कीर** । ४००
१२ यहु मन **आमन** धूमनॉ । ३०२	१२ अतरि **आमण** दूमणा । २१८
१३ यहु संसार **इसौ** रे प्रॉणी । ३१३	१३ **इसइ** आरखइ मारुवी । १४
१४ **उहॉ** ही तैं गिरि पड़्या । १३।२५	१४ हियड़उ **उवाँहो** सूँ गयउ । ३६२
१५ माटी खोदइ भींत **उसारै** । ९२ ९२	१५ दीहे दीह **उसारिस्यॉ**। ५२५
१६ ग्वाड़ा मॉ हे आनॅद **उपनौ** । १५२ सचु पाया सुख **ऊपना** ५।२६	१६ मारू देस **उपन्नियाँ**। ४८३-८४
१७ कहत कबीर मोहि भगति **उमाहा** । २७१	१७ आज **उमाहउ** मो घणउ । ५१८
१८ विरहिनि ऊभी **पंथसिरि** । ३।५	१८ ढोलउ पूगळ **पंथ सिरि** । ४२३
१९ पंथी **ऊभा पंथ सिरि** । ४६।२२	१९ **ऊभउ** साहइ लाज । ४४६
२० **ऊॅडा** बहै असोस । ५७।२	२० **ऊॅडा** पाणी कोहरइ । ५२३

२१ तिणकै ओल्है रॉम है। ५।३।७	२१ उर ओलइ प्री राखियइ। २८७
२२ अँखड़ियाँ झाँई पड़ी। ३।२२	२२ आँखड़ियाँ डंबर हुई। १६५
२३ लेखणि करूँ करंक की। ३।१२	२३ मारू तणइ करंकड़इ। १५७
२४ जिहि सरि मारी काल्हि। ३।१७	२४ जेहा सजण काल्ह था। २१६
२५ करॅम भए कुहाड़ि। १२। ४४	२५ कधि कुहाड़ड सिरि घड़ड। ६५८
२६ तनसूँ किसा सनेह। २६।५	२६ लाभ किसाकड लेखि। १७७
२७ द्वै थर चढि गयो राडको करहा। ७६ आँब कै बौरे चरहल करहल। १७७	२७ करहा, कहि कासूँ करॉं। ४४५ काळी जाया करहला। ४६१
२८ निर्मळ नॉव चवै, जस बोलै। ३४४	२८ सुणि सुदरि सचड चवाँ। २३८
२६ जम रॉणौ गढ भेळिसी। १२।७	२६ आय जमराणाँ साद करि। ६१० थ
३० जागत ढँढोळथा वादि। ५।२२ सायर मॉहि ढँढोळता। ५।३४	३० ढोलइ घण ढंढोळियड। ६०२ भसम ढँढोलिसि काइ। ११२
३१ दिवस थकाँ साई मिलै। ७३।१३	३१ दूरि थकाँ ही सजणा। २१४
३२ कबीर तुरी पलॉणिया। १३।१३	३२ ढोलइ करइ पलाणियाँ। ३६२
३३ दोवड़ कोट अरु तेवड़ खाई। ३५६	३३ दूणा दोवड़ चोवड़ा। ३०६
३४ रात्यूँ रूँनी विरहिनी। ३।१	३४ रात्यूँ रूँनी निसह भरि। १५६

३५ रळि गया आटै लूँण १।१४	३५ थे बिहुँ सजण रळि मिलउ। ३१८
३६ फाड़ि पुटोला धज करूँ। ३।४१	३६ पट्टोळा पहिरेसि। २३३
३७ देवलि देवलि धाहड़ी। ३।४४	३७ तिणि चड़ि मूकूँ धाहड़ी। ३८६
३८ दाधी देह न पालवै। ४।६	३८ सूका था सू पाल्हव्या। ५३३।५६०
३९ मुखि कसतूरी महमही। ५।१४	३९ मारवणी मुखि ससि तणइ कसतूरी महकाइ। ६००
४० चद बिहूँणाँ चाँनिणा। ५।१५	४० जलइ विहूणी वेल। १६३
४१ डूँगरि वूठा मेह ज्यूँ। १३।२२ सूका काठ न जाणही कबहूँ वूठा मेह। ५५।१	३१ दूधे बूठा मेह। ५५९ नयणे वूठउ नीर। १९
४२ ज्यूँ जळ टूटै मंछळी यूँ वेलत विहाइ। २९।५	४२ वेळत थयउ विहाँण १९२
४३ जग सगळा ही जाँण। २९।१५	४३ सगळाँ मन ऊछव हुवउ। ४०
४४ सुख दुख मेल्है दूर। ३१।८	४४ तिण रिति मेल्है माळविण। २६६
४५ जिहि वैसंदर जग जळ्या। ३९।४	४५ का वासंदर सेवियइ। २९४
४६ ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साँभळूँ। ४०।६७	५६ रही संभाळ सँभाळ। ३८२
४७ साईं हंदा सैंण। ४३	४७ सयणाँ हंदा हत्त। ५०९
४८ बिसारया नहिं बीसरै। ४४।२	४८ वीसारियाँ न बोसरइ। ६१२
४९ सिर साटै हरि सेविए। ४५।३१	४९ एकण साटइ मारुवी। ४५८
५० काल सिंचाणा भरन चिड़ा। ४६।२	५० मन सीचाणउ जइ हुवइ। २११

५१ नीर निंवाणाँ ठाहरै। ५५।४	५१ देस निवाणूँ सजळ जळ। ६६८
५२ नख सिख पाखर ज्यॉह। ५५।५	५२ प्यारा पाखर प्रेम की ४१२
५३ सदा सदाफल दाख बिजौरा। २१४	५३ द्राख बिजउरा नीरती। ४२६
५४ सुति मुकलाई अपनी माऊ। ६६ ५०	५४ मारवणी मुकळाइ। ५६५
५५ बहुगणियाळे कंत। ११।७	५५ बहु गुणवंता नाह ३४०
५६ परिखणहारे बाहिरा। ८८।२	५६ प्रीतम हूती बाहिरो। ३७०
५७ परब्रह्म बूठा मोतियॉ बड़ बॉधी सिपरॉह। ५५।३	५७ आज धराढस ऊनम्यउ काळी बड़ सखरॉह।
इत्यादि	२७१ इत्यादि

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित राजस्थानी शब्द भी कबीर की कविता मे आए है जिनका प्रयोग हिंदी मे प्रायः नहीं होता—

आधापरधा, ऑथियै, आपण, उडाणी, उपायौ, ऊखण्या, कुंज (क्रौंच), कद, कदे, जद, तद, क्रम (कर्म), काण, कालर, काठै, कहसी, कॉइ, कराड़ै, कुंभिलाणी, करसी, खड़हड़ताँ, खोडि, खूँणै, खॉगौ, खिवै, ग्रूँटी ताणि (मुहावरा), खेड, खिरि, गहेलड़ी, गुज्झ, घणा, घाल्या, घुरड़ि, घाघरै, चॉनिणौ, चंच, चढोड़, चोल, चौड़े, चात्रिग, चवै, छड़, छॉगि, छाने, छोति, जोइया, जॉणीजै, जासी ज (पादपूरक अव्यय), झळ, झाळि, झींण, झबूकनी, झखि, झकोळनहार, ठाहरै, डागळा, डूगरि, तर (= तो), त (=तो), तनसार, तेणि, त्याँह तिरसी, थयाहॅ, थैं (= से), थकॉ, थई, थॉहि, थूणी, थारै, दीवा, दाझणा, दाधी, दाघा, दीठा, दह, दिसावरॉ, दुहेला, दोहरा, द्रिढ, दह दिसि, ध्रंम, धीजियै, नीपजै, नीझर, नचीत नेड़ा, निवाण नफर, नाठी, पालवै, पॉणी, प्रज्वला, पट्टन, पेखड़ाँ, पगड़ा, पाछेवडा, परि (= भॉति) पन (= पर्ण), पसाव, पयपै, पाखै (= बिना) पलानि, पणि, पूगी, पाळि, पूळा, मोळ, भी (= फिर), भेळा, मेळिसी, भुबै, भाजिसी, (= भागेगा, चुभेगा, टूटेगा), भावै, मिनकी, मेल्ह्या, माढी, मह्महो, मैंगळ, मैमंत, मारिसी, मेल्है इ०, महरॉण, मझ, मुकलाऊँ, माहिलो, मोकला, रूड़ो, रति, रलिया, रूधहि, लार, लेसी,

लाधा, लहुरी, लाहौ, बाहणो (=चलाना), बाह्या, वागै, वैसणो, बहोड़ि, बेसास, बिडाणा, वाव, वधावणा, बावै (बोता है), वदेस, बींद, बागड़, बींझ, विरोलै, वनराइ, वावलिया, वळधी, वानी, ससौ, सूँ, साव, हथाळी, सालै, सीठ, सहनाँण, सख्या, सोहरा, सैंण, साटै, सैंजळ, स्यावज, सुवटा, सेती, सलिता, सँगाती, हुता, हूँणा, होसी, हदा, हूँ, हेला इत्यादि, इत्यादि।

इनके अतिरिक्त कारकों तथा क्रियाओं के राजस्थानी रूप तो जगह जगह पर भरे पड़े हैं।

अब हम अपने प्रकृत विषय पर आते है। ढोलामारू काव्य की भाषा के सबध मे यह ध्यान रखना चाहिए कि वह एक काल की अथवा एक कवि की कृति नहीं है। इसलिये इस काव्य की भाषा भी सर्वत्र एक सी नहीं है। कहीं प्राचीनता है तो कहाँ नवीनता। कहीं पुरानी वर्तनी है तो कहीं नवीन। इसी प्रकार गुजराती, सिंधी, पजाबी आदि के प्रयोग भी यत्रतत्र पाए जाते हैं। राजस्थानी मे भी कहीं मारवाड़ी रूप हैं तो कहीं ढूँढाड़ी, कहीं जैसळमेरी हैं तो कहीं माळवी। खड़ीबोली और व्रज के रूप भी एक आध जगह पाए जाते हैं।

इस समस्त भाषाभेद का कारण उसकी सर्वप्रियता और निरतर सुनने-सुनानेवालों की जबान पर रहना ही है। इन लोगों के हाथों मे पड़कर बहुत से प्राचीन रूप नवीनता के साँचे में ढल गए। बहुत से प्राचीन दूहे लुप्त हो गए तथा नए दूहे जुड़ गए। पुरानी प्रतियों में इतने दूहे नहीं मिलते जितनी बाद की प्रतियों में, यहाँ तक कि कुछ प्रतियों मे तो काव्य एव उसकी कथा का रूप ही सर्वथा पलट गया है। सैकड़ों नए दूहे दृष्टिगोचर होते हैं और पुराने दूहे बहुत कम। कई दूहों का रूपातर इतना अधिक हो गया है कि उनको पहचानना कठिन हो जाता है।

कबीर के कुछ दूहे ढोलामारू काव्य मे प्रायः ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। शका हो सकती है कि क्या वे दूहे ढोलामारू मे कबीर की रचना से लेकर संमिलित कर लिए गए हैं। ऐसा होना असभव नहीं। हमारी जो सबसे प्राचीन प्रति है वह १६५१ की है जो कबीर के समय के सौ सवा सौ वर्ष बाद की है। उतने समय में कबीर की कविता का इतना प्रसिद्ध हो जाना कि वह जनसाधारण की जिह्वा पर रहने लगे, असभव नहीं (आज तो कबीर के सैकड़ों दूहे लोगों की जबान पर हैं)। उधर हमारे कतिपय मित्रों का कहना है कि ये दूहे ढोलामारू के ही हैं और जनसाधारण मे प्रचलित थे।

या तो कबीर उनके द्वारा इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने प्रायः वैसी ही साखियाँ कह डालीं या उनके शिष्यों ने इन दूहों को कबीर की साखियों में मिला दिया। हमें दोनों मत ठीक नहीं जान पड़ते। ये दूहे जिन विषयों पर लिखे गए हैं उन पर केवल कबीर ने ही नहीं किंतु अन्य संत कवियों ने भी रचना की है। उनके भाव और शब्द प्रायः परस्पर मिलते हुए हैं। जिस भाव ने ढोलामारू के इन दूहों के निर्माता को प्रभावित किया उसी भाव ने इन संत महात्माओं को भी। यही साम्य का कारण है।

आगे हम ढोलामारू की भाषा का व्याकरण देते हैं।

(६) ढोला मारूरा दूहा काव्य का व्याकरण

(१) राजस्थानी की वर्णमाला

(क) स्वर

ह्रस्व—अ इ उ ऋ ॲ[1] ऑ

दीर्घ—आ ई ऊ ए ओ ऐ[2] ॲ ौ औ आ[3]

(ख) अतिरिक्त स्वर (जो प्रायः कविता में आते हैं) ह्रस्व—ऑ[4] ॲ ऑ

(ग) व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	व[5]
श	ष	स	ह	ळ[6]	ऱ	ड़	ढ़	ं	ः

---

(१) ॲ=ह्रस्व ए (या ऍ)। ऑ=ह्रस्व ओ।

(२) ऐ=हिंदी ऐ (जैसे 'ऐसा' में)। ॲ=संस्कृत ऐ (जैसे 'दैव' में)। ॲ=ह्रस्व ऐ।

(३) औ=हिंदी औ (जैसे 'और' में)। औ=संस्कृत औ (जैसे 'कौआ' में)। ऑ=ह्रस्व औ।

(४) ऑ=ह्रस्व ओ।

(५) व=संस्कृत व और राजस्थानी व़=राजस्थानी व।

(६) ळ=मूर्धन्य ल। द़=अरबी ज़्वाद। ऱ=मूर्धन्य द।

नोट—ढोला मारू के इस संस्करण में ह्रस्व ओ, ऐ, ओ, ऐ, ओ और व़ को क्रमशः आ, ऐ, ओ, ऐ, औ और व (या, ब) से ही लिखा गया है।

(२) उच्चारण

१—छंद की सुविधा के लिये दीर्घ अक्षरों का भी ह्रस्व उच्चारण कई स्थानों पर हुआ है। उदाहरण—

उवै बोल्या सर ऊपरइ थाँ कीधी अणुराव ॥५२॥
आसालुध्धी हूँ न मुइय सज्जन जंजाळेह ॥२०६॥
सायधण लाल कबाण ज्यउँ ऊभी कड मोड़ेह ॥३५५॥

२—इसी प्रकार एकाध स्थान पर ह्रस्व का दीर्घ उच्चारण भी हुआ है। उदाहरण—

जे जीवन जिन्हाँ तणाँ तन ही माँहि वसत ॥२१॥
ऊपर थे बिन्हे चढ्याँ करह कूट किण काज ॥६४४॥

(३) वर्त्तनी

१—पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में ख सदैव 'ष' से लिखा जाता था। आजकल भी पुराने साक्षर जन ख को बहुधा ष से ही लिखते हैं। उच्चारण को ध्यान में रखकर हमने मूल में सर्वत्र ख कर दिया है।

२—पुरानी प्रतियों में ड और ड़ एक ही प्रकार से लिखे मिलते हैं। हमने जहाँ जो अक्षर होना चाहिए वह कर दिया है।

३—पुरानी प्रतियों में चद्रबिंदु का प्रयोग कभी कभी ही मिलता है। हमने उचित स्थान पर चद्रबिंदु कर दिया है।

४—ढोलामारू की जो प्रतियाँ हमे मिली हैं उनमें काफी समयातर है, अतः एक ही शब्द कई प्रकार से लिखा मिलता है। हमने अधिकाश में जिस प्रति का पाठ लिया है उसी की वर्त्तनी को ग्रहण किया है। कई स्थानों पर परिवर्त्तन भी किया है। वह इस प्रकार है—

(१) समानता रखने के लिये ऐ औ की मात्राओं को अइ अउ मे परिवर्त्तित कर दिया है।

(२) कहीं कहीं छद के सुविधानुसार ह्रस्व को दीर्घ या दीर्घ को ह्रस्व कर दिया है।

(४) लिंग

१—ढोलामारू की भाषा मे दो लिंग पाए जाते है। नपुंसक लिंग के रूप भी एकाध स्थान पर मिलते है पर वह पुराना प्रभाव है। वास्तव में नपुंसक लिंग और पुँल्लिग मे कोई अतर नहीं है। नपुसक लिंग के रूपों के कुछ उदाहरण—

पूगळ देश दुकाळ थियुँ। २। (थियुँ = थियउ)
ऊ ही लाख पसाउ। ७४। (ऊ = ओ)
पावस मास प्रगट्टिउँ। २५८। (प्रगट्टिउँ = प्रगट्टियउ)
निकस्यू जात न तोहि। ३७२। (निकस्यू = निकस्यो)
प्रहरे प्रहर न ऊतर्युं। ५६०। (ऊतर्यु = ऊतरियउ)

२—स्त्रीलिंग बनाने का मुख्य प्रत्यय ई है—

पुत्र—पुत्री	सुंदर—सुंदरी
तरुणउ—तरुणी	हेकलउ—हेकली

३—कहीं कहीं स्त्रीलिंग शब्दों का अंत्य स्वर लुप्त, और दीर्घ हो तो ह्रस्व, हो गया है—

सुंदरी—सुंदर, सुंदरि	मु धा—मु ध।
चातृगी—चातृगि	

(५) बहुवचन प्रत्यय

१—आ—ओकारात शब्दों के लिये—

रावळ, रावळउ } रावळा ३
परणियउ } परिणिया १०

२—ऑ (अकारात स्त्री० शब्दों के लिये) कोइल—कोइलॉ ८
३—इयॉ (ईकारात स्त्री० शब्दों के लिये) सखी—सखियॉ, २०
सखिए (सबोधन) २६

(६) विभक्ति और कारक

राजस्थानी में छः विभक्तियॉ और आठ कारक होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—विभक्तियाँ—

स०	विभक्ति	चिह्न	किस कारक मे आती है	हिंदी चिह्न
१	पहली	×	अप्रत्यय कर्त्ता और अप्रत्यय कर्म	×
२	दूसरी	*	सप्रत्यय कर्त्ता और सबोधन	ने
३	तीसरी	सूँ आदि†	करण और अपादान	से
४	चौथी	ने आदि	सप्रत्यय कर्म और सप्रदान	को
५	पाँचवीं	मे, पर आदि	अधिकरण	मे, पर
६	छठी	रो (री, रा, रे) आदि‡	संबध	का (की, के)

२—कारक—

सं०	नाम	विभक्ति
१	कर्त्ता	पहली, दूसरी, तीसरी
२	कर्म	पहली, चौथी
३	करण	तीसरी
४	संप्रदान	चौथी
५	अपादान	तीसरी
६	अधिकरण	पाँचवीं
७	संबध	छठी
८	संबोधन	दूसरी§

* इसके प्रत्यय आगे विकारी रूप शीर्षक के नीचे देखिए।

† तीसरी से छठी विभक्तियों के चिह्न विकारी रूप के आगे जोडे जाते हैं। पर कविता में (कभी कभी गद्य में भी) ऐसा नहीं भी होता है और शब्द के सामान्य रूप के आगे ही ये चिह्न जोड दिए जाते हैं।

‡ छठी विभक्ति के चिह्नों में, हिंदी की भाँति, विशेष्य या भेद्य के अनुसार परिवर्तन होता है। पुँल्लिंग एकवचन—रो। पु० बहु०—रा। पु० विकारी रूप—रे। स्त्रीलिंग—री।

§ ओकारांत शब्द के संबोधन के एकवचन में ओ का आ हो जाता है।

नोट—उल्लिखित विभक्तियों के अतिरिक्त अन्य विभक्तियाँ भी कभी-कभी आ जाती हैं।

३—विकारी रूप—

शब्द	लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
ओकारात	पुँ	एक०	अइ, अै, अे	ढोलइ, खोटइ
,,	,,	बहु०	आँ	खोटाँ
अन्य शब्द	पुँ	एक०	×	
अकारात	पुँ	बहु०	आँ	भड़ाँ, समदाँ
आकारात	पुँ, स्त्री०	बहु०	आँ, आवाँ	
ईकारात	पुँ, स्त्री०	बहु०	इयाँ, याँ	राजवियाँ
ऊकारांत	पुँ, स्त्री०	बहु०	उवाँ	मारुवाँ

नोट (१) ढोलामारू में स्त्रीलिंग के विकारी रूप और साधारण रूप में कोई भेद नहीं किया गया है।

(२) राजा वर्ग के शब्दों को छोड़कर बाकी सब आकारांत हिंदी शब्द राजस्थानी में ओकारांत हो जाते हैं।

४—ढोलामारू के विभक्ति चिह्न—

विभक्ति	चिह्न	उदाहरण
पहली	×	
दूसरी	(देखो विकारी रूप	
	ए, इए	सज्जणे, सखिए
	इ	भुयगि
तीसरी	सूँ, सु, सुँ, स्यउँ	मारवणीसूँ, ताहसुँ, डाँभस्यउँ
	ती, थी	नख-ती, हम-थी
	हुंती, हूँती	
	आँ	वयणाँ, हूछाँ

विभक्ति	चिह्न	उदाहरण
	इ, अइ, ए, एह	मनइ, प्रेमइ, पागड़इ
		काँबे, स्रवणे, नयरणेह
	ह	तनह
चौथी	ने, नैं, नइ, नइँ, नूँ	म्हेनैं, ढोलइनूँ, राजानूँ,
	ए	घरे
	अइ	नरवरइ
	रेस	जळ रेस
पाँचवीं	मैं, मै, मैँ, मइँ मइ, महिं, मँही, माँहि, माँही, मझ, मंझि, मँझारि	
	सिर, सिरि	पथ सिर
	इ,	भवि, घरि, देसि,
	अइ	हीयइ, साथइ, करहइ, सासरइ
	अइँ	सुपनइँ, सेजइँ
	ह	मनह
छठी	रो रउ, री, रा, रै, रइ	
	को-कउ, की, का, के-कइ-कै	दई कइ
	दा	मारूदा
	जी	म्हाँजा
	चो-चउ, ची, चा, चइ-चै	नरवर चउ
	तणउ, तणी, तणा, तणइ	
	सदउ, सदी, सदा, संदइ	
	हंदउ, हुदउ,	

नोट—कविता में (और कभी कभी गद्य में भी) शब्द के साधारण या विकारी रूपों से ही विभक्तियों और कारकों का काम निकाल लिया जाता है और विभक्तिचिह्न लुप्त कर दिए जाते हैं।

(७) सर्वनाम

(१) हूँ = मैं

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	हूँ = मैं, मुझे	म्हे, हम, सैं = हम
दूसरी	मइँ = मैं, मैंने, मुझसे	म्हाँ = हमने
तीसरी	मोथी = मुझसे	...
चौथी	मोहि, म्हाँने, म्हानूँ, म्हैंने, मुज्झ=मुझे	...
छठी	म्हारउ (म्हारी)=मेरा री मेरो (मेरी)=मेरा री मो, मूँ=मम, मेरा री मुज्झ=मेरी-री-रे	म्हाँरउ (म्हाँरी)=हमारी री म्हाँकउ (म्हाँकी)=हमारा री हमारउ (हमारी)=हमारी री म्हाँनी=हमारी अम्हीणइ=हमारे (विकारी) अम्हीणी=हमारी अम्हाँ=हमारा-री रे

(२) तॅू = तू

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	तॅू=तू , तुझे	थे, तुम = तुम थे, राज, राजि = आप
दूसरी	तइँ=तूने, तुझसे, तेरा	थाॅ=आपने, तुमने
तीसरी	तुम्ह=तुझसे	...
चौथी	तोनइ, तोनॅू , तोइ } =तुझे तोहि=तुझे, तुझमे तुम्ह=तुझे	...
छठी	थारउ (थारी, थारा) =तेरा (तेरी, तेरे) थाहरइ तोरइ } =तेरे तुझ, तुम्ह=तेरा, री, रे	थाँरउ (थाँरी, थाँरा)= आपका इ० तुम्हारउ (री, रा) तुम्हारा इ० थाँकउ (की-का) = आपका इ० थाॅके=आपके (विकारी)
विकारी रूप	तो = तुझे, तुझसे, तेरा इ०, तुझमें	थाॅ = आपने, आपको, आपसे, आपमे, आपका इ०

(३) वो सो = वह

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	सो, सउ, स, सोइ, उ, ऊ = वह (पुॅ०) सो, से, ते वा, उवा = वह (स्त्री)	सो, से, सू , सोइ, ते, तेह, तिके, वै उवै = वे

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन
दूसरी	उण, उणि, उआँ तिण, तिणि, तिणाॅ तेण, तेणि त्याँ, तियाॅ, तीयाँ ता, तइ	उसने उसको = उससे उसमें, उसका	उवाँ, ताॅह त्याँ, याँह } = उनने, उनको उनसे, उनमें उनका
तीसरी	ताहसुं = उससे		
चौथी			
पाॅचवीं	तिणपइ = उसपै		
छठी	उणरउ = उसका तास तासु } = उसका तसु		तिणका ताँहिका, तिहाँका } = उनका त्याॅहीकइ = उन्हींके (विकारी)

(४) ओ = यह

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन
पहली	अउ, ओ यो, ई, ए, आ } = यह (पुं०) आ, ए, एह = यह (स्त्री०)		अइ, ए, एह = ये
दूसरी	इण, इणि एण, अण एह	इसने, इसको, = इससे, इसमे इसका इ०	(एकवचन की भाँति)
चौथी	यहु = इसको		...

(५) जो, जको = जो, जौन

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	जो, जउ, ज्यउ, जे, जिको } = जो (पुं०) जो, जउ, जे, जिका = जो (स्त्री०)	जे, जिका, ये = जो
दूसरी	जिण, जिणि, जेण, जॉ, ज्यॉ, ज्यॉंह, जॉह, जे } जिसने = जिसको, जिससे, जिसमे, जिसका,	(एकवचन की भॉति)
चौथी		जिणनूॅ = जिनको
छठी	जास = जिसका जिणरो इ० } जिणको इ० } = जिसका ज्यॉरो इ० ज्यॉहीकइ = जिसके (वि० रूप) जिए = जिसके	जिन्हॉ-तणॉं = जिनके जिणको इ० } जॉंहको इ० } = जिनका इ० ज्यॉको इ०

(६) कुण = कौन

विभक्ति	उदाहरण	
पहली	कुॅण, कूण, कवण, कौण, को, का (स्त्री०)	} = कौन
दूसरी	किण, किणि, केण, कवण, किस	} किसने, किससे, किसको = किसमें, किसका इ०

(७) कोई

विभक्ति	उदाहरण
पहली	कोई, कोइ, को, कउ, कोइक, काइक (स्त्री०), काइ (स्त्री०)
दूसरी	काइ, किहीं, कहीं = किसी ने, किसी से इ०

(८) आप = आप (स्वयं)
आपण = अपन, हम लोग
आपणउ = अपना
मोहि = स्वय (मैं)

(९) सार्वनामिक विशेषण

एतउ, केतउ, जेतउ, तेतउ = इतना, कितना, जितना, तितना । इवड़उ-एवड़उ = ऐसा, इतना । अइसउ, ऐसउ = ऐसा । एहउ, एहवउ = ऐसा । अइहउ = ऐसा । इसउ = ऐसा । अपणउ = अपना । सो = समान । सगळउ, सहु, सवि, सउ, सौ, सव्व, सव = सब । का, कहा = क्या । कछु = कुछ । किंउँ = कुछ । कॉइ = क्या, कुल । के = कई ।

(८) क्रिया रूप

(१) इस काव्य की भाषा में निम्नलिखित आठ काल पाए जाते हैं—
(१) सामान्य वर्तमान, (२) तात्कालिक वर्तमान, (३) संभाव्य भविष्यत्, (४) सामान्य भविष्यत्, (५) प्रत्यक्ष विधि, (६) परोक्ष विधि, (७) सामान्यभूत, (८) हेतु हेतुमद्भूत ।

(२) सामान्य वर्तमान के रूप प्रायः संभाव्य भविष्यत् जैसे ही हैं; केवल जहाँ वर्तमान कृदंत से बने सामान्य वर्तमान रूप आए हैं वहीं फर्क पड़ता है ।

(३) तात्कालिक वर्तमान केवल दो तीन जगह आया है—
(१) फळ रहियाइ = फळ रहे हैं ।
(२) फळि रहउ = फल रहा है ।

(४) संभाव्य भविष्यत् और सामान्य वर्तमान के रूप इस प्रकार हैं—

पुरुष	वचन	प्रत्यय	हुवणो	हुवणी	अकर्मक	सकर्मक	आवणो	जावणो	देवणो
अन्य	एक०	अइ	इइ, छइ	हुवइ	जागइ	जॉणइ	आवइ, आइ	जावइ	देवइ, देइ
	और		अछइ	होइ	...	...	...	जाइ	दियइ,दीयइ
	बहु०		...	थाइ	...	...	...	जाअइ	...
			...	हुइ	...	...	...	जायइ	...
		अय	...	...	...	आखय	...	...	...
		अही	...	...	...	बोलही	...	...	...
		एह	...	...	...	भरेह	...	...	देह
		एहि	...	...	...	पळटेहि	...	...	देहि
		आहि	...	...	डरपाहि	खाहि	...	जाहि	...
		आह	...	...	...	...	...	जाह	...
		आइ	...	...	बिकाइ	लहाइ	...	...	...
		×	...	...	डूल	...	...	...	...

पुरुष	वचन	प्रत्यय	हुवणो	हुवणा	अकर्मक	सकर्मक	आवणो	जावणो	देवणो
मध्यम	एक०	(अन्यपुरुष की भाँति)	हुई	.	गाजइ	चुट्टइ	..	...	...
	बहु०	अउ		हुवउ	जागउ	जाणउ	आवउ	जावउ	
उत्तम	एक०	ऊँ अऊँ		हुं (?) हउँ	जागूँ जागउँ	जाणूँ जाणउँ	आऊँ आवउँ	जाऊँ जावउँ	दिउँ, दिऊँ दूँ
	बहु०	आँ	छाँ	हवाँ	जागाँ	जाणाँ	आवाँ	जावाँ	देवाँ, द्याँ

(५) सामान्य वर्तमान के वर्तमान कृदत से बने रूप—

प्रत्यय	उदाहरण
अत	वसत, करत, बाढत
अंत	काढत, आवत, लहंत, चढंत
अंति	लियति, गमति, मल्हपंति
ती (स्त्री०)	मूकती

(६) सामान्य भविष्य

पुरुष	वचन	प्रत्यय	हुवणो	अकर्मक	सकर्मक	आवणो			
अन्य		सी		जागसी	जॉणसी	आवसी	आसी		
		से		जागसे	जॉणसे	आवसे	आसे		
	एक०	इसी		जागिसी	जॉणिसी	आविसी	आइसी		
		एस		जागेस	जॉणेस	आवेस	आएस		
	और	एसि		जागेसि	जॉणेसि	आवेसि	आएसि		
		एसी		जागेसी	जॉणेसी	आवेसी	आएसी		
		सइ		जागसइ	जॉणसइ	आवसइ	आइसइ		
		स्यइ		जागस्यइ	जॉणस्यइ	आवस्यइ	आइस्यइ		
	बहु०	इस्यह		जागिस्यइ	जॉणिस्यइ	आविस्यइ	अइस्यइ		
		इसइ		जागिसइ				जइसइ	
		एह		जागेह	जॉणेह	आवेह	आएह		
		एस्यइ		जागेस्यइ	जॉणेस्यइ	आवेस्यइ	आएस्यइ		

		इस इसु, (बाकी प्रत्यय अन्य पुरुष की भाँति)	हुइस	पाठविसु	...	...	...	देइस
मध्यम	एक०							
	बहु०	स्यउ		जागस्यउ	जॉणस्यउ	आवस्यउ	आइस्यउ	
		इस्यउ		जागिस्यउ	जाणिस्यउ	आविस्यउ		
उत्तम		इसूँ		जागिसूँ	जॉणिसूँ	आविसूँ	आइसूँ	
		इस्यउँ		जागिस्यउँ	जॉणिस्यउँ	आविस्यउँ	आइस्यउँ	
		इसि		जागिसि	जॉणिसि	आविसि	आइसि	
		एस		जागेस	जाँणेस	आवेस	आएस	
		एसि		जागेसि	जॉणेसि	आवेसि	आएसि	
		ऐस्यउँ		जागेस्यउँ	जाँणेस्यउँ	...	आएस्यउँ	
		स्याँ		जागस्याँ	जॉणस्याँ	आवस्याँ	आइस्याँ	
		इस्याँ		जागिस्याँ	जॉणिस्याँ	आविस्याँ	आस्याँ	
		एस्याँ		जागेस्याँ	जॉणेस्याँ	आवेस्याँ	आएस्याँ	
		एस		जागेस	जॉणेस	आवेस	आएस	

(७) सामान्य भविष्य का एक दूसरा रूप लो प्रत्ययवाला भी प्रयुक्त हुआ है। संभाव्य भविष्यत् के आगे नीचे लिखे प्रत्यय लगाने से यह बनता है। इसमे लिंग भेद होता है।

लिंग	वचन		उदाहरण
पुल्लिंग	एक०	लो	जाणइलो = वह जानेगा
	बहु०	ला	जाणइला (जाणयला) = वे जानेंगे
स्त्रीलिंग	एक०	ली	मिलूँली, मिलउँली = मिलूँगी
			दिउँली = दूँगी
	बहु०	ल्याँ	मिलाँल्याँ = हम मिलेंगी

(८) प्रत्यक्ष विधि—

मध्यम पुरुष	प्रत्यय	उदाहरण
एक०	अ	ल्याव, जाण, दे, आव
	इ	छाँडि, लज्जि, गज्जि, आवि, आ (आय)
	ई	
	ए	कहे (कहइ), आखे
	एह	करेह
बहु०	अउ	विचारउ, जावउ, करउ, द्यउ (= दो), हुअउ
	इयउ	लियउ

(९) परोक्ष विधि

प्रत्यय	उदाहरण
ए	कहे, आखे, आए
इया	कहिया
इयाह	कहियाह, रहियाह
इयाँह	दाखवियाँह्
इज्यउ	कहिज्यउ

(१०) 'चाहिए' बोधक विधि

प्रत्यय	उदाहरण
इयइ	मेल्हियइ, छडियइ, लाइयइ
इनइ	राखिनइ
ईयइ	...
ईनइ	होईनइ, कीनइ, पाळीनइ,
इन इ	...

(११) सामान्य भूत

लिंग	वचन	प्रत्यय	हुवणो	हुवणो	अकर्मक	सकर्मक	आवणो		जावणो	देवणो
पु०	एक०	इयउ यउ अउ		थियउ, थियुँ हुयउ, थयउ हुवउ	जागियउ जाग्यउ लागउ	जाणियउ जाणयउ	आवियउ आव्यउ	आइयउ आयउ	गयउ	दियउ, दीयउ
	बहु०	इया या आ	हुंता हूँता	थिया, थया, हुया,हूया,भया हुवा, हूवा	जागिया जाग्या लागा	जाणिया जाणया	आविया आव्या	आइया आया	गया	दिया, दीया
स्त्री०	एक०	ई	थी	हुई थई भई	जागी लागी	जाणी	आवी	आई	गई	दी,दई,दिवी
	बहु०	इयाँ याँ			जागियाँ जाग्याँ	जाणियाँ जाणयाँ	आवियाँ आव्याँ	आइयाँ आयाँ	गयाँ	...

(१२) सामान्य भूत के अनियमित रूप

(१) सीधे संस्कृत या प्राकृत के भूत कृदत से बने हुए—

उपनणो—ऊपन्नउ (उत्पन्न)। पहुँचणो—पहुत्त, पहूँतउ (प्रभूत)। देवणो—दीध, दीधउ, दीन्ह, दीन्हउ (दिएण)। लेवणो—लिद्ध, लोध, लध्ध, लीधउ, लीन्ह, लीन्हउ। पीवणो—पीध, पीधउ। खावणो—खध्ध, खाधउ। करणो—किध्ध, कीध, किध्धउ, कीधउ, कीन्ह, कीन्हउ, किय, कियउ, कीयउ। देखणो—दिट्ठ, दीठ, दिट्ठउ, दीठउ। बॅधणो—वध्ध। सिद्ध हुवणो—सीधा। मरणो—मुयउ, मुई। दाधणो—दध्ध। सूवणो—सूती। रोवणो—रूँनी।

(२) आणी प्रत्यय लगाकर—

सॅकणो—सॅकाणी : विकणो—विकाणी। भरणो—भराणी। लाजणो—लजाणी। उडणो—उडाणी। सम (व) णो—समाणी। कुँमलॉ (व) णो—कुँमलॉणी।

(३) अन्य—

वूही (वहणो)। गाज (गाजणो)। फट्टि (फटणो)। विणठा (स० विनष्ट)। पयट्ठ (स० प्रविष्ट)।

(१३) हेतुहेतुमद्भूत

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
पुँ०	एक०	तउ	रहतउ
	बहु०	ता	हुँता

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
स्त्री०	एक०	ती	जोती, देखती
	बहु०	अती	
		अत	
पुं०	एक०	अत	करत, रहंत
स्त्री०	बहु०	अति	रहंति, हुति, जति, पसरति

(१४) कर्मवाच्य, भाववाच्य

प्रत्यय	उदाहरण
(१) ईज	चढीजइ = चढ़ा जाता है।
	लीजइ = ली जाती है।
(२) इज	कहिजइ = कहा जाता है।

अन्य प्रत्यय—इज्ज, ईय, इय (छडियइ, मेल्हियइ)।

नोट—कर्मवाच्य और चाहिए अर्थ की विधि के रूप एक से होते हैं। पाळीजइ = पाला जाता है, पाला जाय और पालना चाहिए (हिं० पालिए)।

(१५) सकर्मक और प्रेरणार्थक बनाना

(क) अकर्मक से सकर्मक

(१) आव प्रत्यय से—जागणो—जगावणो
मिळनो—मिळावणो

(१) आड़ प्रत्यय से—जीवणो—जीवाड़नो

(३) धातु के उपान्त्य स्वर में परिवर्तन—वळनो—वाळनो,
ऊतरणो—ऊतारणो
उतरणो—उतारणो
चढणो—चाढणो
मिळनो—मेळनो

(४) धातु बदलकर— टूटणो—तोड़नो

(५) बिना परिवर्तन के— भरणो—भरणो

(६) अन्य रूप— जागणो—जागवणो
दहणो—दाहवणो

(ख) प्रेरणार्थक

(१) आव प्रत्यय से—काटणो—कटावणो।
मारणो—मरावणो
आणनो—अ-आणावणो

(२) आड़ प्रत्यय से—बाँधणो—बँधाड़नो
काटणो—कटाडनो

(३) धातु के स्वर में परिवर्तन—पीवणो—पावणो।

(४) अन्य रूप—देवणो—दिरावणो।

(६) प्रत्यय

(१) वर्तमान कृदंत[1]—

पुं० एक	अतउ	पड़तउ
	अतउ, अदउ	लवंतउ, चलतउ, उडदउ
	अत	वेळत
	अत	
	ऐत	वूठैतौ
पुं० बहु०	अता	मनगमता, जावता
	अताँ	नीगमताँह
	अंता	ऊसारता, ममंता
	अत	
	अत	

[1] वर्तमान कृदंत और हेतुहेतुमद्भूत के प्रत्यय एक से होते हैं।

स्त्री०	अंती	विललती
	अदी	चाहदी
	अती	वळती, देखती
	अत	
	अत	

(२) भूत कृदत[1]—

पुँ० एक०	अउ	लागउ, वूठउ, विलखउ
	यउ	आयउ,
	इयउ	कूटियउ, ऊमाहियउ
पुँ० बहु०	आ	विलक्खा, अदिठा, सूका
	या	पिया
	इया	भरिया
स्त्री० एक०	ई	वियापी, माँगीताँगो
बहु०	इयाँ	सामुहियाँ, उपराठियाँ

(३) कृदत क्रियाविशेषण—

प्रत्यय—या, इया— कह्याँ = कहने पर,
परण्याँ, कियाँ, कुड्यिाँ

ए कहे = कहने से

अतइ वरसतइ=बरसते हुए,
आवंतइ, ऊगतइ।

(४) तुमर्थ प्रत्यय—

अण—बोलण (=बोलने को), मिलण

इवा }
इवा } —कहिबा (=कहने को।

(५) पूर्वकालिक क्रिया—

इ—जागि, चढि, आवि, आइ, देइ, लइ, हइ, होय, हुइ

ई—लघी, उक्कवी, पूछी करी

---

[1] भूत कृदंत और सामान्य भूत के प्रत्यय एक के होते हैं। अनियमित रूपों के लिये ऊपर सामान्य भूत के रूप देखो।

ए—लगे

अ—कर

इन प्रत्ययों के आगे कै, कइ, करि, नइ, नइँ (= कर, करके) प्रत्यय भी प्रायः जोड़ दिए जाते हैं।

(६) वाला अर्थ के प्रत्यय—

अण—भरण, पखालण, रंजण, उल्हवण

अणउ—रक्खणा (बहु०)

इस प्रत्यय के आगे कहीं कहीं 'हार' प्रत्यय जोड़ दिया गया है; जैसे—झकोळणहार।

(७) कुछ अन्य कृदंत प्रत्यय—

१—अण = ना

हल्ल—हल्लण (चलना),

वल—वळण (चलना, जाना)

२—आमणउ = आवना

सोह—सुहामणउ

वध—वधामणउ

३—आवउ = आवा

सोह—सुहावउ

४—आळू = आलू

धवो—धवाळू

५—हार = हार, वाला

झूँवणो—झूँवणहार

वळनो—वल्लणहार

(८) कुछ तद्धित प्रत्यय

१—डउ (डी)—स्वार्थ मे और अनादर तथा ऊनतासूचक

सटेसउ—सटेड्उ

गोरी—गोरड़ी

गाम—गामड्उ

कंव—कवड़ी

२—लउ—ड्उ की भाँति

दीवउ—दीवलउ

करहउ—करहलउ

३—टी—डी की भाँति

लीह—लीहटी

४—एरउ—स्वार्थ में

वेगउ—वेगेरउ

आघउ—आघेरउ

भलउ—भलेरउ

५—एरउ—वाला, का।

पर—परेरउ (पर का)

६—पण = पन

बाळा—बाळापण

७—आपउ = आपा

तरुण—तरुणापउ (तरुणपन)

८—आइत=वाला

रळी—रळियाइत

९—वत = वाला

जोबन—जोबनवत

१०—लउ = वाला, का

आगे—आगलउ

पीछे—पाछलउ

(१०) अव्यय

(१) क्रियाविशेषण

किह, किहाँ = कहाँ। केथि = कहाँ। काँही=कहीं। इहाँ, एथि = यहाँ। अउथि, तिहाँ=वहाँ। उवाँही = वहीं। जेहँ, जिह, जिहाँ=जहाँ। ऊपरि = ऊपर। परइ = परे। दूर, दूरि = दूर।

कद, कदि, कदी, कदे = कब। अब, हिव, हिवइ, अवराँह = अब। जब, जाँण = जब।

आज, अज = आज। अजइ, अजे = अभी। काल्ह = कल। राति = रात।

राति दिवसि = रात दिन। नित, नितु, नित्त = नित्य। पाछइ, पाछे = पीछे, बाद में। वळि, वळे, भी, फिरि = फिर। पुणोवि = पुनरपि, फिर भी।

इम, इमि, एम, यूँ = ऐसे, यों। जिम, जिमि, जेम = जैसे। जिउँ, ज्यउँ ज्यु, ज्यूँ, जूँ = ज्यों। किम, किमि, केम = कैसे। किउँ, क्यउँ, क्यूँ = क्यों। किउँकरि = क्योंकर, कैसे। ज = ताकि। जेण, जेणि = जिससे, जिस कारण से। केण, केणि = किसलिये। तेण, तेणि, तिणि = इसलिये। तिम = त्यों, त्योंही। किमही = किसी तरह।

जे, जै, जइ, जो, जउ, जऊ, जय = यदि, जो। तो, तउ, तु, तुँ, त = तो। तोइ = तो भी। पिण = भी। ही, हीँ, हि, हूँ, ह, इ, ई, य = ही। न, नहि, नहिँ, नही, नहीँ, नाही, नवि, नव, ना, नि, ण, म = न, नहीं। म, मा, मत, मति, जिन = मत। मातही, मतिहि, मति = कहीं न।

अधिक, बहु = बहुत। जाँण, जाँणि, जाँणे, जाँणक = मानो। नहिँ = मानो। किर = किल, निश्चय ही, मानो। नीठ = कठिनता से। झटक = तुरंत। झाबकि = सहसा। साचेई = सचमुच। अपूठा = वापिस। काठी = मजबूती से। ओळग = अलग, दूर, प्रवास में। रूड़ा = भले ही, चाहे। अउझकइ = अचानक। खोडी खोडी = धीरे धीरे (?)।

ज, स, क, इ = जोर देने के लिये, या पादपूर्त्यर्थ, प्रयुक्त होनेवाले अर्थहीन अव्यय।

(२) संबंधबोधक

माँहि, मँइ, माँहि, माँही, महीँ, मझ मझि, मँझार, मँझारि = भीतर, में। कणी = पास, प्रति, लिये, को, से, में, का। सनमुख = सामने। सथ्थ, साथि, साथइ = साथ। विन, विना विण = बिना। असन्न = पास। ऊपर, ऊपरइ = ऊपर। आगळि = आगे। अतरे = भीतर, में। ओले = आड़ में। कज, काजि = लिये। कन्हे, कन्हइ, कन्हाँ = पास, प्रति, से। कारणइ = कारण, लिये। ढूकड़ा = पास। दिस = ओर। नेड़ि = पास। परइ = परे। पछइ = पीछे। पासइ = पास। परि = भाँति। भति = भाँति। भत्त = भाँति। भर, भरि = भर। लग, लगि, लगइ = तक। विच्च, विच्चि = बीच। वाँसइ = पीछे। साम्हा = सामने। साटइ = बदले। सिरि = पर। लियइ = लिये, कारण से।

(३) समुच्चयबोधक

अर = और। ने, नइ, नइँ, अनइ = और। च = और। भावइँ = चाहे। रूड़ा = चाहे। नवि = नहीं तो। किनाँ = या। का = या तो, या। कइ = या तो, या। क = कि, या। कि = कि, या।

(४) विस्मयादिबोधक

रे = रे, अरे। हे = हे। हइ हइ = हे हे, अरे अरे, हाय हाय। हउ हउ = हो, हो, अरे अरे, हाय हाय। हय हय = हे हे, हाय हाय। रह रह = चुप चुप। परिहाँ = पर हाँ, एक अर्थहीन अव्यय जो चान्द्रायणा छंद के चौथे चरण के पूर्व जोड़ दिया जाता है।

वर्तमान संस्करण

इस काव्य का वर्तमान सस्करण निम्नलिखित १७ प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया है।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इस काव्य के चार रूपातर मिलते हैं जिनमें नवर १ और नवर २ महत्वपूर्ण हैं। रूपातर नवर १ केवल दूहों में है और उसकी प्रतियाँ हमें बीकानेर राज्य में मिलीं। नवर २ मे कुशललाभ की चौपाइयाँ भी हैं। इसकी प्रतियाँ हमे विशेषतः जोधपुर से प्राप्त हुईं।

एकाध स्थान को छोड़कर हमने कथानक का क्रम बीकानेरीय क्रम के अनुसार रखा है। वही हमें युक्तियुक्त तथा प्राचीन ज्ञात हुआ।

प्रतियों का विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) रूपांतर नंबर १

१—(क) प्रति—यह प्रति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि रूपातर नवर १ की यह सबसे प्राचीन प्रति है। हमारे सस्करण का मुख्य आधार यही प्रति है। इसका लिपिकाल ठीक निश्चित नहीं पर जिस हस्तलिखित ग्रथ में यह पाई गई है उसमें इसके पहले और बाद मे लिखे हुए ग्रंथों का समय सवत् १७२० के आसपास का है। अतः इसका समय भी सवत् १७२० से १७३० के बीच का है। प्रति विशेष प्राचीन न होने पर भी इसमें पुराना, केवल दूहों का रूप पूरा सुरक्षित है, यही इसका महत्व है। इसकी वर्तनी पुराने ढंग की नहीं किंतु उत्तरकालीन राजस्थानी की है। इसका पाठ बहुत शुद्ध है। इसमें कुल दूहों की सख्या ३९५ है।

इसके विषय में यह ध्यान देने योग्य है कि इसमें धुरसबंध या प्रस्तावना के वे दूहे जो रूपातर न० २ मे मिलते है आरम्भ मे दिए हुए हैं। बीच मे चोपाइयाँ न होने से उनका कथासूत्र बराबर नहीं मिलता।

असली कथा रूपातर न० १ की भाँति गाहा से ही आरम्भ होती है। इसलिये ये धुरसबधवाले दूहे असगत और अस्थानस्थित out of place जान पड़ते है।

धुरसंबंध के बाकी दूहे (भ) प्रति में पाए जाते हैं पर वे सब लोगों को याद नहीं थे। कुशललाभ को भी केवल वे ही दूहे मिले जो इस (क) प्रति में हैं।

२—(ख) प्रति—यह प्रति (क) प्रति से बहुत कुछ मिलती है पर कहीं कहीं अंतर है—कुछ दूहे न्यूनाधिक हैं। इसका लिपिकाल सं० १७५० के लगभग है। अक्षर बहुत सुदर और पाठ शुद्ध है।

३—(ग) प्रति—इसका लिपिकाल सं० १७५२ है। इसका पाठ साधारणतया शुद्ध है। कथानक मे यह अधिकाश मे जोधपुरीय कथानक का अनुसरण करती है। पाठ भी जोधपुर की प्रतियों से मिलता है। पर जोधपुरीय प्रतियों की भाँति यह दूहा-चौपाइयों मे नहीं, किंतु केवल दूहों में है।

४—(घ) प्रति—इसका लिपिकाल सं० १८१८ है। इसका पाठ बहुत भ्रष्ट है। यह साधारणतः (ख) प्रति का अनुसरण करती है।

५—(त) प्रति—इसकी वर्तनी आधुनिक है। इसका लिपिकाल डाक्टर टैसीटरी ने संवत् १७१० से १७२० के बीच मे निश्चित किया है।

उक्त सब प्रतियाँ बीकानेर राज्य के राजकीय पुस्तकालय मे वर्तमान हैं।

६—(भ) प्रति—यह विशेषतः (क) से मिलती है, यद्यपि दूहे न्यूनाधिक हैं। इसका लिपिकाल लिखा नहीं है। पाठ शुद्ध है। इसकी विशेषता यह है कि इसके आरंभ में रूपातर नं० २ की भाँति धुरसंबध या प्रस्तावना भी है जो असली कथाभाग से बिलकुल अलग जान पड़ती है। यह धुरसंबंध रूपातर नं० २ की प्रतियों की भाँति दूहा चौपाइयों मे नहीं किंतु केवल दूहों में है। जान पड़ता है कि कुशललाभ को ये दूहे पूरे नहीं मिल सके तभी उसने कथासूत्र मिलाने के लिये चौपाइयाँ जोड़ीं। इस धुरसबंध में कुल १०८ दूहे हैं परतु बीच का एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से न० ५२ से न० ७६ तक के दूहे नष्ट हो गए हैं। पूरे दूहों का यह धुरसबध और किसी प्रति में नहीं मिलता।

यह प्रति हमे बीकानेर निवासी बाबू जयपालसिंह से प्राप्त हुई।

७—(न) प्रति—यह केवल दूहों में है परतु इसका कथानक मुख्यतया रूपातर नंबर २ से मिलता है। इसका प्रारभ भी गाहा से नहीं होता। आरंभ में धुरसंबध है जो केवल दूहों में है परतु जो (भ) के धुरसबंध से बहुत कम समानता रखता है। इसमें नए और बाद के जोड़े हुए दूहे बहुत से हैं। इसका लिपिकाल सवत् १७७१ है।

यह प्रति नागौर (मारवाड़) के एक श्वेतांबर जैन उपाश्रय की निजी ग्रंथशाला में वर्तमान है।

(२) रूपांतर नंबर २

८—(च) प्रति प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है। इसका लिपिकाल संवत् १६६६ है। इसका पाठ बहुत शुद्ध और वर्तनी प्राचीन तथा उत्तर-कालीन दोनों प्रकार की है, फिर भी प्राचीन वर्तनी की ओर अधिक झुकाव है। इसमें दूहे सब नहीं हैं। बीच बीच में कथासूत्र अनवच्छिन्न रखने के लिये कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं। जो दूहे हमने अन्य प्रतियों से लिए उनकी वर्तनी हमने इसी के अनुरूप कर दी है। इसके बीच के २५ से ३० तक के ६ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं।

यह प्रति जोधपुर की सुमेर-पब्लिक-लाइब्रेरी में वर्तमान है।

९—(ज) प्रति—यह (च) से मिलती हुई है पर नए दूहे भी बहुत से हैं। इसका पाठ शुद्ध है। इसका लिपिकाल स० १७८१ है।

यह प्रति जोधपुर के पुस्तकप्रकाश नामक राजकीय पुस्तकालय में वर्तमान है।

१०—(थ) प्रति—यह (च) से मिलती जुलती है। इसका पाठ शुद्ध है। लिपिकाल नहीं दिया गया है पर वर्तनी आदि को देखते हुए स० १७०० के आसपास की होगी।

यह प्रति बीकानेर के रॉगड़ी नामक मुहल्ले के बड़े जैन उपाश्रय के महिमा-भक्ति-भंडार में वर्तमान है।

इस रूपांतर की अन्य प्रतियाँ निम्नलिखित हैं—

११—(छ) प्रति—यह (च) से नकल की गई जान पड़ती है पर इसका पाठ महाभ्रष्ट है। संपादन के लिये यह किसी काम की नहीं।

१२—(ठ) प्रति—यह बहुत आधुनिक है।

१३—(द) प्रति
१४—(ध) प्रति } —ये दोनों भी बहुत आधुनिक हैं। इनमें सैकड़ों दूहे नए हैं।

(३) रूपांतर नंबर ३

१५—(ड) प्रति—यह प्रति अधूरी है। इसका आरंभ का बहुत सा भाग नष्ट हो गया है।

१६—(ट) प्रति—यह भी विशेष प्राचीन नहीं।

(४) रूपांतर नंबर ४

१७—(म) प्रति—यह प्रति गुजराती में आनद काव्य महोदधि, भाग ७, नामक पुस्तक में छप चुकी है। इसका लिपिकाल स० १८०१ है। पाठ बहुत अशुद्ध है।

विशेष—इस सस्करण मे केवल (क, ख, ग, च, ज, झ) प्रतियों के ही पूरे पाठातर लिए गए हैं। अन्य प्रतियो के विशेष महत्त्वपूर्ण न होने से उनके केवल महत्त्वपूर्ण पाठातर ही लिए गए हैं। (थ) प्रति के—महत्त्वपूर्ण होने पर भी, देर से मिलने के कारण—सब पाठ नहीं लिए जा सके।

इस सस्करण की वर्तनी हमने (च) प्रति के अनुसार सर्वत्र प्राचीन रखी है। जो दूहे प्राचीन वर्तनी मे नहीं मिले उनकी वर्तनी भी प्राचीन कर दी गई है। छद की मात्राएँ पूरी रखने के लिये आवश्यकतानुसार दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया गया है (उस समय भी वह बोला ह्रस्व ही जाता था पर लेखक लोग प्रमाद एव प्राचीनता प्रेम के कारण दीर्घ ही लिखते रहे)। ष अक्षर को उच्चारण के अनुसार सर्वत्र ख कर दिया गया है। पाठातरों मे ये परिवर्तन नहीं किए गए हैं।

नोट—यह सस्करण सब छप जाने पर और प्रस्तावना लिख जाने के बाद रूपांतर नं० २ की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रति प्राप्त हुई। अब तक प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है। इसका लिपिकाल सं० १६५१ है। खेद है कि हम इस प्रति का उपयोग नहीं कर सके। आगामी संस्करण में इससे लाभ उठाया जायगा और परिशिष्ट में इसे उद्धृत कर दिया जायगा। [यह प्रति (च) और (थ) प्रतियों से बहुत अधिक समानता रखती है और पाठ में बहुत ही कम स्थानों पर यत्किंचित् भेद पाया जाता है।]

सहायक पुस्तकों की सूची

कोष

(१) हिंदी शब्दसागर (नागरीप्रचारिणी सभा, काशी)।

(२) हरगोविंदास सेठ—पाइअ-सद्द-महण्णओ, प्राकृत का बृहत् कोष ।

(३) आपटे—सस्कृत अँगरेजी कोष ।

(४) कविराज मुरारिदान—डिंगळकोष (रगनाथ प्रेस, बूँदी) ।

(५) पाइअलच्छी नाममाला नामक प्राकृत कोष ।

अन्य पुस्तकें

(१) रामचंद्र शुक्ल—जायसी ग्रथावली ।

(२) श्यामसुदरदास—कबीर ग्रथावली ।

(३) बाबूराम मिश्र—विद्यापति की कीर्तिलता ।

(४) मुनि सपतविजय—आनंद काव्य महोदधि, मौक्तिक ७ (गुजराती) ।

(५) मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ, भाग १

(६) डाक्टर पी० गुणे—भविस्सयत्त कहा ।

(७) हरप्रसाद शास्त्री—बौद्ध गान ओ दोहा ।

(८) मुनि जिनविजय—प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ ।

(९) केशव हर्षद ध्रुव—पंदरमा शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य ।

(१०) पी० एल० वैद्य—जसहर चरिउ (कारंजा जैन सीरीज) ।

(११) ,, ,, —हेमचद्र का प्राकृत व्याकरण ।

(१२) प्रो० हीरालाल जैन—नायकुमारचरिउ ।

(१३) ,, ,, —सावय धम्म दोहा ।

(१४) मुनि जिनविजय—कुमारपाल प्रतिबोध ।

(१५) ,, ,, —प्रबंध चिंतामणि ।

(१६) गौरीशकर ओझा—राजपूताने का इतिहास ।

(१७) ,, ,, —टाड राजस्थान ।

(१८) रामनारायण दूगड और ओझा—मुँहणोत नैणसी की ख्यात, भाग १—२ ।

(१९) महाराज जगमालसिंहजी, ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक—वेलि क्रिसन रुकमणीरी राठोड़राज प्रिथीराजरी कही (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग) ।

(२०) नारोत्तमदास स्वामी—राजस्थान रा दूहा (पिलाणी राजस्थानी सीरीज) ।

21. F. J. Child—English & Scottish Ballads.
22. Sargent & Kittredge—F. J. Child's English & Scottish Ballads, Students' Cambridge Edition (Harrap).
23. T. F. Hendersom—The Ballad in Literature (Cambridge Manual Series).
24. L. Abercrombie—Essay on Epic (Art & Craft Series).
25. F. Sidgwick—Essay on Ballad (Art & Craft Series).
26. Article on Epic in Encyclopaedia Britannica.
27. Article on Ballad in Encyclopaedia Britannica.
28. Dr. L. P. Tessitori—Progress Reports on the Work done in connection with the Bardic & Historical Survey of Rajputana for the years 1914 to 1918 (Published by the Asiatic Society of Bengal.)

पत्रिकाएँ

(१) सुधा ।

(२) वीणा, भाग १, अंक ४ (पौष १९८४) ।

(३) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, में श्री चंद्रधर गुलेरी का पुरानी हिंदी नामक निबंध ।

(४) जैन-साहित्य-संशोधक, भाग २ ।

(५) वाक् सौदर्य (गुजराती)—संवत् १९७३ ।

(६) साहित्य (गुजराती)—सन् १९१४–१९१५ ।

(७) लीडर (अँगरेजी)—५ एप्रिल सन् १९३१ का अक ।

(८) मॉडर्न रिव्यू (अँगरेजी)—एप्रिल सन् १९३१ का अक ।

(९) हिंदुस्तानी, भाग ४ अंक (अक्टूबर १९३४), में नरोत्तमदास स्वामी द्वारा लिखित डिंगळ और काव्यदोष नामक निबध ।

पुस्तिकाएँ, विवरण इत्यादि

(१) विश्वेश्वरनाथ रेउ—ढोला मारवण की कथा का और उसके आधार पर बने चित्रों का खुलासा (जोधपुर) ।

(२) रामकर्ण आसोपा—एकादश हिंदी साहित्य संमेलन का कार्य विवरण, भाग २, मे डिंगळ कविता नामक निबंध ।

(३) मुंसिफ देवीप्रसाद—गोविंद गिल्लाभाई के साथ ढोला मारवणी की कथा के संबंध मे पत्रव्यवहार (हस्तलिखित) ।

मूल पाठ

(हिंदी अनुवाद और पाठांतर सहित)

ढोलामारूरा दूहा

(कथारंभ)

गाहा

पूगळि पिंगळ राऊ, नळ राजा नरवरे नयरे ।
अदिठा दूरिठ्ठा ये, सगाई दईय संजोगे ॥१॥

दूहा

पूगल देस दुकाळथियुँ, किणहीँ काळ विसेसि ।
पिंगळ ऊचाळउ कियउ नल नरवरचइ देसि ॥२॥
नळराजा आदर दियउ, जउ राजवियाँ जोग ।
देस वास सवि रावळा, अइ घोड़ा अइ लोग ॥३॥

१—पूगल नगर में पिंगल और नरवर नगर मे नल राजा (राज्य करते) थे । (यद्यपि) एक ने दूसरे को नहीं देखा था और दूर दूर रहते थे (फिर भी) दैवयोग से (उनमे) सबंध हुआ ।

२—पूगल देश में किसी समय विशेष मे अकाल पड़ा । (इसलिये बाध्य होकर) राजा पिंगल ने नरवर के राजा नल के देश को प्रयाण किया ।

३—राजा नल ने (उनका) ऐसा आदर किया जो राजाओं के योग्य हो और उनके देश में निवास (के लिये) महल, घोड़े और नौकर चाकर आदि) सब दिए ।

१—पूगळ (क. ख. ग) । नर (ख) । नयवरे (ख) नलवरे (ठ) । दिठदूरे (ग) दुरिठा (घ. ठ) दूरठाय (क) । सग्गाई । दइय । देव (ग) देइ (ठ) । संयोगे (घ) ।

२—पुंगळ (ठ) । थयौ । किनहीं (ग) । विसेषि (ख) । ऊचाळा (क. ठ) । कीया (क. ठ.) । नर (ग) । चैं (ठ) । देस ।

३—जियुं राजा=जउ राजवियाँ (ठ) । सहि (क. ब. ठ) । सहु (ख) । अे । अै (घ) । वै=अइ (घ) । लोक (ग. घ) ।

(ढोला-मारू-विवाह)

नरवर नळराजा तणउ, ढोलउ कुँवर अनूप।
रॉणि राउ पिंगळ तणी, रीझी देखे रूप ॥४॥
पिंगळ पुत्री पदमिणी, मारवणी तिणि नाँम।
जोड़ी जोइ विचारियउ, धन्न विधाता कॉम ॥५॥
सारीखी जोड़ी जुड़ी, आ नारी अउ नाह।
राँणी राजासूँ कहइ, कीजइ अउ वीमॉह ॥६॥
राजा रॉणीनूँ कहइ, वात विचारउ जोइ।
आल विखइ द्याँ दीकरी, हॉसउ हसिसी लोइ ॥७॥

४—नरवर के राजा नल के ढोला नामक अनुपम कुमार था। राजा पिंगल की रानी उसके रूप को देखकर रीझ गई।

५—पिंगल के एक पद्मिनी कन्या थी। मारवणी उसका नाम था। (उसकी और ढोला की अनुरूप) जोड़ी देखकर (रानी ने) विचारा कि विधाता की यह रचना धन्य है।

६—रानी राजा से कहती है—यह अनुरूप जोड़ी बनी है—यह वधू और यह वर। यह विवाह कीजिए।

७—(उत्तर में) राजा रानी से कहता है—देखभालकर यह बात विचारो। आज विपत्ति के समय मे (यदि) कन्या को दें तो लोग हँसी करेंगे।

४—नळवर (ग. घ)। तणौ (क)। ढोलौ (ग) ढोलो (घ)। कुवर (क. ग) कुमर (झ)। राँणी (क. ख. ग. घ)। राव (ख. ग.) राय (ठ) राणी पिंगल रावरी (ट)। देपे रीझी (क) सुदेपे रीझी (घ) रीझै देखी (झ) देपै रीझी।

५—पूत्रि (क. घ)। पदमणी (ग) मारवणि (ठ)। इण (ग. घ)। तिण (झ) तिणै (ठ)। तय मारवणी (ट)। देख=जोइ (ट)। विचारिज्यौ (क) निमारियो (घ) विसार कर (ट)। धन्य (ख) धन (ग. घ)।

६—ऊ=अउ (क. ख. झ. ठ) एह (ग)। वीवाह (क. घ) वेमाँहि (ग)।

७—राणी राजा (ग)। सु (क. ख. ग. घ. ठ) सूँ (ग)। विचारी (क. घ. ठ) विचारे (ख)। जोय (ट)। हसौ (घ)। हससी (ग)। लोक (घ)।

अंब तजइ नहि कोइलाँ, सरवर सालूराह।
राज हिवइ मा पाँतरउ, आ धण द्यउ अवराँह ॥८॥
ज्यूँ थे जाणउ त्यूँ करउ, राजा आइस दीध।
राँणी राजानूँ कहइ, ओ म्हाँ नातरउ कीध ॥९॥
ढोलउ मारू परणिया, वरदळ हुवउ उछाह।
आ पूगळचा पदमिणी, अउ नरवरचउ नाह ॥१०॥
पिंगळ पूगळ आवियउ, देसे थयउ सुगाळ।
तेणि न राखी सासरइ अजे स मारू बाळ ॥११॥

८—(रानी कहती है—) कोयलें आम्र वृक्ष को नहीं छोड़तीं और मेंढक सरोवर को नहीं छोड़ते। हे राजन्, अब पागलपन मत करो, यह कन्या दूसरों को दो।

९—राजा ने आज्ञा दे दी कि जैसा तुम (उचित) समझो वैसा करो। (इस पर) रानी राजा से कहती है कि हमने यह संबंध किया।

१०—ढोला और मारू का परिणय हुआ। विवाह उत्सव धूमधाम से हुआ (या, दो श्रेष्ठ कुलों मे संबंध हुआ)—यह पूगल की पद्मिनी है तो वह नरवर का अधिपति।

११—राजा पिंगल पूगल को लौट आया। देश में सुकाल हुआ। अभी तक मारवणी बालिका ही है (यह समझकर) उसे ससुराल में नहीं रखा।

८—कोइली (क. ठ) काइली (घ)। सारूराह (ख)। मत राजा थे पातरौ (ख) मत राजा ये पंतरौ (ग) मत राजा ये पतरै (घ) थे राजा मत पांतरौ (झ) धन (ग) दै (घ) द्यै (ठ)।

९—ज्ये (घ)। आदेश (क) आहिस (ग) आदैस (घ)। दिध (ग)। सूँ=नूँ (क. ख. ग. घ)। राजासूँ राणी (घ) नातौ (ख)। किध (ग)।

१०—हूवौ (ख) हुओ (ग)। पिगळ (क)। पदमणी (ग. घ)। यो=अउ (घ)।

११—पुंगळ=पूगळ (ठ)। आवियो (क. घ)। आवियै (ख. ग)। हुओ (क) हूओ (ग) हूवौ (घ)। सुकाळ (क. ख. घ)। तेण (क) तेणै (ग) तिण (घ)। देखे (क. ख) दिखै (घ)=अजे स।

ढो० मा० दू० १३ (११००—६२)

(मारू का स्वप्न में पतिदर्शन और विरहाकुलता)

जिम जिम मन अमलै किअइ, तार चढती जाइ।
तिम तिम मारवणी तणइ, तन तरुणापउ थाइ ॥१२॥
हंस चलण, कदळीह जंघ, कटि केहर जिम खीण।
मुख सिसहर खंजर नयण, कुच श्रीफळ, कँठ वीण॥१३॥
असइ आरखइ मारुवी सूती सेज बिछाइ।
साल्हकुँवर सुपनइँ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ॥१४॥
ऊलंबे सिर हत्थड़ा, चाहंदी रसलुब्ध।
विरह महाघण ऊमटयउ, थाह निहाळइ मुग्ध ॥१५॥

१२—ज्यों ज्यों मन अधिकार जमाता हुआ ऊँचा चढ़ता जाता है त्यों त्यों मारवणी के तन में यौवन प्रकट होता जाता है।

१३—मारवणी की चाल हंस की जैसी, जघाएँ कदली (के खंभ) जैसी, कटि सिंह की जैसी क्षीण, मुख चद्रमा जैसा, नयन खजन जैसे, कुच श्रीफलों के सदृश और कठ वीणा के समान (मनोहर) हो गए।

१४—ऐसी (यौवनागम की) अवस्था में मारवणी सेज बिछाकर सोई हुई थी। स्वप्न में साल्हकुमार (ढोला) मिला (और वह) जागकर (प्रिय-वियोग के कारण) निःश्वास भरने लगी।

१५—सिर को हथेली पर रखे हुए, प्रेमरस में निमग्न हुई मुग्धा मारवणी, जो विरहरूपी प्रलयकालीन मेघ उमड़ आया है उसकी, थाह खोजती है।

१२—अमलाँ (ग) अमलैं (घ) कीयाँ (ग. घ) कीऐ (ठ) ए (व)। तार=तार (घ)। जाय (घ)। तरुणापो (ख)।

१३—कदळीय (ख. ग)। केहर अति कटि (ख) केहर जिम कटि (ग) ज्युँ (क)। ससि (ख. ग)। खंजन (झ)। नयन (ख. ग)।

१४—ऐसै आरिष (क. घ. ठ)। मारवी (ख. ग) मारूवी (ठ)। बिछाय (क. घ.) साल (ग)। कुवर (क. ग. घ)। सुपनै (ग. घ)। जाग (क. ग. घ)। खाय (घ)।

१५—ऊभ्वंवी (क) ऊबंवी (ख. घ) ओवंवी (ग) उवुंवी (झ) जंववी (ठ) ऊवंवी (व)। हथड़ा (ख. ग. घ)। चहंदी (ग) चाहदी (ठ)। लुध (ख. ग. ठ)। ऊमड्यो (ख)। मूध (क) मूंध (ख)।

उक्कंबी सिर हत्थड़ा, चाहंती रसलुब्ध ।
ऊँची चढि चातृंगि जिउँ मागि निहाळइ मुध्ध ॥१६॥
थाह निहालइ, दिन गिणइ, मारू आसालुध्ध ।
परदेसे घाँघल घणा, विखउ न जाणइ मुध्ध ॥१७॥
ऊनमियऊ उत्तर दिसइँ, गाज्यउ गुहिर गँभीर ।
मारवणी प्रिउ संभरयउ, नयणे वूठउ नीर ॥१८॥
मारूनूँ आखइ सखी, आज स काँइ उदास ।
काँम चित्रॉम जु दिट्ठ मइँ, रूप न भूलइ तास ॥१९॥

१६—ग्रीवा को हाथों पर उठाए हुए प्रेम में लुब्ध हुई मुग्धा मारवणी चिंतन करती हुई ऊँची चढकर चातक की भाँति मार्ग को देखती है।

१७—(प्रिय मिलन की) आशा से लुब्ध मारवणी (विरह की) थाह खोजती है और दिन गिनती है। परदेश में बखेड़े बहुत है पर यह मुग्धा (विदेशयात्रा के) कष्ट को नहीं जानती।

१८—उत्तर दिशा मे मेघ उमड़ आए और वे गहन गंभीर स्वर से गरजे। (ऐसे समय) मारवणी ने प्रियतम को स्मरण किया (और उसके) नयनो से जल बरसने लगा।

१९—मारवणी से सखी कहती है—आज कैसी उदास हो ? (मारवणी उत्तर देती है—) काम (के समान सुदर) चित्र मेरी दृष्टि में है, मुझे उसका रूप नहीं भूलता।

१६—ऊबंबी (ज)। ऊँची वेसर हत्थडी (ध)। सइ=सिर (थ)। ऊँची चढवा नाक ज्युं (ग) उची चढिवा ता कहइ (च) ऊँची चढ वार्तां कहै (छ) उची चढि चातक ज्युँ (ज)। माग (ग)। निहाळै (क. ख. ग)। मुंद्ध (च)।

१७—चाह (घ)। नहाळै (घ) गणै (ग)। लूध (क) लुध (ख. घ)। परदेसाँ (ख. ग)। वावल (घ)। परदेसाँ गढ लंवणी (ध)। मूध (क) मुंध (ख) मुध (घ)।

१८—ऊनमीयौ (क. व)। उनमियो (ग) ऊनवीयौ (ख)। दिसा (ख. ग. च. ज. थ)। उत्तर दिसा ऊंनमियो (ज)। गाज्यौ (क. ख) गाड्यौ (ग) गाजौ (घ) गाजे (ज) गाजे (थ)। गभीर (च)। प्रिय (क. घ) प्री (ख. च) प्रीय (ज) प्रिय (थ)। संभर्‍यौ (क. ख. ग. घ) सांभर्‍यौ (थ)। नयणाँ (ग)। वुठे (घ)। मूक्यउ (च. ज) मूक्यो (थ)=वूठउ।

१९—मैं (ग)। ज=जु (ख)। हिव मै=दिट्ठ मइँ (ग)। भुली (ग)।

अम्हाँ मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम ।
तइँ अणदिट्ठा सज्जणाँ, किउँ करि लग्गा पेम ॥२०॥
जे जीवण तिन्हाँ-तणाँ तन्न ही माँहि वसंत ।
धारइ दूध पयोहरे वाळक किम काढंत ॥२१॥
ससनेही समदाँ परइ, वसत हिया मंझार ।
कुसनेही घर आँगणई, जाँण समंदाँ पार ॥२२॥
सखिए सज्जण वल्लहा, जइ अणदिट्ठा तोइ ।
खिण खिण अंतर संभरइ, नहीं विसारइ सोइ ॥२३॥
मारूनूँ आखइ सखी, एह हमारी बुज्झ ।
साल्हकुँवर सुहिणइ मिल्यउ,सुंदरि,सउ वर तुज्झ ॥२४॥

२०—सखियाँ इस प्रकार कहती हैं—हमारे मन मे आश्चर्य हुआ कि तूने प्रियतम को नहीं देखा (फिर) तेरा प्रेम उनसे क्योंकर हुआ ।

२१—मारवणी उत्तर देती है—जो जिनका जीवन है वह उनके तन मे ही वसता है। पयोधरों मे से दूध की धाराओं को (जो उसका जीवन है) बालक किस प्रकार निकाल लेता है ?

२२—सच्चा प्रेमी समुद्र पार होने पर भी हृदय मं वसता है और कपट-स्नेही घर के आँगन मे होते हुए भी मानो समुद्र के पार है ।

२३—हे सखियो, प्यारा साजन यद्यपि नहीं देखा हुआ है तो भी उसे मेरा हृदय क्षण क्षण मे स्मरण करता है और उसे नहीं भूलता है ।

२४—मारवणी से सखियाँ कहती हैं कि हमारी समझ में तो यह आता है कि साल्हकुमार तुझे स्वप्न मे मिला है। हे सुदरी, वह तुम्हारा पति है ।

२०—अमाँ(ख. ग) अम्माँ (ग) । अचिरज (व)। हुवौ (ख)। तैं (क. व) तं (ग) । सजणाँ (ग) सजणा (व)। क्युँ (ख. ग. व) । कर (व) । लगा (ग) लगो (व) । प्रेम (ग) ।

२१—जीवन (क. ख. ग) । जेन्हाँ (व) । ते तन=तन ही (ख. ग) । माह (व) । वसंति (ख) । पयोधरे (ख) पयोहराँ (ग) । केम (क. ख) । काढंति (ख) ।

२३—सखी (ख) सखी हे (ग)=सखिए । सजण (ख. ग. व) । वलहा (ख. व) जो (व) । अदिठा (ख) अणदीठी (व)। जोइ=तोइ (ख) । खणखणि (व)। संभरूँ (ग) । नह (व) । विसारूँ (क. ग. व) विसारे (ख) तोइ (क. ख. व) ।

२४—ए (व) । अम्हीरी (व) । बुझ (ख. व) । साल (व) । कुमर (ख)। सुपनै (ख. व) । सुंदर (ख. थ) । तुझ (क. ख. व.) ।

सखीवयण सुंदरि सुण्या, उठी मदन की झाळ ।
सुंदरिनूं सज्जण विरह ऊपन्नउ ततकाळ ॥२५॥
हे सखिए, परदेस प्री, तनह न जावइ ताप ।
बाबहियउ आसाढ जिम विरहणि करइ विलाप ॥२६॥
बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव ।
जब ही बरसइ घण घणउ, तबही कहइ प्रियाव ॥२७॥
बाबहिया, चढि गउखसिरि, चढि ऊँचइरी भीत ।
मत ही साहिब बाहुड़इ, कउ गुण आवइ चीत ॥२८॥
बाबहिया, चढि डूगरे, चढि ऊँचइरी पाज ।
मत ही साहिब बाहुड़इ, सुणि मेहाँरी गाज ॥२९॥

२५—सुदरी (मारवणी) ने सखियों के वचन सुने तो (हृदय में) काम की ज्वाला उठ खड़ी हुई और उस सुदरी को तत्काल प्रियतम का विरह उत्पन्न हुआ ।

२६—हे सखियो, प्यारा परदेश में है, शरीर का ताप नहीं जाता। जैसे पपीहा आषाढ मे विलाप करता है वैसे ही विरहिणी विलाप करती है ।

२७—पपीहा और विरहिणी दोनों ही का एक स्वभाव है। जब जब मेघ बरसता है तभी ये दोनों 'पी आव', 'पी आव' पुकारते हैं।

२८—हे पपीहे, गोखे पर चढ या ऊँची भीत पर चढ (और टेर लगा) प्रियतम को स्यात् कोई गुण (बात) याद आवे और आते हुए वे कहीं लौट न जायँ ।

२९—हे पपीहे, पहाड़ी पर चढ या सरोवर की ऊँची पाज पर चढ़ (और बोल), जिससे मेघों की गर्जना सुनकर प्रियतम कहीं लौट न जायँ ।

२५—संदर (घ) । कू (क. घ)=नूँ ।

२६—हे सखी (क) सखी हे (ख)=हे सखिए । प्रीय (क) बाबीहौ (ख) । ज्यूँ (घ) ।

२७—बावहिये (क) बाबीहे (ख) बाबीहो (ज) । नें (ज) विरहिणी (क. ग) । दोनूँ (क) इयाँ दुइ (ग) दोन्युँ (ज) सभाव (क. ज) सुभाव (ग) । घन (क ग) । तब=तबही (क. ख) । पुकारै (क. ठ) । प्रीय (क. ठ) प्री आव (ख) प्रीव आव (ज) ।

२८—बाबीहा (क. ख) । चढ (ग) । डूँगराँ (ग)=गउख सिरि । गौख (ख) । सिर (क. ख-ग) । चढ (ग) । रखैज=मत ही (ज) । मति ही (ख. ग) ।

२९—बाबीहा (क ख) । डूँगराँ चढि (क) । डूँगराँ (ख) चढ (ग) । ऊचेरी (ग) । सुण (ग) । की (क. ख) कोइ (ज)=री ।

सोरठा

बाबहिया, तूँ चोर, थारी चाँच कटाविसूँ।
राति ज दीन्ही लोर, मइँ जाण्यउ प्री आवियउ ॥३०॥

दूहा

बाबहिया निलपंखिया, मगरि ज काळो रेह।
मति पावस सुणि विरहणी तळफि तळफि जिउ देह ॥३१॥
बाबहिया तरपंखिया, तइँ किउँ दीन्ही लोर।
मइँ जाण्यउ प्रिउ आवियउ ससहर चंद चकोर ॥३२॥
बाबहिया निलपंखिया, वाढत दइ दइ लूण।
प्रिउ मेरा मइँ प्रीउको, तूँ प्रिउ कहइ स कूण ॥३३॥

३०—हे पपीहे, तू ठग है, मैं तेरी चोंच कटवाऊँगी। रात को तूने टेर लगाई तो मैंने जाना कि प्रियतम आ गए।

३१—हे नीले पंखोंवाले पपीहे, तेरी पीठ पर काली रेखाएँ हैं। (तू मत बोल), वर्षा ऋतु में तेरा शब्द सुनकर विरहिणी कहीं तड़प तड़पकर प्राण न दे दे।

३२—हे गहरे रंग के पंखोंवाले पपीहे, तूने क्यों टेर लगाई? (तेरी टेर सुनकर) मैंने समझा कि (मुझ जैसे) चकोरों का शशांकधर चंद्र (अर्थात् मेरा प्रियतम) आ गया।

३३—हे नीले पंखवाले पपीहे, तू नमक लगा लगाकर मुझे काट रहा है। 'पिउ' मेरा है और मैं 'पिउ' की हूँ, भला तू 'पिउ पिउ' कहनेवाला कौन है?

३०—बावीहा (ख)। तोरि=थारी (क)। चूँच (ख, ग) चंच (घ) चुंच (ज)। कटाइस्युँ (ख) कटाइसुँ (ग)। रात (ग)। ज्रु (ख)। लोह (ग) हलोर (घ) रोल (ज)=लोर। प्रीय (ग)। (ज) में यह सोरठा नहीं किंतु दोहा है।
३१—बावीहा (ख) मगर (क, ग)। जु (ख)। मत (क, ग)। पदमणी (ज) तरफि तरफि (क) तरफ तरफ (ग)। जीव (ख) जीव (ज)।
३२—केवल (ग) में।
३३—चांच कटायुँ पपिहरा ऊपर लाऊँ लूण (घ)।

बाबहिया रतपंखिया, बोलइ मधुरी बाँणि।
काइ लवंतउ माठि करि, परदेसी प्रिउ आँणि ॥३४॥
बाबहिया प्रिउ प्रिउ न कहि, प्रिउ को नाम न लेह।
काइक जागइ विरहणी, प्रीउ कह्याँ जिउ देह ॥३५॥
बाबहिया डूँगर-दहण छाँडि हमारउ गाँम।
सारी रात पुकारियउ लइ लइ प्रिउकउ नाँम ॥३६॥
[चहुँ दिस दामिनि सघन घन, पीउ तजी तिण वार।
मारू मर चातग भए, पिउ पिउ करत पुकार ॥ ३७ ॥
पावस आयउ साहिबा, बोलर लागा मोर।
कंता, तूँ घरि आव नवि, जोबन कीधउ जोर ॥३८॥

३४—हे लाल पखोंवाले पपीहे, तू मीठी वाणी बोलता है। तू या तो बोलना बद कर दे या मेरे परदेशी प्रियतम को यहाँ ला दे।

३५—हे पपीहे, तू पिउ 'पिउ' न कह, पिउ का नाम मत ले। कोई विरहिणी जाग रही होगी। वह तेरे 'पिउ' कहने से प्राण देगी।

३६—पर्वत (जैसे कठोरहृदय) में भी जलन उत्पन्न करनेवाले पपीहे, हमारा गाँव छोड़ दे। तू रातभर प्रियतम का नाम ले लेकर पुकारता रहा है (क्या तो भी नहीं अघाया?)।

३७—चारों दिशाओं मे बादलो मे घनी बिजली (चमक रही) है। ऐसे समय में प्रियतम ने (मारवणी को) छोड़ दिया। वही मारवणी मानो मरकर चातक हो गई और अब 'पिउ पिउ' की पुकार कर रही है।

३८—हे प्रियतम, वर्षा ऋतु आ गई, मोर बोलने लगे। हे कंत, तू अब घर आ, यौवन ने जोर किया है।

३४—बाबीहा (ख) बाबीहउ (च) बाबीहा (थ)। निल=रत (क ख)। बग चंचड़ी (च) बग चचडी (ज) चंगी चंचडी (थ)=रत पखिया। बाण (ग) वाणि (च)। का (ख. ग.) काइ (च) कै (ज)। बोलंतौ (क ख) लवइँ तूँ (थ)। मिठि (च) महठि (ज) सुठि (थ)। कइ (ग च) घरि राज्यँद (क) राजिद वर (ख) घरि राजिद (ग)। प्री परदेसाँ (च)=परदेसी प्रिउ। परदेस प्रियाण (थ) आँण (ख. ग)।

३५—केवल (ग) में है।

३६—बाबीहा (ख)। डुंगर (ज) पंजर (द)। हमारा (ज)। प्रीय (क) प्रीयु (घ)।

३८—केवल (म) में।

गिरिवर मोर गहक्कियां, तरवर मूक्या पात।
धणियाँ धण सालण लगा, वूठैंतो वरसात ॥३९॥
राजा, परजा, गुणियजण, कविजण, पंडित, पात।
सगळाँ मन ऊछव हुअउ, वूठैंतो वरसात ॥४०॥
ऊनमि आई वहळी, ढोलउ आयउ चित्त।
यो वरसइ रितु आपणी, नइण हमारे नित्त ॥४१॥
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ मेड़ी ऊपर मेह।
ते विरहिणि किम जीवसे, ज्याँरा दूर सनेह ॥४२॥
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ काळी कंठळि मेह।
हूँ भीजूँ घर आँगणइ, पिउ भीजइ परदेह ॥४३॥
बीजुळियाँ चहलावहलि आभइ आभइ एक।
कदी मिलूँ उण साहिबा कर काजळ की रेख ॥४४॥]

३९—पावस के बरसते ही पर्वतों पर मोर उल्लास में भर उठे। (वर्षाऋतु ने) तरुवरों को पत्ते दिए। (और) विरहिणी स्त्रियों को पतियों की याद सालने लगी।

४०—वर्षा के बरसते ही राजा, प्रजा, गुणी, कविजन, पंडित और वृक्षों के पत्ते—इन सबके मन में उल्लास हुआ।

४१—बादल उमड़ आया (और) ढोला हमारे चित्त में (उमड़) आया। बादल तो अपनी ऋतु में ही बरसता है (परंतु) हमारे नेत्र नित्य बरसते रहते हैं।

४२—उत्तर दिशा की ओर अटारी पर मेह उमड़ आया। अब वह विरहिणी जिसका प्रेमी दूर है किस प्रकार जिएगी?

४३—काली कंठुली (जैसी कोर) वाला मेघ उत्तर दिशा की ओर उमड़ आया है। मैं घर के आँगन में भीग रही हूँ (और मेरा) प्रियतम परदेश में भीग रहा है।

४४—बादल बादल में एक एक करके बिजलियों की चहलपहल हो रही है। मैं भी नेत्रों में काजल की रेखा लगा करके प्रियतम से कब मिलूँगी?

३९—केवल (म) में।
४०—केवल (म) में।

बीजुळियाँ चहलावहलि आभइ आभइ च्यारि ।
कद रे मिलउँली सज्जना लाँबी बाँह पसारि ॥४५॥
बीजुळियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि ।
कद रे मिलउँली सज्जना कस कंचूकी छोडि ॥४६॥
गिरह पखालण, सर भरण, नदी हिंडोलणहारि ।
सूती सेजइँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥४७॥
दादुर मोर टबक्क घण, बीजलड़ी तरवारि ।
सूती सेजइँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥४८॥
जळ थळ, थळ जळ, हुइ रह्यउ, बोलइ मोर किँगार ।
स्रावण दूभर हे सखी, किहाँ मुझ प्राण-अधार ॥४९॥

४५—बादल बादल मे चारों ओर बिजलियों की चहलपहल हो रही है। अरे मैं भी (इनकी तरह) लबी भुजा पसारकर अपने प्रियतम से कब मिलूँगी ?

४६—बादल बादल की कोर पर बिजलियों की चहलपहल हो रही है। अरे, मैं भी कचुकी के बधन खोलकर अपने प्रियतम से कब मिलूँगी ?

४७—पर्वतो को प्रक्षालन करनेवाली सरोवरों को भर देनेवाली और नदियों को झकझोरनेवाली इस ऋतु मे मै अकेली सोई हुई हूँ। अरे दैव ! अरे दैव ! मै हा हा खाती हूँ, मुझे मत मार।

४८—दादुर और मोर का घना शब्द हो रहा है। बिजली तरवार है। मैं अकेली सेज पर सोई हुई हूँ। अरे दैव, अरे दैव, मै हा हा खाती हूँ, मुझे मत मार।

४९—(इतना जल बरस रहा है कि) जलाशय स्थल (जैसे) और स्थल जल (जैसे) हो रहे हैं (अर्थात् दोनों एकाकार हो गए हैं) और (तालाब के) करारों पर मोर बोल रहे हैं। हे सखी, यह श्रावण का मास (मेरे लिये) दुस्सह्य हो रहा है, मेरा प्राणाधार कहाँ है ?

४५—सज्जनो (च)। झबूकियाँ (न)। जाइ मिलीजै (न)।

४६—सज्जनों (च)।

४७—झीलोलण (द)=हिँडोलण।

४८—सेजइ सूती प्री परदेसडइ तर्फ तर्फ दइव म मारि (च)।

बिज्जुळियाँ नीलज्जियाँ, जळहर तूँ ही लज्जि।
सूनी सेज, विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥५०॥
राति सखी इणि ताल मइँ काइ ज कुरळी पंखि।
उवै सरि, हूँ घरि आपणइ, बिहूँ न मेळी अंखि ॥५१॥
ए सारस कहिजइ पसू पंखी केरा राव।
उवै बोल्या सर ऊपरइ, थाँ कीधी अणुराव ॥५२॥
राति जु सारस कुरळिया, गुंजि रहे सब ताल।
जिणकी जोड़ी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल ॥५३॥

५०—बिजलियाँ तो निर्लज्ज हैं। हे जलधर, तू ही लज्जित हो। मेरी शय्या सूनी है, मेरा प्यारा विदेश में है (इसलिये) मधुर मधुर शब्द से गरज।

५१—हे सखी, रात को इस सरोवर में किसी पक्षी ने कलरव किया। वह सरोवर में और मैं अपने घर में—हम दोनों ही की आँख नहीं लगी।

५२—सखी कहती है—ये पक्षियों के राजा सारस आखिर पशु ही कहलाते हैं। वे सरोवर पर बोले और तुमने उनके शब्द का अनुकरण किया।

५३—रात को जो सारस कुरलाए (करुण स्वर में बोले) तो सब सरोवर गूँज उठे। भला जिनकी जोड़ी बिछुड़ गई है उनकी क्या दशा होती होगी?

५०—मेहा खरो निळज्ज=जळहर इ० (घ)। सुंदर=सूनी (ध)।

५१—इण (ख) काँइ जु (ख)। कुरझडियाँ कुरळाइयाँ पचइ बरनी पंपि (च) कुंझडियाँ (थ, व) पचइ (थ, व) बरणी (थ, व)। अत्रा (ख) उ (च. थ) आ (ठ)। पर (क) सिर (च)। आ हूँ (क)। घर (क)। बेहुं (ठ) मिळिया (ख) निमिली (च) मिलियें (थ)। अख (क)। वेह न दीधी पंख (ध)।

५२—उवें (क) अं (ग)। कहीये (ग)। खरि (व)। के=केरा (व)। उवे (क) उयें (ग)। सिर (ग) सिरि (व)। ऊपरैं (क)। कीवी अणराव (ख) थाही की उणराव (क)।

५३—ज (क)। कुरळियाँ (क)। गूँझि (क) गूँज (ग) गाजि (ग) रही (ग) रह्यट (थ) सिर=सब (ख)। कूँझडियाँ कुरळायीया (ग) कुँझडियाँ कुरळाइयाँ (थ) कुरझडीयाँ कळियल कियो (न)=राति जु सारस कुरळियाँ। कँची वेसे तल=गुंजि रहे सब ताल (न)। जिनकी (ख) जाकी (घ)। बीछड़े (ग) बिछुड़इ (थ)। ताकों (क)। कुंवण (ख)। हवल्ल (न)।

कूँम्फड़ियाँ करळव कियउ घरि पाछिले वरणेहि ।
सूती साजण संभरया, द्रह भरिया नयणेहि ॥५४॥
कूँम्फड़ियाँ कळरव कियउ घरि पाछिले दरंगि ।
सूती साजण संभरया, करवत बूहि अंगि ॥५५॥
कूँम्फड़ियाँ कुरळाइयाँ ओलइ बइसि करीर ।
सारहली जिउँ सल्हियाँ सज्जण मंम्फ सरीर ॥५६॥
मम्फि समंदाँ वींट घर, जळसूँ जामोपत्त ।
किणही अवगुण कूँम्फड़ी, कुरली मॉम्फिम रत्त ॥५७॥

५४—कुररी पक्षियों ने घर के पीछेवाले वन मे करुण रव किया । सोती हुई मारवणी को प्रियतम का स्मरण हुआ और उसके नयनों मे आँसुओं का सरोवर भर आया ।

५५—घर के पीछेवाले टीले पर कुररी पक्षियों ने करुण रव किया (जिससे) सोती हुई मारवाणी को प्रियतम का स्मरण हो आया और उसके अगों पर मानों आरी चल गई ।

५६—करील की ओट में बैठकर कुररी पक्षी कुरलाए (जिसको सुनकर) प्रियतम (की स्मृति) शरीर मे सार की तरह सालने लगी ।

५७—समुद्र के बीच मे वींटों का तेरा घर है, जल से तेरी सतान की उत्पत्ति होती है । हे कुरम्फ, कौन से बड़े अवगुण के कारण तू आधी रात को कूक उठी ।

५४—कुरम्फडियाँ (च) कळियर (क) कलरव (ख ग) कुरळाइयाँ (च. थ) । घर (ख. ग थ) । पाछले (ख) । पछलै (ग) । वणेहः (क. ख) । बनेहि (च) । सूतां (च) सजन (ग) सज्जण (च) । समरीयाँ (थ) । नयणेह (क. ख) ।

५५—कुरम्फडियाँ (च) । कळीयर (क) कळियळ (घ) कुरळाइयाँ (च.थ)। थळां (न) । थळी पइलइ (च) थळी ज पैलै (थ)=घरि पाछिले । पछवाडे= पाछिले (क) । द्रंग (क. ख ग. च. न) । सांभरया (च) समरीया (थ) । वूहा (क. ख. ग. थ) । अंग (क. ख ग) ।

५६—कुरम्फडियाँ (च) क्रूम्फरिया (त) । कळियळ कियौ (क) । कळिकह (ख) । ऊची (क) उची (च) उचइ (थ) । वैसि (क) बइस (ख) । करीरि (च) । सारहल्ली (च) । जिम (ख) ज्यउं (थ) । सलीया (क) सल्लीयाँ (च) । साकण (ख) । म्हाह (ख) समम्फ (क) मॉह (थ) ।

५७—मम्फ (क) मंम्फ (ग) । समुद्दां (क) । वैठि (ख) वीट (ग) । पति (क. ख) । किसौ (ख) किण (ग) किहाँ (घ) । अणूरो । (ख)=अवगुण । रति (ख) ।

कुंझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सुणी उ पंखह वाइ ।
ज्यांकी जोड़ी बीछड़ी, त्यां निसि नींद न आइ ॥५८॥

कूँझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सरवर पइलइ तीर ।
निसिभरि सज्जण सल्लियाँ, नयणे वूहा नीर ॥५९॥

सोरठा

मारवणी मनि रंगि, वाटइ तिणि आवी वहइ ।
कुँझी एकणि संगि, तालि चरंती दिट्ठियाँ ॥६०॥

दूहा

आडा डूँगर, दूरि घर, वणइ न जाणइ भत्त ।
सज्जण सन्दइ कारणइ हियउ हिलूसइ नित्त ॥६१॥

५८—कुररी पक्षियों ने करुण रव किया और मैंने उनके पखों की वायु (पंख फटफटाने की ध्वनि) सुनी। जिसकी जोड़ी बिछुड गई उसको रात्रि में नींद नहीं आती।

५९—सरोवर के उस पार, तीर पर, कुररी पक्षियों ने करुण रव किया। रात भर (विरहिणी के हृदय में) सजन सालते रहे और उसके नेत्रों से जल बहता रहा।

६०—प्रेम से रँगे हुए मनवाली मारवणी चलती चलती उस मार्ग पर आ निकली और वहाँ उसने बहुत सी कुरझों को (सरोवर के किनारे की) समतल भूमि पर एक साथ विचरण करते हुए देखा।

६१—बीच में पर्वत है और घर दूर है। जाना किसी भाँति नहीं बनता। प्रियतम के लिये हृदय नित्य ही लालायित रहता है।

५८—केवल (ज. छ) में।

५९—केवल (ज. छ) में।

६०—आवी (थ)=आवी। कुंझा (थ)। ए तिणि रंगि (थ)=एकणि संगि।

६१—राम रती धण पूंवरी (क) राम रती धर पूवण न (घ)=आडा डूंगर दूरि घर। ण (ख. च)=न। जाना (ख ग)। मांति (ख)। सजन (ख)। हीया (क)। उलसै (क)। रत्त (क) निति (ख)=नित्त।

कुंझाँ, द्यउ नइ पंखड़ी, थाकउ विनउ वहेसि ।
सायर लंघी प्री मिलउँ, प्री मिलि पाछी देसि ॥६२॥
म्हे कुरझाँ सरवर तणा पाँखाँ किणहिं न देस ।
भरिया सर देखी रहाँ, उड़ आघेरि वहेस ॥६३॥
उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्खिण साँमहियाँह ।
कुरझाँ, एक सँदेसड़उ ढोलानइ कहियाँह ॥६४॥
माणस हवाँ त मुख चवाँ, म्हे छाँ कूँझड़ियाँह ।
प्रिउ संदेसउ पाठविसु, लिखि दे पंखड़ियाँह ॥६५॥

६२—मारवणी कुररी पक्षियों को सबोधन करके कहती है—हे कुंझो, मुझे अपनी पाँखें दो, मैं तुम्हारा बाना बनाऊँगी और सागर को लाँघ करके प्रियतम से मिलूँगी और मिलकर तुम्हारी पाँखें लौटा दूँगी।

६३— कुझों का उत्तर— हम सरोवर की कुझें हैं। हम अपनी पाँखें किसी को नहीं देंगी। भरे हुए सरोवर देखकर हम ठहर जाती हैं, नहीं तो उड़कर दूर चली जाती हैं।

६४— मारवणी कहती है— हे कुझो, उत्तर दिशा की ओर पीठ किए हुए, दक्षिण दिशा के समुख चलकर, ढोला को एक सँदेशा कहना।

५६५—कुझों का उत्तर—मनुष्य हों तो मुख से कहें, हम तो बिचारी कुंझें है। यदि प्रियतम को सँदेशा भेजना हो, तो हमारी पाँखों पर लिख दो।

६२—कूंझडियाँ (क) कूझी (ग) कुरझा (च)। दिइ न (च) दयो (थ)। पाँखडी (थ)। पांखां दियउ (क) वहेत (क ख. ग)। कुरझडीयाँ म्हारी बीनडीयाँ पंख उधारी देह (थ) लंघूं (क. ख) प्रीय (क. च) प्रिय (ग. थ)। मिलुं (क. ख) मिलू (ग) मिलौ (थ)। देस (क)।

६३—केवल (ज) में।

६४—दक्षिण दिशि (थ)। सांमुहियाँह (थ)। कुंझी (थ)।

६५—हुवां (क) ह्वाँ (ग)। तौ (ख. ग)। मुह (क)। चवौ (ग)। मारू म्हे माणस नहीं (क)। तो (ग) तउ (त. थ)=छाँ। कुरझडियाँह (च)। प्रिय (ग. थ) प्रीउ (च)। पाठविसि (क) पाठवीस तउ (ग) परठवो (न)। ढोलै तणा सदेसडा (क. ख. ग)=प्रिउ सदेसउ पाठविसु। सुलिख (क)। पांखडियाँह (थ)।

पाँखे पाँणी थाहरइ, जळि काजळ गहिलाइ ।
सयणाँ तणाँ सँदेसड़ा, मुख वचने कहवाइ ॥६६॥

तालि चरंती कुंभड़ी, सर संधियउ गँमार ।
कोइक आखर मनि वस्यउ, उडी पंख सँभार ॥६७॥

जिम जिम सजण संभरइ, तिम तिम लगइ तीर ।
पंख हुवइ तो जाइ मिलि, मनाँ बँधाँड़ाँ धीर ॥६८॥

आडा डूँगर, वन घणा, खरा पियारा मित्त ।
देह विधाता, पंखड़ी, मिलि मिलि आवउँ नित्त ॥६९॥

आडा डूँगर, भुइ घणी, सज्जण रहइ विदेस ।
माँगी ताँगी पखुड़ी केती वार लहेस ॥७०॥

६६—मारवणी फिर कहती है—तुम्हारी पाँखों पर पानी पड़ेगा, (जिससे) स्याही जल में बह जायगी । प्रियतम का सँदेशा तो मुख द्वारा ही कहलाया जा सकता है ।

६७—सरोवर मे विचरती हुई कुर्भों पर किसी गँवार ने बाण सधाना । (उनके) मन में कोई आतरिक प्रेरणा उत्पन्न हुई और वे पख सँवारकर उड़ गई ।

६८—ज्यों ज्यों प्रियतम का स्मरण होता है त्यों त्यों मानो (हृदय में) तीर लगता है । यदि मेरे पख हों तो उनसे जा मिलूँ और मन को धीरज बँधाऊँ ।

६९—बीच में बहुत से पहाड़ और जगल हैं, मेरा मित्र अत्यत प्यारा है । हे विधाता, मुझे पख दे जिससे मै नित्यप्रति मिल आया करूँ ।

७०—बीच मे बहुत से पहाड़ हैं, फासला बहुत है और प्रियतम विदेश रहते हैं । उनसे मिलने के लिये माँगी हुई पाँख मला कितनी बार पाऊँगी ।

६७—ताल (क. ख. ग. च)। कूँजड़ी (ग) क्रुंजड़ी (थ)। संधीयो (ग) सधीयउ (च)। गवार (ग) गमारि (थ)। अंतर (छ)। मन (ग)। वस्यौ (ग)। सवार (ग)।

६९—डुगर (च)। आवउ (च)।

७०—लहेसि (च)। सायर ऊंडो जळ घणो परभौ घणो सहेस (भ)।

पाँखड़ियाँ ई किउँ नहीं, दैव अवाडू ज्याँह ।
चकवीकइ इइ पंखडी, रयणि न मेळउ त्याँह ॥७१॥

आडा डूँगर, भुइँ घणी, तियाँ मिळीजइ एम ।
मनिहूँ खिणहि न मेल्हियइ, चकवी दिणियर जेम ॥७२॥

ज्यूँ ए डूँगर संमुहा, त्यूँ जइ सज्जण हुंति ।
चंपावाड़ी भमर ज्यउँ, नयण लगाइ रहंति ॥७३॥

जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ ।
उआँ लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख पसाउ ॥७४॥

कउआ, दिऊँ वधाइयाँ, प्रीतम मेळइ मुज्झ ।
काढि कळेजउ आपणउ भोजन दिउँली तुज्झ ॥७५॥

७१—जिनका भाग्य उलटा है उनके पख (होने से) भी कुछ नहीं चकवी के पख हैं, परतु उसका भी रात्रि मे (प्रिय से) मिलन नहीं होता ।

७२—(उनके) बीच मे पहाड़ और बहुत सी भूमि (दूरी) है, उनसे इसी प्रकार मिलन हो सकता है कि उनको एक क्षण के लिये भी मन से नहीं हटाना चाहिए जिस प्रकार चकवी सूर्य को (नहीं हटाती) ।

७३—जैसे ये पर्वत सामने हैं वैसे ही यदि प्रियतम भी होते तो जिस प्रकार भ्रमर चपा के बाग की ओर दृष्टि लगाए रहते हैं उसी प्रकार मैं भी उन पर नयन लगाए रहती ।

७४—हे वायु, जिस दिशा मे प्रियतम बसते हैं उसी दिशा की ओर से चलो । उनका स्पर्श करके मुझे छुओ । वही मेरे लिये **लाख पसाव** होगा ।

७५—हे कौवे, यदि तू मुझे प्रियतम से मिला दे तो मै तुझे वधाइयाँ दूँ और अपना कलेजा निकालकर तुझे भोजन को दूँगी ।

७१—क्युं (च) । पुंखडी (च) ।

७२—डुंगर (च) ।

७३—डुंगर (च) ।

७५—जु प्री=प्रीतम (च) । तीजन (छ)=भोजन ।

जब सोऊँ तब जागवइ, जब जागूँ तब जाइ।
मारू ढोलउ संभरइ, इणि परि रयण विहाइ ॥७६॥

(राणी का मारवणी की दशा जानना)

सखियाँ राँणीसूँ कहइ, मारू मनभाँणी।
साल्हकुँमर पासइ विना, पद्‌मिणि कुँमलाँणी ॥७७॥
सखियाँ राँणीसूँ कहइ, तनह न जावइ ताप।
साल्ह विरह तिल तिल मइँ, मारू करइ विलाप ॥७८॥
इणि परि ऊमा देवड़ी जाणी मारू वत्त।
सु प्रभाति कहिवाभणी, पिंगळ पासि पहुत्त ॥७९॥
आखय ऊमा देवड़ी, संभळि पिंगळ राइ।
विरह वियापी मारुई, नहिँ राखणकउ दाइ ॥८०॥

७६—जब सोती हूँ तब (स्वप्न मे आकर) जगा देता है। जब जाग उठती हूँ तब चला जाता है। (यों कहती हुई) मारवणी ढोला की याद करती है और इस प्रकार रात्रि बिताती है।

७७—(मारवणी की यह दशा देखकर) मारवणी की मनभावती सखियाँ राणी से कहती हैं—साल्हकुमार (रूपी सूर्य) के पास न होने से यह पद्मिनी कुम्हला गई है।

७८—सखियाँ राणी से कहती हैं—तन का ताप नहीं जाता। रोम रोम मे साल्हकुमार का विरह छा गया है और मारवणी विलाप करती है।

७९—इस प्रकार ऊमा देवड़ी ने मारवणी की बात जान ली और प्रातःकाल ही सब हाल कहने के लिये राजा पिंगळ के पास पहुँची।

८०—ऊमा देवड़ी कहती है—हे पिंगळ राजा, सुनो। मारवणी विरह से व्याप्त हो गई है। उसे बचाने का कोई उपाय नहीं (सूझ पड़ता) है।

७७—राणी राजा सूँ (क)। राजा कहे राणी (न)। साल्हविरह हेमंत ज्युं=साल्ह'''विना (न)। मारू (न) पदमण (ग)।

७८—साल्हकुँवर तन मन मे (झ)।

७९—पहूत (च) पहत्त (छ)।

८०—आखइ (थ)। उमा (च)। मा ऊमादे वीनवै (ग)। राउ (ग)। मारवी (ग)। दाउ (ग)।

नितु नितु नवला साँढ़िया, नितु नितु नवला साजि ।
पिंगळ राजा पाठवइ, ढोला तेड़न काजि ॥८१॥
न को आवइ पूगळइ, सहु को नरवर जाइ ।
मारू तणा सँदेसड़ा बगड़ विचाहू खाइ ॥८२॥

(सौदागर द्वारा ढोला के समाचार मिलना)

एक दिवस पूगळ सहर, सउदागर आवंत ।
तिणपइ घोड़ा अति घणा, वेच्या लाख लवत ॥८३॥
पिंगळ राजानूं मिल्यउ, सउदागर तिणि वार ।
राज दुवारइ तेड़ियउ, आदर करे अपार ॥८४॥
सउदागर पिंगळ मिल्यउ, बहुत दियउ सनमॉन ।
रात दिवस प्रेमइ मिल्यउ, इम पिंगल राजॉन ॥८५॥

८१—प्रतिदिन नए नए साँढनी सावरों को, नए नए साज सामान के साथ, पिंगळ राजा ढोला को बुलाने के लिये भेजता है ।

८२—सब कोई नरवर को जाते हैं परतु पूगळ को लौटकर कोई नहीं आता । मारवणी के सदेशों को कोई दुष्ट बीच ही में हड़प जाता है ।

८३—एकदिन पूगळ नगर मे एक सौदागर आता है, उसके पास बहुत से घोड़े हैं जिनको बेचने से एक एक के लाख लाख रुपए मिलते हैं ।

८४—उस समय सौदार्गर पिंगल राजा से मिला । राजा ने बहुत आदर करके उसको राजदरबार मे बुलाया ।

८५—पिंगल सौदागर से मिला और उसका बहुत समान किया । इस प्रकार वह सौदागर पिंगल राजा से दिन रात प्रेमसहित मिलता रहा ।

८१—संढिया (ग) संढीया (थ) । साज (थ) ।

८२—राजा वाक्य (क. भ) राणी वाक्य (ख. ग) ।

नरवरां (क) पूगळां (ग) । न को=सहु को (ख. ग) इहांसु (क)= नरवर । ढोलै=मारू (क. थ) ढोला (ग) । को बगड़ (ख) बगण (ग) कोई (न) । बिचाहूँ (ख) बिचाऊ (क ग) विचाळइ (थ) विचाई (न) । उहाँरा को आवइ नही इहाँ सहू को जाइ, मारू तणा सदेसडा को पिसुण विचाउ खाय (ज) ।

८३—इक (ख) । सहिर (ग) ।

८४—केवल (क. ख. घ) में ।

८५—केवल (ग) में ।

सउदागर राजा तिहाँ वइठा मंदिर मंझ।
मारू दीठी अउझकड़, जाँणि खिवी घण संझ ॥८६॥
सुंदरि, सोवन वर्ण तसु, अहर अलत्ता रंगि।
केसरि लंकी, खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि ॥८७॥
सउदागर खवासनूं पूछइ, लइ तिण मन्न।
दीसइ रायंगणमहीं कुँवरी कंचन व्रन्न ॥८८॥
ते देखी, तिणि पूछियउ, कुण ए राजकुमारि।
किह पीहर,किह सासरउ, विगतइ कहइ विचारि ॥८९॥
कुंवरी पिंगळ रायनी, मारुवणी तसु नाँम।
नरवरगढ़ ढोलइ भणी परणी पुहकर ठाँम ॥९०॥

८६—एकदिन सौदागर और राजा वहाँ महल में बैठे हुए थे। तब (सौदागर ने) मारवणी को अचानक झरोखे मे देखा, मानो सध्या समय बादल मे बिजली चमकी हो।

८७—वह सुदरी थी, उसका रग सुवर्ण जैसा था, अधर अलक्तक के से रंग के थे, उसकी कमर सिंह की कमर के समान क्षीण थी और वह हरिण के समान कोमल नेत्रोंवाली थी।

८८—सौदागर खवास से, उसका मन लेकर, पूछता है—राजमहल में कंचन वर्णवाली कुमारी दीख पड़ती है।

८९—उस (मारवणी) को देखकर उसने पूछा—यह राजकुमारी कौन है? कहाँ इसका पीहर है और कहाँ ससुराल है? विचारकर (सब हाल) व्यौरेवार कहो।

९०—(उत्तर—) वह पिगल राजा की कुमारी है, मारवणी उसका

८६—तिन्हें बैठा=वइठा मंदिर (क)। मझि (क)। बैठी=दीठी (घ)। जाँण (ख)। सजि=संझ (क)।

८७—सोहग सुदरि=सोवन वर्ण तसु (ज)। सोवन्न वन्न (थ)। अहिर (ज)। रंग (ज)। नेत्र (ज. थ)। कुरंग (ज. थ)। खंजर नयणी खिण कटी (ज)।

८८—मन (ख)। राय अंगण (क. ख)। कंचण (ख)। वर्ण्ण (क) व्रन (ख)।

८९—ति (च)। पूछियो (थ)। य=ए (च)। किहाँ (ज. थ)। पीहरि (थ)। सासुरो (थ)। विगति (थ)। लियो (ज) कहो सु (थ)।

९०—कुमरो (ग)। रायरी (च)। पिंगल राजा कूँवरी (क)। मारवणी (ख.ग. च)। तिण (क) तिणि (ख) इण (ग) इंण (ज) इणि (थ)। नाम (च) नामि

दउढ वंरसरी मारुवी, त्रिहुँ वरसॉरउ कंत।
बाळपणइ परण्यॉ पछइ, अंतर पड़थउ अनंत ॥६१॥
सउदागर राजा कन्हे अरज करइ एकंति।
साल्हकुँवर सूँ वीनती कहि किण दाखूँ भंति ॥६२॥
सल्हकुवर सुरपति जिसउ रूपे अधिक अनूप।
लाखॉ बगसइ मॉगणा, लाख भड़ॉ सिर भूप ॥६३॥
माळवगढ़ राजा सुधू, कुँवरी माळवणीह।
ढोलइ तिण वहु प्रीति छइ अति रंग नेह घणीह ॥६४॥

नाम है और पुष्कर नाम के स्थान पर नरवर गढ़ के राजकुमार ढोला के साथ इसका विवाह हुआ है।

६१—उस समय मारवणी डेढ़ वर्ष की थी और उसका पति तीन वर्षों का था। बालपन में विवाह हो जाने के पश्चात् दोनों के बीच में बहुत भारी अंतर पड गया।

६२—सौदागर राजा से एकात मे अर्ज करता है कि बताइए, मै साल्ह-कुमार से किस भॉति विनती कह सुनाऊँ।

६३—साल्हकुमार इद्र जैसा रूप मे अतीव अनुपम है। वह याचको को लाखों का दान देता है और लाखों योद्धाओं का अधिपति है।

६४—मालवगढ के राजा की सुदर कन्या राजकुमारी मालवणी (उसकी स्त्री) है। ढोला का उससे अति अनुराग और स्नेहपूर्ण घनिष्ठ प्रेम है।

(थ)। नलवर (क. ग. थ) गढि (थ)। ढोला तणी (ग) ढोला भणी (च.थ)। परण्या (ख)। पुक्कर (घ) पुष्करि (थ)। गॉम (क. ख. ग) ठांमि (च.थ)।

६१—डोढ (क)। मारवी (ख)। त्रिह (ख)। बत सुणी सौदागरै जाण्यौ सहु वृत्तत (ग. थ)। वात सुण सउदागरइ जाण्यउ सहु वृत्तंत (च) वाळपणै (क. ख. ग)। परणी (क. ग) परण्या (च)। विन्हें (च), विन्हइ (थ)=पछै। पड़्यौ (क. ख. ग)।

६२—कहै (घ)। एक करंत=करै एकंति (क. घ)। सों (ख)। किम (ख)। भति (क)।

६३—रूप अनूपम रूप (ख) रूपै अमर सरूप (ग)। लाख (क. ख)। लोयणां (क. ग)। लखाँ (ग)।

६४—सधू (ग)। प्रीत (ख. ग)।

मइँ घोड़ा वेच्या घणा, रहियउ मास चियारि।
राति दिवस ढोलइ कन्हइ, रहतउ, राज दुवारि ॥६५॥
राजा, कउ जण पाठवइ, ढोलइ निरति न होइ।
माळवणी मारइ तियउ, पूगळ पंथ जिकोइ ॥६६॥
सउदागर राजाखुँ कहइ, सुणउ हमारी कथ्थ।
मारवणी छानी रही, से माळवणी तथ्थ ॥६७॥
सही समाँणी साथि करि मंदिरकूँ मल्हपंत।
सउदागर नेड़ी थइइ, सुणिवा प्रीतम वत्त ॥६८॥

६५—मैने वहाँ बहुत घोड़े बेचे और चार मास तक रहा। तब मैं रात दिन ढोला के पास राजद्वार में ही रहता था।

६६—हे राजन् आप कोई आदमी भेजते हैं पर ढोला को खबर नहीं होती। जो कोई पूगळ के मार्ग पर होता है उसको मालवणी मरवा देती है।

६७—सौदागर राजा से कहता है—हमारी बात सुनिए। जो मारवणी ढोला से अब तक छिपी रही उसका रहस्य मालवणी है।

६८—समवयस्का सखियों को साथ लेकर मंदिर को जाती हुई मारवणी प्रियतम की बातें सुनने के लिये सौदागर के पास से निकलती है।

६५—चीयार (क)। दुवार (क)।

६६—जन (ग)। पाठवै (क. ख. ग)। पिंगळ दिनप्रति (च थ) पिंगळ राजा (ज)=राजा कउ जण। ढोला (च. ज. थ)। निरत (ज)। होय (ज)। मारै (क. ख. ग)। विहाँ (च. थ)। सदा मारही=मारइ तियउ (ज) पूगळि (थ)। ज (च. ज), न (थ)=जि।

६७—कहै (क. ख. ग)। कथ (ख)। मालवणी (क. ख. ग)। थ्यो=से (क)। हत्थ (क)।

६८—संवि सखी (क. ख) साति सखी (ध) सह सामहणी (च)। साथे करे (क. ख) साथ कर (ग)। साथ (च)। वर आवै मयमत्त (ग) वरि आवइ मयमत्त (च. थ)= मंदिर कूँ मल्हपंत। सौदागर (क. ख) सौदागर (ग)। नडी (ग) साथी (ग)। वहै (क. ख. ग)। कावले संभालावत (ग) का घळि संभळि वत्त (च. थ) = सुणिवा प्रीतम वत्त।

सउदागर संदेसड़ा, सॉभळिया स्रवणेहि ।
मारुवणी ते मन दहइ, मूक्यउ जळ नयणेहि ॥९९॥
सउदागर राजा कन्हइ, कहियउ एह विचार
रॉणी राय विमासियउ, तेड़इ, साल्हकुमार ॥१००॥
राजा प्रोहित तेड़ियउ, तूँ जाइ ढोलउ ल्याव ।
सखियॉ मारुनूँ कहइ, हुवउ अणंद उछाव ॥१०१॥
रॉणी राजानूँ कहइ, मेल्हउ मॉगणहार ।
मॉगणगारा रीझवइ, ल्यावइ साल्हकुमार ॥१०२॥
राजा प्रोहित राखिजइ, जिण की उत्तिम जाति ।
मोकलि घररा मंगता, विरह जगावइ राति ॥१०३॥

९९—सौदागर के सदेशों को मारवणी ने कानों से सुना । उनसे मारवणी का मन सतत हो उठा और नयनों मे आँसू बह चले ।

१००—सौदागर ने राजा के आगे ये समाचार कहे । (इसके पीछे) राणी और राजा ने परामर्श किया कि साल्हकुमार को बुला भेजें ।

१०१—राजा ने पुरोहित को बुलाया और कहा कि जाकर ढोला को ले आओ । यह सुनकर सखियाँ मारवणी से कहती हैं कि अब आनदोत्सव हुए ।

१०२—राणी राजा से कहती है कि याचकों को भेजो, याचक लोग साल्हकुमार को रिझा लेंगे और उसे ले आवेंगे ।

१०३—हे राजा, पुरोहित को रहने दो जिसकी जाति उत्तम है । घर के याचकों को भेजिए जो रात्रि में विरह को जागरित करेंगे ।

९९—सौदागर (क. ख) । संभळीया (च) । श्रवणेह (क. ख) । मालवणी प्रिय संभर्‌यौ (ख) मारवणी मनमथ हुई (क) मारुवणी मनि अंदोह घणी (ज) मालवणी मनि ऊमह्यो (थ) ।

१००—तेड़्यो (ख) तेडो (घ) ।

१०२—मेल्हे (क) । गाई=गारा (घ) । ल्यावौ (ख) सुख पावै (क)= ल्यावइ । कुवार (ख) ।

१०३—बाबा विप्र म मोकळे (ग च) बाबा विप्र म कोळे (थ) ब्राह्मण बाप म मोकळे (ज) । जांह (क. ख. ग) । उतिम (ख) सूधी (छ) सीतळ (न) । जात (ग) । मेल्हे (क) मूके (ग. थ.) । का=रा (ख. थ) । मागता (च) मंगिता (थ) । पुकारै (क. ख) । रात (ग) । ज्यउँ विरह=विरह (च) ।

पाछइ प्रोहित राखियउ, तेड़्या मॉंगणहार ।
जे भेदक गीतॉं तणा, वात करइ सुविचार ॥१०४॥
ढाढी गुणी बोलाविया राजा तिणही ताळ ।
नरवरगढ़ ढोलइ कन्हइ जावउ वागरवाळ ॥१०५॥
सीख करे पिंगळ कन्हॉं, घर आया तिणि वार ।
मेल्हि सखी तेड़ाविया मारू मॉंगणहार ॥१०६॥
मारू सनमुख तेड़िया, दियण सँदेसा कज्ज ।
कहउ कदे थे चालिस्यउ, कॉइ विहाणइ अज्ज ॥१०७॥
आज निसह म्हे चालिस्यॉं, वहिस्यॉं पंथी वेस ।
जउ जीव्या तउ आविस्यॉं, मुया त उणिहिज देस ॥१०८॥

१०४—पीछे राजा ने पुरोहित को रोक लिया और याचकों को बुलाया जो संगीत के भेद जाननेवाले और खूब विचारकर बातें करनेवाले थे।

१०५—राजा ने तत्काल गुणी ढाढियों को बुलवाया और कहा कि हे याचको, नरवरगढ़ ढोला कुमार के पास जाओ।

१०६—ढाढी पिंगळ से विदा लेकर उस समय घर लौट आए। मारवणी ने सखी को भेजकर याचकों को बुलाया।

१०७—मारवणी ने (प्रियतम का) सदेश देने के लिये ढाढियों को सन्मुख बुलवाया और कहा—कहो, तुम लोग कब प्रस्थान करोगे? सवेरे या आज ही?

१०८—ढाढियों ने उत्तर दिया—आज रात्रि को हम चल देंगे और पथिक के वेश मे चलेंगे। यदि जीते रहे तो आवेंगे और मर गए तो उसी देश में (रह जायँगे)।

१०४—प्रोहित घर ना राखिया (थ)। भेंद (थ)। गीवा (च)। जणा (थ)।

१०५—गुणै ढाढी (क)। तिणही ज (ग)। नळवर (क. ख. ग)। कुँवर=कन्हे (क)। मॉंगणवाळ (ख)।

१०७—सनमुखे (क. ख)। कहण=दियण (क. ग)। काज (ख) कज (ग)। कदि (ग) का (क. ग)। आज (ख) अज (ग)।

१०८—हूँ (क ख)। पथी (क ख)। जौ (क. ख)। जीवीया (क. ख. ग) जीवीया (थ)। आइस्यॉं (ख) आवस्यॉं (ग)। मुआं (ख) मुइ

मारुवणी भगताविया मारू राग निपाइ।
दूहा संदेसॉं तणॉं दीया तियाँ सिखाइ ॥१०९॥

(मारवणी का सँदेसा)

नरवर देश सुहॉमणउ, जइ जावउ पहियाह।
मारू तणा सँदेसड़ा ढोलडनूँ कहियाह ॥११०॥
संदेसा ही लख लहइ, जउ कहि जाणइ कोइ।
ज्यूँ धणि आखइ नयण भरि, त्यँउ जइ आखइ सोइ ॥१११॥
ढाढो, एक सँदेसड़उ प्रीतम कहिया जाइ।
सा धण बलि कुइला भई, भसम ढँढोलिसि आइ ॥११२॥

१०९—मारवणी ने मारू राग मे बनाकर सदेस के दोहे कहे और उनको सिखा दिए।

११०—नरवर देश सुहावना है। हे पथिको, यदि तुम वहाँ जाओ तो मारवणी के सॅदेसे ढोला को कहना।

१११—सॅदेसों से ही मन की दशा जानी जा सकती है, यदि कोई कहना जाने—जिस प्रकार प्रेयसी आँसुओं से आँखे भरकर कहती है उसी प्रकार यदि वह कहे।

११२—हे ढाढी, जाकर प्रियतम से एक सॅदेसा कहना—तुम्हारी वह प्रेयसी जलकर कोयला हो गई है, तुम आकर उसकी भस्म को ढूंढना।

(ग) मूआ (च) मुआ (थ)। तउ (च)। उणही (च. ज. थ)। देसि (च. ज. थ)। म्हॉकउ सज्जन तिह वसइ, जिहा चंदउ चउथइ देसि (च) म्हाका जज्जन जिहाँ वसइ, जिहाँ सुचंगो वैदेस (ज) थॉका सज्जन जिहॉ वसइ, जिहाँ सुचंद चउथइ देसि (थ)। (प्रथम पंक्ति)

१०९—मारवणी (ग. च. ज)। नपाय (ग) नीपाइ (च) नीपाय (ज. थ)। मिसै=तणा (ग) तोया (ग) तिहाँ (ज) तसु (च)। सिखाय (ग. ज) सीखाइ (च)।

११०—सखी वाक्यं (क ख)।
सुहावणौ (क) सुहामणौ (ख)। जउ (क)। ढोलानै (क)।

१११—संदासा (ख) संदेसउ (च)। लहै (ख) लिख्या (क)। जै (ख)। जाँणै (क. ख. ग)। हूँ=धणि (क ख. ग)। देखुँ=आखइ (क. ख. ग) त्युं (क) तिम (ख)=त्यउ। जउ (क) जै (ख)=जइ। देखै (क) अखै (ख) दाखै (थ)।

११२—लगि पुहचाइ (ग)। सायधण (ख. ग)। कोइला (क. ग. झ)। हुई (ख. ग)। ढंढालिस (क)।

ढाढी जे प्रीतम मिलइ, यूँ कहि दाखवियाह ।
पंजर नहिँ छइ प्राँणियउ, थाँ दिस झळ रहियाह ॥११३॥
पंथि, एक संदेसड़उ, भल माणसनइ भक्ख ।
आतम तुझ पासइ अछइ, ओळग रूड़ा रक्ख ॥११४॥
ढाढी, जे राज्यँद मिलइ, यूँ दाखविया जाइ ।
जोवण हस्ती मद चढ्यउ, अंकुस लइ घरि आइ ॥११५॥
ढाढी, जे साहिब मिलइ, यू दाखविया जाइ ।
आँख्याँ सीप विकासियाँ, स्वाति ज वरसउ आइ ॥११६॥
ढाढी, एक सँदेसड़उ कहि ढोला समझाइ ।
जोवण आँबउ फलि रह्यउ, साख न खाअउ आइ ॥११७॥

११३—हे ढाढी, यदि प्रियतम मिले तो इस प्रकार कहना—उसके पजर मे प्राण नहीं है, केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर जल रही है ।

११४—हे पथिक, एक सँदेसा उस भलेमानुस को कहो—उसकी आत्मा तुम्हारे पास है उसके शरीर को चाहे तुम दूर भले ही रखो ।

११५—हे ढाढी, यदि राजन् मिलें तो जाकर यों कहना—यौवनरूपी हाथी मदोन्मत्त हो गया है, तुम अकुश लेकर घर आओ ।

११६—हे ढाढी, यदि स्वामी मिलें तो जाकर यों कहना—आँखरूपी सीपियाँ विकसित हुई हैं (तुम्हारी प्रतीक्षा मे खुल रही है), हे स्वाति, तुम आकर बरसो ।

११७—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला को समझाकर कहना—यौवनरूपी आम्र फल रहा है, आकर उसकी फसल क्यों नहीं खाते ?

११३—पंथी एक संदेसडउ ढोलानइ कहीयाँ (च. ज थ) । पिंडि नही छइ प्राणियउ ऊथि कथे लहियाह (च) पिड सही छै प्राहुणो ओथे किथ लहीयाह (अ) । छै (क व) । प्राहुणो (न) । ओधे के लहियाह (क) ऊथे केथा लहिया (व) ऊथ किये लहियाइ (न) ऊठतक झिकळियाह (घ) । छइ लहीयाह (थ) झळ रहियाह ।

११४—भाखि (ज) लिख (थ) । मुझ (थ) । ऊळग (थ) । राखि (ज) ।

११५—प्रीतम=राज्यंद (ख) । पंथी एक सदेसडउ (थ)=ढाढी० । इउँ कहि दापवीयाह (ख) ढोला लगि ले जाइ (ज थ) । योवन (क) जोबन (ख) ज्युं गुडे (ख) युं गुड्यौ (क) जु जुत्यौ (ज) गडवढ्यउ (थ)=मद चढ्यउ । तु अंकुस (च) । घो ये=ले घरि (ख) । आव (क) आउ (च) ।

११६—ढाढी एक सदेसडे ढोलै लगि पहुचाइ (ग) । इउँ कहि दाप-बीयाह

ढाढी, जइ प्रीतम मिलइ, यूँ दाखविया जाइ ।
जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न बइसउ काइ ॥११८॥

ढाढी, जइ साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ ।
जोबण कमळ विकासियउ, भमर न बइसइ आइ ॥११६॥

ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ ।
जोबन चाँपउ मउरियउ, कळी न चुट्टइ आइ ॥१२०॥

ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ ।
कण पाकउ, करसण हुअउ, भोग लियउ घरि आइ ॥१२१॥

११८—हे ढाढी, यदि प्राणाधार मिलें तो जाकर इस प्रकार कहना—यौवन ने छत्र उठाया है, हे राजन् (उसकी छाया मे आकर) क्यों नहीं बैठते ?

११६—हे ढाढी, यदि स्वामी मिलें तो जाकर यो कहना—यौवनरूपी कमल खिल गया है, हे भ्रमर, तुम आकर क्यों नहीं बैठते ?

१२०—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—यौवनरूपी चपा मौरयुक्त हो गया है । तुम आकर कलियाँ क्यों नहीं चुनते ?

१२१—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—खेती हो गई, अन्न पक गया, तुम घर आकर अपना भोग लो ।

(ख) । आँखि (ख) अख्यां (ग) । सीची (ग) । विकसीयो (ग) । वैकस्सीयाँ (ग) । स्वाति = स्वातिज (ख. ग) ।

११८—जउ (क) । ढाढी एक संदेसउ (ग. च) । इउं कहि दाख-वीयाह (ख) प्रीतम लगि पहुँचाइ (ग) कहि ढोला समझाइ (च) । योवन (क) जोबन (ख) । छाँहन (ध) छाजे (च. ज)=राज न । वयसौ (क. ख. ग) । आइ (क. ख. ग) ।

११६—ढाढी एक सदेसड़उ प्रीतम कहिओ जाइ (ग) । इउँ कहि दाष-वीयाह (ख) । योवन (क) जोबन (ख) । विकस्सीयो (ग) । वयसउ (क) वयठउ (ख)=न बइसइ । कळीयाँ मउरीयाँ (च)=कमळ विकासियउ ।

१२०—केवल (च) में ।

१२१—केवल (च) में ।

ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
जोवण फट्टि तलावड़ो, पाळि न बंधउ कोंइ ॥१२२॥

पंथी, एक सँदेसड़उ लग ढोलउ पैहचाइ।
विरह महादव जागियउ, अगिन बुझावउ आइ ॥१२३॥

पही, भमंता जइ मिलइ, तउ भी आखे भाय।
जोवण वंधन तोड़सइ, वंधण वातउ आय ॥१२४॥

पंथी, एक सँदेसड़उ लग ढोलइ पैहचाइ।
निकसी वेणी सापणी, स्वाल न वरसउ आइ ॥१२५॥

पंथी, एक सँदेसड़उ लग ढोलइ पैहचाइ।
तन मन उत्तर दाळियउ, दक्खिण वाजइ आइ ॥१२६॥

१२२—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—यौवनरूपी तलैया फूट चली है, क्या तुम आकर पाल नहीं बाँधोगे ?

१२३—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—विरहरूपी प्रचंड दावानल प्रज्वलित हो गया है, आकर अग्नि को बुझाओ।

१२४—हे पथिक, भ्रमण करते हुए यदि मिलो तो हे भाई, मेरे प्रियतम से कहना—यौवन बंधन तोड़ देगा, तुम आकर बंधन डालो।

१२५—हे पथिक, एक सँदेसा ढोले तक पहुँचाओ—वेणीरूपी नागिन निकली है, तुम आकर स्वाति का जल बरसो न।

१२६—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—तन और मन को उत्तरवात (शिशिरवात) ने जला दिया है, हे दाक्षिणात्य पवन तुम आकर चलो।

१२२—पथी (क)। संदेसड़ै (क)। लग ढोला पैहचाहि (क)। विरह महाजल ऊमट्यौ (क) पाळ जु बंधौ आय (क)।

१२३—ये अगिन=अगिन (क)।

१२४—गज जोवण=जोवण (क)।

१२५—पैहचाहि (क)। निवसी (क)। ये स्वात=स्वात (क) आय (क)।

१२६—पैहचाइ(क)। वाळीयै (क)। थे दषिण=दक्खिण (क)। आय (क)।

पंथी, एक सॅंदेसड़इ लग ढोलइ पैहच्चाइ ।
विरह महाविस तन वसइ, ओखद दियइ न आइ ॥१२७॥

पंथी, एक सॅंदेसड़इ लग ढोलइ पैहच्चाइ ।
विरह वाघ वनि तनि वसइ, सेहर गाजइ आइ ॥१२८॥

पंथी एक सँदेसड़इ लग ढोलइ पैहचाइ ।
धँण कँमलॉणी, कमदणी, सिसहर ऊगइ आइ ॥१२९॥

पंथी एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
धँण कॅमलॉणी कॅमलणी, सूरिज ऊगइ आइ ॥१३०॥

पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
जोवन खीर समुंद्र हुइ, रतन ज काढइ आइ ॥१३१॥

१२७—हे पथिक, एक सॅंदेसा ढोला तक पहुॅचाओ—विरहरूपी महाविष शरीर मे व्याप रहा है, आकर ओषधि क्यों नहीं देते ?

१२८—हे पथिक, एक सॅंदेसा ढोला तक पहुॅचाओ—विरहरूपी वाघ तनरूपी वन मे बसता है, तुम शिखर पर आकर गर्जन करो ।

१२९—हे पथिक, एक सॅंदेसा ढोला तक पहुॅचाओ—प्रेयसीरूपी कुमुदिनी कुम्हला गई है, हे चद्र, तुम आकर उदय होओ ।

१३०—हे पथिक, एक सॅंदेसा ढोला तक पहुॅचाओ—प्रेयसीरूपी कमलिनी कुम्हला गई है, हे सूर्य तुम आकर उदय होओ ।

१३१—हे पथिक, एक सॅंदेसा ढोला तक पहुॅचाओ—यौवन क्षीरसागर हो रहा है, तुम आकर रत्न तो निकालो ।

१२७—संदेसडौ (क) । महा (क) । उषद (क) । दीयै (क) । आय (क) ।

१२८—संदेसडै (क) । विरहि (क) । थें सेहर=सेहर (क) । गाजै आय (क) ।

१२९—कमोदीनी (क) । सीसहर थ उगै आय (क) ।

१३०—संदेसडै (क) । धंणि (क) । सूरज उगै (क) ।

१३१—सदेसडौ (क) । सुंमुद्र (क) । हुये (क) । थे रतन ज काढै आय (क) ।

पंथी एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहुच्याइ ।
जंघा केळिनि फळि गई, स्वात जु, वरसउ श्राइ ॥१३२॥
पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहुच्याइ ।
सावज सबळ तोड़स्यइ, वैसासणइ न जाइ ॥१३३॥
पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहुच्याय ।
जोबन जायइ प्राहुणउ वेगउ रउ घर श्राय ॥१३४॥
पही, भमतउ जउ मिलइ, कहे श्रम्हीणी वत्त ।
धण कँणयररी कंब ज्यउँ सूकी तोइ सुरत्त ॥१३५॥
पंथी, एक संदेसड़उ कहिज्यउ सात सलाँम ।
जबथी हमतुम वीछड़े, नयणे नींद हराँम ॥१३६॥

१३२—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—जघारूपी कदली फल गई है; हे प्रियतम, तुम आकर स्वातिजल बरसो ।

१३३—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—स्वाद पाथेय (भोजन) से ही मिटता है, विश्वास से नहीं ।

१३४—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—यौवनरूपी अतिथि (घर आकर निराश) लौटा जा रहा है । जल्दी घर आओ ।

१३५—हे पथिक यदि घूमते हुए तुम ढोला से मिलो तो हमारी यह बात कहना—प्रेयसी तुम्हारी सुरत (याद) मे कनेर की छडी के समान सूख गई है ।

१३६—हे पंथी, मेरा एक सँदेसा है । मेरे प्रियतम को सात सलाम

१३२—जव (क) । श्राय (क) ।

१३३—संबळ (क) । तोटसैं (क) । जाय (क) ।

१३५—पहो (ग) । भमतो (ग) । जो मिलै (ग) । ढाढी जे राजिंद मिलै (ख) । ढाढी जे ढोलै मिलै (क) । तै कज्यै श्रम्हीणं वत्त (क) कहिया एह सुवत्त (ख) कहिया वत्त सुवत्त (त) । तो श्रखे (ग) श्रखे (च.ज)=कहिया । वत (ग) धत्त (ज) । कणीयर (ख) कणयर (च) । की=री (च) । काँब (ख. ग) । ज्युं (च) । सूमी (ख.) त । तोहि (क) तोही (ज) । सुरत (ग) । (च. में यह दोहा दो स्थान पर श्राया है—नं० ३६२ और ४०८ में 'कणयर' के स्थान पर 'केसर' है) ।

१३६—ढाढी एक सन्देसो (क) । दिस सजणां सलाम (क) दिस सजनां सलाम (ज) । पथी इक दिसि सजणां कहियौ सात सळाम (थ) । तुम्ह (च. ज) । थी विछुड्या (ज)=वीछड़े । वीछड्या (क) । जद हमि तुम्हि थी वीछुडे (थ) । तब थी नींद हराम (क) ।

पंथी हाथ सँदेसड़इ, धण बिललंती देह।
पगसूँ काढइ लीहटी, उर आँसुआँ भरेह ॥१३७॥
ढोला, ढीली हर किया, मूँक्या मनह विसारि।
संदेसउ हुन पाठवइ, जीवाँ किसइ अधारि ॥१३८॥
ढोला, ढीली हर मुझ, दीठउ घणो जणेह।
चोल बरन्ने कप्पड़े, सावर धन अणेह ॥१३९॥
कागळ नहीं, क मस नहीँ, नहीँ क लेखणहार।
संदेसा ही नाविया, जीवुँ किसइ आधार ॥१४०॥
कागळ नहीँ, क मसि नहीँ, लिखताँ आळस थाइ।
कह उण देस सँदेसड़ा, मोलइ वड़इ विकाइ ॥१४१॥

कहना और कहना कि जब से हम तुम बिछुड़े हैं तभी से आँखों को नींद हराम है।

१३७—मारवणी विलाप करती हुई पथिक के हाथ सँदेसा देती है, पैर से (पृथ्वी पर) रेखा खींचती है और अपना हृदय आँसुओं से भर लेती है।

१३८—हे ढोला, तुमने प्रेम को शिथिल कर दिया और मुझे मन से विसार दिया है। सँदेसा तक नहीं भेजते, बताओ किस आधार पर जिऍं।

१३९—हे ढोला, मेरी प्रेमस्मृति को शिथिलकर, मजीठ रंग के वस्त्रों मे (अर्थात् दूल्हे की पोशाक मे) उस अन्य पत्नी को ब्याहकर लाते हुए तुमको बहुत से लोगों ने देखा है।

१४०—कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखनेवाला नहीं है? तुम्हारे सँदेसे नहीं आए, मैं किस आधार पर जियूँ।

१४१—कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखते हुए आलस्य होता है। या उस देश मे सँदेशे बड़े मूल्य पर बिकते हैं।

१३७—संदेसडे (क) संदेसडो (ज)। विलवती (ज)। स्यौं (ज) लीइडी (ज)। ए भरेय (क)=नयण भरेह।

१३८—धर (च) मन (छ) वर (न)=हर। कीया (च)। वीसारि (च)। जन (द)। आधारि (च)।

१३९—ढोलू (च) ढोलो (ट)। टीली (च)। ढाली (ट)। हरडे (ज) हारडे (छ)=हर मुझ। ढीठा (ट)। जणेहि (च)। लाल सुरंगे कपडे (ट)। सावरते नयणेहि (च)।

१४०—ज (क. ब)=क। मिस (झ)। लिखणहार (क. ख. घ)। जीवौं किस (ख. घ. झ)। अधार (क)।

१४१—कइ लिखतां=लिखताँ। मोल (च. छ)। विकवाइ (छ)।

वायस वीजउ नॉम, ते आगलि लल्लउ ठवइ।
जइ तू हुई सुजॉंड़, तउ तूँ वहिलउ मोकळे ॥१४२॥
सॅंदेसउ जिन पाठवइ, मरिस्यउँ हीया फूटि।
पारेवाका मूल जिउँ पड़िनइँ आँगणि त्रूटि ॥१४३॥
संदेसा मति मोकळउ, प्रीतम, तूँ आवेस।
आँगुलडी ही गळि गयाँ, नयण न वाँचण देस ॥१४४॥
फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
चाचरिकइ मिस खेलती, होळी झपावेसि ॥१४५॥
जइ तूँ ढोला नावियउ, कइ फागुण कइ चेत्रि।
तउ म्हे घोड़ा बाँधिस्याँ, काती कुड़ियाँ खेत्रि ॥१४६॥

१४२—वायस का जो दूसरा नाम (अर्थात् काग) है उसके आगे लकार रखकर—अर्थात् कागल (पत्र)—यदि तुम सुजान हो तो तुरंत भेज देना।

१४३—(निठुर,) सँदेसा भी नहीं भेजते, मैं हृदय फटकर मर जाऊँगी, कबूतर का झूला जैसे आँगन मे गिरकर टूट जाता है।

१४४—हे प्रियतम, सँदेसा मत भेजो, तुम्हीं आ जाओ। मेरी अँगुलियाँ भी गल गई हैं और मेरी आँखें मुझे वाँचने नहीं देतीं।

१४५—वसत ऋतु के फाल्गुन मास मे यदि मैं तुमको आया हुआ नहीं सुनूँगी तो चर्चरी नृत्य के मिस खेलती हुई होली की ज्वाला मे फाँद पड़ूँगी।

१४६—हे ढोला, यदि तुम या तो फाल्गुन मे या चैत्र में नहीं आए तो हम ही कार्त्तिक मे, फसल कट जाने पर, घोडो पर जीन कसेंगी।

१४२—ललउ (च)। ठवि (च)। तुं हुइं (च)।

१४३—झूळ=झूल (च)।

१४४—सदेसउ जन पाठवइ (च)। अत=मति (क)। पीतम (क)। आवेह (ख)। जन कागळ लिखि देइं (च)=प्रीतम०। कागज ही (क. ख. ग)। आगळ का ही गळ गया (झ)। ण = न (च) वाचण देइ (च)। देह (ख)। धार खंदेस= वाँचउ देश (क)।

१४५—मास (क. ख. ग. थ)। रितु (ख. ग. ज. थ)। जो प्रीतम नावेस (क) जउ तूं ढोला नावेसि (च)। लउ ढोला नावेसि (थ)। जे (ग)। चाचर के (क. ख) तौ चाँचर (ग) तउ चर्चिरि (च)। मिलि (थ)। झाँफ भरेस (क) झाँफ भरेसि (ख) झाँप मरेस (ग)।

१४६—जे (ज)। तुं (च)। नावीये (क. ग)। का (ग. ज)। फागुण=

जउ साहिब तू नावियउ, मेहाँ पहलइ पूर।
विचइ वहेसी वाहळा, दूर स दूरे दूर ॥१४७॥
सज्जणिया, सावण हुया, धड़ि उलटी भंडार।
विरह महारस ऊमटइ, के ताकहूँ सँभार ॥१४८॥
जउ तूँ साहिब, नावियउ सावण पहिली तीज।
बीजळ तणइ झबूकड़इ मूँध मरेसी खीज ॥१४९॥
जइ तूँ ढोला, नावियउ काजळियारी तीज।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवंताँ वीज ॥१५०॥

१४७—हे नाथ, जो तुम मेघों के प्रथम धारापात पर नहीं आए तो बीच में नाले बहने लगेंगे और जो दूर है वह दूर से भी दूर हो जायगा।

१४८—हे साजन, यह सावन आया, पृथ्वी ने अपना गुप्त भंडार उलट दिया। विरह का महा जलप्रवाह उमड़ रहा है, उसको कौन सँभालेगा?

१४९—हे नाथ, यदि तुम सावन की प्रथम तीज पर नहीं आए तो बिजली की चमक से मुग्धा मारवणी खिजलाकर मर जायगी।

१५०—हे ढोला, जो तू कजरी की तीज पर नहीं आया तो बिजली को चमकती हुई देखकर मारवणी चौंककर मर जायगी।

फागुण (क)। का (क ग. ज)। चैत (ग)। चैति (थ)। म्हेई (क. ज) तो अम्हेई (ग) कइ तो म्हे (थ)=तउ म्हे। बंधिस्यां (क) बांधस्यां (ग. ज) कुडीयाह (क) कुडीये (ज) कुडस्यां (ग) ऊडइ (थ)। खेत्र (ग. ज) खेति (थ)। तो मैं लेसूँ ल्हासिउ काती राम रखेत्र (ध)।

१४७—जे (क. ख) जै (ग)। तुं (च. ज) तूं (थ)। ढोला (च. ज. थ) नावीयौ (क. ख. ग)। मेहा (च) सांवण (क. ख) मे आवण (ग)। पहलै (क. ख) पहली (ग) पहले (थ)। पूरि (च. थ) विचै (क. ग) तौ आडा (ख)। बहिसी (ख) वहइला (च) वहेस्यइ (थ) दूरि (क. ख. ग. च. थ)।

१४८—साजणियां (थ) सजनी (ज)। हुआ (ज) हुआ (थ)। सावण (च)। घट्ट (ज) धड़ि (थ)। उलटीयौ (ज) भंडारि (थ)। ऊमट्यउ (थ)। संभारि (थ)।

१४९—जे (ख)। ढोला=साहिब (च)। ढोला जे तूं नावीयइ (क) आवणि (च) सावणि (थ)। पैहली (क)। त्रीज (क. च. थ)। जबूकड़े (क. ख)। बीजलीयाँ विललाईयाँ (च. थ)। मेरस्यइ (थ)। खीजि (च थ)। उथ खिवेजी वीजळी रा धण मसै खीज (क) साइधण हियडो फूटसी देखि खिवंती वीज (न)।

बीजुळियाँ जाळऊमिल्याँ, ढोला, हूँ न सहेसि ।
जउ आसाढि न आवियउ, सावण समकि मरेसि ॥१५१॥
बीजू, न देख चहड्डियाँ प्री परदेस गयाँह ।
आपण लीय झबुक्कड़ा, गळि लागी सहराँह ॥१५२॥
बीजुळियाँ पारोकियाँ नीठ ज नीगमियाँह ।
अजइ न सज्जन बाहुड़े, वळि पाछी वळियाँह ॥१५३॥
जउ तूँ ढोला, नावियउ मेहाँ नीगमताँह ।
किया करायइ सज्जणा दाधा माँहि घणाँह ॥१५४॥

१५१—बिजलियों के जाल मिल रहे हैं। मैं यह नहीं सहूँगी, जो तुम आषाढ में नहीं आए तो मैं सावन में चौंककर मर जाऊँगी।

१५२—हे बिजली, ऊँची चढी हुई तुम परदेश गए हुए दूसरों के प्रियजनों को नहीं देखती जो तुम स्वयं शिखरों के गले लगकर क्रीड़ा करती हुई चमक रही हो।

१५३—परकीया नायिकाओं की भाँति बिजलियाँ बड़ी ही कठिनता से गई थीं। हे साजन, तुम अभी तक नहीं लौटे और वे (बिजलियाँ) फिर लौट आईं।

१५४—हे ढोला, यदि तुम मेघों के जाते नहीं आए तो हे साजन, मेघों से परिपूर्ण ऋतु में भी मेरे किए कराए (सौभाग्य, अथवा पुण्य) जल जायँगे।

१५१—बीजुका (ज)। जाळुमला (ज) विललाइयाँ (थ)। सहेस (ज) आसाढ (ज. थ)। तो श्रावण (च)। समक (ज) चमकि (थ)। मरेस (ज)।

१५२—केवल (ट) में।

१५३—बीजलीया (ट)। परोकियाँ (ट. च)। परणीयां (ट)। नीठे जी गमियाह (ट)। ढोला आगळि इउँ कहे (च)=अजइ०। वल (ट) बीजळि=पाछी (च)।

१५४—जै (ग)। साहिब (ग) ढोला। मेहा (च ज)। नीगम-ताह (ग)। तौ कीयां करायौं (ग) कि कीजइ तीयाँ (च) कीया कराया (थ)। सजनां (ग. ज)। दीधो (ग) दीधा (ज) दीधी (थ. ध) माहि। (च) मही। (ज) नहीं (थ) सम्भ (ध)। घणांह (ज) हीयांह (ध)।

वहिलउ आए वल्लहा, नागर चतुर सुजाँण।
तुझविण धण विलखी फिरइ, गुणबिन लाल कमाण॥१५५॥
राति ज रूँनो निसह भरि, सुणी महाजनि लोइ।
हाथाळो छाला पड़्या, चीर निचोइ निचोइ॥१५६॥
ढोला, मिलिसि म वीसरिसि, नवि आविसि ना लेसि।
मारू तणइ करकडइ वाइस ऊडावेसि॥१५७॥
हियड़इ भीतर पइसि करि ऊगउ सज्जण रूँख।
नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख॥१५८॥
अकथ कहाणी प्रेमकी किणसूँ कही न जाइ।
गूँगाका सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ॥१५९॥

१५५—हे नागर चतुर सुजान प्यारे, शीघ्र आना। तुम्हारे बिना प्रेयसी उदास फिरती है, जिस प्रकार प्रत्यचा के बिना लाल कमान।

१५६—कल जो मैं रात भर रोई तो गुरुजनों (तक) ने सुना। (और) साडी को निचोड़ते निचोड़ते मेरी हथेलियों मे छाले पड गए।

१५७—हे ढोला, न तो मिलते हो, न आते ही हो और न ले जाते हो। (फिर आकर) मारवणी के अस्थिपजर पर कौवो को उड़ावोगे।

१५८—मेरे हृदय मे प्रविष्ट होकर साजन रूपी वृक्ष उगा है। वह नित्य सूखता है और नित्य पल्लवित होता है जिससे नित्य नए नए दुःख देखने पड़ते हैं।

१५९—प्रेम की अकथनीय कहानी किसी से नहीं कही जाती। वह गूँगे के स्वप्न की भाँति हो गई है जिसे वह याद करके पछताता है (क्योंकि किसी से कह नहीं सकता)।

१५५—वेगौ (क. ख. घ) वहिलौ (ग)। आवै (ग) ग्रावे (च. ज) आवि (घ)। वालहा (च)। नागरि (ग)। तो=तुझ (क. ख. घ)। धन (ग)। फिरै (क. ख. ग. घ)। ज्युं गुण (क. ख. ग. घ)। ज्यउ गुण (च ज)=गुण।

१५६—सहाजन (ज. थ)। हथाळी (थ)। छाल्या (च)। निचोय निचोय (ज)।

१५७—साहिब (क. ख. ग) साहिब (झ)। मिलीस (क. ख थ) मिलस (झ)। न (क. ख) = म। वीसरसि (च. ज) वीसरिस (झ)। न (क. ख. थ) ना (थ)। आइसि (ख) आएस (क) आपुसि (थ) आवेस (ज. झ)। न लेस (क. व. झ) तणौं (क ख. झ) तणय (च ज) वायस (च ज)।

१५८—हीया (ख. झ) हीयै (क. घ)। माही (ख. झ)। कै (ज)=करि।

प्रीतम, तोरइ कारणइ ताता भात न खाहि।
हियड़ा भीतर प्रिय वसइ, दाझणती डरपाहि ॥१६०॥
चंदणदेह कपूररस सीतळ गंगप्रवाह।
मनरंजण, तनउल्हवण, कदे मिलेसी नाह ॥१६१॥
मत जाणे प्रिउ, नेह गयउ दूर विदेस गयाँह।
विलणइ वाधइ सज्जणाँ ओछउ ओहि खळाँह ॥१६२॥
हूँ कुँमलाणी कंत विण, जळह विहूणी वेल।
विणजारारी भाइ जिउँ गया धुकंती मेल्ह ॥१६३॥
आडा डूँगर, वन घणा, आडा घणा पलास।
सो साजण किम वीसरइ, बहु गुणतणा निवास ॥१६४॥

१६०—हे प्रियतम, तुम्हारे कारण मैं गर्म भात नहीं खाती। हृदय में प्यारा निवास करता है उसको जला देने के भय से डरती हूँ।

१६१—हे मन को रंजन करनेवाले, शरीर को स्पर्श से उल्लसित करनेवाले और चंदन, कपूर रस तथा गंगा के प्रवाह के समान शीतल गातवाले नाथ, कब मिलोगे?

१६२—हे प्यारे, यह मत जानना कि दूर विदेश में जाने से स्नेह भी चला गया। बिछुड़ने पर सज्जनों का प्रेम दुगुना बढ़ता है और दुष्टों का ओछा होता जाता है।

१६३—मैं कंत के बिना कुम्हला गई जिस प्रकार जलविहीन लता। मेरा प्यारा मुझे बंजारे की भट्टी के समान सुलगती हुई छोड़कर चला गया।

१६४—हमारे बीच में बहुत से पर्वत और वन हैं तथा बहुत से राक्षस (दुर्जन) बीच में हैं। तो भी वे साजन किस प्रकार भूले जा सकते हैं जो अनेक गुणों के घर हैं।

ऊगा (ख. झ)। नित (क. ख. थ. ज)। पालवै (ज. झ) पलवे (व)। नित (ख. व) नित्त (क) नितु (ज)=नित नितः। नवलै (ज)। दूख (झ)।

१६०—खाव (ख)। भी (क. व)। मैं=वी (क)। डरपाव (ख)।

१६१—चंदन (ग)। काच=देह (ग)। उल्हसण (ख. ग) उल्लवण (व)। मिलेस्यौ (ख. ग)।

१६२—केवल (झ) में।

१६३—केवल (झ) में।

१६४—केवल (झ) में।

आँखड़ियाँ डंबर हुई, नयण गमाया रोय।
से साजण परदेसमइँ रह्या विडाणा होय ॥१६५॥
मुख नीसाँसाँ मूँकती, नयणे नीर प्रवाह।
सूळी सिरखी सेम्कड़ो तो विण जाणे नाह ॥१६६॥
वालँभ, एक हिलोर दे, आइ सकइ तउ आइ।
बाँहड़ियाँ बे थक्कियाँ काग उडाइ उडाइ ॥१६७॥
जिम सालूराँ सरवराँ, जिम धरणी अर मेह।
चंपावरणी वालहा, इम पाळीजइ नेह ॥१६८॥
वालिभ गरथ वसीकरण बीजा सहु अकयथ्थ।
जिए चड्या दळ उत्तरइ, तरुणि पसारइ हथ्थ ॥१६९॥
वासर चित्त न वीसरइ, निसिभरि अवर न कोइ।
जइ निद्रा भरि भोगवूँ, तउ सुपनंतरि सोइ ॥१७०॥

१६५—मेरी आँखें (फूलकर) लाल हो गईं, मैंने अपनी दृष्टि रो रोकर खो दी और वे साजन परदेश में पराए हो रहे।

१६६—मुख से निःश्वास छोड़ती है, आँखोंसे जल वह रहा है। हे नाथ, तुम्हारे बिना सेज को शूली के सदृश समझती है।

१६७—हे वल्लभ, मेरे हृदय में आनद की एक हिलोर उठाओ, आ सको तो आओ। मेरी दोनो बाँहे काग उडाते उड़ाते थक गई हैं।

१६८—जिस प्रकार मेढ़क और सरोवर, एव जिस प्रकार पृथ्वी और मेघ, स्नेह निभाते हैं उसी प्रकार हे प्यारे, चंपकवर्णी प्रेयसी के साथ स्नेह निभाइए।

१६९—एक प्यारा ही वशीकरण धन है और सब अकारथ है, जिसके प्रेम का मद चढने से और सब मद उतर जाते हैं और युवती व्याकुल होकर हाथ फैलाने लगती है।

१७०—प्रियतम दिन मे चित्त से नहीं भूलते, रात भर और कोई

१६५—केवल (झ) में।
१६६—केवल (झ) मे।
१६७—केवल (च) में।
१६८—केवल (झ) मे।
१६९—केवल (घ) मे।
१७०—निंदा (घ)=निसि। भर (ख. घ. झ) भोलउँ (झ)। सुपनंतर (घ)।

सोरठा

जेती जट मनमाँहि, पंजर जइ तेती पुळइ।
मनि वइराग न थाइ, वालॅभ वीछुड़ियाँ तणी ॥१७१॥

दूहा

फूलाँ फळाँ निघट्टियाँ, मेहाँ धर पड़ियाँह।
परदेसाँका सज्जणा, पत्तीजूँ मिळियाँह ॥१७२॥
सालूरा पाँणी विना रहइ विलक्खा जेम।
ढाढी, साहिबसूँ कहइ, मो मन तो विण एम ॥१७३॥
पावस मास, विदेस प्रिय घरि तरुणी कुळसुध्ध।
सारँग सिखर, निसद्द करि, मरइ स कोमळ मुध्ध ॥१७४॥

बात चित्त में नहीं आती। यदि भर नींद सोती हूँ तो स्वप्न में भी वही दिखाई देते हैं।

१७१—जितनी (अभिलाषाएँ) मन में हैं उतना यदि शरीर दौड़े तो प्राणवल्लभ से बिछुड़ने की मन में विरक्ति न हो।

१७२—फूलों में फलों के लगने पर और मेहों के पृथ्वी पर पड़ने पर प्रतीति होती है, उसी प्रकार हे परदेशी प्यारे; तुम्हारे मिलने पर ही मैं पतिआऊँगी।

१७३—मेंढक जिस प्रकार पानी के बिना विकल रहते हैं, हे ढाढी तू स्वामी से कहना कि उसी प्रकार मेरा मन तुम्हारे बिना व्याकुल है।

१७४—वर्षा का महीना है, प्रियतम विदेश में है और शुद्ध कुलवाली प्रिया घर में है। शिखर पर मोर शब्द करता है, कहीं कोमलांगी मुग्धा मर जायगी।

१७१—तेवी (क) जेती (क) । जाइ=माहि (ख) । तो=जइ (क. ध) । वेदन न हुवै (क. व त)=मनि वैराग न । काय (क) काइ (व)=थाइ । वाल्हां (ख) ।

१७२—निघटीयाँ (ख) लाकटीया (ग) नवटीयाँ (ज) । निफूलियाँ (क) । मेह (व) । धरि (ज) पडियाँ (ग) । रा=का (ज) । पत्तीज्युं (ग) पत्तीजुं (ज) ।

१७३—सालग (ग) विलपी (व) ।

१७४—विदिस (व) । प्री (घ) । वर (ख) । मसद (ख) नसद (क) । सु=स (क) । मूध (व) मुंध (ख) ।

तुँही ज सज्जण, मित्त तूँ, प्रीतम तूँ परिवाँण।
हियड़इ भीतरि तूँ वसइ भावइँ जाण म जाँण ॥१७५॥

हूँ बळिहारी सज्जणाँ, सज्जण मो बळिहार।
हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गळहार ॥१७६॥

लोभी ठाकुर, आवि घरि, काँई करइ विदेसि।
दिन दिन जोवण तन खिसइ, लाभ किसाकउ लेसि ॥१७७॥

बहु धंधाळू आव घरि, काँसू करइ वदेस।
संपत सघळी सपजे, आ दिन कदी लहेस ॥१७८॥

अवसर जे नहि आविया, वेळा जे न पहुत्त।
सज्जण तिण सदेसड़इ करिज्यउ राज बहुत्त ॥१७९॥

१७५—तू ही सजन है, तू ही मित्र है, तू निश्चय ही प्रियतम है। मेरे हृदयके अदर तू बसता है, इस बात को तू चाहे जान या न जान।

१७६—मै प्रियतम पर बलिहारी हूँ और प्रियतम मुझ पर बलिहार हैं मैं प्रियतम के पावों की जूती हूँ और वे मेरे गले का हार हैं।

१७७—हे लोभी स्वामी, घर आओ। विदेश में क्या करते हो? दिन दिन यौवन और शरीर गल रहा है। कौन से लाभ प्राप्त करोगे?

१७८—बहुत धधोंवाले (प्रियतम), घर आओ, किसके कारण विदेश वास करते हो? यौवन की सब सपत्ति इसी समय सचित हो रही है। यह सुदिन फिर कब पाओगे?

१७९—जो अवसर पर नहीं आए और समय पर जो नहीं पहुँचे तो—उन सज्जन से सदेश कहना कि तुम फिर बहुत दिनों तक राज्य करते रहना।

१७५—तू ही (ख)। मित्र (क. ख. घ)। परमाण (क) परवांण (घ)। हीयै (क)। भीतर (ख)।

१७६—केवल (झ) में।

१७७—केवल (छ) में।

१७८—केवल (ट) में।

सोरठा

संभारियाँ सँताप, वीसारिया न वीसरइ।
काळेजा बिचि काप, परहर तूँ फाटइ नहीं ॥१८०॥

दूहा

यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दळ होइ करि, बरसि बुझावइ अग्गि ॥१८१॥
भरइ, पळट्टइ, भी भरइ, भी भरि, भी पळटेहि।
ढाढी हाथ संदेसड़ा, धण विललंती देहि ॥१८२॥
दूहा संदेसा मिसइँ दीधा तिणाँ सिखाइ।
प्रीतम आगळि बीनती करिया इणि विधि जाय ॥१८३॥

१८०—स्मरण करने से सताप होता है, भुलाने से नहीं भूलते। कलेजा भीतर से कट रहा है। तुमने छोड़ दिया है पर यह तो भी नहीं फटता।

१८१—यह तन जलाकर मैं कोयला कर दूँ और उसका धुआँ स्वर्ग तक पहुँच जाय। मेरा प्रियतम बादल बनकर बरसे और बरसकर आग को बुझा दे।

१८२—मारवणी सँदेसे को कहती है, बदलती है, फिर कहती है, कहकर फिर बदल देती है। इस प्रकार वह प्रियतमा विलाप करती हुई ढाढी के हाथ सँदेसे देती है।

१८३—उसने सदेसे के मिस उन ढाढियों के दोहे सिखा दिए और कहा कि प्रियतम के आगे इस प्रकार जाकर बिनती करना।

१८०—केवल (झ) में।

१८१—केवल (झ) में।

१८२—भरै (क. घ) तलै (ख) भरि (ग. झ)। पलटै (क. ख. ग) पलटी (झ)। भरै (क. ख. ग. घ. झ)। भरि भरि (क) भी भर (ज)। पलटेह (क. ख)। पंथी = ढाढी (ज) हाथि (च)। रुदेसटौ (क) सदेसडो (ज)। विलवंती (च. ज. ग. झ)। देह (क ख. ग झ)।

१८३—दीन्हा (क. घ) दीया (ग)। तणाँ (ख) तिया (ग)। (सिषाय (ग)। आगळ (ख)। वेनवी (घ)। कहिया (ग)। इण (ग)।

(ढाढियों का नरवर जाना)

स्रवण सँदेसा साँभळे ढाढो किया प्रयाँण।
सागरवाळ जु आविया देसे साल्ह सुजाँण ॥१८४॥
पूगळहूँतों पुहकरइ ढाढी कीध प्रयाँण।
माळवणीका माणसाँ आए मिल्या अजाँण ॥१८५॥
ढाढी रात्यूँ ओळग्या, गाया बहु बहु भंत।
माँगण-पंथी जाँणि कइ, तब छंडिया निचंत ॥१८६॥
वागरवाळ विचारियउ, ए मति उत्तिम कीध।
साल्ह-महलहूँ ढूकड़ा ढाढी डेरउ लीध ॥१८७॥
ढाढी गाया निसह भरि राग मल्हार निवाज।
च्यार पहर झड़ मंडियउ, घण गुहिरइ सुरगाज ॥१८८॥

१८४—कानो से सदेसो को सुनकर ढाढियो ने प्रयाण किया। इसके बाद वे याचक सुजान साल्ह कुमार के देश मे आए।

१८५—ढाढियो ने पूगल से पुष्कर की ओर प्रयाण किया और मालवणी के मनुष्यों से छिपे हुए आ मिले।

१८६—ढाढी रातोंरात चल करके (नरवर मे) पहुँचे और उन्होने बहुत भाँति से गीत गाए। तब रक्षकों ने उन्हे याचक पथिक जानकर निश्चित होकर छोड़ दिया।

१८७—याचकों ने विचारा—यह विचार उत्तम किया। साल्हकुमार के महल के नजदीक ढाढियों ने डेरा लिया।

१८८—ढाढियो ने रात्रिभर मल्हार राग रचकर गाया। चार पहर तक वर्षा की झडी लगी रही और बादल गंभीर स्वर से गरजते रहे।

१८४—केवल (क) में।

१८५=हंता (ख) हुता (ग)। पहकरै (ख)। ढोला दिसै=ढाढी कीध (ग)। प्रणाम (क) प्रमाण (घ)।

१८६—ढोलै (क) ढोलै (क घ)=रात्यूँ। उळग्या (क घ) ऊळग्या (ग)। गावै (क घ)। बह बह (क घ) भाँति (ख) भौंति (ग)। पंथी (क)। जण कह्या (क. ग)। छोडीया (ख) छडाया (घ)। निछत (ग)।

१८७—विचारीयै (ग)। उत्तम (ख)। ढाढियाँ=ढूकडा (ख)। नेडै=ढाढी (ख) डेरा (क) ढेरा (ग)।

१८८—गावै (क. घ)। मिवाज=निवाज (क ख)। पुहर (ग)। घणि (ग)। सुं=सुर (क)। सिर काज=सुर गाज (ग)।

सिंधु परइ सउ जोयणाँ खिवियाँ वीजुळियाँह।
ढोलउ नरवर सेरियाँ, धण पूगळ गळियाँह ॥१८६॥
सिंधु परइ सत जोश्रणे खिवियाँ वीजळियाँह।
सुरहउ लोद्र महक्कियाँ, भीनी ठोवड़ियाँह ॥१६०॥
सिंधु परइ सउ जोश्रणे नीची खिवइ निहल्ल।
उर भेदती सज्जणाँ, ऊचेड़ंती सल्ल ॥१६१॥
ढाढी गाया निसह भरि, सुणियउ साल्ह सुजाँण।
श्रोछइ पाँणी मच्छ ज्यउँ वेलत थयउ विहाँण ॥१६२॥
दुख वीसारण, मनहरण, जउ ई नाद न हुंति।
हियड़उ रतन-तळाव ज्यउ फूटी दह दिसि जंति ॥१६३॥

१८६—समुद्र के पार सौ योजनों पर बिजुलियाँ चमक रही है। ढोला नरवर की गलियों मे श्रौर प्रेयसी पूगल की गलियों मे है।

१६०—समुद्र के पार सौ योजनो पर बिजुलियाँ चमक रही हैं, लोद्र देश (पूगल) सुरभि से महकने लगा श्रौर ठौर ठौर (वर्षा से) भींग गई।

१६१—समुद्र के पार सौ योजन पर बिजली बहुत ही नीची चमक रही है। वह प्रेमियों के हृदयों को भेदन करती हुई विरह रूपी शल्य को उखेलती है।

१६२—ढाढियों ने रात्रि भर गाया श्रौर सुजान साल्हकुमार ने सुना। छिछले पानी म तड़पती हुई मछली की तरह तड़पते हुए उसे प्रभात हुश्रा।

१६३—दुख को विस्ममरण करानेवाला श्रौर मन को हरनेवाला यह सगीत यदि न होता तो हृदय रत्न सरोवर की भाँति फूटकर दशों दिशाश्रों में बह जाता।

१८६—सधि (क)। दिसउ=परइ (क)। सत (च)=सो (क)। खिवे न (ज)। विजुळीयांह (च) वीजुळियाँ (ज)। ढोलइ (क)। नळवर (च)।

१६१—दिसै (क)=परइ। सो (क)। जोयणां (क)। निहल (क)। भेदंता (क) चीधंती (?) विरहियाँ (?)=सज्जणाँ। मारू छेडै सल (क)।

१६२—गावे (क घ)। सुणीया (ख)। उछे (क, ग) श्रोछौ (घ)। मछ (ख)। जिम (ख) जूँ (ग)। विलपत (ग)।

१६३—केवल (क) में।

(ढोला से ढाढियों का मिलना)

मंदिरहूँतौ ऊतरयउ रवि ऊगंतइ वार।
मॉगणहार बोलाविया पूछण तास विचार ॥१६४॥

कवण देसतईं आविया, किहॉं तुम्हारउ वास।
कुँण ढोलउ, कुँण मारुवी, राति सलहाया जास ॥१६५॥

पूगळहुंता आविया, पूगळ म्हॉकउ वास।
पिंगळ राजा तास धू मेल्हा थॉंकइ पास ॥१६६॥

मारुवणी पिंगळ सुधू, अपछररइ उणिहार।
बाळपणइ परणी पछइ, भूल न कीन्ही सार ॥१६७॥

१६४—सूर्योदय के समय वह महलो से नीचे उतरा और याचकों को उनका विचार जानने के लिये बुलाया।

१६५—ढोला का प्रश्न—

तुम कौन से देश से आए हो? तुम्हारा निवास कहॉ है? कौन ढोला है और कौन मारुवी है जिनके विषय मे रात मे तुमने गाया था।

१६६—ढाढियों का उत्तर—

हम पूगल से आए है। पूगल मे हमारा निवास है। वहॉ पिंगल नाम के राजा हैं। उनकी पुत्री ने हमे आपके पास भेजा है।

१६७—मारवणी पिंगल राजा की सुपुत्री है। वह अप्सरा के समान सुंदरी है। बाल्यकाल में विवाह होने के पीछे भूल करके भी आपने उसकी सुधि न ली।

१६४—मंदिर (घ)। हुआ (घ)। ऊगतै (ख)। सु वार (ख) मांगळहार (घ)। तेडावियौ (ख)।

१६५—ढाढी सनमुख तेडीया कहो वात सु मकास (ग)=कवण०। किंण दिसा सुं आवया (घ)। तुम्हारा (घ)। तास=जास (क. ग. घ)।

१६६—हंता (ख)। हुती (घ)। आवीयौ (ख)। तासु (क)। मेल्हा (घ)।

१६७—कुमरी=मारुवणी (ग)। रायनी=सुधू (ग)। री (ख)। अणुहार (ख) उणहार (ग)। बालापणै (ख)। मूळ=भूल (क)। म=न (क)।

दुज्जण वयण न संभरइ, मनॉ न वीसारेह।
कूँर्मा लाल बचॉह ज्यउँ खिण खिण चीतारेह ॥१९८॥
सज्जण, दुज्जण के कहे भ्रक्कि न दीजइ गाळि।
हळिवइ हळिवइ छंडियइ जिम जळ छंडइ पाळि ॥१९९॥
सदेसे ही घर भरयउ कइ श्रंगणि कइ वार।
अवसि ज लग्गा दीहडा, सेई गिणइ गॅवार ॥२००॥
जळमँहि वसइ कमोदणी, चंदउ वसइ अगासि।
ज्यउ ज्योंहीकइ मनि वसइ, सउ त्यॉंही कइ पासि ॥२०१॥

१९८—दुर्जनों के वचनों को न सुनो और मन से मारवणी को मत विसारो। कुंज पक्षी जिस प्रकार (अपने) लाल लाल बच्चों को क्षण क्षण में याद करते रहते हैं उसी प्रकार (मारवणी तुमको) याद करती है।

१९९—हे सज्जन, दुर्जनों के कहने से एकदम परित्याग नहीं कर देना चाहिए। यदि छोड़ना ही हो तो धीरे धीरे छोड़ना चाहिए जैसे पानी किनारे को छोड़ता है।

२००—क्या ऑंगन और क्या दरवाजे—सारा घर मारवणी ने सँदेसों से भर दिया है। दिन अवश्य लग गए हैं पर उनकी गणना गॅवार (को छोड़ कर और कौन) करता है।

२०१—कुमुदिनी पानी में रहती है और चंद्रमा आकाश में रहता है परंतु फिर भी जो जिसके मन में बसता है वह उसके पास ही होता है।

१९८—पिसुणां चाल्यो जनि करहु=दुज्जण० (थ)। मनह न (ग. घ)। वीसारेहि (थ)। क्रूंझो (ग) कुंर्झा (थ)। चीतारेहि (थ)।

१९९—केवल (झ) में।

२००—सदेसा (घ)। आंगण (घ)। अवस (घ) लगे (ख)। से किम (घ)। गणें (ज)।

२०१—मे (ग)। कमोदिनी (ख. ग)। कमळ कमोदिक जळ बसइ (च) जेम कमोदणि जळ वसइ (ज)। चन्दा (ग) चन्दौ (क ख)। वसै (क. ख. ग)। अगाह (ख) आकास (क. ग. घ) आकासि (ज)। जे (क. ख. ग. ज) जाहू (क. ख. ग) जीयाँ रै (ज। मन (क. ग. घ. ज) चसै (क. ख. ग)। ते=सउ ज)। ताहू (क. ख. ग. झ)। तीयाँ रै (ज)। पास (क. ख. ग. घ. ज. झ)।

चुगइ, चितारइ भी चुगइ, चुगि चुगि चित्तारेह।
कुरझी बच्चा मेल्हिकइ, दूरि थकाँ पाळेह ॥२०२॥
चीतारंती चुगतियाँ कुंझी रोवहियाँह।
दूराहुंता तउ पलइ, जऊ न मेल्ह हियाँह ॥२०३॥
दिसि चाहंती सज्जणा, नेहाळंदी मुंध।
सा धण कुंझि बचाह ज्यउँ लंबी थई तुं कंध ॥२०४॥
चीतारंती सज्जणाँ, नीहाळंती मग्ग।
धण कुंझाह बचाहि जिउँ लाँबा हूयापग्ग ॥२०५॥
आसालुब्धी हूँ न मुइय सज्जन जंजालेइ।
मारू सेकइ हथ्थड़ा झीणे अंगारेइ ॥२०६॥

२०२—कुंझ चुगती है, फिर अपने बच्चों की याद करती है और चुग चुगकर फिर याद करती है। इस प्रकार कुंझ अपने बच्चों को छोड़कर भी, (चुगने के लिए दूर जाने पर भी) दूर रहती हुई, पालती है।

२०३—चुगती हुई कुंझें अपने बच्चों की याद करके रो उठती हैं। दूर होते हुए भी (वे) तभी पल सकते हैं जब कि उन्हें हृदय से न भुला दिया हो।

२०४—वह मुग्धा प्रेयसी प्रियतम (के आने) की दिशा देखती हुई और प्रतीक्षा करती हुई कुंझ के बच्चे की तरह लंबी गर्दनवाली हो गई है।

२०५—प्रियतम की याद करती हुई और उसका मार्ग देखती हुई प्रियतमा मारवणी के पैर कुंझ के बच्चे की भाँति लंबे हो गए है।

२०६—प्रियतम के स्वप्नों द्वारा मिलन की आशा से लुब्ध हुई मारवणी

२०२—तीतारे (क घ)। कूंझां (ख) कुरुझ (घ)। मेल्हीया (क) मेल्हया (घ)।

२०३—चुगंतीयां (च) चुगति फल (थ)। क्रूंझी (ग)। रोरवीयांह (ग. न) रोहवीयांह (ज) रोहबियांह (थ)। दूरां (च)। हूत (ग) हुंती (ज)। जो=तउ (ग ज) जउ (थ) मिलै (ग) मिळइ (च) पुलै (ज)। तो (ग) तौ (ज) तउ (थ)=जऊ। मन मेल्हइ याह (ग)। मेल्हियहियांह (थ)। दूर थकांहीं पल्हवै जौ पन मेल्ही जाह (?)।

२०४—दिस (ज)। सजनां (ज)। नेहालद्दी (छ)। नेह उलंध्या पंथ (थ)। साय धण (ज)। बच्चह (ज)। कुंझ न चंच ज्युं=कुंझि० (थ)। लांवी (थ)। भई (ज)। कुकंब=तुँ कध (थ)।

२०५—केवल (च) में।

२०६—केवल (च) में।

चंदमुखी हंसा गमणि, कोमळ दीरघ केस ।
कंचन वरणी कामनी वेगउ आवि मिलेस ॥२०७॥

ढोलइ मनि आरति हुई, सांभळि ए विरतंत ।
जे दिन मारू विण गया, दई न ग्यॉन गिणंत ॥२०८॥

मॉगणहारॉ सीख दी ढोलइ तिणहि ज ताळ ।
सोवन-जड़ित सिंगार दे नॉख्यउ दळिद उलाळ ॥२०९॥

मॉगणहारॉ सीख दी, आयउ मंदिर मॉहि ।
ढोलइ मन आणॉद भयउ, मारूतणइ उछाहि ॥२१०॥

नहीं मरी । इस प्रकार वह अपने हाथ मानों आधे बुझे हुए अंगारों में सेक रही है ।

२०७—चाँद जैसे मुखवाली, हस जैसी गतिवाली, कोमल और लंबे केशोंवाली और स्वर्ण जैसे रंगवाली कामिनी से शीघ्र आकर मिलो ।

२०८—यह वृत्तात सुनकर ढोला के मन मे लालसा उत्पन्न हुई और सोचने लगा कि मेरे जो दिन मारवणी के विना गए विधाता उनको मेरे जीवन मे न गिने ।

२०९—ढोला ने उसी समय याचकों को विदा दी और सुवर्ण जड़े हुए शृंगार देकर उनका दारिद्रय नष्ट कर दिया ।

२१०—ढोला ने याचकों को विदा दी और महल मे आया । ढोला के मन में मारू के मिलन के उत्साह से आनद हुआ ।

२०७—चन्दामुपि (ख) । गमण (ख) । काटिहर=दीरघ (ग) । कंचण (ग) । वरणा (ख. ग) । वालहा (ख. ग) वलहा (घ) । आव (ग) आई (ख) । मिलेसि (ख. ग) ।

२०८—मन (ख. ग) । आवर (ग) आरित (घ) । सांभळ (ख) । विन (ग) । लहंत (ख) गिनंत (ग) ।

२०९—सोवण (ख) । जडत (क) । सणगार (ख) सिणगार (क) सिंगरि (घ) । नॉखौ (क) नांख्या (घ) दळद (क. घ) दरिद्र (ग) ।

२१०—हुवौ (ख) । तणे (ख) । उछाह (ख) ।

(ढोला की आतुरता)

मन सींचाणउ जइ हुवइ, पाँखाँ हुवइ त प्राँण।
जाइ मिलीजइ साजणाँ, डोहीजइ महिराँण ॥२११॥
आडा डूँगर वन घणा, ताँह मिलीजइ केम।
ऊलाळीजइ मूँठ भरि मन सींचाणउ जेम ॥२१२॥
इहाँ सु पंजर मन वहाँ, जय जाणइला लोइ।
नयणा आडा वींझ वन, मनह न आडउ कोइ ॥२१३॥
जिउँ मन पसरइ चिहुँ दिसद, जिम जउ कर पसरंति।
दूरि थकाँ ही सज्जणाँ, कंठा ग्रहण करंति ॥२१४॥

(ढोला माळवणी संवाद)

माळवणी सिणगार सझि, आई वालँभ पास।
मन संकोची पदमिणी, प्रीतम देखि उदास ॥२१५॥

२११—यदि मन बाज पक्षी हो और प्राण पाँखें हों तो महारण्य को उलाँघा जाय और प्रियतमा से जा मिला जाय।

२१२—बीच मे बहुत से पर्वत और वन हैं, उस (प्रियतमा) से कैसे मिला जाय। बाज की भाँति मन को मूँठ भरकर उड़ा दिया जाय।

२१३—मेरा देहपिंजर तो यहाँ है और मन वहाँ है। वास्तव मे यदि लोग समझें तो यद्यपि आँखों के अवरोधी घने जगल हैं परतु मन का अवरोधी कोई नहीं।

२१४—जिस प्रकार मन चारो दिशाओं मे प्रसरित हो जाता है उसी प्रकार यदि हाथ भी प्रसरित होते तो दूर बसती हुई प्रियतमा को गले से भेंटता।

२१५—शृगार सजाकर मालवणी प्रियतम के पास आई, परतु प्रियतम को उदास देखकर वह पद्मिनी मन मे सकुचित हो गई।

२११—जो (क घ.)। हुवै परांण) ख)। सज्जनां (ख)। डोढहीजै (क)।
२१२—वीझ वन=वन घणा (क)। वीन वीन (घ)। तिहीं (ख)।
२१३—केवल (च) मैं।

२१४—जे (ख) जिस (झ)। चहुँ दिसां (ख)। ज्युं (क) त्यौं (ख) तिम (झ)=जिम। जे=जउ (क. ख)। पसरंत (क. ख)। दूर (क)। वसता=थकां ही (क. ख)। साजणा (ख)। ग्रहा न (क)। करन्त (क)।
२१५—मजि (ख)। प्रिय पास जे=सिणगार सजि (ग)। देखी प्रीय उदास (ख), देखी चित उदास (ग)।

जेहा सज्जण काल्ह था, तेहा नाँहीं अज्ज।
माथि त्रिसूळउ, नाक सळ, कीइ विलट्टा कज्ज ॥२१६॥
मनह सँकाणी माळवणि, प्रियु काँई चलचित्त।
कइ मारुवणी सुधि सुणी, कइ का नवली वत्त ॥२१७॥
साहिब हँसउ न बोलिया, मुझसूँ रीस ज आज।
अंतरि आसणदूमणा, किसउ ज इवड़उ काज ॥२१८॥
चिंता डाइणि ज्याँ नराँ, त्याँ दृढ अंग न थाइ।
जइ धीरा मन धीरवइ, तउ तन भीतर खाइ ॥२१९॥

२१६—वह मन में सोचने लगी कि प्रियतम जैसे कल थे वैसे आज नहीं है। (आज उनके) मस्तक पर त्रिशूल बन रहा है और नाक में सल पड़ रहा है, जान पडता है कि कोई काम बिगड गया है।

२१७—मालवणी मन मे शंकित हुई कि प्रियतम का चित्त क्यों चलायमान है, क्या उन्होंने मारवणी की सुध सुनी है या कोई नई बात हुई है?

२१८—मालवणी—

हे प्रियतम तुम न हँसते हो, न बोलते हो, आज मुझसे अवश्य रिसाए हुए हो। अतःकरण मे व्यथित एवं उदास हो। ऐसा कौन सा भारी काम आ पड़ा?

२१९—जिन लोगों को चितारूपी डाइन लगी हुई है उनके अंग दृढ़ नहीं होते। जो धीर पुरुष हैं वे धैर्यपूर्वक सह लेते हैं, तो भी उनके तन को भीतर ही खाती है।

२१६—केवल (ख) मे।

२१७—मन (ज) मनि (थ)। मालवी (ज)। प्रीव (ज)। कांय (ज)। चिल (थ)। का (थ)। मारवणी (ज)। बुद्धि (ज) वणी=सुणी (थ)। कइ वळि (ज) कानि पढी वळि (थ)।

२१८—बोलही (क. व)। रीसौ (घ)। इवरो (क) इवरू (घ)।= अंतरि। अवडो (घ) इतरो (ख)। कज (व)।

२१९—ढाइण (क. ग. घ) डाकिण (ख)। जिहाँ (ख. ध. च. थ)। जहा (ग)। तिहां (क) तां (ख) तीयां (ध) तिह (च)। घटि=दृढ (च)। अंगि न=(च)। माइ (च. थ) माय (ज)। धीयां (क) जो (च)। धीरै (ख) धीरो (ज)। धीरण पण रहइ (च) धीरपण रहे (ज) धीरत पणे (थ)= मन धीरवइ। जे नर चिंता वस करै (ध)। तीयां (क) तौ (ख) त्यां (म) तसु (ज. थ) भीतर पैसी खाई (च. थ) भीतर पमसी खाय (ज)।

चिंता बंध्यउ सयळ जग, चिंता किणहि न बध्ध।
जे नर चिंता बस करइ, ते माणस नहि सिध्ध ॥२२०॥
माळवणी, तूँ मन-समी, जाणइ सहू विवेक।
हिरणाखी, हसिनइ कहइ, करउँ दिसाउर एक ॥२२१॥
गढ नरवर अति दीपता, ऊँचा महल अवास।
घरि कामिण हरणाखियाँ किसउ दिसावर तास ॥२२२॥
तंती नाद तँबोळ रस, सुरहि सुगंधउ जाँह।
आसण तुरि घरि गोरड़ी, किसउ दिसाउर स्याँह ॥२२३॥

२२०—ढोला—

सारा जगत् चिंता से बँधा हुआ है पर चिंता को किसी ने नहीं बाँधा। जो मनुष्य चिंता को वश मे कर लेते हैं वे मनुष्य नहीं किंतु सिद्ध हैं।

२२१—हे मालवणी, तू मेरे मन में समा गई है, तू सब बातों को समझती है। हे हरिणाक्षी, यदि तू हँसकर कहे तो मै एक (वार) परदेशाटन करूँ।

२२२—मालवणी—

जिनके नरवर जैसा प्रसिद्ध गढ़ है, ऊँचे ऊँचे महल और घर है और घर में हरिणाक्षी कामिनी है उनके लिये देशाटन कैसा ?

२२३—जिनको तंत्री का नाद, ताबूल का रस, सुरभित सुगंधि, घोड़े की सवारी और घर में सुंदरी स्त्री (उपलब्ध है) उनके लिये देशाटन कैसा ?

२२१—वसी=समी (क. घ.)। मनि सूं सही (च) मनि सांमुही (ज) मनि संमुही (थ)=तूं मन समी। जाणै (क. ख. घ)। विवेक (क. ख. च. ग. थ)। हरिणाखी (क. ख. ग. घ. झ) हिरणंखी (च)। हसनें (ज)। करां (ग. ज थ) दिसावर (क. ख. ग. घ. च. छ)।

२२२—नळवर (ग)। दीपती (क) दीपतां (घ)। आवास (क. ग. घ)। घर (क. ख. ग.)। हरिनाखियां (ग) हरिणचीयां (घ)।

२२३—सुरह (ज) सुगधी (थ)। ज्याह (ज) जाइ (थ) आसणि (च.थ.)। तुरीय (च)। तुरी (थ)। पग मोजडी (च. ज. थ.)। करउँ (ध) दिसावर (ग) देसाउर (थ)। तांह (थ)।

ईडरकी धर अवळगउँ, जइ तूँ कहइ तु जाँह।
अत्थि घड़ाउँ आभरन माल्हवणी, मेलाँह ॥२२४॥
ईडरकी धर अउलगण, हूँ तउ जाण ण देसि।
घरि बइठाही आभरण, मोल मुहंगा लेसि ॥२२५॥
मुळताणी धर मन वसी, सुहँगा नइ सेलार।
हिरणाखी, हँसि नइ कहइ, आणउँ हेडि तुखार ॥२२६॥

२२४—ढोला—

यदि तुम कहो तो मैं ईडर की यात्रा करने के लिये जाऊँ। हे मालवणी, वहाँ आभूषण बनवाऊँ और तुम्हें भेजूँ।

२२५—मालवणी—

ईडर का प्रवास करने को मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। घर बैठे ही महँगे मोल पर आभूषण खरीद लूँगी।

२२६—ढोला—

मुलतान की भूमि मेरे मन में वसी है। हे हरिणाक्षी, यदि तू हँसकर कहे तो वहाँ से सहज ही मैं सस्ते घोड़े के झुंड लाऊँ।

२२४—राजा (च ज)=की धर। उळगृ (क. झ) ओलगूँ (ख) ओळमण (ज)। जे (क ख. ग) जौ (ज)। थे=तू (क. ख. ग. घ. ज. ज. झ)। कहो त (क. ख. ग. घ. झ) कहि तौ (ज)। जाउ (घ)। उहा (च. ज) उवाहुं (क) उवाह (घ) ऊथि (ग) ऊवाहृ (झ)। घणइ (च)। घोडाँ (क) वाडा (घ) घोडा (झ) वडावँ (ज) मालवणी (च. ज)। मलाह (ज) मल्हाउ (घ)।

२२५—इडर राजा (च. ज) ऊळगूं (च. थ) उळगण (क. ख. ग. घ) ओळगण (ज)। हु (क. ख ग. घ)। तुझ (क. ख. ग. घ. ज)। न (क. ख. ग. घ. ज)। देस (क ख. ग. घ. ज)। इथे (क) एथ (ख) एथि (घ)=घरि। वैठा (क. ख. ग. घ) मूल (ग) मोलि (च. थ)। महंगा (ख) महुंगा (ज) मुहगा (थ)।

२२६—जाइ कै (ख)=मन वसी। अनै (क. घ)। सेलाइ (क)। मुलताणी सोवन समा सुहगा आणि भरतार (थ) हरणखी (क. ख. ग घ)। हस (ख. ज.)। ने (क ख. ग) नी (घ) नें (ज) कहे (क. ग. घ) कह्यौ (ख) आंण (क. ख. ग घ) एथ (क) पथ (ग)=हेडि हेड (ख. ज)। विसाइ (क. घ) विसार (ग)=तुखार।

नोट—च. ज. थ. ध. में पंक्तियों का क्रम उलटा है।

हिरणाखी हसि नइ कहइ तु आणउ हेडि तुखार। मुलताणी मो मन समा मुहडा ते असवार (च०) मुहगाने सौ वार (ज०) सुहिणा नी सुविचार (ध)।

घरि बइठा ही आविस्यइ, लाखे लियाँ लडंग।
तिणिमइँ लेस्याँ टाळिमा, वाँकड़ मुहाँ विडंग ॥२२७॥
काछी करह विथूँभिया, घड़ियउ जोइण जाइ।
हरणाखी, जउ हसि कहइ, आणिसि एथि विसाइ ॥२२८॥
साहिब, कच्छ न जाइयइ, तिहा परेरउ द्रग।
भीभळ नयण सुवक धण, भूलउ जाइसि संग ॥२२९॥

२२७—मालवणी—

घर बैठे ही (व्यापारी) लाखो घोड़े लिए आ जायँगे। उनमे से हम चुने हुए बाँके मुँहवाले घोड़े लेंगे।

२८८—ढोला—

कच्छदेश के बडी थूहीवाले ऊँट घड़ी भर मे योजन जाते हैं। हे हरिणाक्षी यदि तू हँसकर कहे तो उनको मोल लेकर यहाँ लाऊँ।

२२९—मालवणी—

हे स्वामिन् कच्छ मत जाइए, वहाँ पराया दुर्ग (राज्य) है। वहाँ कजरारे नयनोंवाली सुदरी स्त्रियाँ हैं जिनके साथ भूले हुए तुम चले जाओगे।

२२७—एथि (क) वर (ख. ग) एथ (घ)। बैठा ही (क. ख. ग. घ ज)। आविसी (ख. घ) आइसी (ख) आवसी (ग. ज)। मुहै (क. ख. ग. घ)=लियाँ। तिण मैं (क. घ) ताहमि (ख) ताहि मै (ग) त्यां माहि (ज तिणि मांहे च)। लैसां ख) लीसां घ) टाळिवा (ख) टाळमा (घ)। चुणवा लीजसी (ज, चुणि लीजस्यइ (च)। बंक (च) वाक (व) मुह (ग)।

२२८—काछीया (ख)। कर (ग) करहा (घ) रह (च)। वे थूभिया (ग) विथुंभीया (ज)। घडीया (च) घडियां (ज)। जाय (ज)। जाइण (ग) जोयण (ज) : हरिणांखी (ग)। जौ (ज)। हसिनै=जउ हासि (घ)। मालवणी जइ तू कहइ (च) हरणाखी०। आणां (क. ख. ग. ज) आपो (घ) आषो पंथ (घ)। (ख. ग. घ)। एथ (ज) विसाय (ग. ज.)।

२२९—ढोला (च. ज)=साहिब। कठि (ख) कछ (ग)। म जाइसि कछ दिसि (च) म जाइसि कच्छ देसि (थ)। वालँभ म जाए कछछडे (न)। ताह (क. ख. ग. घ) त्याह ज (ज)। परे रै (क) परेरा (ख) परेहरा (म) प्रहरे (ज)। द्रंगि (ख. च. ज. थ)। सोसल (ग) भंगळ (झ) भिंभळ (थ)। नेण (ज) नयणि (झ)। सुचंग (क. ख. ग. घ. ज. झ.)। त्री (ख) धी (क) त्रीय (ग)= धण। भूलो (क ख. ग. घ. झ)। जाइस (क. ख. ग. व. ज. झ)। संगि (च. थ)। जाइस भूलो सग (ग. व)।

सउ सहसे एकोतरे, सिरि मोतीहरि सुध्ध।
नदी निवासउ उत्तरइ, आणूं एक अविंध ॥२३०॥

मरजीवउ पाँणि तणउ साल्ह, उघटनइ खाइ।
दुख सहणा, पुहरा दियण कत, दिसाउरि जाइ ॥२३१॥

गयगमणी, गूजर धरा आणाँ दखणी चीर।
मनह सँकोडी माळवी, सोहइ तुम्म सरीर ॥२३२॥

सहसे लाखे साटविसु, परिघळ आणाँ वेसि।
घरि बइठा ही प्रीतमा, पट्टोळा पहिरेसि ॥२३३॥

२३०—ढोला—

समुद्र में उतरकर एक लाख एक सौ एक का एक अविद्ध सुमेर का शुद्ध मुक्ताफल लाऊँगा।

२३१—मालवणी—

हे साल्ह कुमार, पानी के पनडुब्बे को कोई जीव उचटकर खा जायगा। हे कत, दुःख सहने और पहरा देने के लिये भला कोई परदेश जाता है?

२३२—ढोला—

हे गजगामिनि, मैं गुजरात से तुम्हारे लिये दक्खिणी चीर लाऊँगा। हे मन में संकुचित होनेवाली मालवणी, वह तुम्हारे शरीर पर शोभा देगा।

२३३—मालवणी—

हजारों लाखों के पहिनने के वस्त्र मैं इकट्ठे ही मँगा लूँगी और हे प्रियतम, मैं घर बैठे ही पट्टकूल पहनूँगी।

२३०—सौ सहस्से (ज)। इकोतरें (ज)। सिर (ज)। सुधि (च)। निवासौ (ज)। उतरां (ज)। आण (ज) अवधि (च)।

२३१—साम्हो वट (ज)=साल्ह उघट। खाय (ज)। सहिणा (ज) पोहर (ज)। कवण दिसावर जाय (ज)।

२३२—गुज्जर (थ)। आणा (च) आणी (थ)। विचक्षण (च)। मालवणि (च. थ)। सोहे (ज)। तुम्झ (ज)।

२३३—लाखवे (थ)। साटविस (ज)। अणि सु वित्त (च)। पटोळी (ज) पट्टकूल (थ)।

गाहा

दीसइ विवहचरीयं, जाणिज्जइ सयण दुज्जण सहावो ।
अप्पाणं च कळिज्जइ, हडिज्जइ तेण पुहवीए ॥२३४॥
साहिब, रहउन राखिया कोड़ि प्रकार कियाह ।
का थाँ काँमिण मन वसी, का म्हाँ दूहवियाह ॥२३५॥
वळि माळवणी वीनवइ हुँ प्री, दासी तुभ्झ ।
का चिंता चित अंतरे सा प्री, दाखउ मुभ्झ ॥२३६॥

२३४—ढोला—

विदेशों मे भ्रमण करने से अनेक प्रकार के चरित्र दिखाई पड़ते हैं, सज्जनों और दुर्जनों के स्वभाव मालूम होते हैं और मनुष्य अपने आपको पहचान जाता है—इसलिये पृथ्वी पर भ्रमण करना चाहिए।

२३५—मालवणी—

स्वामिन्, तुम रोके नहीं रहते, मैने करोड़ों उपाय कर लिए। या तो कोई अन्य सुदरी आपके मन में बसी है या हमसे नाराज हो गए हो।

२३६—फिर मालवणी विनय करती है—हे प्रियतम मैं तुम्हारी दासी हूँ। हे प्रिय, तुम्हारे मन मे क्या चिंता लगी है वह मुझसे कहो।

२३४—विवहचरीयं (क) जाणीजै (ख) जाणिज (ग)। सै (ख) सजन (ग) सजना (घ)। दुजण (ख) दुजन (ग. घ)। विसेसो (क. ग. घ)= सहावो। अपाणं (ख) अप्पानं (ग)। आयाण (घ)। त (ख)=च। कळिजै (ख. घ) कालिजे (ग)। हिंडीजै (क) हडजै (ख)। पहवेण (ख. ग)।

संस्कृत छाया—

दृश्यते विविधचरितं ज्ञायते सज्जनदुर्जनस्वभावः ।
आत्मान च कलय्यते हिण्ड्यते तेन पृथिव्याम् ॥

२३५—रढो न पालिया (ख)। कीया (क. थ) का कामिणका (क. घ) कामिण थारे (ग)। कै (ख)। मै (क. घ) कहाँ (ख)। दुहवीया (घ)।

२३६—मालवणी इम (क. ख. ग. घ)=वळि मा०। प्रीय (ग. थ) प्रीयु (च)। तुझ (क. ख ग. घ झ)। जीव ऊतरै (ख)=चित्त अ०। चिंता चित अंतरि बसइ (ज) चिंता चित्त भीतरि बसइ (च) चिंता चित अंतरी अछै (थ)। मो (घ)=साइ (च. थ) सोई (ज)। थे (क. ग. घ)=प्रकासउ (च ज) =प्री दाखउ। तुझ (ख. ग. घ)।

ढोला आमण दूमणउ, नख ती खूदइ भीति।
हमथी कुण छइ आगळी, वसी तुहारइ चीति ॥२३७॥
सुणि सुंदरि, सचउ चवाँ, भाँजइ मनची भ्रंति।
मो मारू मिळिवातणी, खरी विलग्गी खंति ॥२३८॥
माळवणीकउ तन तप्यउ, विरह पसरियउ अंगि।
ऊभी थी खड़हड पडी, जाणे डसी भुयंगि ॥२३९॥
छाँटी पाँणी कुमकुमइ, वीभण वीभ्या वाइ।
हुई सचेती माळवी, प्री आगलि विललाइ ॥२४०॥

२३७—हे ढोला, तुम उदास हो रहे हो, नखों से भीत को खरोच रहे हो। हमसे बढ़कर कौन है जो तुम्हारे चित्त मे आ बसी है?

२३८—ढोला—

हे सुदरी, सुनो, सच्ची बात कहते है कि जिससे तुम्हारे मन की भ्रांति दूर हो—मुझे मारवणी से मिलने की बडी अभिलाषा लगी है।

२३९—यह सुनते ही मालवणी का शरीर सतप्त हो उठा और उसके अगों में विरह व्याप्त हो गया। वह खडी थी, यह सुनकर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी मानो साँप ने काट खाया हो।

२४०—तब ढोला ने उसे गुलाब जल के छींटे दिए और पखे से हवा की। मालवणी होश मे आई और फिर प्रियतम के आगे कातर होकर रोने लगी।

२३७—केवल (च) में।

२३८—सुंदर (ग)। सुंदरि सुणि (ज)। सचौ (ख) टोलउ (च. थ) साचौं (ज)। कहइ (च. थ) कहाँ (ज)=चवाँ। भाजे (क. ख) भाखै (ग) भानाँ (ज) भाजों (थ)। की (क. घ) रा (ग) नी (च) री (ज. थ)=ची। भाँत (क) भ्राति (ख) भांति (घ. ज) जाति (ग)। मारवणी (थ)=मो मारू। मिलवा (क. ख. घ)। विलगी (क) विलांगी (ख) विलागी (ग)। खाँत (क) खाति (ख. ज)।

२३९—मनि विलवती (च ज) मनि विलविलइ (थ)=कउ तन तप्यौ। पसरियौ (क) पसरयौ (ग) पसरग्यौ (घ) पसारइ (च) पसरियों (ज) पसारूयउ (थ)। अंग (क ग. घ)। खरहड (ज) धडि हडि (च) खडहय (ग)। डसीय (च) भुयग (क. घ) भुवंग (ख)।

२४०—सीतळ पानी छटि (च) सीतळ पाणी छाँटिया (ज. थ) ताढौ वीजण वाउ (क) वाजी ताटी वाइ (ख) ठंढी वाजे वाय (ग) ताढौ वींजो वाय (घ) वींझै वीझण वाय (ज) वीझड वीजइ वाइ (थ)। वाउ (च) सचेतन (थ)। माळवणि (च)। आगइ (च थ) आगे (ख. ग)। विललाय (ज)।

(ग्रीष्म वर्णन)

थळ तत्ता लू साँमुही, दाझोला पहियाह।
म्हाँकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह ॥२४१॥
कहिए माळवणी तणइ, रहियउ साल्ह बिमास।
ऊन्हाळउ ऊतारियउ, प्रगट्यउ, पावस मास ॥२४२॥

(वर्षा वर्णन)

गउखे बइठा एकठा, माळवणी नइ ढोल।
अंबर दीठउ ऊनयउ, तिम संभाग्यउ बोल ॥२४३॥

२४१—भूमि तपी हुई है, लू सामने है, हे पथिक, (यदि मारवणी के देश को गए तो) तुम जल जाओगे। जो हमारा कहना करो तो घर ही पर बैठे रहना।

२४२—मालवणी के कहने से साल्हकुमार दो मास तक रुक गया। ग्रीष्म ऋतु बीत गई है और वर्षा का महीना आया।

२४३—मालवणी और ढोला दोनो एक साथ झरोखे मे बैठे हुए थे। उस समय ढोला ने आकाश (मे बादलों) उमड़ा देखा त्यों ही मालवणी का वचन याद किया।

२४१—सामुहा (ग) सामुही (च)। दाझे सु पहीया (च) पहुचो नहि पहियाउ (थ)। जै (ख)। तौ वरि (क) तौ घर (ख)=घरि (तउ) घण त्रुठइ घरि जाउ (च. थ)।

२४२—कहीयै (क. ख. ग. घ)। रहियौ (क. ख. ग घ) ढोलउ रह्यउ (च. ज)=रहियउ साल्ह। ऊनाळौ (क. ख.) ऊन्हाळौ (ग)। ऊतारियौ (क. ख. ग) ऊतरि गयौ (झ) प्रगट्यौ (क. ख. ग)।

२४३—गोखे (क. ख. ग. घ) गोखे (ज) गोषइ (झ)। बैठा (क. ग. घ) बेठां (ख)। एकठां (ख)। नै (क. ग. घ)। ने (ख)। आंबर (ख)। दीठौ (क) देखे (ख) देख्यौ (ग) दिख्यौ (घ) दीठी (च) दीठो (ज)। ऊनम्यौ (क. ख. ग. घ. झ. थ) ऊनया (च) ऊँनम्यो (ज-थ) तव (क. ख. ग. घ. झ) मनि (थ)=तिम। चितारयौ (क. ख) चीतारयौ (ग. घ)।

पगि पगि पाँणी पंथसिर, ऊपरि अंबर छाँह।
पावस प्रगट्यउ पदमिणी, कहउ त पूगळ जाँह ॥२४४॥
लागे सदा सुहाँमणउ, नस भर कुंफड़ियाँह।
जळ पोइणिए छाइयउ, कहउ त पूगळ जाँह ॥२४५॥
जिण रुति बग पावस लियइ धरणि न मेल्हइ पाइ।
तिण रुति साहिब वल्लहा, कोइ दिसावर जाइ ॥२४६॥
जिण रुति वहु पावस झरइ, बाबहियउ बोलंत।
तिण रुति साहिब वल्लहा, को मंदिर मेल्हंत ॥२४७॥

२४४—ढोला—

पग पग पर मार्ग मे पानी भर गया है, ऊपर आकाश मे बादलों की छाया हो गई है। हे पद्मिनी, वर्षा ऋतु प्रकट हुई, अब कहो तो पूगल जावें।

२४५—रात भर कुंझों का शब्द सुहावना लगता है। सरोवरों का जल कमलिनियों से छा गया है। यदि कहो तो अब पूगल जावें।

२४६—मालवणी—

जिस ऋतु मे बगुले भी वर्षा के कारण धरती पर पैर नहीं रखते, हे प्यारे स्वामी, भला उस ऋतु मे कोई घर छोडता है।

२४७—जिस ऋतु मे वर्षा खूब झडी लगाए रहती है और पीपीहे बोलते हैं उस ऋतु मे हे प्रिय स्वामिन्, बताओ भला कोई घर को छोडता है?

२४४—पग पग (क. ख. ग. घ)। सामुहा (च. थ)=पंथ सिर। ठाढ़ी वादळ (क) बादल ठाढी (ख) वादळि ठाढी (ग) ताढी बादल (घ. ज. न)= ऊपरि अंबर। आयौ (क ख ग व थ) आयो (ज)। पदमिनी (ग) पदमणी (घ)। कहौ (क. ख. ग. घ) पूगळि (ज)। जांहि (घ)।

२४५—टोहीं सद सुहामणा सरवर कुरझडियाँह।
जळ मे पोइण छाइयाँ ·····। (न)

२४६—रुत (घ) रित (ट)। पग (ग) धरण (ग. घ. ट)। मेलै (ख. ग)। पाव (क)। जिन (ग)। वाल्हिहा (ग)। को मंदिर मेल्है जाइ (ग)। तिण रित मेले मालवणि प्री परदेस न जाय (ट) तिण रुति बूढ़ी ही झुरै तरुणी केम रहाई (घ)।

२४७—झुरै (क)। बाबीहा (ख) बोलति (ग)। वल्हहा (ग)। कोइ मंदिर ही (क. ख) (क) मंदिर ही (व)।

प्रीतम कामणगारियाँ थळ थळ बादळियाँह।
घण बरसंतइ सूकियाँ लूसूँ पाँगुरियाँह ॥२४८॥
कप्पड़, जीण, कमाण गुण भीजइ सब हथियार।
इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार ॥२४६॥
बाजरियाँ हरियाळियाँ, बिचि बिचि वेलाँ फूल।
जउ भरि वूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥२५०॥
धर नीली, धण पुडरी, धरि गहगहइ गमार।
मारू देस सुहामणउ साँवणि साँझी वार ॥२५१॥

२४८—हे प्रियतम, स्थल स्थल पर जादूगरनी बदलियाँ छाई हुई है। वे मेह बरसने से सूख जाती हैं, परतु लू से पनप जाती हैं। (?)

२४६—इस ऋतु में कपड़े, जीन, धनुष की डोरी और सारे हथियार भींग जाते हैं। इस ऋतु में प्रियतम नहीं चलते। जो चलते है वे गँवार हैं।

२५०—ढोला—

बाजरियाँ हरी हो गई हैं और उनके बीच बीच मे वेलों मे फूल लगे हैं। यदि भादों भर बरसता रहा तो मारू देश अमूल्य (अनुपम शोभावाला) होगा।

२५१—पृथ्वी नीलवर्ण होगी परतु प्रियतमा श्वेतवर्ण हो गई होगी। ग्रामीण जनों के घर घर मे खूब गहमह—आनंदोत्सव की धूमधाम—होगी। मारू देश सावन मे सध्या के समय बड़ा सुहावना होगा।

२४८—केवल (न) मे।

२४६—कपड (ख. ग घ)। जीन (ग)। कमाण (ग)। तिण (घ)। रुत बन (ख) न (ग)=ना। गँवार (ख) गमार (ग)।

२५०—वेलडियां (ज)। हरीया हुई (च) हरियां हुई (थ) नीलाणियाँ (न)। विचि टीडसीयां फूल (ज) विचि तिडि तिलया फूल (थ)। भर दे आयो भाद्रवउ (ज)। अमुल्ल (थ)।

२५१—णीली (ख)। धर (क)। पूंवरी (क. ख. घ) पूयरी (थ)। पूवरी (त) छबूकिया लवार (क) छहूकती लवार (ख) लच्छूकिय लवार (घ) छिछुकती लवार (ट)। छहूकिया लवार (त) घरि गह रहे गमार (ध) बीजळी भणकार (द)। गिवार (ज) लंवार (थ)। सौहामणउ (च) सुहांवणो (ख) सुहांवणो (ज)। श्रवण वरसै वार (घ)। संझी (ख. त) साँझ (ट)। सवार (ट)।

वाबहियउ पिउ पिउ करइ, कोयल सुरँगइ साद ।
प्रिय, तिण रुति आळिग रह्याँ ताह सुँ किसउ सवाद ॥२५२॥
डूँगरिया हरिया हुया, वणे झिँगोरया मोर ।
इणि रिति तीनइ नीसरइ, जाचक, चाकर, चोर ॥२५३॥
चोर मन आलस करि रहइ, जाचक रहइ, लुभाइ ।
राज्यँद, जे नर क्यउँ रहइ माल पराया खाइ ॥२५४॥
फौज घटा, खग दाँमणी, बूँद लगइ सर जेम ।
पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम ॥२५५॥

२५२—मालवणी—

पपीहा पिउ पिउ कर रहा है, कोयल सुरगा शब्द कर रही है। हे प्रिय, ऐसी ऋतु मे प्रवास मे रहने से क्या स्वाद मिलेगा ?

२५३—पहाडियाँ हरी हो गई, वनों मे मोर कूकने लगे। ऐसी वर्षा ऋतु मे भिखारी, नौकर और चोर ये ही तीन घर मे बाहर निकलते हैं।

२५४—इनमे भी चोर कभी कभी मन मे आलस्य करके रह जाते है और भिखारी लुभाकर रह जाते है परतु जो लोग पराया अन्न खाते है वे (अर्थात् नौकर) हे राजन्, तुम्हीं बताओ कैसे घर रह सकते हैं ?

२५५—बादलों की घटाएँ फौज है, बिजली तलवार है और वर्षा की बूँदें बाणों की तरह लगती हैं। हे प्रियतम, ऐसी वर्षा ऋतु मे प्यारे बिना कैसे जिया जाय।

२५२—बाबीहौ (ख) वावहियौ (घ) बावहीया (ज) बाबीह (च)। प्रिउ प्रीउ (ग. ज) प्रीम्री (घ) प्रीय प्री (च) मधुरै (ख ग. घ. ज)=सुरंगै। प्री (घ) प्रीउ (च)। तिणि (च) इण (ज)। रिति (च)। आँलिगन (ग) आलिगण (घ) अळगा (च. थ) अळगो (ज)। रहै (ख ग. घ) रहौ (ज)। सेजइ (च) सेझ (ज)=ताह सुं। त्याह कु (घ)।

२५३—हुवा (क ख ग ज)। वनै (क. च) वने (ग.घ)। झिंगोरै (ज) झँगारै (थ) झकोरया (न)। इण रुति (क. ख. ग. घ) चालै तिण जण (ख) चालै तीन जण (ग) तीने सासरै (घ)। नीकळइ (च) चाकर मंगित चोर (क. ख) याचक चातक चोर (च ज)। मगत (ग) मांगण (घ) जाचिग (थ)। चाव्रिग (थ)=चाकर।

२५५—प्रीय (क) प्रिय (ग. घ)। वलहा (ग. घ)।

नदियाँ, नाळा, नीझरण पावस चढिया पूर।
करहउ कादिम तिलकस्यइ, पंथी पूगळ दूर ॥२५६॥

अति घण ऊनिमि आवियउ, झाझी रिठि झड़वाइ।
बग ही भला त बप्पड़ा धरणि न मुक्कइ पाइ ॥२५७॥

पावस मास प्रगट्टिउं, जगि आणंद विहाय।
बग ही भला जु बापड़ा धरण न मेल्हइ पाय ॥२५८॥

जिण रुति बहु बादळ झरइ, नदियाँ नीर प्रवाह।
तिण रुति साहिब वल्लहा, सो किम रयण विहाय ॥२५९॥

२५६—वर्षा ऋतु मे नदियाँ, नाले और झरने पानी से भरपूर चढ़े हुए हैं। ऊँट कीचड़ मे फिसलेगा। हे पथिक, पूगल बहुत दूर है।

२५७—घने बादल उमड़ आए हैं। अत्यत शीत झडी की वायु चल रही है। बेचारे बगुले ही भले, जो पृथ्वी पर पैर नहीं रखते।

२५८—वर्षा ऋतु का महीना आ गया, जगत् आनंदपूर्वक कालयापन करता है। (तुमसे तो) बेचारे बगुले ही भले, जो इन दिनों पृथ्वी पर पैर नहीं रखते।

२५९—जिस ऋतु मे बहुत से बादल झरते हैं, नदियों मे पानी वेग से बहता है, उस ऋतु में हे प्रिय नाथ, तुम्हारे बिना मेरी रात कैसे बीतेगी?

२५६—पाणी (च) पांणी (ज)=पावस। चढ़ीयौ (क. ग. घ.) चडीया (च)। करहौ (क. ख. ग. घ)। कागद (ख) कादम (क. ग. घ) कादै (ज) क्युं चलै (क. ग) किम चलै (ख.घ) क्रिम क्रिमै (ज)=तिलकस्यइ। साहिब (क. ख. ग घ) पाका (ज)=पंथी। पंथज (ज)=पूगळ। दूरि (च)।

२५७—अत (ज)। उँनमि (ज)। झाझ (थ)। रिति (ज) रितु (थ)। झडाइ (?) वाउ (थ)। ति (थ)। मूकै (ज)। पाउ (थ)।

२५८—प्रगटीयौ (क. ग. घ)। जग (घ) नग (ग)। आनंद (ग)। ज (क. घ)। भला=भलाजु (ग)।

२५९—घण (क घ)=बहु। झुरै (क. ग. घ)। वलहा (ग घ) रैण विहाई (घ)।

च्यारइ पासइ घण घणउ, वीजळि खिवइ अगास।
हरियाली रुति तउ भली, घर संपति, पिउ पास ॥२६०॥
जिण दीहे पावस झरइ, वावीहउ, कुरळाइ।
तिणि दिनकउ दुख वलहा, महँ क्यउँ सहणउ जाइ ॥२६१॥
जिण दीहे पावस झरइ, समनेहाँ सुख होइ।
तिणि दिन वयरी वल्लहा- सेज न मुकइ कोइ ॥२६२॥
महि मोराँ मंडव करइ, मनमथ अंगि न माइ।
हूँ एकलड़ी किम रहउँ, मेह पधारउ माइ ॥२६३॥

२६०—चारों ओर घने बादल है। आकाश में बिजली चमकती है। ऐसी हरियाली की ऋतु तभी भली है जब कि घर मे सपत्ति हो और प्रियतम पास मे हो।

२६१—जिन दिनों वर्षा की झड़ी लगी रहती है और पपीहा करुण शब्द करता है, हे प्रियतम, उस दिन का दु:ख मुझसे कैसे सहा जाय ?

२६२—जिन दिनों वर्षा की झडी लगी रहती है और समान प्रेमवाले प्रेमियों को सुख होता है, उन दिनों हे वैरी प्रियतम, सेज को कोई नहीं छोड़ता।

२६३—पृथ्वी पर मोर मडप बनाकर (पिच्छ फैलाकर) नाच रहे हैं और काम अगों मे नहीं समाता। मै अकेली कैसे रहूँगी—अरी माँ! आप मेह के इन दिनों मे पधार रहे है।

२६०—घन (ख)। वीजळ (ग. घ)। आकास (क. ब)। अगास (ग)। प्रीय (क) प्रीउ (ग)।

२६१—जिण रुति पावस बहु वणौ (क ख) जिण रुति बहु पावस झरै (ग) जिण रुति बहु पावस घणौ (घ) झूरइ (ज)। बावहिया (क. ग. ज) बावीहा (क. ग थ)। करळाय (ज)। दिन का (क. ख. ग) रुत का (घ)= दिन कउ। वालहा (च) वहला (ग) मै (क) मो (ख ग. ब) कौ (ज)=महँ। महरा (क. ख घ) सहिया (ग)। जाय (ज)।

२६२—पाळो झूरइ (ज)। झुरइ (थ)। सनेहा (ज)। होय (ज) रिति (थ)=दिन। मदिर (ज थ)=सेज। कोय (ज)।

२६३—मोर महा (च) मेह मोर (थ)। ताडव (च) डंवर (ढ)। मन्मथ (च)। अग (ज)। एकली (च) अकेली (ज) एकल्ली (थ)। करूँ (ज)=रहूँ।

मेहाँ बूठाँ अन बहळ, थळ ताढा जळ रेस ।
करसणपाका, कण खिरा, तद कउ वलण करेस ॥२६४॥
जिण दाहे वण हर धरइ, नदी खळकइ नीर ।
तिण दिन ठाकुर किस चलइ, धण किम बाँधइ धीर ॥२६५॥
जिण दीहे पावस झरइ, वाजइ ताढो वाय ।
तिण रिति मेल्हे माळवणि प्री, परदेस म जाय ॥२६६॥
काळी कंठळि बादळी वरसि ज मेल्हइ वाउ ।
प्री विण लागइ बूँदड़ी जाँणि कटारी घाउ ॥२६७॥
ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत ।
वीजळि लियइ झबूकड़ा सिहराँ गळि लागंत ॥२६८॥

२६४—मेह बरसने से अन्न बहुत हो गया है । पृथ्वी जल के कारण शीतल हो गई है । खेती पक गई । अन्नकण पककर गिरने लगे । बताओ ऐसे समय में कौन गमन करेगा ।

२६५—जिन दिनों वन हरियाली धारण करते हैं और नदियों में पानी कलकल करता हुआ बहता है उन दिनों स्वामी कैसे चलेंगे ? और प्यारी कैसे धैर्य धारण करेगी ?

२६६—जिन दिनों मे वर्षा की झड़ी लगी रहती है और ठंढी हवा चलती है उस ऋतु मे मालवणी को छोड़कर हे प्रिय, परदेश मत जाओ ।

२६७—काली कठुलीवाली बदली बरसकर हवा को छोड़ रही है । प्रियतम के बिना बूंदें ऐसी लगती है मानो कटारी के घाव हो ।

२६८—यह महल अत्यंत ऊँचा है, हे सुहावने कंत, आओ (बैठें); (देखो) बिजली झबक झबककर शिखरों के गले लग रही है ।

२६४—केवल (ट) मे ।

२६५—केवल (ट) मे ।

२६६—केवल (ट) मे ।

२६७—कांठळ (घ. ज) । वरस (क. ग. घ) । र=ज (ज) । मल्हे (ज) वाव (ग. घ. ज) । आज घराऊ ऊनह्यौ वाज्यौ सीतळ वाय । पुणग ज लागौ पीय विण (घ) । बूंद ज लागै प्रीय विण=प्री ''बूँदडी (ग) । बूँद ज लागै प्रिय विना (घ) । जाणै (घ) । जांण (ज) । घाव (ग घ. ज) । केवल (क. ग. घ. ज) में ।

२६८—ऊँचा (क) । घणा (क) । आव (क. ग. घ) । वीजळि (क. घ) । खिवै=लियइ (क) । सेहरा (क. ज) । सिहरा (ग) । गळ (ग. घ. ज) ।

सावण आयउ साहिबा, पगइ विलंबी गार।
व्रच्छ विलंबी वेलड़ियाँ, नराँ विलंबी नार ॥२६९॥
पावस मास प्रगट्टियउ, पगइ विलंबइ गारि।
धण की आही वीनती पावस पंथ निवारि ॥२७०॥
आज धरा दस ऊनम्यउ, काळी घड़ सखराँह।
उवा धण देसी ओळँबा कर कर लाँबी बाँह ॥२७१॥
आज धरा दस ऊनम्यउ महलाँ ऊपर मेह।
बाहर थाजइ ऊगरइ, भीगा माँझ घरेह ॥२७२॥
ढोला, रहिसि निवारियउ, मिलिसि दई कइ लेखि।
पूगळ हुइस ज प्राहुणउ दसराहा लग देखि ॥२७३॥

२६९—हे स्वामिन्, सावन आ गया, पैरों में कीचड़ लग रही है, वृक्षों से लताएँ लिपट रही हैं और अपने प्रिय पुरुषों से नारियाँ लिपट रही हैं।

२७०—वर्षा का महीना आया, पैरों में, कीचड़ लिपट रही है। प्यारी की प्रार्थना यही है कि वर्षाऋतु में यात्रा बंद रखो।

२७१—ढोला कहता है—

आज पृथ्वी की ओर मेघ झुक आए हैं और शिखरों पर घनघोर श्याम घटा की तहें जम रही हैं। वह प्रियतमा भुजा पसार पसार करके उलहने देगी।

२७२—आज उत्तर दिशा की ओर महलों पर मेह उमडा है। बाहर छज्जे पर पानी पड़ता है और मैं घर के भीतर (मारवणी के स्नेह के कारण ?) भीगता हूँ।

२७३—मालवणी कहती है—

हे ढोला, रोके नहीं रुकते, विधाता के लेख अवश्य पूरे होंगे, यदि पूगल के पाहुने बनोगे ही तो दशहरे तक और देखो।

२७०—आयउ प्रीतमा = मास प्रगट्टियउ (च ज. थ)। विलगी (च)। विलग्गे (थ) गार (क ग व. ज) नारि (च)। धन (ग)। री=की (ज)। आहीज = आही (ज)। धणी आई ही=धण की आही (व)। वेनती (ध)। म्हाँ कउ कहियउ जउ करउ=धण की आही वीनती (च थ)। तउ पावस= पावस (च) गमण पंथ (ज)। निवार (क. ग. व)।

२७१—घटा=घड (घ) म्हारउ साहिब घर नहीं काजळ कूँ पहराह (ध) केवल (घ. ट) में।

२७३—विरह वीयापति वीनवै सुंदरि कहै इति वेख (क. ख. ग. घ) में प्रथम पंक्ति। वीयापत (क) विआपत (घ)। विख=वेख (घ)। प्रीतम महु

दसराहा लग भी रह्यउ मालवणीरी प्रीत ।
वरिखा-रुति पाछी वळी, आवी सरद सुचीत ॥२७४॥
वयणे माळवणी-तणइ रहियउ साल्हकुमार ।
प्रेमइ वध्यउ प्री रहइ जउ प्री चालणहार ॥२७५॥
माळवणी, ढोलउ कहइ, हिव म्हाँ सीख करेह ।
ऊन्हाळउ, वरखा विन्हे रहिया तुम्म सनेह ॥२७६॥
सीयाळइ तउ सी पड़इ, ऊन्हाळइ लू वाइ ।
वरसाळइ भुइँ चीकणी, चालण रुत्ति न काइ ॥२७७॥

२७४—(ढोला) मालवणी की प्रीति के कारण दशहरे तक और भी रहा । वर्षा ऋतु लौट गई और सुदर शरद् ऋतु आई ।

२७५—मालवणी के कहने से साल्हकुमार रुक गया । प्रियतम यदि जानेवाला होता है तो भी प्रेम से बँधा हुआ रुक जाता है ।

२७६—(जब दशहरा आ गया तब) ढोला कहता है—

हे मालवणी, अब हमें विदा दो । तुम्हारे प्रेम के कारण हम ग्रीष्म और वर्षा दोनों ऋतुओं मे रुक गए ।

२७७—मालवणी कहती है—

शीतलकाल मे तो शीत पड़ता है, ग्रीष्म मे लू चलती है, वर्षा में भूमि (कीचड़ से) चिकनी रहती है—इसीलिये चलने के लिये कोई ऋतु (उपयुक्त) नहीं है ।

उक्तावळो=ढोला रहिसि निवारियउ (न) । दईव रै (ज) । हुई सौ (ज) । हुइ सौ (ख) । प्राहुणौ (क ग घ) । दुसराहा (क) । देख (क) । दिखि (घ) । म्हाकउ कहीयउ जउ करइ=पूगळ हुइस ज प्राहुणउ (च ज थ) ।

२७४—दुसराहा (क) । की=री (ख) । प्रीति (ख) । वरखा (क) । आई (ख. घ) । सचीत (क) सचेत (घ) । अबर टीठौ ऊनम्यौ मारू आई चीत (ग मे द्वितीय पंक्ति) ।

२७५—वद्धौ (ज) । प्रीतमा=प्री रहइ (ज) । प्रीच (ज) । चल्लण (थ) । केवल (च ज) में ।

२७६—म्हाँ सूँ=म्हाँ (क घ) । करेस (घ) । करेस (घ) उन्हालू (ग) ऊन्हाल्यौ (घ) सनेस (घ) । केवल (क ख ग घ) में ।

२७७—ऊन्हाले (क ख. ग. घ) । वाय (क ग व ज) । पावस पडै=भुँइ चीकणी (ज ट) । चलण (व) । रुत (घ) रत । (ट) रितु (थ) । काव (क. ग ट) । कोई (घ) । किणी रिति ढोलउ जाइ=चालण रुति न काइ (च) ढोला पंथि रिति न काय (ज) पथीया चालण (ट) ।

मालवणी, म्हे चालिस्याँ, म करि हमारा तात।
का हसि करि म्हाँ सीख दे, खड़िस्याँ माँझिम रात ॥२७८॥
जिणि दीहे पाळउ पड़इ, टापर तुरी सहाइ।
तिणि रिति वूढी ही झुरइ, तरुणी केम रहाइ ॥२७९॥
जिणि दीहे पाळउ पड़इ, टापर पड़ तुरियाँह।
तियाँ दिहाँरी गोरड़ी दिन दिन लाख लहाँह ॥२८०॥
जिणि रिति मोती नीपजइ सीप समंदाँ माहिं।
तिणि रिति ढोलउ उमह्यउ, इस को माणस जाहि ॥२८१॥

२७८—ढोला—
मालवणी, (अब) हम चलेंगे। हमारी चिंता मत करो। या तो हँसकर हमें विदा दो या हम आधी रात को चल पड़ेंगे।

२७९—मालवणी—
जिन दिनों पाला पड़ता है और घोड़ों की रक्षा टापर ही से होती है, उस ऋतु में प्रौढ़ा भी (पति बिना) विकल हो जाती है। भला, युवती कैसे रह सकती है?

२८०—जिन दिनों पाला पड़ता है, घोड़ों पर टापर पड़ता है, उन दिनों की प्यारी प्रति दिन लाखों (का लाभ) पाती है।

२८१—जिस ऋतु में समुद्रों के अंदर सीपों में मोती निपजते हैं, उसी ऋतु में ढोला (चलने की) उमंग युक्त हो रहा है। भला, ऐसे भी कोई मनुष्य जाता है?

२७८—चालस्याँ (ग)। न=म (क. ग)। हसि करि सीख दे=हसि करि म्हां सीप दे (क)। माझिम (ख)। राति (ग)। केवल (क ख ग ग) में।

२७९—पालि (च)। सहै तुरियाँह=तुरी सहाइ (ज) तुरी सुहाइ (च)। रित (ज)। रहाय (ज)। नवि रहइ (थ) किम रहवाय (थ)।

२८०—जिए (क. ख ग ग)। रति=दीहे (क. ख) रतिणी=दीहे (ग ग)। पी पालो पडै=पालउ पडइ (क ख)। पाला पडइ (क. ख)। पाला पडइ (च. थ)। तुरी सहाइ=पड तुरियाँइ (ख ग)। सहे तुरियांह (थ) तुरी सहाय (क)। तुरी महाइ (ग)। ताँह (क ख ग. ग)। दियाँ (थ) दीहा री (च)। दिहाड़ा (क) दिहाडरि (ग)। लहाय (क) लहाइ (ख)।

२८१—जिण (क ख ग ज)। जिन (ग)। रुति (क ख. ग) रत (ग) रित (ज)। सीपां (च)। समुंदां (क. ग. ग)। समुंद्रां (च)। तिण (ज)। रित (ज)। कोई=को (ज)। मीतम=माणस (ज)। जाय (ज)। तिण रुति साहीव वल्लहा कोइ मदिर मेल्हि जाइ (क. ख ग. ग में द्वितीय पंक्ति)। छंडे=मेल्हि (क) मेल्हे (ग)।

जिणि दीहे तिल्ली त्रिड़ड़, हिरणी झालइ गाभ।
ताँह दिहाँरी गोरड़ी पड़तउ झालइ आभ ॥२८२॥
जिणि दीहे पाळउ पड़इ, माथउ त्रिड़इ तिलाँह।
तिणि दिन जाए प्राहुणउ, कळियळ कुरझड़ियाँह ॥२८३॥
जिण रित नागन नीसरइ, दाझइ वनखँड दाह।
जिण रित मालवणी कहइ, कुँण परदेसाँ जाह ॥२८४॥
दिन छोटा, मोटी रयण, थाडा नीर पवन्न।
तिण रित नेह न छाँडियइ, हे बालम वडमन्न ॥२८५॥

२८२—जिन दिनों तिल की फली फटने लगती है और हरिणियाँ गर्भ धारण करती हैं उन दिनो की (प्रिय वियोगिनी) नारियाँ मानो गिरते हुए आकाश को झेलती है।

२८३—जिन दिनो कड़ाके का पाला पडता है और तिलों की फलियाँ फटने लगती हैं तथा कुझ पक्षी करुण शब्द करते हैं, (क्या) उन दिनों पाहुने होकर (कहीं) चला जाता है।

२८४—जिस ऋतु में साँप भी (बिल से) नहीं निकलते और दावानल वनखंड को जला देता है, मालवणी (अपने प्रिय से) कहती है कि उस ऋतु में कौन विदेश जाता है।

२८५—मालवणी कहती है कि हे उदारचित्त बालम, जिस ऋतु मे दिन छोटे और रातें बड़ी होती हैं तथा पानी और पवन ठडे हो जाते हैं उस ऋतु मे स्नेह नहीं छोड़ना चाहिए।

२८२—तिली (क, ख, घ)। तिडै (क) कोरड़ कुडे=तिल्ली त्रिडइ (न)। हरिणी (क घ)। गब्भ (न)। कामिनी=गोरडी (क) कांमणी (घ)। पडे तो (घ)। अब्भ (न)। केवल (क ख. घ. झ) में।

२८३—माथा (ज)। तिडै (ज)। कळीअळ (च) कुंजडीयांह (च)। केवल (च ज) में।

२८४—रत (ट)। साप (ट)। दाख=दाह (ट)। तिण=जिण (ट)। सजण विदेस म जाय=कुँण परदेसाँ जाह (ट)। (ज. ट) मे।

२८५—थाडो (ज)। पवन (ज)। तण (ट)। छोडीए (ट)। सुण=हे (ट)। वालंब (ट)। सन (ज)। केवल (ज. ट) में।

उत्तर आज स उत्तरउ सही पड़ेसी सीह।
वालँभ घरि किमि छडियइ जाँ नित चंगा दीह ॥२८६॥

उत्तर आज स उत्तरउ, पड़सी वाहळियाँह।
उर ओले प्री राखियइ मूँधा काहळियाँह ॥२८७॥

उत्तर आज स वज्जियउ, सीय पड़ेसी पूर।
दाझिसी गात निरध्धणाँ, धण चंगी घर दूर ॥२८८॥

२८६—आज उत्तर (दिशा का पवन) उतर आया है, अवश्य ही शीत पड़ेगा। हे वालम, (ऐसे समय में) घर कैसे छोड़ा जाय जहाँ नित्य अच्छे दिन (व्यतीत होते) हैं।

२८७—आज उत्तर (दिशा का पवन) चलना शुरू हो गया है—उसकी नदियाँ बहेंगी। हे प्रिय, (इस समय तो) कातर मुग्धाओं को अपने हृदय की ओट में रखना चाहिए।

२८८—आज उत्तर (दिशा का पवन) चलने लगा है, पूरा पूरा शीत पडेगा। आज प्रिया विरहित प्रेमियों का गात जल जायगा (क्योंकि) उनकी प्यारी स्त्रियाँ बहुत दूर घर पर हैं।

२८६—वाजिवौ=उत्तरउ (घ)। सीय=सही (म)। सी ही=सही (घ)। पडे=पड़ेसी (ग)। वर (ग)। किम (ग)। वीछडें=छडियै (ग) छंडिगे (घ)। जांह (घ) जहाँ (ग)। नत (घ)। केवल (ख ग घ म) से।

२८७—उतर (ख)। वजीयौ=उत्तरउ (क) वजिवौ (घ) उतरौ (ख)। वहसी=पडसी (ग) वूठौ (न)। वहलीयाँ (घ)। उझे (म)। देई प्रिय टंकीयो=आले प्री राखिजइ (न)। तीय (क)। राखीया (घ)। राखीयौ (म) मूध (क. ग घ)। मूंधी (न)। काहलीयाँ (घ)। केवल (क ख ग घ म) में।

२८८—उत्तरो=वज्जिय (क)। धन (घ)। चगा (घ)। दूरि (ख)। (ग) का यह १५४ वाँ दोहा है। उस प्रति में इसी दोहे की प्रथम पंक्ति ली गई है और दूसरी पंक्ति (ख) के १६४ वें दोहे की ली गई है, जो इस प्रकार है—दहिसी गात ज विरहिनी जाका प्रिय परदेस (ग)। परंतु तुक नहीं मिलती।

उत्तर आज स उत्तरउ, पल्लांणियाँ दरक्क।
दहिसी गात कुँवारियाँ, थळ जाळो बळि अक्क ॥२८९॥
उत्तर आज स उत्तरउ, सीय पड़ेसी थट्ट।
सोहागिण घर आँगणइ, दोहागिणरइ घट्ट ॥२९०॥
उत्तर आज स उत्तरउ पाळउ पड़िसी रीठ।
दोहागिण घट साँमुहउ, सोहागिणरी पीठ ॥२९१॥
उत्तर आज स उत्तरउ पाळउ पड़इ असेस।
दहिसी गात जु विरहिणी जाका प्री परदेस ॥२९२॥

२८९—आज उत्तर (पवन) शुरू हो गया है—प्रवास को जाते हुए (प्रेमियों का हृदय) फट जायगा। वह स्थल को जलाकर और आक को बालकर कुमारिकाओ का गात जला देगा।

२९०—आज उत्तर (का पवन) चलने लगा है—खूब शीत पड़ेगा—सुहागिनी (पतिसयुक्ता) के आँगन मे और दुहागिनी (पतिविहीना) के शरीर मे।

२९१—आज उत्तर (का वायु) उतर आया है—खूब कड़ाके का पाला पड़ेगा—पतिविहीना के हृदय के सामने और पतिसयुक्ता के पीठ पीछे।

२९२—आज उत्तर उतर आया है, घना पाला पड़ रहा है। आज जिसका पति परदेश है (ऐसी) विरहिणी का शरीर जल जायगा।

२८९—उतरो (ख)। वजिवौ (व) वजियौ (ग)। पलांणीया (क ख.व)। दरक (क. ख. घ) वरक्क (भ) ऊपडिया सी दरक्क (न)। दहसै (क) दहिसै (व) दहिस्यै (ग)। गात्र (क)। निरद्धनां=कुँवारियाँ (ग)। कुवरीयाँ (घ)। वहि वेळी थळ=थळ जाळी बळि (क)। विह=बळि (घ)। वहि=वळि (ख)। अक (क. ख. घ)। थळाँ जळेसी अक्क (न)।

२९०—वजिवो (घ)। बट=थट्ट (घ)। थट (ख. व)। सौहागण (व)। रै=घर (क. घ)। दौहागण (घ)। घट (ख)।

२९१—पडसी (घ)। समहळ (ख) सौमुहां (घ)। सी=री (ख)। रीठ=पीठ (ख)।

२९२—वजीयौ (क)। वजिवौ (व)। पडसी (घ)। दहिस्यौ (क) दहिसै (घ)। गात=गात जु (घ) विरहिणी (ख)। कुवरियाँ=विरहिणी (घ)। जाको (क)। प्रीय (क)।

उत्तर आज स उत्तरउ, पाळउ पड़इ तरंत।
माळवणी इम वीनवइ, हूँ किम जीवूँ कंत ॥२६३॥
उत्तर आज स उत्तरउ, पाळउ पड़इ रवंद।
का वासंदर सेवियइ, कइ तरुणी, कइ मद ॥२६४॥
उत्तर आज स उत्तरउ, ऊकटिया सारेह।
वेलाँ वेलाँ परहरइ, एकल्लाँ मारेह ॥२६५॥
उत्तर आज स उत्तरइ, ऊपड़िया सी कोट।
काय दहेसइ पोयणी, काय कुँवारा वोट ॥२६६॥
उत्तर आज स वज्जियउ, ऊकठियइ केकाँण।
काँमिण काँम कमेड़ि ज्यउँ हइ लागउ सींचाण ॥२६७॥

२६३—आज उत्तरी हवा चलने लगी है। जोरों का पाला पड रहा है। मालवणी इस प्रकार विनय करती है कि हे प्रियतम, (ऐसी ऋतु में तुम्हारे वियोग में) मैं कैसे जिऊँगी ?

२६४—आज उत्तर का पवन उतर आया है। जोरों का जाड़ा पड रहा है। (इस समय) या तो अग्नि का सेवन करना चाहिए या तरुणी स्त्री का या मद्य का।

२६५—आज उत्तर का पवन उतर आया है। शिरीषों को सुखा दिया है। जो दो दो हैं उनको छोड़ देता है परंतु जो अकेले हैं उनका घात करता है।

२६६—आज उत्तरी पवन चलता है। शीत के गढ के गढ़ उमड़ आए हैं (अर्थात् बड़े कड़ाके का शीत पड़ रहा है)। या तो कमलिनी को जला देगा या कुँवारे युवाओं को।

२६७—आज उत्तरी पवन चला है—(नायकों के) घोड़े निकल पड़े हैं (?)—जो (उत्तरी पवन) काम की पिंडुकी (पक्षी) के समान कामिनी पर बाज होकर झपटेगा।

२६३—मालवनी (ग) वीनवी (व)। जीवौं (ग)।

२६४—रवद (झ)। वैश्वानर (व)। कां = के (झ)। केवल (व. झ) में।

२६५—ऊकठा (क. ख)। सरोस (घ.) सारै (क)। वेला वेली (क)। परहरै (क.व)। अकेलाँ (घ)। मारेस (घ) मारै (क)। केवल (क.ख.व) में।

२६६—केवल (क) में है।

२६७—उत्तरौ (ग) वजिवो (घ)। ऊकटीया (ग) अकटीया (व)।

उत्तर आज स उत्तरइ, वाजइ लहर असाधि।
संजोगणी सोहामणइ, विजोगणी अँग दाधि ॥२९८॥
उत्तरदी भुइँ जु उपड़इ, पाळउ, पवन घणॉह।
हरणाखी, हस नइ कहइ, सॉम्हो साले जाह ॥२९९॥
माह महारस समय सब, अति ऊलहइ अनंग।
मो मन लागो मारवण, देखल पूगळ द्रंग ॥३००॥
उत्तर आज न जाइयइ, जिहॉं स सीत अगाध।
ता भइ सूरिज डरपतउ, ताकि चलइ दखिणाध ॥३०१॥

२९८—आज उत्तरी पवन उतर आया है। (उसकी) असह्य लहरें चल रही हैं। (वे) सयोगिनी को सुहावनी लगती हैं, (परतु) विरहिणी के अंगों को जला देती हैं।

२९९—ढोला—

उत्तर दिशा की भूमि की ओर जो अत्यत पाला और पवन उमड़ रहा है, हे मृगनयनी मालवणी ! तुम हॅसकर कहो तो उस शल्य (की भॉति तीखे शीत और वायु) के सामने जावें।

३००—माघ मास मे सबको मदन का महारस (अर्थात् नशा छाया हुआ) है और (हृदयों मे) काम खूब उमड़ रहा है। मेरा मन मारवणी में तथा पूगल नगर को देखने मे लगा (लालायित) है।

३०१—मालवणी—

आज उत्तर दिशा की ओर न जाइए जहाँ असाध्य शीत पड़ता है। सूर्य भी उसके डर से सत्रस्त हुआ दक्षिण की ओर रुख करके चलता है।

केकाण (क)। कीकाण (घ)। कमेड (क. ग)। जू (घ)। हुइ=हइ (ग)। ही=हइ (घ)। लगौ (ग)।

२९८—केवल (क) में।

२९९—केवल (क) में।

३००—माहा (ज)। मास कांमण घणे=महारस मयण सव (ट)। अत (ट)। उलटि (ट)। पुगळ (ट)। भ्रंग (ज)। केवल (ज ट) में।

३०१—जाइयौ (क घ)। जिह (क्ष)। यह दिस (ख ग) जयॉं त (घ) = जिहॉंस। ता तै (क्ष)। सूरज (घ)।

फागण मास सुहामणउ, फाग रमइ नव वेस।
मो मन खरउ उमाहियउ देखण पूगळ देस ॥३०२॥
आवी सब रत ऑमली, त्रिया करइ सिणगार।
जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार ॥३०३॥
ढोलउ हल्लाणउ करइ, धण हल्लिवा न देह।
झबझब झूँबइ पागड़इ, डबडब नयण भरेह ॥३०४॥
हल्लउँ हल्लउँ मत करउ, हियड़इ साल म देह।
जे साचे ई हल्लस्यउ, सूतॉ पल्लाँणेह ॥३०५॥

३०२—ढोला—

फागुन मास सुहावना है, सब लोग नए वेश से फाग खेलते हैं। मेरा मन पूगळ देशको देखने के लिये पूरा पूरा उमंगयुक्त हो रहा है।

३०३—मालवणी—

वही विमल (शरद्) ऋतु आ गई, (जिसमें) स्त्रियाँ शृंगार सजाती हैं। (ऐसे समय में) जिनके पति दूर देश चले गए हैं (क्या) उनके हृदय नहीं फटेंगे ?

३०४—ढोला चलने की करता है और प्रेयसी चलने नहीं देती। वह घोड़े की रिकाब को पकड़कर झबझब झूमती है और डबडबाकर आँखें भर लेती है।

३०५—मालवणी—

'चलता हूँ, चलता हूँ'—यों मत करो। हृदय में साल मत मारो। जो सचमुच ही चलोगे तो, मेरे सोते समय (ऊँट पर) जीन कसना (प्रयाण करना)।

३०२—केवल (ट) में है।

३०३—केवल (ट) में है।

३०४—हल्लो हल्लो (ज) हल्ल (थ) चालूँ चालूँ (क घ)। चालेवा=हल्लाणउ (ख ग)। चालिवा=हल्लिवा (ज) चल्लिवा (थ) चालणँ (क. ग. घ) हलणा (ज)। नह (ज)। देह (च) देस (क घ)। जब जब (च)। विलगइ (च) झबे (घ) झबे (थ) झूँबे (क. ख. ग. झ)=झूँबइ। पागडै (क. ख. ग घ. झ) पयाडा (थ)। भरेस (क) भरेइ (च)।

३०५—चालूँ चालूँ (क. ख ग. घ) हालुं हालुं (ज)। हीये (ख)। ना=म (ज)। जउ (ज)। साचा ही (ख ग) साचाणी (क) साँचौ ही (ज. घ)। हल्लगु (थ) चालस्यो (ज) चालिस्यै (क. ख. ग)। सूती (ख. ज) पलांणेह (ख)।

थाँ सूताँ म्हे चालिस्याँ, पह निचिंती होइ।
रइबारी, ढोलउ कहइ, करहउ आछउ कोइ ॥३०६॥

(ढोले का प्रस्थान की तय्यारी करना)

ढोलइ चित्त विमासियउ, मारू देस अळग्ग।
आपण जाए जोइयउ करहा-हुंदउ वग्ग ॥३०७॥
पलाणियउ पवने मिलइ, घड़िए जोइण जाय।
रइबारी, ढोलउ कहइ, सो मो आवइ दाय ॥३०८॥
दूजा दोवड़-चोवड़ा, ऊँटकटाळउ-खाँण।
जिण मुखि नागरबेलियाँ सो करहउ केकाँण ॥३०९॥

३०६—ढोला—

तुम्हारे सोते समय हम चलेंगे, इस विषय में निश्चित हो जाओ। फिर ढोला (ऊँटशाला के रक्षक के पास गया और) कहने लगा—हे रेबारी, एक अच्छा ऊँट देखो।

३०७—ढोला ने चित्त में सोचा कि मारू देश बहुत दूर है (इसलिये रेबारी पर ही भरोसा न करके उसने) स्वय ऊँटों की शाला में जाकर देखभाल की।

३०८—ढोला रेबारी से कहता है कि हे रेबारी, जो (ऊँट) जीन रखने के बाद हवा से मिल जाय और घड़ी भर मे योजन भर चला जाय, वह मुझे पसद होगा।

३०९—रेबारी कहता है कि दूसरे तो दूने-चौगुने हैं और ऊँटकटारा (एक साधारण कँटीली घास) खानेवाले हैं परतु जिसके मुँह मे नागरबेल है (जो नागरबेल खाता है), वही ऊँट घोड़ा (जैसा अर्थात् सर्वोत्तम) है।

३०६—निचंती (ग)। होय (घ)। रयबारी (क)। जोय (घ)।

३०७—आप ज (ज) आपां (थ)। सोध्यउ=जोइयउ (थ)। हदो (ज)। केवल (च. ज) मे।

३०८—पलांण्यौ (क. थ) पल्याणां (च) पलांण्यो (ज)। पवना (ग) पवनां (च) पवनें (ज)। घडीयो (ख) घड़ीया (क. ग. घ. ज)। जोइण घडीए= घडिए जोइण (च)। जोजन (ख) जोयण (घ)। जाइ (क च) जोइ (ख)। रैबारी (क ख. ग घ) रूँबारी नइ (थ)। करहउ सोइ देखाइ (च. ज) करहो आछो जांइ (ख) करह दिखाडै आइ (थ)=सो मो आवइ दाय।

३०९—दूजौ (क. घ) दूवड (ग) देवड (घ)। ऊँट (ख)। खाइ

नागरवेली नित चरइ, पाँणी पीवइ गंग।
ढोला, रयबारी कहइ, करहउ एक सुचंग ॥३१०॥
जिण मुखि नागरवेलड़ी करहउ, एह सुरंग।
माँगळोर वाड़ी चरइ, पाणी पीवइ गंग ॥३११॥
किणि गळि घालूँ घूघरा, किण मुखि वाहूँ लज्ज।
कवण भलेरउ करहलउ मूँध मिलावइ अज्ज ॥३१२॥
मो गळि घालउ घूघरा, मो मुखि वाहउ लज्ज।
हूँ ज भलेरउ करहलउ मूँध मिलाऊँ अज्ज ॥३१३॥

३१०—हे ढोला, जो सदा नागरवेल चरता है और गगा का पानी पीता है (ऐसा) सुदर ऊँट एक ही है।

३११—हे ढोला, यह ऊँट सुदर है जिसके मुँह मे नागरवेल है, (यह) मागलोर की वाड़ीमे चरता है और गगा का पानी पीता है।

३१२—ढोला कहता है—

किस (ऊँट) के गले मे घुँघुरू बाँधूँ, किसके मुख मे (नाक मे) नकेल (लगाम) बाँधूँ, कौन भले (ऊँट) का जाया ऊँट मुझे आज मुग्धा (मारवणी) से मिलावेगा।

३१३—वही ऊँट कहता है।

मेरे गले मे घुँघरू डालो, मेरे मुँह के लगाम बाँधो। भले का जाया मैं ही ऊँट आज मुग्धा (मारवणी) से (तुमको) मिलाऊँगा।

(क ग. घ)। जिस (क घ)। मुख (क. ग. घ)। वेलडी (ग घ)। करहौ (ख)=सो करहउ। सो मो आवै दाई (क)=सो करहउ के काँण।

३१०—नागरवेला (व)। पाणी (ग)। पवै (व)। ढोलौ रेवारी ने कहै (झ)। एहइ=एक (क झ)। ए (ग)=एक।

३११—मोई=एह (ज)। सुचंग (ज. थ)। मांगलार (च) वासौ वसे (थ)। चारौ,=वाटी (ज)। पीवै ति (ज)।

३१२—किस (क ख. ग. घ)। लगि (ख) गळ (क)। घातूं (ख)। घुवरा (ज) किस (क. ख. ग. घ)। गळि=मुखि (च. ज. झ)। बाधउ=वाहूँ (च)। घालूं=वाहूँ (ज)। लाज (क ख ग. घ च. झ)। कुण (ग. घ)। कौण (क)। भलेरौ (क. ख ग)। करहलो (क. ख. ग. घ)। जो मुंध=मूंध (ख)। मिलावै (ख) मिलावु (थ) मेलावै (ग) मेलावइ (च)। अज (घ)। आज (क. ख ग. च)।

३१३—इम=मो (व)। गळे (व) वाहे=घालउ (घ)। घालै (ज)। घुघरा (ज)। इम=मो (घ)। गळि=मुखि (च)। बाधे (च)। घालै (ज)। घाले (घ)। एह = हूँज (घ)। भलौ रो (व)। मिलावै (व)। मेलावुं (च)।

सुणि करहा, ढोलउ कहइ, साची आखे जोइ।
अग्गर जेहा झूंपड़ा तउ आसंगे मोइ ॥३१४॥
सुणि ढोला, करहउ कहइ, सॉमि-तणउ मो काज।
सरढो-पेट न लेटियइ मूँध न मेळूँ आज ॥३१५॥

(मालवणी-करहा-संवाद)

माळवणी मनि दूमणी आवी वरग विमासि।
रइबारी पूछी करी आई करहा पासि ॥३१६॥
माळवणी करहइ कन्हइ ए वीनती करेह।
साहिब मारू ऊमह्या, खोड़उ होइ रहेह ॥३१७॥

३१४—ढोला कहता है—

हे ऊँट सुन, सोच विचार कर सच कहना, यदि (तू) झोंपड़ों को भी महलों जैसा जानता है (कष्टो को भी सुख मानने के लिये प्रस्तुत है) तो मुझे अगीकार करना (मेरे साथ चलना)।

३१५—ऊँट कहता है—

हे ढोला सुनो, यह मेरे मालिक का काम है, जो आज तुम्हे मुग्धा से न मिला दूँ तो मैं ऊँटनी के पेट में नहीं लेटा।

३१६—मन में उदास हुई मालवणी विचारकर ऊँटशाला में आई और रेबारी से पूछकर ऊँट के निकट आई।

३१७—मालवणी ऊँट के आगे यह विनती करने लगी कि (हे ऊँट) मेरे स्वामी मारवणी के लिये उमगयुक्त हो रहे हैं, तू लँगडा होकर रह जा।

३१४—सुण (घ)। ढोलै (घ)। मोह = जोइ (घ)।

३१५—सुण (घ)। साम (घ)। लेटियै (ख. ग. घ. झ) मेलौ (ख) मेलुं (घ)।

३१६—आई (ज)। मझारि=विमासि (थ)।

३१७—करहा प्रेम समीगळा (च) करहा तो कौडै मरां (ज)=माळवणी करहइ कन्हइ। ए माळवणी=माळवणी (ग)। करहो (घ)। एह (क)। करंत (क) करेस (झ)। म्हाँ को कह्यौ करेह (ज) कहीयउ इक करेज (च) अरज एक करंत (घ)=ए वीनती करेह। ढोला=साहिब (ज) ढोलउ (ज) माहरौ=मारू (ग)। ऊमह्यौ (ग) ऊमहय्यो (ज) ऊमाहियौ (क) ऊमहयउ (च) उमाहीयो (घ)। खोड (च)। होय (ज)। रहइज (ज) रहेइ (ग) रहेंत (क.घ) रहेस (झ)।

खोडउ हुँ तउ डॉभिज्यउँ, बॉध्यउ भूख मरेसि ।
थे विहुँ सज्जण रळि मिल्यउ, हूँ विच दुख्ख सहेसि ॥३१८॥
खोड़उ हउँ तउ डॉभिल्यउँ वँधियउ भूख मरूँह ।
जाउँ ढोला-रइ सासरइ सफळा मूँग चरूँह ॥३१९॥
बॉधउँ वडरी छॉहड़ी, नीरूँ नागरवेल ।
डॉभ सँभाळूँ करहला, चोपड़िसूँ चपेल ॥३२०॥

३१८—ऊँट जवाब देता है—

लॅगडा बन जाऊँ तो दागा जाऊँगा । (फिर एक स्थान पर) वॅधा हुआ भूखों मरूँगा । तुम दोनों प्रेमी तो हिलमिल जाओगे । बीचमे पडनेवाला मै दुःख सहूँगा ।

३१९—यदि लॅगड़ा बन जाऊँ तो दागा जाऊँगा । (फिर एक जगह) वॅधा वॅधा भूखों मरूँगा । यदि ढोला की ससुराल जाऊँगा (तो वहाँ) फलियों सहित मूँग चरूँगा ।

३२०—मालवणी कहती है—

(यदि तू दागा जायगा तो) तुझे वड़ की छाया मे बॉधूँगी, नागरवेल खाने को दूँगी, हे ऊँट, तुम्हारे दाग (के घाव) को (अपने हाथ से) सम्हालती रहूँगी और उसपर चमेली का तेल लगाऊँगी ।

३१८—खोडा (क ख.ग घ) । खोडो (ज) । हुवॉ=हुँ (क. ख. ग. घ) । तौ (क. ख. ग घ) तो (ज) । डाभिजा (ख) डांभिज्यु (ज) डांभिज्यां । (क. ग) डभिजू (घ) । वाधौ (क. ख. घ) वाधौ (ग) वाधा (ज) । दुख (घ) । मराह (क ख. ग घ ज) मरांउ (थ) । वेहुँ (ख) वेऊ (ग) वे (ज) । साहिब वेहुँ (क)=विहुँ सज्जण । साहिव वेउ (घ) । सजन (ज) हसि मिलौ (क. ख ग.) हस मिल्यौ (घ) । विचिका (क. ख. ग. घ)=विचि । म्हे विच (ज) । दूख (घ) । सहा (ग) सहांह (क ख घ. ज) विहुं विचि भूख सयउ (थ) ।

३१९—जास्यां मारू देस मे हरिया मुंग चराह (ट) ।

३२०—वाधू (क ख ग घ झ) । की=री (ज) । वेलि (च) । सभालौ (ग) । हाथ सूँ=करहला । चोपडिस्या (ख) चोपडि चोपड़ि (थ) । च्रंपेलि (ज) । चोपड चोपड तेल (झ) ।

रह रह, सुंदरि, माठ करि, हळफळ लग्गी काइ।
डॉभ दिरावइ करहलउ, सेकंतां मरि जाइ ॥३२१॥
करहा, तूँ मनि रूअड़उ, वेध्यॉ करइ विछोह।
अजइ कुआरउ वप्पड़ा नहीं ज कॉमिण-मोह ॥३२२॥
अबहो मेली हेकली करही करइ कलाप।
कहियउ लोपॉ सॉमिकउ सुंदरि, लहॉ सराप ॥३२३॥

३२१—ऊँट उत्तर देता है—

अरी सुदरी, बस बस, चुप कर। क्या (ऐसी) व्यग्रता लगी है? जो ऊँट (अपने को) दगावे तो (तेरे) सेकते सेकते भी मर जायगा।

३२२—मालवणी कहती है—

हे ऊँट, तू मन का बड़ा अच्छा है। सयोगी जनों मे विछोह करवाता है, (तू क्या जाने) तू बेचारा अभी कुँवारा है। अभी नारी का मोह तुझे नहीं है।

३२३—ऊँट जवाब देता है—

अपनी ऊँटनी को मैंने अभी अकेली छोडी है, वह विलाप कर रही है (परतु क्या करें) यदि मालिक का कहा न माने तो हे सुदरी, शाप के भागी हों।

३२१—रहि रहि (क. ग. घ)। सुदर (क ख. घ)। मठ (ख)। कावच (क) कैवळी (ख)। झळफळ=कावच (थ)। लगि (ख) लगी (ग)। कोई (घ) काय (ग) गाइ (ख)। हिव वळ लग्गै न काय (न)। दिलावै (ख) डिवारिसी (थ)। करहिलौ (ख) माहरै=करहलउ (न)। डाँभीतौ=सेकतां (न)। डांभां थी (थ)।

३२२—कूडलै=रूअडउ (ज)। सुणि करहा सुंदरि कहै=करहा तूँ मनि रूअडउ (ख. ग)। करहा सुणि सुदरि कहै (क)। वीधाँ (ख) वेधां (ग घ)। अजेस=अजइ (ग ज) अजीया (च)। अजुँ (झ) अजाहि (झ)। कुमारौ (ख) कुमारो (झ.)। कुवारौ (घ)। तु फिरइ (च ज) रहै=वप्पडा (झ)। जु (ख)। कामणि (ख) कांमण (घ च)। कॉमणि रो=ज कामिण (झ) काँमण रो (ज)। मोहि (ख)। तोहि=मोह (ग)।

३२३—नेल्ही (ग. घ) छोडो (च ज झ. थ)। एकली (ख ग. च ज. झ.)। विलाप (च ज घ)। पिण कहीयउ=कहियउ (च) न करां (क ख. ग घ झ) लोपइ (च)=लोपा। सामरो (घ. ज) सामिको (क. ख ग)। लहे (ख ग. झ)। करहा तो नहिं पाप (च)=सुंदरि लहाँ सराप। ढोलउ मारू मोहियउ तूँ खोडो होए आप (थ मे द्वितीय पक्ति)।

सुंदरि, मो सारउ नहीं, कुँअर वहेसी मग्ग।
साहिब चित्त उपाड़ियउ जिम केकाँणाँ वग्ग ॥३२४॥
करहा सुणि, सुंदरि कहइ, मिहर करउ मो आज।
साहिब म्हारउ ऊमह्यउ, हिव सगळो तो लाज ॥३२५॥
भाई कहि वतळावसूँ, नागरवेल निरेस।
हउ हउ करहा, कुँवर-नइ मत ले जाय विदेस ॥३२६॥
करहा, माळवणी कहइ, खोड़उ होइ रहेस।
जे ढोलउ राखण करइ डाँभण तुझ्झ न देस ॥३२७॥
सुंदर, थाँके ही कहइ खोड़उ होय रहेस।
जउ ढोलउ डाँभण करइ डाँभण मुझ्झ न देस ॥३२८॥

३२४—हे सुंदरी, अब मेरे वश की बात नहीं, कुमार मार्ग में चलेगा ही। स्वामी ने चित्त को (यहाँ से) उचाट कर लिया है जिस प्रकार घोड़े बाग को उठा लेते हैं।

३२५—सुंदरी कहती है कि हे ऊँट, सुनो, आज मुझ पर दया करो, मेरे स्वामी (चलने को) उमगयुक्त हुए हैं, अब तुम्हें ही मेरी सब लाज है।

३२६—मैं तुझे भाई कहकर पुकारूँगी, नागरवेल चरने को दूँगी। अरे अरे ऊँट, कुमार को विदेश मत ले जा।

३२७—मालवणी कहती है कि हे ऊँट, लँगडा बन जा। यदि तू ढोला को रखने की (चेष्टा) करेगा तो तुझे दागने नहीं दूँगी।

३२८—ऊँट कहता है—

हे सुंदरी, तुम्हारे ही कहने से (मैं) लँगडा बन रहूँगा (परंतु) यदि ढोला दाग लगाने की करे तो (तुम) मुझे दागने मत देना।

३२४—वहेसि (ख)। मगि (ख) मग (ग घ)। चित्र=चित्त (ख)। चित (घ)। ज्यु (क. ग. घ)। वग (ख. ग. घ)।

३२५—करहो (घ)। सुण (घ)। सुंदर (ग घ)। महिर (ग घ)। अज (घ)। म्हारो (घ)। लज (घ)। केवल (ख) (ग) (घ) में।

३२६—केवल (ज) में।

३२७—केवल (ट) में।

३२८—केवल (ज) में।

करहानूँ समझाइ कइ, घर आई बहु जाँण।
करहउ साल्ह मँगावियउ, आण्यउ माँडि पलाँण ॥३२६॥
करहउ मन कूड़इ थयउ राखे यूँ ही पग्ग।
ढोलइ मन चिंता हुई, दीजइ केइक दग्ग ॥३३०॥
रइबारी तेड़ावियउ, दाग दियउ दुइ च्यार।
करहइ तउ पग राखियउ, दूती मेल्हइ नारि ॥३३१॥
राखउ करहउ डाँभस्यउँ, रे मूरखाँ अजाँण।
नरवर-कउ जाँणइ नहीं क्रहा-तणउ सँधाण ॥३३२॥

३२६—(मालवणी) ऊँट को (इस प्रकार) समझाकर और यही बहुत मानकर लौट आई। तब सल्हकुमार ने ऊँट को मँगवाया और जीन कसकर ऊँट लाया गया।

३३०—ऊँट ने झूठे मन से पैर यों ही (लँगडाते हुए पृथ्वी पर) रखा। यह देखकर ढोला के मन मे चिंता हुई (और उसने सोचा) कि कुछ दाग देने चाहिएँ (जिससे ठीक हो जाय)।

३३१—फिर रेबारी को बुलाया और कहा कि ऊँट के दो चार दाग दे दो। जब ऊँट ने पैर खींच लिया (लँगडाने लगा) तो नारी (मालवणी) ने अपनी दासी को भेजा।

३३२—उसने दागनेवालों से मालवणी का सदेसा सुनाया—अरे अनजान मूर्खों, (ठहरो) ऊँट को दाग से बचाओ, नरवर मे कोई ऊँट का उपचार नहीं जानता (ऐसा जान पडता है)।

३२६—नै=नूँ (घ)। घरि (ग. घ)। आंणौ (ग)। अपणो (झ) कसवी=आण्यउ (घ)। केवल (ख) (ग) (घ) (झ) में।

३३०—कूडौ (ख)। थकै (ग. घ)। राख्यौ (ग) यूं ही राखै=राखे यूँ ही (घ)। पाग (ख)। कोई क (ग) कोई (घ) कोई (झ)। दाग (ख)।

३३१—तेडावीया (ग. घ)। दीया (ख झ)। च्यौ्यौ (घ)। दोइ (झ)। च्यार (ग. घ)। भेजे = मेल्हइ (ग घ)। केवल (ख. ग. घ. झ) मे।

३३२—रखे (ग)। मूरिख (ग) मूरख (घ)। नळवर (ग). सधान (ग) सधाण (घ) केवल (ख. ग. घ) में।

साहिब, म्हाँका बापकइ छइ करहाँकउ वग्ग ।
जइ करहउ खोड़उ हुवइ गादह दीजइ दग्ग ॥२३३॥
तब बोली चंपावती साल्हकुँवररी मात ।
रे वाजारण, छोहरी, काँइ खेलाइड घाति ॥२३४॥
गादह दाध्यउ दग्ग करि, सासू कहइ वचन्न ।
करहउ ए कूड़इ मनइ खोड़उ करइ यतन्न ॥२३५॥
करहउ कूड़इ मनि थकइ पग राखीयउ जाँण ।
ऊकरड़ी डोफा चुगइ अपस डँभायउ घाँण ॥२३६॥

२३३—फिर ढोला से कहती है—
हे स्वामिन्, हमारे पिता के यहाँ ऊँटों की टोलियाँ हैं। (वहाँ) यदि ऊँट लंगड़ा हो जाता है तो गधे के दाग दिया जाता है।

२३४—(गधे को दागा हुआ देखकर) साल्हकुमार की माता चंपावती बोली—अरी नीच छोकरी, क्या घात खेल रही है?

२३५—सासू (चंपावती) वचन कहती है—
गधे को दाग से जला दिया। यह ऊँट तो झूठे मन से लँगड़ाने की चेष्टा करता है।

२३६—फिर ढोला से कहा—
ऊँट ने तो झूठे मन से जान बूझकर पैर को खींच रखा है। घूरे पर डठल चरते हुए बिचारे पशु (गधे) को (व्यर्थ ही) लाकर दाग दिलवाया।

२३३ढोला=साहिब (च. ज. थ)। म्हाकै (ग. व)। बप्प कै (ज)। है=छइ (ग)। का=कउ (ख)। वाग (ख) वग (ग. व) जो (ज)। दीजै गदहे=गादह दीजइ (ख) दीजै गादह (ज)। गद्दह (च)। दाग (ख)। दग (ग. व)।

२३४—चापावती (ख)। बाव=मात (ख)। वाजारिण (ग. व)। छोकरी (ग)। छोहरीया (व)। आ किम खेली वात (फ) किम खेली घात (घ)।

२३५—डांभ्यो (ज) दुख=दग्ग (ज)। करै (ज)। करहो (ज) राखे तन्न—करइ यतन्न (ज. थ)।

२३६—रे दांदा करि छोहडी करइ करहांरी काणि (थ से प्रथम पंक्ति)। रंट ढिली करि छोहरी करइ करहीकाणि (च में प्रथम पंक्ति)। रे छांडो करि छोहरी करइ करहागी कांणि (ज में प्रथम पंक्ति। तो कूडै=कुडइ (ख ग)। मन (ग.घ)। मन कूडै (फ)। थको (ग व) जांणि (ग) ऊकरडै (थ. च) उकरडी (ज)। चरइ (च) चुणै (थ)। काइ करड स्युं=अपस डँभायउ (च) स्युं पसु डँभायो (ज)। सो आप दागयउ (थ)। डँभायो (ग)। सो पसु=अपस (द) डंभावै जाण (घ. व)। आप दगायो (क. ख)। आणि (ख. ग. फ)।

साइधण हल्लण सॉभळइ ऊभी ऑगण छेह।
काजळ जळ भेळा करी नॉखी नॉख भरेह ॥३३७॥
डूॅगर केरा वाहळा, ओछॉ-केरा नेह।
वहता वहइ उतामळा, झटक दिखावइ छेह ॥३३८॥
पिय खोटॉरा एहवा, जेहा काती मेह।
आडंबर अति दाखवइ आस न पूरइ तेह ॥३३९॥
थे सिध्धावउ, सिध करउ, बहु-गुणवंता नाह।
सा जीहा सतखंड हुइ जेण कहीजइ जाह ॥३४०॥
हिव माळवणी वीनवइ, हूँ प्रिय, दासी तोहि।
हिव थे चढिस जु चालिया सूती मेल्हे मोहि ॥३४१॥

३३७—वह प्रेयसी, आगन के किनारे पर खडी हुई, चलने की वात सुनती है और काजल को ऑसुओं मे मिलाकर, गिरा गिराकर फिर (ऑखें ऑसुओं से) भर लेती है।

३३८—मालवणी—

पहाडी नाले और ओछे पुरुषों का प्रेम वहते समय तो वडी तेजी से वहते हैं परतु तुरंत ही छेह (अत) दिखा देते हैं।

३३९—भाग्यहीनों के प्रियतम ऐसे होते हैं जैसे कार्तिक के मेघ जो आडवर तो वहुत दिखाते है पर आशा पूरी (कभी) नहीं करते।

३४०—हे वहुत गुणोंवाले नाथ, आप सिधारें, सिद्धि करें। वह जिह्वा सौ सौ टुकड़े हो जाय जो यह कहे कि "आप जावें"

३४१—अव मालवणी ढोला से विनय करती है कि हे प्रियतम, मैं तुम्हरी दासी हूॅ। (यदि जाना ही है तो) अव आप मुझे सोती हुई छोड़कर (यात्रा को) चढना।

३३७—केवल (ट) में।
३३८—केवल (ट) से।
३४०—केवल (झ) से।
३४१—हिवि (घ)। प्रीय (ग)। हिवडै=हिव थे (ख)। चले=चढिस (ख)। चढिस (घ)। चढि नै (झ) = चढिस जु। देखै=मेल्हे (ग, घ)।

(ढोले का प्रस्थान)

पनरह दिनहूँ जागती प्रीसूँ प्रेम करंत।
एक दिवस निद्रा सबळ सूती जाँणि निचंत ॥३४२॥
ढोलइ करहउ सज कियउ कसबो घाति पलाँण।
सोवन-त्रानी घूघरा चालण-रइ परियाँण ॥३४३॥
सगुणी-तणा सँदेसड़ा कही जु दीन्हा आँणि।
ससिवदनी कई कारणइ हुइ पलाँणि पलाँणि ॥३४४॥
घाली टापर वाग मुखि, झेक्यउ राजदुआरि।
करहइ किया टहूकड़ा, निद्रा जागी नारि ॥३४५॥

३४२—मालवणी पन्द्रह दिनों तक लगातार जागती हुई प्रियतम से प्रेम करती रही। (उसके बाद) एक दिन गहरी नींद में निश्चिंत सोती जानकर—

३४३—ढोला ने कसबी और जीन डालकर ऊँट को सजाया और चलने के वास्ते सुनहरे घुँघुरु डाले।

३४४—गुणवती (मारवणी) के सदेशे किसी ने लाकर ढोला को कहे थे (इसलिये अब) शशिमुखी मारवणी के लिये—(ऊँट पर) जीन कसो, जीन कसो—यह शब्द होने लगा।

३४५—ढोला ने ऊँट पर टापर डालकर और मुँह से लगाम बाँधकर राजद्वार पर (उसे लाकर) बिठाया। उस समय ऊँट ने शब्द किया और नारी (मालवणी) नींद से जाग पड़ी।

३४२—दिन (ख. घ)=दिवस। निद्रावंत=निद्रा (ख)। निद्र (घ)।

३४३—करहौ साल्ह सिंगारीयौ (क. ख. ग. घ) = ढोलउ करहउ सज कियउ। सिणगारियो (क)। सींगारियो (घ)। सज्ज (ज)। ऊपरि सावट्ट पळांण (च. ज) = कसबी घात्ति पलाँण। करि सावट्ट (थ)। घाते=वानी (क. ख. ग. घ)। सोना केरा (थ)। झूबणा=घूघरा (थ)। का=रइ (क. ख. ग. घ)। परमाण (ग) परिवाण (ख)।

३४४—सगुणां (ज) सुगणी (ग. घ)। किण ही=कही जु (ज)। दीधा (ज)। आँण (ज)। सिस = वदणी (ग) शसवदनी (घ)। हरष वदन हियडै चमी=ससिवदनी कइ कारणइ (ज)। तब हुई=हुई (ज)। पलांण पलांण (ख)।

३४५—नाकी=घाली (ज) सारी=वाली (द. ध)। लाज=वाग (ज)। बैठो=झेक्यउ (ज)। करहो कीयो कुहकडो। (ज) प्रभाते बोल्यौ कुकडो (द. ध)। नींद गई तिण वार=निद्रा जागी नारि (ध)। (ज) के मार्जिन पर इसी दोहे का दूसरा पाठांतर दोहा यह दिया है—वन भरै चढीया सही मतले राज कुमार।

करहो पोल कुहकीयो निद्रा जागी नार (ज)।

सजि कसणा, करि लाज ग्रहि चढियउ साल्ह कुमार।
करह करंकउ श्रवण सुणि निद्रा जागी नार ॥३४६॥
ढोलइ करह चलावियउ करि सिणगार अपार।
आस्यॉं तउ मिळस्यॉं वळे, नरवर कोट, जुहार ॥३४७॥

(मालवणी का विलाप)

धावउ धावउ हे सखी, दो दॉवणि, को लाज।
साहिब म्हॉकउ चालियउ, जइ कउ राखइ आज ॥३४८॥
ढोलउ चाल्यउ हे सखी, वाज्या विरह निसॉण।
हाथे चूड़ी खिस पड़ी, ढीला हुया सॅधाण ॥३४९॥

३४६—कसने कसकर और हाथ मे लगाम लेकर साल्हकुमार सवार हुआ। उस समय ऊँट का शब्द कानों से सुनकर नारी नींद से जगी।

३४७—ढोला ने बहुत शृगार करके ऊँट को चलाया (और नरवर की ओर देखकर बोला) यदि (जीते) लौट आए तो फिर मिलेंगे, ए नरवर के दुर्ग, प्रणाम।

३४८—इधर ढोले को जाता हुआ जानकर मालवणी कहने लगी—
हे सखी, दौड़ो, दौड़ो, कोई दामन पकड़ो और कोई लगाम पकड़ो, हमारा प्रियतम चल पड़ा—यदि कोई आज उसको रख सके।

३४९—हे सखी, प्रियतम चल दिए, विरह के नगारे बज उठे। (इस सहसा अघात के कारण) हाथों से चूड़ी खिसककर गिर पड़ी और शरीर की सधियाँ शिथिल हो गईं।

३४६—कर (ग) गृह (घ) करुकौ (ख)।

३४७—ढोलौ (ग)। करहौ (घ)। ढोलो पुगळ हालीयो=ढोलइ करइ चलावियौ (ज)। कर (घ)। शृंगार (घ)। आराम=सिणगार (ज)। आइस्यां (ख)। मेलस्यां (घ)। म्हे वेगाही आवस्या (ज)= आस्यां तउ मिळस्यां वळे। नळवर (ज)। कोटि (ज)।
केवल (ख. ग. ज. घ.) में।

३४८—धावौ (ग घ)। के (ख. ग) किव (घ)। दामणि (च) दांमणि (ज) दमणो (घ)। के (ख. ग) किव (घ)। म्हॉकौ (ग) म्हारौ (घ)। चलीयौ (ख) उमह्यौ (घ)। मारवणी ऊमाहीयउ (च. ज. थ)=साहिब म्हॉकउ चालियउ। सो का (घ)=जइ कउ। ढोलूँ (च. थ) को ढोलो (ज)=जे को। राखै (ख. ग. घ च. ज) राखौ (थ)।

३४९—वाया (थ)। तिरह (च)। नीसाण (च)। हाथा (ग)। चूटी (थ)। खिर (ज)। किसि (च)। हुवा (ज)। पराण (ज)= संधाण।

सखि हे, राजिंद चालियउ पल्लाँणियाँ दमाज।
किहिँ पुनवती साँमुहउ, म्हाँ उपराठउ आज ॥३५०॥
सज्जण चाल्या हे सखी, पड़हउ वाज्यउ ड्रंग।
काँही रळी वधाँमणाँ, काँही अवळउ अंग ॥३५१॥
सज्जण चाल्या हे सखी, वाज्या विरह-निसाँण।
पालंखी विसहर भई, मंदिर भयउ मसाँण ॥३५२॥
ढोलउ चाल्यउ हे सखी, वज्या दमाँमा ढोल।
माळवणी तीनै तज्या, काजळ, तिलक, तँबोळ ॥३५३॥
[सज्जण चाल्या हे सखी, पाछै पीळो पज्ज।
नव पाड़ा नगगर वसइ, मो मन सूँनउ अज्ज ॥३५४॥]

३५०—हे सखी, यात्रा के बाजे बजाते हुए किसी पुण्यवती के सामने और मुझसे मुख मोडकर राजन् आज चल दिए।

३५१—हे सखी, प्रियतम चल दिए, दुर्ग पर दुंदुभी बज उठी, कहीं तो आनंदोत्सव हो रहे हैं और कहीं अंग व्यथापूर्ण हो रहे हैं।

३५२—हे सखी, प्रियतम चल दिए, विरह के नगारे बज उठे, आज पालकी मेरे लिए साँप रूप हो गई और महल श्मशान जैसे हो गए।

३५३—हे सखी, ढोला चल दिया, दमामे और ढोल बजने लगे। मालवणी ने काजल, तिलक और तांबूल तीनों को त्याग दिया।

३५४—हे सखी, साजन चले, (उनके) पीछे (धूल उड़ने से) पीली पालि बन गई है। नगरी के नौ मुहल्ले (चौक) बसते हैं तो भी मेरा मन आज सूना है।

३५०—गजंद (ब)। पलांणिया (ग) पलाणीया (ब)। कही (ब)। पुन्यवती (ख) पुण्यवती (ग)। स्यामुहा (ख. ग)।

३५१—सजण (ब)। पडहे (घ) वाजे (घ)। वधामणो (घ)। कही (घ)। कांई (म)। यवल्यौ (क)।

केवल (क) (ब) (म) मे।

३५२—सजण (ब)। विसर (क)। केवल (क. ब) मे।

३५३—केवल (च) मे।

३५४—केवल (ट) मे।

सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पूगळ दोड़ेह।
सायधण लाल कबाँण ज्यउँ ऊभी कड़ मोड़ेह ॥३५५॥
[सज्जण चाल्या हे सखी, वाजइ वाजारंग।
जिण वाटइ सज्जण गया, सा वाटड़ो सुरंग ॥३५५॥]
सज्जण चाल्या हे सखी, नयणे कीयो साग।
सिर साड़ी, गळि कंचुवउ, हुवउ निचोवण जोग ॥३५७॥
[सज्जण चाल्या हे सखी, सूना करे अवास।
गळेय न पाणी ऊतरइ, हियै न मावइ सास ॥३५८॥
चाल, सखी, तिण मंदिरइँ, सज्जण रहियउ जेण।
कोइक मीठउ बोलड़इ लागो होसइ तेण ॥३५९॥
ढोल वळाव्यउ हे सखी, झीणी ऊडइ खेह।
हियड़उ बादळ छाइयउ, नयण टबूकइ मेह ॥३६०॥]

३५५—हे सखी, साजन पूगल की ओर दौड़ चले, यह प्रेयसी लाल कमान की तरह खड़ी हुई कटि को मोड़ रही है।

३५६—हे सखी, सज्जन चले। सुरंगे बाजे बजने लगे। प्रियतम जिस मार्ग से गए हैं वह मार्ग सुंदर है।

३५७—हे सखी, साजन चले, नेत्रों ने शोक किया। सिर की साड़ी और गले की कंचुकी (आँसुओं से इतनी भीग गई हैं कि) निचोड़ने के योग्य हो गई हैं।

३५८—हे सखी, घर को सूना करके प्रियतम चल दिए। (अब) गले से पानी नीचे नहीं उतरता और हृदय में श्वास नहीं समाता।

३५९—हे सखी, उस महल में चलो, जहाँ प्रियतम ने निवास किया था, कोई एक मीठा बोल (अभी भी) उसमें लगा हुआ होगा।

३६०—हे सखी, ढोला चल दिया। झीनी झीनी खेह उड़ रही है। हृदय (-रूप आकाश) बादलों से छा गया है और नेत्रों से मेह टपक रहा है।

३५५—सजन (ज)। चढीया (ज)। साइ (ज)। जिम। (ज)। कर (ट)=कड। केवल (ज) (ट) में।

३५७—सजन (ग)। चल्या। (ग) कीया (ख)। गळ (क. ग)। कंचवौ (ग) कंचूवौ (क. घ)। हुवो (क. घ)। निचोवन (ग)। केवल (क. ख ग. घ) में।

ढोलइ चढि पडताळिया, डूँगर दीन्हा पूठि।
खोजे वाव हत्थडा धूड़ि भरेसी मूठि ॥३६१॥
साल्ह चलंतउ हे सखी, गउखे चढि मइँ दीठ।
हियड़उ उवाँहीसूँ गयउ, नयण वहोड़्या नीठ ॥३६२॥
ढोलइ करह पलाँणिया सुंदरि सलूणी कज्ज।
श्री मारुवणी सामुहउ, म्हाँ उपराठउ अज्ज ॥३६३॥
सयणाँ, पाँखाँ प्रेम की तइँ अब पहिरी तात।
नयण कुरंगउ ज्यूँ वहइ, लगइ दीह नइँ रात ॥३६४॥

३६१—ढोले ने चढ़कर (ऊँट को) चलाया (और) पर्वत पीछे दे दिए। मालवणी धूल से मुट्ठी भरकर (उससे) हवा का रुख देखती है।

३६२—हे सखी, चलते हुए साल्हकुमार को मैंने झरोखे में चढ़कर देखा। हृदय वहीं से (उनके साथ) चला गया और नेत्रों को मैं बड़ी कठिनता से लौटा पाई।

३६३—ढोला ने सलोनी सुंदरी के लिये ऊँट को चला दिया—प्रियतम आज मारुवणी के सम्मुख और मुझसे विमुख है।

३६४—हे साजन, तुमने अब प्रेम की वेगवती पाँखें धारण कर ली हैं। मेरे नेत्र हरिण की तरह (तुम्हारे पीछे) दौड़ रहे हैं (तो भी तुम्हें नहीं पहुँच पाते?) और वे न दिन में लगते हैं न रात में।

३६१—दीया (झ)। वाजे=खोजे (ख. ग. झ)। भरेसा (व)। मूठ (व)। केवल (ख ग. व. झ) में।

३६२—चलतँ (व)। चढे (ख) चढ (व)। मय (व)=मइँ। ढोलइ करहउ पलाणीयउ दीया डूगर पूठि (च. ज. थ में प्रथम पंक्ति)। करह (ज)। दीथा (ज)। पूठ (ज)। रही ही सू=सूं (घ)। सौ (ग) मन वारयउ ही नवि रहइ (च) मन वारियौ नव रहे (ज) मन वारयउ ना रहइ (थ)=हियड़उ उवाँहीसूँ गयउ। नयन (ग)। निवारय (च. ज. थ.)=वहोड्या। निठ (ग निठि (व) निट्ठ (ज)।

३६३—पलाणीयो (ज) पलाणियउ (थ)। काजि (ज. थ)। मारू पनोती (ज)=श्री मारुवणी। मारू त्रीयाँ (थ)। सांमूहो (ज)। मो (च) अम्हां (ज)। आजि (ज) आज (थ)। केवल (च) (ज) (थ) में।

३६४—केवल (ज) में।

प्रिव माळवणी परहरे हाल्यउ पुंगळ देस।
ढोला म्हाँ बिच मोकळा वासा घणा वसेस ॥३६५॥
साल्ह चलंतइ परठिया आँगण वोखड़ियाँह।
सो मइँ हियइ लगाड़ियाँ भरि भरि मूठड़ियाँह ॥३६६॥
साल्ह चलंतइ परठिया आँगण वीखड़ियाँह।
कूवाकेरी कुहड़ि ज्यूँ हियड़इ हुइ रहियाँह ॥३६७॥
ढोला, जाइ वळि आविज्यउ, आसा सहि फळियाँह।
सावणकेरी बीज ज्यउँ भाबूकइ मिळियाँह ॥३६८॥
बीछुड़ताँ ई सज्जणाँ, राता किया रतन्न।
वाराँ विहुँ चिहुँ नाँखिया आँसू मोती अन्न ॥३६९॥

३६५—प्रियतम मालवणी को छोड़कर पूगल देश को चल दिए। अब ढोला और हमारे बीच में बहुत से वास (गाँव) बसते है।

३६६—साल्हकुमार के चलते समय आँगन मे पदचिह्न बन गए। उन (की धूल) को मैंने मुट्ठियाँ भर भर के हृदय से लगाया।

३६७—साल्हकुमार ने चलते हुए आँगन मे पदचिह्न बना दिए, जो कुएँ के कुहरे की तरह मेरे हृदय मे हो रहे है।

३६८—हे ढोला, जा करके फिर लौट आना। सब आशाएँ फलीभूत हों। (फिर सहसा) सावन मास की बिजली की तरह झमक कर मिलना।

३६९—हे सज्जन, तुम्हारे बिछुडते ही मैंने अपने रत्नरूप नेत्रों को रो-रोकर लाल कर लिया। मैंने दिन रात लगातार मोतियों जैसे आँसू गिराए।

३६५—केवल (ज) में।

३६६—परठवी (घ. त)। आँगन (ग) आँगणि (घ)। वीखडियाँ (घ)। सा (ग. घ)। मइ (झ)। ज (घ) रजी=हियइ (त)। मूठडियाँ (घ)।
केवल (ख) (ग) (घ) (झ) मे।

३६७—परछीयाँ (ग) परठवी (घ. त) परिखियाँ (न)। आँगन (ग) आँगणि (घ)। वीखडियाँ (व)। सा (ग. व)। मइ (झ)। कुवै (घ. त)। कुहिड (घ. त) कुहड (न) कुहेड (झ)। हीजरियाँह (ख)। होय (घ)। होइ रहाँ (त)।
(ग) में पंक्तियों का क्रम विपरीत है।

३६८—थे जाठे (च)=जाइ। आविज्यो=वळि आविज्यउ (ज)। आवियौ (थ)। आसां (ज)। झबूकै (ज) झवकै (थ)।
केवल (च. ज. थ) में।

३६९—नावीयउ=नाँखिया (च)। वरन्न (च) वन्न (थ)।

प्रीतमहूंती बाहिरी कवड़ी ही न लहाँइ।
जब देखूँ घरआँगणइ लाखे मोल लहाँइ ॥३७०॥
सज्जणियाँ वळाइ कइ मंदिर बइठी आइ।
मंदिर काळउ नाग जिउँ हेलउ दे दे खाइ ॥३७१॥
सज्जणिया वळाइ कइ गउखे चढी लहक्क।
भरिया नयण कटोर ज्यउँ, मुंधा हुई डहक्क ॥३७२॥
हइ रे जीव, निळज्ज तूँ; निकम्यू जात न तोहि।
प्रिय विछुड़त निकम्यउ नहीं, रह्यउ लजावण मोहि ॥३७३॥
सज्जण चल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार।
सूकण लागी वेलड़ी, गया ज सींचणहार ॥३७४॥

३७०—प्रियतम के बिना मैं अपना कौड़ी मोल भी नहीं पाती। अब (उनको) घर के आँगन में देखती हूँ तो मैं अपना मोल लाखों का पाती हूँ।

३७१—साजन को भेजकर मैं अपने महल में आकर बैठी—महल काले नाग की तरह पुकार पुकारकर खाता है।

३७२—साजन को भेजकर मैं लपककर झरोखे में चढ़ी। आँखें कटोरों सी भर आईं और मैं मुग्धा बिलखने लगी।

३७३—अरे प्राण, तू बड़ा निर्लज्ज है, तुझसे निकला भी नहीं जाता। प्रियतम के बिछुड़ते समय तू नहीं निकला, मुझे लजाने के लिये रह गया।

३७४—सज्जन चले गए। (उनके) गुण रह गए। गुण भी अब चलनेवाले हैं। (यह) बेलि अब सूखने लगी (इसके) सींचनेवाले चल दिए।

३७०—हुंता (ग) ढोला हूँतो गोरडी (थ) कवडी मोल लहांइ (ग)। कवडी मोल कहंत (व)। कोडी मोलि विकाइ (थ) कउडी मोल करांह (च)। घरि (व)। नय अगणय (च) आपणे (थ)=आँगणइ। तव हूँ लाख लहाँ (च. थ)। लहंत (व)। लहांह (ध)।

३७१—सजणीआ (ग)। वळाइ कै (ग) बोलायके (व)। बैठी मिंदिर (व)। मिंदर (व)। काळा (व)। ज्यू (व)। हेलो (ग) लहरी (व) हेला (क)=हेलउ।

३७२—केवल (ग) में (माजिन पर)।

३७३—निलज (ग. व)। निकम (ग. व)। नहीं (ग) नांहं (व)। पी (व)। रह्यो (ग. व)। लजावन (ग)। केवल (ख) (ग) (व) में।

३७४—केवल (क) में।

खूँटइ जीण न मोजड़ी, कड़थाँ नहीं केकाँण।
साजनिया सालइ नहीं, सालइ आही ठाँण ॥३७५॥
सज्जण, गुणे समुद तूँ, तर तर थक्की तेण।
अवगुण एक न साँभरइ, रहूँ विलंबी जेण ॥३७६॥
साई दे दे सज्जना, रातइ इँणि परि रून।
उरि ऊपरि आँर ढळइ, जाँणि प्रवाळा चूँन ॥३७७॥

सोरठा

सूती पड़ी रणेहि, जोयइ दिसि जाताँतणी।
जागी हाथ मळेहि, विलखी हूई, वल्लहा ॥३७८॥
रूनी रड़ी चड़ेहि, जोई दिसि जाताँतणी।
ऊभी हाथ मळेहि, विलखी हूई, वल्लहा ॥३७९॥

३७५—खूँटे पर जीन नहीं है और न जूते हैं। कड़ी पर ऊँट नहीं है। प्रियतम (हृदय मे) नहीं सालते हैं, यह थान सालता है।

३७६—हे प्रियतम ! तू गुणों का समुद्र है जिसमे तैरते तैरते मैं थक गई हूँ। अवगुण एक भी याद नहीं पड़ता जिसका आश्रय लिये रहूँ।

३७७—हे प्रियतम ! मैं रात को इस भाँति धाड़ मार मारकर रोई कि हृदय पर आँसू गिरने लगे मानों मूँगों का चूर्ण हो।

३७८—हे प्यारे, (यह प्रियतमा) तुम्हारे जाने की दिशा को देख देखकर सोई हुई पड़ी सिसकती है और अपने पर विलख विलखकर हाथ मलती है।

३७९ – हे प्यारे, जाते हुए तुम्हारी दिशा की ओर देख देखकर (यह प्रियतमा) खूब सिसक सिसककर रोई, और व्याकुल होकर खड़ी हुई हाथ मलने लगी।

३७५—पूढै (झ)। जाण (झ)=जीण। कुड (च) कुडि (ज)। ठाणि (थ) = कड्याँ। नेही (च) नाहीं (ज)। सज्जनीया (च)। साले (ज.झ)।

३७७—सांभळि सांभळि (थ)=साई दे दे। सज्जणां (च)। रुन्न (थ)। ढळया (ज. थ)। चुण्ण (थ)।

३७८—राती (थ)=सूती। रडी चडेहि (थ)=पडी रणेहि। जोई (थ)। साजण (थ)। साजण (थ) = जाताँ। वालहा (थ)।

केवल च थ. में।

३७९—रडै चडेह (ज)। मसळेहि (च) घसेह (न)। वालहा (ज)।

गया गळंती राति, परजळती पाया नहीं।
से सज्जण परभाति खड़हड़िया खुरसाँण ज्यूँ ॥३८०॥

दूहा

वीछड़ताँ ही सज्जणा, क्याँही कहण न लध्ध।
तिण वेळाँ कँठ रोकियउ, जाँणक सिंघी खध्ध ॥३८१॥
सज्जण ज्यूँ ज्यूँ संभरइ, देख्याँ आही ठाँण।
झुरि झुरि नइ पंजर हुई, समर समर सहिनाँण ॥३८२॥
ए वाड़ीं, ए वावडी, ए सर केरी पाळ।
वै साजण, वै दीहड़ा, रही सँभाळ सँभाळ ॥३८३॥
छोटो वीख न आपड़ाँ, लांबी लाज मरेहि।
सयण बटाऊ वालरे, लंबउ साद करेहि ॥३८४॥

३८०—प्रियतम रात व्यतीत होते हुए गए थे। उजाला होने पर (मैंने) उन्हें नहीं पाया। वे प्रियतम प्रभात काल में तलवार की तरह (मेरे हृदय में) खटकने लगे।

३८१—प्रियतम के बिछुड़ने समय में कुछ भी नहीं कहने पाई। उस समय मेरा कंठ रुँध गया मानों सिंगिया (नामक विष) खा लिया हो।

३८२—यह स्थान देखने से प्रियतम ज्यों ज्यों याद आते हैं त्यों त्यों उनके चिह्नों को याद कर करके मैं झूर झूरकर (अस्थियों का) पंजर हो गई हूँ।

३८३—यह वाटिका, यह बावडी, यह तालाब की पाल, वे सज्जन और वे दिन—इनको बार बार स्मरण करती हूँ।

३८४—ओछे कदमों से पहुँचा नहीं जाता और लंबे डग भरते हुए लाज मरती है—प्रियतम पथिक चले गए (और मालवणी) लंबा शब्द करती है (पुकार पुकारकर रोती है)।

३८०—सजन (ग. ज)। परभात (ग)। ज्युं (क. ज) जिम (ख)।

३८१—काइ (थ)। ऊभी थी खड़हड़ पडी (थ)=तिण वेळाँ कँठ रोकियउ। स्वर (न)=कंठ। जाँणे (थ)। विसहर (द) सीनी (थ) महुरों (न) नागणि (थ)=सिंधी।

३८२—केवल (ज) में।

३८४—छोटे (ज)। उइयणे वटा वडलीया (च)=सयण बटाऊ वालरे॥। समय (द)=सयण। करेइ (च)।

सादि करे किम सुदुर है, पुळि पुळि थक्के पाँव ।
सयणे घाटा वउळिया, वइरि जु हूआ वाव ॥३८५॥
बाबा, बाळूँ देसड़उ, जिहाँ डूँगर नहिँ कोइ ।
तिणि चढ़ि मूकउँ धाहड़ी, हीयउ उरळउ होइ ॥३८६॥
उर मेहाँ पवनाँह ज्यऊँ करह उडद्उ जाइ ।
पूगल जाइ प्रगडउ करइ, करइ मारवणि दाइ ॥३८७॥
भूली सारस सद्दड़इ, जाणइ करहउ थाय ।
धाई धाई थळ चढी, पग्गे दाधी माय ॥३८८॥

३८५—शब्द करने से भी क्या, (प्रियतम) बहुत दूर है, चलते चलते पाँव थक गए। प्रियतम घाटियाँ पार कर गए और वायु भी वैरी हो गया।

३८६—हे बाबा, ऐसे देश को जला दूँ (आग लगे ऐसे देश को) जहाँ कोई पहाड तक नहीं कि जिस पर चढ़कर धाड मारूँ जिससे हृदय (तो) हलका हो।

३८७—वह, पवन से प्रेरित मेघों की तरह, ऊँट उड़ता हुआ जा रहा है। वह पूगल पहुँचकर प्रभात करेगा और इस प्रकार मारवणी की प्रसन्नता का कार्य करेगा।

३८८—सारस के शब्द से धोखे में पड़ गई—समझी कि ऊँट है। दौड़ी दौड़ी मै (ऊँचे) थल पर चढी—अरी माँ, मेरे पैर जल गए।

३८५—सादु (च)। करि (च)=किम। दूर=सुदुर (छ)। पुळतां (छ)। घटा (च)। वैळिया (छ)।

३८६—बाळूँ बाबा=बाबा बाळूँ (ज, झ थ)। डुंगर नहीं ज (झ)= जिहाँ डूगर नहिं। डूंगर नाही (थ) कोय (ज)। चडि=तिणि (च) मूँका (थ) मेलुं (ज)। धाह मारी (थ)। मति हीयउ (झ) हियडो (ज)= हीयउ। होय (ज)।

३८७—मैहां (च ज)। पनांह (च)। करहो (ज)। लुडदउ (च)। जाय (ज)। पूगळिग्गो (थ)=पूगल जाइ। परगडउ=प्रगडउ करइ (च)। मति मारवणि रा दाइ थ) मारवणी रै चाहि (ज)=करइ मारवणि दाइ।

३८८—करह करक्यउ माइ (च) जाण्यौ करह किगाइ (थ)=जाणइ करहउ थाय। थळि (थ)। पगडै (ज)=पग्गे। दधी (ज)। माई (च) पगडा दाधा थ)।

सारसड़ी मोती चुणइ, चुणइ त कुरळइ काँइ।
सगुण पियारा जउ मिलइ, मिलइ त विछुड़इ काँइ ॥३८९॥
थळ मथ्थइ जळ बाहिरी, काँइ लबूकी बूरि।
मीठा बोला घण सहा, सज्जण मूक्या दूरि ॥३९०॥
थळ मथ्थइ जळ बाहिरी, तूँ काँइ नीली जाळ।
कँइ तूँ सींची सज्जणे, कँइ वूठउ अगाळि ॥३९१॥
ना हूँ सींची सज्जणे, ना वूठउ अगाळि।
तो तळि ढोलउ वहि गयउ, करहउ बाँध्यउ डाळि ॥३९२॥

३८९—सारसी मोतियों को चुगती है—यदि चुगती है तो (चुगते समय) क्या कुरलती है? गुणवान् प्रियतम यदि मिलता है तो मिलकर (फिर) क्या बिछुड़ता है?

३९०—हे बूर (घास), सूखे और रेतीले थल पर जल बिना (ही) क्यों लहलहा हो रही है? मिष्टभाषी और सहनशील प्रियतम को (तो तूने) दूर भेज दिया है।

३९१—थली पर स्थित हे जाल (वृक्ष), तू जल बिना कैसे हरी हो रही है? क्या तुझे प्रियतम ने सींचा है या अकाल वर्षा हुई है?

३९२—जाल उत्तर देती है—

न तो मुझे (तुम्हारे) प्रियतम ने सींचा है और न अकाल वर्षा हुई है। ढोला मेरे नीचे होकर गया है और उसने अपना ऊँट मेरी डाली से बाँधा था।

३८९—सारडा (च) सारसड़ा (क थ)। चुगे (क) चुणैं (ज)। तु (च) ते (क)। कुरळं (ज. क)। काय (ज)। सुगुण (क)। पियारउ (थ)। सजनां (क)=जउ मिलइ। मिल तु (च)। वीछडो (क) नांहि (क) कांय (ज)=काइ।

३९०—मथ (क)। लहकी (ज. थ)=लबूकी। नीली खजूर (क) सकही खजूर (थ)=लबूकी बूरि। बोल (च) बोलण (क)। हसण=सहा (क)। साजन (ज) साजण (क)। मेल्या (ज. थ) वसीया (क) = मूक्या।

३९१—मथ (ज. क)। जाळ (क)। कै (ज. क)। सजनें (ज) सजणाँ (क) सज्जणों (च)। कै (ज. क)। वूठेज, (ज. क)। अगाळ (क) अकाळि (च)।

३९२—सजनें (ज) सजणो (क)। ना (ज)। वूठौ (ज. क)। अकाळि (च) अगाळ (क)। मति (च)=मो तळि। पोढ़ियउ=वहि गयउ (थ)। डाल (क)।

ढोला, हूँ तुझ बाहिरी, झीलण गइय तळाइ ।
ऊ जळ काळा नाग जिउँ, लहिरी ले ले खाइ ॥३९३॥
[सुंदर सोळ सिंगार सज़ि, गई सरोवर पाळ ।
चद मुळक्कयउ, जळ हँस्यउ, जळहर कंपी पाळ ॥३९४॥
चदा तो किण खडियउ, मो खंडी किरतार ।
पूनिम पूरउ ऊगसी, आवंतइ अवतार ॥३९५॥
चपा केरी पाँखड़ी, गूँथूँ नवसर हार ।
जउ गळ पहरूँ पीव विन, तउ लागे अंगार ॥३९६]

(शुक सदेश)

सुणि सूड़ा, सुंदरि कहय, पखी, पड़गन पाळि ।
प्रीतम पूगळ-पंथ-सिरि, किम ही पाछउ वाळि ॥३९७॥

३९३—हे ढोला, मैं तुम्हारे बिना (अकेली) तालाब मे नहाने गई । (उसका) वह पानी काले साँप की तरह लहरें ले लेकर खाता है ।

३९४—सुदरी सोलह शृगार सजा करके सरोवर के तीर पर गई । (उसको देखकर) चद्र मुसकराया, जल हँसा और जलाशय की पालि काँप गई ।

३९५—हे चद्र, मुझे विधाता ने खडित किया—तुझे किसने खंडित किया है ? तू तो पूर्णिमा को पूर्ण (होकर) उगेगा परतु मै आगामी जन्म मे ही (पूर्ण होऊँगी) ।

३९६—चपे की पँखुरियों का नौ लड़ियोंवाला गूँथती हूँ । यदि (उसे) गले मे पहनती हूँ तो प्रियतम के बिना अगार सा लगता है ?

३९७—अब मालवणी अपने सुग्गे से कहती है—

सुदरी कहती है कि हे सुग्गे, सुनो । भाईचारा निबाहो । प्रियतम पूगल के मार्ग पर हैं, तू किसी तरह उनको लौटा ला ।

३९३—तो (ज)=तुझ । तळाव (च ज) । सो सरवर (ज) ऊ सरवर (थ)=ऊजळ । कागला (च) = काला । हेले (च) हेला=लहिरी । दे दे (च झ थ)=ले ले । खाय (च ज) ।

३९७—सूवा सुंणि (क, ख ग घ झ) = सुणि सूडा । सूआ (ज) सुडा (थ) । सुद्दर (क) सूंदर (घ) सुदरी (ख) । कहै (क ख ग घ झ) । तूँ (च, ज थ) पंथी (क ग)=पखी । पडिवन्नउ (च थ) पडगनो (घ) । पाळ (ग) । ढोलउ (च थ) ढोलो (ज) = प्रीतम । पुंगळ (ज) । सरि (च) सिर (क ग) । किन्नही (ख) किमहीक (झ) । पूठो (झ) । वाळ (घ) ।

सूवा, एक सँदेसड़उ, वार सरेसी तुझ्झ ।
प्रीतम वॉसइ जाइ नइँ, मुई सुणावे मुझ्झ ॥३९८॥
ढोलइ चलताँ परिठव्यउ, अगणि मोजाँ सल्ल ।
ढोलउ गयउ न वाहुड़इ, सुवा, मनावण चल्ल ॥३९९॥
चंदेरी बँदी बिची, सरवर केरइ तीर ।
ढोलइ दाँतण फाड़ताँ, आइ पुहत्तउ कीर ॥४००॥
कहि सूवा, किम आवियउ, किहींक कारण कथ्थ ।
तूँ माळवणी मेल्हियउ, किनाँ अम्हीणइ सथ्थ ॥४०१॥

३९८—हे सुए, मेरा एक सँदेसा है, यह काम तुझी से पार पड़ेगा। प्रियतम के पास जाकर मुझे मरी हुई सुना दे।

३९९—ढोले के चलते समय आँगन मे जूते और भाले के चिह्न बन गये। ढोला गया हुआ लौट नहीं रहा है। हे सुए, उसको मनाने के लिये चल।

४००—चदेरी और बूँदी नगर के बीच मे, सरोवर के किनारे, जब ढोला दँतवन चीर रहा था उस समय, वह सुग्गा आ पहुँचा।

४०१—ढोला सुग्गे को देखकर पूछता है—

हे सुए, कह, कैसे आया? कोई कारण हो तो कह। क्या तुझे मालवणी ने भेजा है अथवा (तू) हमारे साथ (चला आया) है?

३९८—वारू सरसे सूझ=वार सरेसी तुझ्झ (ज)। कै=नइँ (क ख. ग. घ)। केवल (क ख ग घ ज) मे।

३९९—ढालो (ज)। चलति (ज)। परिठियाँ (ज) पूरिया (थ)। आंगण (ज)। मोजा (च)। भल्ल (थ)। ढोलो (ज)। कह्यो=गयउ (ज)। नह (ज)। वाहडै (ज)। सूवा (ज)। मनाकु वल्लि=मनावण चल्ल (ज)।

४००—मदिर=बूँदी (ख ग घ झ)। नगरी=बूँदी (क झ)। वचे (ट)। विचै (क. ग)। कैरै (क ग) केरी (ख झ)। दांतन (ग)। पहुतौ (ख)। अठे पधारे वीर=आइ पुहत्तउ कीर (ट)।

केवल (क ख. ग घ झ ट) में।

४०१—आवीया (क)। कहेक (ख) कहीक (घ) केहै (ज) कहीज (ग) कहि किस (झ)। के=तूं (ग ज)। तो नूं (घ)। माळवनी (ग)। किन्हा (ग)। अमीणैं (ख, अम्हीनै (ग)। सथि (ख) सथ (घ)।

साल्ह कुँअर, सूड़उ कहइ, माळवणी मुख जोइ।
प्रॉण तजेसी पदमणी, लंछण देस्यइ लोइ ॥४०२॥
प्रीतम वीछुड़ियॉ पछइ, मुई न कहिजइ काइ।
चोली-केरे पॉन ज्यूॅ, दिनदिन पीली थाइ ॥४०३॥
बोलि न सक्कूँ वीहतउ, हेक ज बात हुई।
राजि अपूठा वाहुड़उ, माळवणी मूई ॥४०४
सूड़ा, सगुण ज पंखिया, म्हॉकउ कह्यउ करे ज।
नव मण चंदण, मण अगर, माळवणी दागे ज ॥४०५॥

४०२—सुग्गा कहता है कि हे साल्ह कुमार, मालवणी की ओर देखो। वह पद्मिनी प्राण छोड़ देगी और लोग तुम्हे लाछन लगावेगे।

४०३—प्रीतम के बिछुड़ने पर क्यों न मरी हुई कही जायगी, जब वह मजीठ के पत्तों की भॉति दिन प्रति दिन पीली पड़ती जा रही है।

४०४—मैं डरता हुआ बोल नहीं सकता, एक बात हो गई है, आप वापिस लौटे—मालवणी मर गई है।

४०५—ढोला कहता है—

हे सुए, तू गुणवान् पक्षी है, हमारा एक कहना करना—नौ मन चदन और एक मन अगरू लेकर मालवणी का दाह-कर्म कर देना।

४०२—साल (ग)। कुमर (क. ज) कुंवर (ख)। सूवी (ख, ग) सूवउ (क) सूओ (घ) कहो (घ)। माळहवणी (ख)। मुखि (ज)। जोय (ज)। तिजंती (ज. थ)। पदमिनी (च) पदमिणी (क. ख. ग) पदिमणी (घ)। लंछन (ग)। दे सिर=देस्यइ (ख) देसी (ग. घ) दीसी (घ)। तोहि (ख) तोइ (क घ.) सोइ (ज. थ.) = लोइ।

४०३—वीछडियाँ (क. ज) सुनजे=कहिजै (ग) सुणिये (क. त)। कोइ (क. घ)। केरा (ग ज)। होइ = थाइ (क)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४०४—बोल न (क ग. घ)। सकु (ज)। एक (क ग. घ)। अपुठा (घ)। वाहुडे (ख) बाहुड्या (ज) माळवण (घ)। मुई (क. घ)।

४०५—दस=नव (क. ख. ग. घ. ज)। मणि (ज)। तेल सुगधौ लेय= माळवणी दागेज (ख ग. ज) लेस (क)।

इस दूहे की दूसरी पक्ति (क ख. ग घ. ज.) मे पहली पक्ति है। पहली पंक्ति (च) से ली गई है। (क. ख. ग. घ. ज) मे दूसरी पक्ति इस प्रकार है—'गुण थाईको सांणसा मालवणी दागेय'—इसके पाठातर इस प्रकार है—थांको ही (क. ग) थाकौ (घ)=थाइकौ। मानस्या (क) मानस्या (ग. ज) मानस्यो (घ)। माळवंण (घ)। दागेस (क. घ)। दागेह (ग)।

सूड़ा, सुगुण ज पंखिया, म्हाँकउ कह्यउ करेह।
साईं देज्यो सज्जणाँ म्हाँ साम्हाँ जोएह ॥४०६॥
थे सिध्यावउ, सिध करउ, पूजउ थाँकी आस।
वीछुड़ताँ ही माणसाँ, मेळउ दियउ उल्हास ॥४०७॥
थे सिध्यावउ, सिध करउ, पूजउ थाँकी आस।
मत वीसारउ मन-थकी, उवा छइ थाँकी दास ॥४०८॥
ढोलइ सूवउ सीख दइ, जा पंछी, ग्रह वास।
उडियर पाछउ आवियउ माळवणी-कइ पास ॥४०९॥

४०६—हे सुए, तू गुणवान् पक्षी है, हमारा कहा करना—हमारी ओर देखकर (हमारी ओर से) प्रियतमा के पीछे बाँग देना।

४०७—(जब सुए ने देखा कि मृत्यु-समाचार से भी ढोला का मन नहीं फिरा तो लाचार होकर कहने लगा—)

आप पधारिए, सिद्धि कीजिए, आपकी आशा पूरी हो और बिछुड़े हुए जनों को फिर मिलकर उल्लास देना।

४०८—आप पधारिए, सिद्धि कीजिए, आपकी आशा पूरी हो। उस (मालवणी) को मन से मत भुलाना, वह आपकी दासी है।

४०९—ढोला सूवे को विदा देता है कि हे पक्षी, अपने वास-स्थान को जाओ। तब वह उड़ मालवणी के पास वापिस आया।

४०६—सगुणा (थ)। करेस (थ)। म्हां सौ माने हेज=म्हांकउ...करेह (थ)। लड लाकड डीहर ढकलि म्हां हु इतिया देह=साईं...जोएह (ज)।

केवल (च. ज. थ) में।

४०७—सिधावो (ज)। सिद्धि (च)। सिधि (थ)। वीछटीयां (ज)। मीव=ही (ज) वांसे किसी वंसास=मेलउ ...उल्हास (ज)।

केवल (च. ज) में।

४०८—सिधावौ (ख)। सिधि करौ (ख) हूं छूं=उवा छै (ख)। थांकौ=थांकी (ख)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४०९—सूवानुं=सूवउ (ज)। दी (ज)। ग्रह (ख. ज)। उडिअर (ख) उडनें (क) उडिनें (ज)। पाणि (ज)।

केवल (क. ख ग. घ. ज. झ. थ) में।

लाँबी काँब चटक्कड़ा, गय लंबावइ जाळ।
ढोलउ अजे न बाहुड़इ प्रीतम मो मन साल ॥४१०॥
रहि नीमाँणी, माठ करि, सयणाँ वयण न कथ्थ।
ज्याँ पग दीधा पागड़इ वाग उवाँही हथ्थ ॥४११॥
प्यारा, पाखर पेम की, काँइ ज पहिरी अंगि।
वयण खटक्कइ बाण ज्यूँ, कोइ न लागइ अंगि ॥४१२॥
साहिब, तुझ्झ सनेहड़इ, प्रीति-तणी पति जाइ।
जळ खिण ही जाणइ नहीं, मच्छ मरइ खिणमाँइ ॥४१३॥

४१०—उधर पीछे मालवणी विलाप करती है—

लबी छड़ी की मार से वह गति को द्रुत करता है। मेरे मन का प्यारा साल्हकुमार (ढोला) अभी तक नहीं लौट रहा है।

४११—इतने मे सूवा आ जाता है और कहता है—

बोलती न रह, चुप कर, प्रियतम से वचन न कह। जिन्होंने रिकाब पर पैर दिए लगाम भी उन्हींके हाथ मे है (लौटना उन्हीं के हाथ में है)।

४१२—पुनः मारवणी विलाप—

हे प्यारे, तुमने प्रेम का कैसा कवच धारण कर लिया है। (मेरे) वचन बाण की तरह आघात करते हैं परतु तुम्हारे अग में कोई नहीं लगता।

४१३—हे नाथ, तुम्हारी प्रेमरीति से प्रीति की प्रतीति चली जाती है। मछली क्षण भर में मर जाती है परतु जल को क्षण भर के लिये भी उसका ज्ञान (ध्यान) नहीं होता।

४१०—कब (क. घ)। चटकड़ा (ख. ग. घ)। गउ (ख)। अजूं (क. ग. घ)। साल्ह (क. ख) सल्ह (घ)।

केवल (क, ख ग. घ) में।

४११—निमांणी (ज)। मठि (ज)। कत्थि (ज)। दीनां (ज)। वागां (ज)। त्यांही (ज)।

केवल (ख. ज) में।

४१२—प्यारी (झ)। सयणा (न)। प्रेमची (न)। काइक (क. व)। पहेरी (घ) पैहरी (ज)। अग (क. ख. ग. घ झ)। तन्न=अगि (न)। खरडकै (ख. झ.) खटकै (क. ग. ज.) खटकी (घ)। खतंगा वाहिया=खटक्कइ बाँण ज्यूँ (न)। तास=कोइ (क. घ)। भागै=लागै (घ)। मन्न = अगि (न)। अंग (क. ख. ग. घ. झ)।

केवल (क ख. ग. घ झ. न) में।

४१३—सनेहडै (ज) सनेहडी (क. घ)। प्रीत (ग. घ)। पत (घ)। जाय (ज)। माछ (ख. ग)। मांहि (क. ग. ज)। माह (घ)।

बाँवळि काँइ न सिरिजियाँ, मारू मंझ थळाँह।
प्रीतम वाढ़त काँवड़ी, फळ सेवंत कराँह ॥४१४॥
साँवळि काँइ न सिरजियाँ, अंबर लागि रहंत।
वाट चलंताँ साल्ह प्रिय, ऊपर छाँह करंत ॥४१५॥
साँगण काइ न सिरजियाँ, प्रीतम हाथ करंत।
काठी साहँत मूठि-माँ, कोडी कासी संत ॥४१६॥

४१४—हे विधाता, तूने मुझे मरु देश के रेतीले स्थल के बीच मे बबूल क्यों नहीं बनाया, (जिससे कि पूगल जाते हुए) प्रियतम छड़ी काटते और मैं उनके हाथों के स्पर्श का फल पाती ?

४१५—(हे विधाता), मुझे श्यामल बदली क्यों नहीं बनाया, जिससे मैं आकाश मे लगी रहती और मार्ग चलते हुए प्रिय साल्हकुमार पर छाया करती।

४१६—(हे विधाता), मुझे नरसिहा क्यों नहीं बनाया, जिससे प्रियतम हाथ में लेते, मुट्ठी मे कसकर पकड़ते, (और मैं) खूब प्रसन्न रहती।

केवल (क. ख. ग. घ. ज) मे।

४१४—बांवळ (ख. ग. घ. त) वांवण (ख)। सरजियां (ग)। कांइन सरजी वांवळी (ज)। काँइन सरजी अवली (ट)=बाँवळि . सिरजियाँ। झाझा =मारू (ट) सरळी=मारू (ट)। मंज (ख)। ढोलो=प्रीतम (ज. ट)। तोडत (ज) मोडत (ट) वाढत (क. ग.)। खल=फळ (घ)। चटकावत=फळ सेवंत (ज. ट)। करहां (ट)। पाछै परहरियाँ=फळ...कराँह (ख)। फल (त)।

४१५—सवळी (क. ग. घ. त)। सिरजीया। (ख) सिरजई (त)। कांयन सरजी वादळी = साँवलि...सिरजियाँ (ज)। लागी आभ=अंबर लागि (क. घ. त)। लागी साथ वहत=अंबर . रहत (ख. ग)। रहति (त)। करहै प्रीतम कावडी = वाट...प्रिव (क. ख. ग. घ. त)। तिहिवाँ (ख. त) तिहिवां (ग) तिहूया (क) त्रिहुआं (घ)=ऊपर।

४१६—सींगणि (ग. घ)। सरजियां (ग. घ)। साहठ (ख)। हाथमै (क. घ. त)। मूंठमे (ग)। काडे (त)।

हित विण प्यारा सज्जणाँ, छळ करि छेतरियाह।
पहिली लाड लडाइ कइ, पाछइ परहरियाह ॥४१७॥
[आवि विदेसी वल्लहा, छळ करि छेतरियाह।
मतवाळा री वतक ज्यउँ, पिय नइँ परहरियाह ॥४१८।]
आडा वनखँड दे गया, परवत दीन्हा पूठ।
हियड़ा ऊपर राखती, कदे न कहती ऊठ ॥४१९॥
सज्जण अळगा ताँ लगइ, जाँ लग नयणे दिट्ठ।
जब नयणाँहूँ बीछुड़े, तब उर मंझ पइट्ठ ॥४२०॥
[सज्जण देसंतर हुवा, जे दीसता नित्त।
नयणे तो वीसारिया, तूँ मत विसरे चित्त ॥४२१॥]

४१७—हे प्रेमविहीन प्यारे सज्जन, तुमने छल करके (मुझको) ठग लिया। पहले लाडप्यार करके (फिर) पीछे छोड़ दिया।

४१८—हे परदेशी प्रियतम, आओ, छल करके तुमने मुझे ठग लिया। मतवाले की सुराही की तरह तुमने पान करके मुझे छोड़ दिया।

४१९—(प्रियतम) जगल के जगल बीच में दे गए, पर्वतों को पीछे छोड़ गए। मैं उन्हें सदा हृदय पर रखती और कभी नहीं कहती कि 'उठो'।

४२०—सजन तभी तक अलग (रहते) है जब तक आँखों से दिखाई देते हैं। जब वे आँखों से बिछुड़ जाते हैं तो हृदय मे प्रवेश कर जाते हैं।

४२१—जो प्रियतम सदा दिखाई देते थे वे देशातर को चले गए। नयनों ने तो उन्हे विसार दिया, पर हे चित्त, तू उन्हे मत विसारना।

४१७—तेहज (क) हेत ज (घ) हित ज (ज)=हित विण। सजणां (ख) सजनां (ज)। कर (घ) छेतरिया (ख ग घ. ज)। लाल=लाड (घ)। नैं=कै (ज)। चहोडिया=लडाइ कै (क ग व) पीछैं (ज) पीछै (घ)। परहरिया (ख. ग) परिहरिया (ज)।

४१८—यह दूहा केवल (ज) मे है।

४१९—सज्जन चाल्या हे सखी डूंगर दिया ज पूठ।
हीयै पर हुलरावती, (न)।
केवल (ज न) में।

४२०—सजन (क ग. घ)। जां=तां (क. ग. घ) नयने (ग)। नयणां (क. घ)। दीठ (क.घ)। नयनां (ग)। मांहि (ख)। उमर ज=उर मझ (घ)। केवल (क. ख. ग. घ) में।

कुसळ विहावउ सज्जणाँ, पर मंडले थयाँह।
जउ विहु हिया न हारिस्यइ, वळे मिळेवउ त्याँह॥४२२॥
माळवणी इणि विधि घणउ विरह विकळ विलपंति।
ढोलउ पूगळ पंथ सिरि आणँद अधिक खड़ंति॥४२३॥
अति आणँद ऊमाहियउ, वहइ ज पूगळ वट्ट।
त्रीजइ पुहरि उलाँघियउ, आडवळारउ घट्ट॥४२४॥
[करहउ पाँणि तिसाइयउ, आयउ पुहकर तीर।
ढालउ ऊतर पाइयउ, निरमळ सरवर नीर॥४२५॥]

४२२—हे सज्जन, (अब तुम) दूसरे के मडल में हो रहे, कुशलपूर्वक दिन बिताओ। जो (हम) दोनों के हृदय हार न गए तो फिर मिलन होगा।

४२३—इस प्रकार मालवणी विरह से अत्यंत व्याकुल होकर विलाप करती है। (इधर) ढोला पूगल के मार्ग में अधिक आनद में (भरा हुआ) ऊँट को हाँक रहा है।

४२४—(ढोला) अत्यंत आनद में उमगा हुआ पूगळ के मार्ग में चल रहा है। (उस दिन) तीसरे पहर उसने आडावळा पहाड़ की घाटी को पार किया।

४२५—पानी के लिये तृषित हुआ ऊँट पुष्कर के तीर पर आया। ढोला ने उतरकर उसे सरोवर का निर्मल पानी पिलाया।

४२२—कुसि (ध) सुखइ (च)=कुसळ। विहावौ (क. ख ग. घ झ)। सजणा (ग) सजना (क ब)। परि (च)। मंडिरे (थ)। थीयांह (ग) थयांहि (ब)। जे मरि हाउन हारही=जउ "हारस्यइ (क ख. ग घ झ)। वलि=विह (थ)। हाट=हिया (थ)। हारवइ (थ)। वळी (झ)। मिळिजे (क ख ग झ)। मिळीजे (ब)। ताह (क ख. ग झ. थ)। ताहि। (ब)।

४२३—माळवनी (ग)। इण (ज) इण (क ग ब)। विध (ग. ब ज)। विकुल (ख. ग ब ज)। विध विलपत (ख) विललत (ग) विलपवि (घ)। हिव ढोलो=टोलो (क ब)। सिर (ख)। आनद (ग)। खडंत (क. ख ग. ब)।

४२४—आनद (ग)। करहा पाणी धउ करे (च) करहा पाणी अब करे (थ) करहा "भी करे (ज)=अति" ऊमाहियउ। पडिसे (थ) खडिसे (ग) वहिसो (क) वहिस्या (ब) वह्यंज (झ) कहेज (ज)। वाट (क ग. ज झ)। तीजे (ख. ग झ)। त्रीजे (क) त्रीजी (ब)। पुहर (च) पुहरे (थ) प्रहरे (ज) पहरि (ग झ) पहिर (घ) पहर (क)। लघीयौ (ब थ) लंघीयउ (च. ज)। आडवळेरो (ग झ) आडवळारो (क) आडवळारौ (ब) आडिवळेरौ (ग)। घाट (क. ग ज)। घट (ख)।

करहा, पाणी खंच पिउ, त्रासा घणा सहेसि।
छीलरियउ ढूकिसि नहीं, भरिया केथि लहेसि ॥४२६॥
देस विरंगउ ढोलणा, दुखी हुया इहाँ आइ।
मनगमता पाम्या नहीं, ऊँटकटाळा खाइ ॥४२७॥
करहा, नीरूँ जउ चरइ, कंटालउ नइ फोग।
नागरवेलि किहाँ लहइ, थारा थोबड जोग ॥४२८॥

४२६—ढोला ऊँट से कहता है—

हे ऊँट, (अब) छककर पानी पीले। (आगे) प्यास बहुत सहनी पड़ेगी। छीलर गढैयों पर (तो) तू ढूकेगा नहीं और भरे हुए (तालाब यहाँ) कहाँ पावेगा ?

४२७—ऊँट कहता है—

हे ढोला, यह देश विरंगा है। यहाँ आकर के दुखी हुए। मन को रुचनेवाला (घास) नहीं मिलता, ऊँट कटारा खाते है।

४२८—ढोला उत्तर देता है—

हे ऊँट, यदि चरे तो ऊँटकटारा और फोग चरने को दूँ। तेरे इस थोबड़े (मुँह) के लिये यहाँ नागरवेलि कहाँ पाऊँगा ?

४२६—खांचि (ख) खीच (ग)। पीव (ग ज) पी (ख) पिय (क घ)। तिस (ख) तासा (क ग घ)। घणी (ख)। सहेस (क ग. घ)। छीलरियाँ (क ख घ)। छीलरिए (ग) छीलरडे (घ) छीलरिये (ज)। ढूकसि (क. ग. घ. ज) ढूकसि (ख)। परवल (ख) सरवर (क ग घ) भरिया। केथ (ख)। द्रह भरीया न (ज)। सर भरिया (थ)=भरिया केथि लहेस (क. ग घ)।

४२७—देसे (च)। विडाणउ (थ)। थिया (ज)। तिणि=इहाँ (थ)। पामां (थ)। कंटालो (ज थ)। खाय (ज)।

केवल (ज थ) मे।

४२८—कठीलौ (घ)। अरू = नै (ग च) अर (ज) का (ख) = नै। लहुं (ज) लहू (झ)। का करहला (क ख घ) कहा करह (ग)=किहा लहइ। नारवरना लोक (क ख) नागर वरना लोग (घ)=थारा थोवड जोग। थाहरौ (झ) थोडा=थोवड (ज)। जोगि (च ज)। नागर वेली का करहला नागर नरा लोग=द्वितीय पक्ति (ह)।

करहा, नीरूँ सोइ चर, वाट चलंतउ पूर।
द्राख विजउरा नीरती, सो धण रही स दूर ॥४२६॥

करहा, इण कुळिगॉमड़इ, किहॉ स नागरवेलि।
करि कइरॉ ही पारणउ, अइ दिन यूँही ठेलि ॥४३०॥

सुणि ढोला, करहउ कहइ, मो मनि मोटी आस।
कइरॉ कूँपळ नवि चरूँ, लघण पड़इ पचास ॥४३१॥

करहा, देस सुहामणउ, जे मूॅ सासरवाड़ि।
ऑंब सरीखउ आक गिणि, जाळि करीरॉ झाड़ि ॥४३२॥

४२६—हे ऊँट, जो चरने को दूँ वही मार्ग मे पूरे वेग से चलता हुआ चरता जा। जो दाख और बिजोरे चरने को देती थी वह धन्या अब बहुत दूर रह गई।

४३०—हे ऊँट, इस छोटे से गॉवड़े मे नागरबेल कहॉ? यहाँ करील का ही कलेवा कर। ये दिन इसी तरह से बिता दे।

४३१—ऊँट कहता है कि ढोला, सुनो, मेरे मन की आशा मोटी है—चाहे पचास लघन पड़ जायॅ, पर करील की कोंपलें नहीं चरूँगा।

४३२—हे ऊँट, यह देश बड़ा सुहावना है क्योंकि यह मेरी ससुराल है! यहॉ आक को आम गिनो और करीलों के झाडों को कदव।

४२६—जो चरे वाटडियांरो चूर=सोई...पूर (ट)। मेल्ही=रही स (ट)।

केवल (ट. ठ) में।

४३०—ए = इण (ज)। कुलगामडो (ज)। नहीज = किहांस (ज)। कर (ज)। दस=अइ (ज) युँहीज (ज)।

केवल (च. ज) में।

४३१—केवल (च)।

४३२—सुहावणी (ज)। जो (ल)। मौ (ज)। जउ तू = जै मू (थ)। चाद (ज)। सरीखा (ज)। करहा सीस म झाड़ी (ज) नागर वेली जालि (ध) रह करि मीस म झाड़ि थ) = जालि...झाड़ि।

करहा लंब-कराड़िआ, वे-वे अंगुल कन्न।
राति ज चीन्हो वेलड़ो, तिण लाखीणा पन्न ॥४३३॥

करहा, चरि चरि म चरि चरि चरि चरि म चरि मभूर।
जे वन कालिह विरोळियउ, ते वन मेल्हे दूर ॥४३४॥

[ढोलइ करह बिमासियउ, देखे वीस वसाळ।
ऊँचे थळइ ज एकलो, वचाळइ एवाळ ॥४३५॥]

उज्जळ-दंता घोटड़ा, करहइ चढियउ जाहि।
तइँ घर मुंध कि नेहवी, जे कारणि सी खाहि ॥४३६॥

४३३—हे लबी गर्दनवाले ऊँट, तुम्हारे कान दो दो अगुल के हैं। रात जो लता पहचानी (देखी) थी उसके पत्ते बहुमूल्य (स्वादिष्ट) थे।

४३४—हे ऊँट, चर-चर, मत चर, चर, अरे चर-चर, मत चर, मत दुखी हो। जिन वनों को कल पार किया था वे वन अब दूर छूट गए।

४३४—ढोले ने ऊँट को (इस प्रकार) समझाया। (फिर) ऊँचे स्थल पर कोई बीस-एक भेड़ों के झुंड के बीच मे अकेले (बैठे हुए) एक गड़रिए को देखा।

४३६—वह गड़रिया ढोले को देखकर कहता है—

हे उज्ज्वल दाँतोंवाले युवक, ऊँट पर चढ़ा हुआ तू जा रहा है, क्या तेरे घर पर प्रेममयी मुग्धा है जिसके लिये शीत खा रहा है?

४३३—लबा (च)। किराडीया (ज)। काछी कालिया (क. ख. घ) काछी करहला (ग)=लंब कराड़िआ। दुइ दुइ (क ख. ग घ. ज)। अंगुल (क. ग. च. ज) आंगल (घ)। कांन (क. ख. ग. घ)। कालिहजु = राति ज (च)। तिणि (च) तियै (क. घ) तीयै (ग)। पांन (क. ख. ग. घ)।

४३४—केवल (च) मे।

४३५—केवल (ट) में।

४३६—घेटडा (झ) ऊँटिया (न) = घोटड़ा। खतै खडियो = करहइ चढियउ (न)। ज केहवी = कि नेहवी (न)।

केवल (क झ. न) में।

जइ रूँखाँ मारू हुई, छवडउ पड़ियउ तास ।
तइ हुती चन्दउ कियइ, लइ रचियउ आकास ॥४३७॥
ढोला, खीलयाँरी कहइ, सुँणे कुंगा वैंण ।
मारू म्हाँजी गोठणी, सैं मारूँदा सैंण ॥४३८॥
आडवळे आधोफरड, एवड़ माँहि असन्न ।
तिण अजाँण ढोलइ तणइ मूरख भागइ मन्न ॥४३९॥
क्रम-क्रम, ढोला, पथ कर, ढाण म चूके ढाळ ।
आ मारू बीजी महल, आखइ मूठ एवाळ ॥४४०॥

४३७—ढोला कहता है—

जिस वृक्ष से मारू (उत्पन्न) हुई उसकी छाल का टुकडा गिर गया था। (विधाता ने) उससे चद्रमा बनाया और लेकर आकाश मे रख दिया।

४३८—गडरिया कहता है कि हे ढोला, मेरे कुढगे वचन सुनो। मारू हमारी साथिन् है और हम मारू के मित्र हैं।

४३९—आडावले पहाड़ की ढालू जमीन पर, भेड़ो के झुंड के बीच में बैठे हुए उस मूर्ख (गडरिए) ने अनजान ढोले का मन खिन्न कर दिया।

४४०—(तब ऊँट कहता है कि) हे ढोला, चलो, चलो, रास्ता पकड़ो, इस ढालू भूमि पर ढाण (चाल) को मत चूको। यह मारू दूसरी स्त्री है। यह गडरिया झूठ कह रहा है।

४३७—जे सुख अति=जइ रूँखां (झ)। जिण=जे (न)। पडी=हुई (न)। छोडो (झ) छवंड (क)। तिणहुता (न)। रचियं (क, झ)।

केवल (क झ न) में। (ख) मे इस दूहे का पाठ इस प्रकार है—

चदन की मारू वडी, छोडो पडियो पास।
ताकां ले चदो घड्यो, लेइ सुक्यो आकास ॥

४३८—खिलहरी (झ) मारू रा म्हे=सैं मारूँ दा (झ)।

केवल (क झ) मे।

४३९—ऊँचे थलचर एकलो=आडवळे आधोफरड़ (ट) असंभ=असन्न (क) असन्न (ट)। उमगया=तिण अजाँण (ट)। ढोला (ट)। तणौ (ट)। मूरिख (ट)। भागौ (ट)।

केवल (क झ ट) मे।

४४०—केवल (ट) मे।

चारण एक ऊमर तणउ, मिलियउ एह असन्न ।
ढोलउ जातउ देखि कइ, मूरख भागउ मन्न ॥४४१॥

जिण धण कारण ऊमह्यउ, तिण धण संदावेस ।
तिण मारूरा तन खिस्या, पंडर हुवा ज केस ॥४४२॥

ढोला, मोड़ो आवियउ, गइ बाळापण वेस ।
अब धण होई खोरड़ी, जाए कहा करेस ॥४४३॥

४४१—ऊमर सूमरे का एक चारण इसके पास ही मिला। ढोले को जाता हुआ देख करके वह मूर्ख मन मे जल उठा।

४४२—वह चारण ढोला से कहने लगा—

जिस प्रेयसी के लिये तू उमग से भरा हुआ (जा रहा) है उसी प्रेयसी का सदेशा कहता हूँ। उस मारू के अग ढीले हो गए हैं और बाल श्वेत हो गए हैं।

४४३—हे ढोला, तू देरी से आया। उसकी बाल्यावस्था चली गई। अब वह प्रेयसी वृद्धा हो गई है। (तू) जाकर क्या करेगा?

४४१—उमर (ख)। एक=एह (घ)। जांणि=एह (ग)। जावतो (घ) जावंतो (ग)। देख (घ)। कर (ग)।

केवल (ख. ग घ) में।

४४२—जिन (ग)। कारणि (क)। उमह्यौ (घ)। ढोला तूं ऊमाहीयउ= जिण...ऊमह्यउ (च ज. थ)। धणि (ख) धन (ग)। जिणि धणि हदी रेस (ज) जिणि धण स्युं तू रेसि (च थ)=तिण ..वेस। सुंदरवेस=सदावेस (घ)। तिणि (च)। री (ग ज)। का=रा (च) तिन (ख)। मारूरो तो=तिण मारूरा (ख)। मारू तो तन ही=तिण ..तन (घ)। खस्या (क ख)। पुंडर (च) पंडुर (क घ)। हूवा (ख) हुवात (ज) थयात (च) थयाज (झ) भयौत (घ)।

उस दूहे का पाठ (ट) में इस प्रकार है—

जरा आवे जोवण गयो, गई बाळापण वेस।
नेणांरी बंकम गई, पंडर हुआ ज केस॥

४४३—केवल (ट) में।

ढोलइ मन चिंता हुई, चारण - वचन सुणेह ।
हिव आव्यउ पाछउ वळइ, करहा, केम करेह ॥४४४॥

करहा, कहि कासूँ करॉ, जो ए हुई जकाह ।
नरवर - केरा माणसॉ, कासूँ कहिस्यॉ जाह ॥४४५॥

दुरजण - केरा बोलडा, मत पॉतरजउ कोइ ।
अणहुंती हुंती कहइ, सकळी साच न होय ॥४४६॥

४४४—चारण के वचन सुनकर ढोले के मन मे चिंता हुई (और वह ऊँट से बोला) अब आए हुए वापिस चलें ? हे ऊँट, बता क्या करें ?

४४५—हे ऊँट, बता अब कैसे करें, जो यह हुई सो देख। नरवर के लोगों को अब जाकर क्या कहेगे ?

४४६—दुर्जन के वचनों से कोई धोखा मत खाना। (वे) अनहोनी को होनी बताते हैं—(उनका) सब (कथन) सत्य नहीं होता।

४४४—ढोला (ग) ढोलो (ध)। भनि चिंता ढोला तणे (च ज) मन चिंता ढोला वसी (ध)=ढोळइ मन चिंता हुई। पूरख=चारण (क)। भणी (थ)। सुनेह (ग)। साभळ तास वचन्न (च. ज. थ) सांभळ ए कुवचन्न (ध)= चारण...सुणेह। हव (ध)। आया (ज थ) अथिहू (ख) आयौ (क ग. घ)। वळू (ग) वळूं (व) वळी (च) वळा (ज)। करहो (व)। तिणि मन भागउ मन्न (च) इण उथापियो मन्न (ज) इण वचने हुइ लज्ज (थ) करहा केम करेह।

(ध) मे इस दूहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—'हिव आयो पाछो वळूं इणैं उथाप्यो मन्न।'

४४५—करहां (च ज)। हिव (क) जौ (ग. घ)=कहि। गल्हां मंदीयां (क) गालि भल्हीयां (च) गली भुछीया (ज)=कहि...करां। जोण (ख) जोई (ग घ) जोय (क)=जोए। जकाज (ख) जिकाय (क) जिकाई (ग. घ) जिकाइ (च क)। नरहर (च)। केरा (ख) सदां (ग घ)=केरा। उं नरवररां=नरवर केरां (क)। किसू (क) कास्युं (च ज)। कहिसा (क घ)। जाय (क घ) जाइ (ख च ग)

४४६—केवल (ट) में।

ढोलउ मन चलपत थयउ, ऊभउ साहइ लाज।
साम्हउ वीसू आवियउ, आइ कियउ सुभराज ॥४४७॥
वोसू सुणि, ढोलउ कहइ, एकइ कहियउ एम।
मारवणी बूढी हुई, कहि सॉची तूॅ केम ॥४४८॥
जे तइँ दीठी मारवी, कहि सहिनॉण प्रगट्ट।
सॉच कहे तूॅ दाखवइ, वहाॅ ज पूगळ-वट्ट ॥४४६॥

४४७—ढोले का मन पीपल (के पत्ते की तरह चलायमान) हो गया। वह वहीं खड़ा खडा लगाम को सम्हालने लगा। (इतने मे) सामने से वीसू (नाम का एक चारण) आया और उसने आकर शुभराज किया (श्रीमान् का कल्याण हो यह आशीष दी)।

४४८—ढोला कहने लगा कि हे वीसू, सुनो, एक ने ऐसा कहा है कि मारवणी बूढी हो गई। तू सच बता कि क्या बात है।

४४६—यदि तुमने मारवणी को देखा हो तो सब चिह्न प्रकट करके बतलाओ। जो तुम सच बताओ तो पूगल के मार्ग पर (आगे) बढें।

बीसू कहता है—

४४७—ढोलै (घ)। सन (घ)=मन। थकैं (ग)। साही ऊभौ (क)=ऊभौ साहै। लाल (घ)=लाज। समां (घ)। आओयौ (क)। आए (ध)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४४८—तूं साची (ख)=साची तूँ।

केवल (क ख. ग. घ) में।

४४९—जो (च ज)। तइ (च)। दौढ वरसरी (ख)=जे तइँ ढीठी। मारवी (ख ज) मारुइ (च)। को (च ज)=कहि। सहिणांन (ग) सहनाण (च) सैनांण (झ)। प्रकट (ख ग घ)। मोती सिरि गळि कंचूउ (च) मोती सिरि गळि कंटलो (ज)=सॉंच 'दाखवै। जु (ख)=ज। वट (ख ग) वाट (घ)। कढि कस्तूरी वट्ट (च ज)=वहाँ ज पूगल वट्ट।

दूढ वरसरी मारुवी, त्रिहुँ वरसाँरिउ कंत।
जणरउ जोवन वहि गयउ, तूँ किउँ जोवनवंत ॥४५०॥

(मारवणी-रूप-वर्णन)

गति गंगा, मति सरसती, सीता सीळ सुभाइ।
महिलाँ सरहर - मारुई अवर न दूजी काइ ॥४५१॥

नमणी, खमणी, बहुगुणी, सुकोमळी सु सुकच्छ।
गोरी गंगा नीर ज्यूँ, मन गरवी, तन अच्छ ॥४५२॥

४५०—(जब विवाह हुआ था तब) मारवणी डेढ वर्ष की थी और (उसका) पति तीन वर्ष का था। उसका यौवन चला गया? तब तू यौवनपूर्ण कैसे रह गया?

४५१—मारवणी गति में गंगा, बुद्धि में सरस्वती, और शील स्वभाव में सीता है। महिलाओं में मारवणी की बराबरी करनेवाली दूसरी कोई नहीं है।

४५२—वह विनयशीला, क्षमाशीला, अनेक गुणोंवाली सुकोमल, सुंदर कक्षवाली, गंगा के पानी के समान गौरवर्ण, गरुए मनवाली और सुंदर शरीरवाली है।

४५०—ढूँढ (ख, ग ज) डोढ (क व) दिउढ (थ)। मारवी (ख. ग) मारइ (च. ज)। तिहुं (च ज ग) त्रिह (ख)। वरस (च ग. व)। किम (ख)=वहि। किम आ जोवन हुइ गई (च) किम उवा जोवण हुँ गई (थ) किम वा जोवण वहि गई (ज)=उणरउ जोवन वहि गयउ। क्यों (ख) किम (ग) क्युं (व) किम तू (च) क्युं तूं (ज)=तूं किउँ।

(ट) में इस दूहे का पाठांतर इस प्रकार है —

(ये) ढोला तीन वरसरा, वन वारे छः मास।
मारू किम बुढी भई, जो थे लील वलास॥

४५१—गत (ट) सरस्वती (ग) सुहाइ (क) सुभाय (ग)। मेहला (ट)। उत्तिम (ग) ढाठी (क व) तेही (क)=सरहर। मारवी (क) मारवी (ख ग.)। कळमें उत्तिम (ग व) कळिमें उत्तिम (क)=महिळां सरहर। कलिमां उत्तिम (ख)=अवर न दूजी। और (ट)=अवर। महियल जेही मारवी कळमें बीजी न काइ (न)।

४५२—नामनि (ख)। खमनी (ग)। सुखमणी (व)। सुकच (क) सुकच (ग) सुकिछ (व) सुलज (ट)। मारू (क ग)=गोरी। ज्यों (ख) जूं (व)। गुण (ट)=मन। गरई (ट)। तनि (ट)। तछ (ग) अछि (व)=अछ।

रूप अनूपम मारुवी, सुगुणी नयण सुचंग।
सा धण इण परि राखिजइ, जिम सिव-मसतक गंग ॥४५३॥
गति गयंद, जँघ केळिग्रभ, केहरि जिम कटि लंक।
हीर डसण, विद्रुम अधर, मारू-भृकुटि मयंक ॥४५४॥
मारू-घूँघटि दिट्ठ मइँ, एता सहित पुणिंद।
कीर, भमर, कोकिल, कमळ, चंद, मयंद, गयंद ॥४५५॥
नमणी, खमणी, बहुगुणी, सगुणी अनइ सियाइ।
जे धण एही संपजइ, तउ जिम ठल्लउ जाइ ॥४५६॥

४५३—मारवणी रूप मे अनुपम और सद्गुणोंवाली है। उसके नयन अत्यत सुदर हैं। वह प्रेयसी इस प्रकार रखी जानी चाहिए जिस प्रकार शिवजी गगा को मस्तक पर (रखते हैं)।

४५४—(उसकी) चाल हाथी जैसी, जंघाएँ कदलीगर्भ जैसी, कमर सिंह की सी लचकीली, दाँत हीरों के समान, अधर मूँगे के सदृश और भ्रुकुटी चद्र जैसी (टेढी) है।

४५५—मारवणी के घूँघट मे मैंने कीर, भ्रमर, कोकिल, कमल, चद्र, सिंह और हाथी—इतनों के साथ फणींद्र को देखा।

(कीर=नासिका। भ्रमर = भ्रू। कोकिल = वाणी। कमल = नेत्र। चद्र = मुख। सिंह = कटि। हाथी = चाल, जघा। फणींद्र = वेणी।)

४५६—(वह) विनयवती, क्षमाशीला, अनेक गुणोंवाली, सद्गुणागार और सुहावनी है। यदि ऐसी प्रेयसी मिल जाय तो खाली मत जाना।

४५३—अनोपम (घ) अनौपम (क)। मारवी (क ग घ) सुगणी (घ)। नैं (ग) अनै (क. घ)=नयण। साइ (क. ग घ)=सा। अैसे (क घ =इण परि। राखीयौ (क) रखीयै (घ) मसकत (ख) मत्थै (क घ) = मसतक।

४५४—गळि लीळं=गति गयंद (ग)। लीलंघ=गयद (घ)। विषय केळि=केळिग्रभ (ग)। कैळ (घ)। गरभ (क)। केहर (ग घ)। विद्रुम (क. ख. ग)। अधर (ख ग)। भ्रकुट (ग)।

४५५—घूंघट (क ग)। एता (क)। कुणिंद (क ग घ)। किर (ख. ग)। भ्रमर (ख घ)। चमर (झ)=भमर। कुरन (झ)=कमल।

४५६—बहगुणी (घ) सकोमली (घ)=सगुणी अनइँ। जनम=जिम (झ)। ढलौ (क ख) जाय (घ)।

मारू - देस उपन्नियाँ, ताँहका दंत सुसेत।
कूंझ - बचाँ गोरंगियाँ, खंजर जेहा नेत ॥४५७॥
खंजर नेत विसाल, गय चाही लागइ चख्ख।
एकण साटइ मारुवी, देह एराकी लख्ख ॥४५८॥
तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तड़ा विबीह।
ढोला, थाँकी मारुई जाँणि विलूधउ सीह ॥४५९॥
डींभू लंक, मराळि गय, पिक-- सर एही वाँणि।
ढोला, एही मारुई, जेहा हंम्फ निवाँणि ॥४६०॥

४५७—जिन्होंने मारू देश मे जन्म लिया है उनके दाँत अत्यत उज्ज्वल होते हैं। वे कुर्भों के बच्चों के समान गौरांगिनी होती हैं और (उनके) नेत्र खजन जैसे होते हैं।

४५८—मारवणी के विशाल नेत्र खजन जैसे हैं और उसकी गति ऐसी है कि देखने से नजर लगती है। एक मारवणी के बदले लाख एराकी घोड़े दिए जा सकते हैं।

४५९—(उसके) लोचन तीखे हैं, कटि मुष्टिग्राह्य है, दोनों उरोज (पपीहे के समान) लाल हैं। हे ढोला, तुम्हारी मारवणी (ऐसी है) मानो (पालतू) विलुब्ध सिंह हो।

४६०—उसके बर्र की सी कमर, हसिनी की सी चाल और कोयल के स्वर जैसी वाणी है। हे ढोला, मारवणी ऐसी है जैसा सरोवर में स्थित हस।

४५७—ऊपनियाँ (ख) उपनीया (ग. घ) उरयु गयंवर पंक धण (च) उरज गयंवर पग धण (ज)=मारू देस उपन्नियां। तिहां (क) सपेत (क. ग) सपत (घ) दामिणी दत रुस्वेत (च)=तांहका दंत सुसेत। कांमणा दंत=वाहका दंत (ज)। कूभी। (क ग घ) कुरभा (च)। वची (क ज) बोली (च)= बचा। गोरीया (ध च)। तांहका (क ख)=जेहा। नेत्र (च)। खंजेह नेह= खजर जेहा नेत (व)।

४५८—नैण (ख)। लाये (ग)। एकरिण (क ग घ)। सठै (व)। पंच (क ख. ग त)=देह।

४५९—त्रीखा (थ)। लोइन (ग) लोइण (घ) कडि (ग) कर (क. घ)= कटि। कगल (ग) कमल (क. घ)=करल। रतरा=(ग) रत्तडा। ऐहीं=थांकी (क. घ) विरतौ (ख) विवतौ (घ) विरूतै (क) विरद्धउ (थ) = विलूधउ।

४६०—डीभू (ख) ढुवू (झ)। लकि (ज)। मराल (क. ख घ. च झ) मृणाल (ग)=मराळि। गइ (च)। पिकु (च) जेही (क. ग. घ. च ज)

मारू - लँक दुइ अंगुळाँ, वर नितंब उस मंस।
मल्हपइ माँझ सहेलियाँ, माँनसरोवर हंस ॥४६१॥
चंपावरनी, नाक सळ, उर सुचंग, विचि हीण।
मंदिर बोली मारुवी, जाँणि भणक्की वीण ॥४६२॥
आदीताहूँ ऊजळो, मारवणी - मुख - व्रन्न।
झीणा कप्पण पहिरणइ, जाँणि झँखइ सोव्रन्न ॥४६३॥

४६१—मारवणी की कमर दो अगुल है, और सुदर नितब और उरःस्थल मासल हैं। (जब) वह सहेलियों के बीच में मदगति से चलती है (तो मालूम होता है) मानो मानसरोवर में हस (चल रहा है)।

४६२—वह चपे के से रगवाली है, उसकी नाक शलाका सी है, उरःस्थल अत्यत सुदर है और कमर पतली है। (ऐसी) मारवणी महल मे बोलती है (तो जान पड़ता है) मानो वीणा झनकार कर उठी हो।

४६३—मारवणी के मुख की काति सूर्य से भी समुज्ज्वल है। झीने वस्त्र पहनने से (उसके देह की काति ऐसी झलकती है) मानों सोना झलक रहा है।

एहवी (झ) = एही भक्ख (च न)। भख्य (ज) = वांणि। हंज (ख. घ) हंस (ग)। नियांण (क. ग)। चाही लागइ चक्ख (च ज न)=जेही हस निवांणि। लख्य=निवांणि (ज)।

इस दोहे का (च. ज) में एक और पृथक् रूपांतर मिलता है—

चपावरणी, सिसिमुखी, पिक सर जेही वाणि।
ढोला एही मारुई, जाणे बिम्झ निवाण॥ (च)

जिसके पाठांतर (ज) में इस प्रकार हैं—सिस (ज)। जेही (ज)=जांणें। कुंझ (ज)=बिंझ। निवाणि (ज)।

४६१—आंगुली (घ)। धड (क. ख घ)=वर। गय। (ध ख घ)=घर। मांस (ग)। माहि (ग)। मान (ख. ग घ)।

४६२—नक (क ख)। ससि मुखी=नाक सळ (झ)। सुरंग (ग घ) हार (ग)=हीण। बोलै (क ग)। मारवी (ख ग घ)। जांण (ग)।

४६३—आदिताउ (ग)। ऊजलो (झ)। व्रंन (ग) व्रन (क) कपड़ा (घ)। जे पहिरै सिणगार कजि (ग)=झीणा कप्पड पहिरणइ। जाणिउ (ग)

सोरठा

मारुवणी मुँह - वंन्न, आदित्ताहूँ उज्जळो।
सोइ झाँखउ सोवंन्न, जो गळि पहिरउ रूपकउ ॥४६४॥

दूहा

भुमुहाँ ऊपरि सोहलो परिठिउ जाँणि क चंग।
ढोला, एही मारुवी नव नेही, नव रंग ॥४६५॥
मृगनयणी, मृगपति - मुखी, मृगमद तिलक निलाट।
मृगरिपु - कटि सुंदर वणी, मारू अइहइ घाट ॥४६६॥

४६४—मारवणी के मुख की काति सूर्य से भी समुज्ज्वल है। यदि (वह) गले मे चादी का गहना पहने तो भी सोने का सा झलकता है।

४६५—(उसकी) भौंहों पर सोहली (आभूषण विशेष) पहनी हुई है, (वह ऐसी मालूम होती है) मानो (आकाश मे) पतग (उड़ रही) हो। । हे ढोला, नित्य नया नेह करनेवाली और नये रगवाली मारवणी ऐसी है।

४६६—(वह) मृग के से नयनोंवाली और मृगपति (चद्र) जैसे मुख वाली है। (उसके) भाल पर मृगमद (कस्तूरी) का तिलक लगाया हुआ है और (उसकी) कमर मृगरिपु (सिंह) की-सी सुदर है। (हे ढोला,) मारू ऐसी बनावट की है।

झउँ (ग) झाँखे (झ) सोवन्न (ख) सोवन (क. ब)। ग्रहणे पहिर्यो सोहक ज सो झाखा सोव्रन्न (न)।

४६४—आदीतां (ज) सुं (ज) = हूँ। ऊजळौ (न)। सोय (च)। झाँखै (ज) बाव्यो (ज) = पहिरउ। रूपकजि (ज)। यह (ज) मे दूहे के रूप में है।

४६५—भूहां (ग) भ्रमुहा (ब) सोळही (च ज ग ब)। परठो (ज) परठी (ब) परटी (क ख ग. ब. झ) = परिठिउ। जानि (ग) जाणिख (च ज) जाणि (झ) = जाणिक। पतंग = (क) चंग (झ थ) चंच = चंग (ब) तंग = चंग (च ज)। नेही (ग)। मारवी (ख ग. ब) मारूई (च ज)। नौ (ग)।

४६६—नयनी (ग)। लिलाट (ग)। मगरिप (ग)। सुरपति (ब) सुर (क) = सुंदर।

पर-मन-रंजन कारणइ भरम म दाखिस कोइ।
जेही दीठी मारुवी, तेहा आखे मोइ ॥४६७॥
थळ भूरा, वन झंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ।
गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ ॥४६८॥
लखण बतीसे मारुवी निधि, चद्रमा निलाट।
काया कूँकूँ जेहवी, कटि केहरि सै घाट ॥४६९॥
अहर, पयोहर, दुइ नयण, मीठा जेहा मख्ख।
ढोला, एही मारुई जाणे मीठी द्रख्ख ॥४७०॥

४६७—ढोला कहता है—

दूसरे के मन को प्रसन्न करने के लिये कोई भ्रमपूर्ण बात मत कहना; मारवणी को जैसी देखी हो ठीक वैसा ही वर्णन मेरे आगे करना।

४६८—वीसू कहता है—

(मारवाड की) भूमि (बालू से) भूरि है, वन झखाड है, (वहाँ) चपा उत्पन्न नहीं होता। मारवणी के गुणो की सुगधि से ही सारा वनखड महक उठा है।

४६९—मारवणी बत्तीसों सुलक्षणों की खानि है। (उसका) भाल चद्रमा जैसा है, देह कुकुम जैसी है और कमर सिंह की सी है।

४७०—(उसके) अधर, कुच और दोनों नयन मधु की तरह मीठे है। हे ढोला, मारवणी ऐसी है मानों मधुर द्राक्षा हो।

४६७—रञ्जन (ग) भमर (घ)=भरम। न (ग)=म। दाखिसि (घ) राखै। (ग)=दाखिस। जिसडी (ग)=जेही। मारवी (ख. ग घ)। तिसडी (ग)=तेही।

४६८—हट्टन पट्टन वाणीयउ (च ज थ)=थळ भूरा, वन झंखरा। ज (ग)=सु। उथिन (च ज. थ) नहीं सु। चपो (ज) चांपौ (क. ख. ग)। चंपौ (ग. घ) चाइ (घ) जाय (ज)=जाइ। मारू सदा सुवास छइ (च. ज थ)= गुणे मारवी। महिकी (व)। सहि (घ) सव (ख)। वनराइ (ग)। अगह तणइ सुभाइ (च थ)=महकी सहु वणराइ।

४६९—लखन (ग)। वत्रीसे (घ) वत्तीले (क)। मरवी (ख ग घ)। निध। (क ग घ)। जेहे (क ख. घ)=सै। काटि (घ)=घाट। केवल (क ख. ग घ) मे।

४७०—अँहर (ज)। दोय (ज)। नयणि (ज) जेह (ज)=जेहा। डीभू जेहँ लंक (ज)=जाणे मीठी दक्ख। केवल (च. ज थ) में।

अंगि अभोखण अच्छियउ, तन सोवन सगळाइ।
मारू अंबा-मउर जिम, कर लग्गइ कुँमळाइ ॥४७१॥
अहर अभोखण ढकियउ, सो नयठे रँग लाय।
मारू पका अंब ज्यूँ, झरइ ज लग्गे वाय ॥४७२॥
जंघ सुपत्तळ, करि कुँअळ, झीणी लंब-प्रलंब।
ढोला, एही मारुई जाँणि क कणयर-कंब ॥४७३॥
उरि गयवर, नइ पग भमर, हालंती गय हंझ।
मारू पारेवाह ज्यूँ, अंखी रत्ता मंझ ॥४७४॥

४७१—(उसके) अगों पर स्वच्छ आभूषण हैं और सारे अग सुहावने हैं। मारवणी आम के मौर के समान हाथ छूते ही कुम्हला जाती है।

४७२—(उसका) अधर आभूषण से ढक रहा है, जो नेत्रों को रंजित कर रहा है। मारवणी (ऐसी सुकुमार है कि) वायु के लगते ही पके हुए आम के समान टपक पड़ती है।

४७३—(मारवणी की) पिंडली पतली है और कमल के समान है। वह अत्यत सुकुमार और लवी है। हे ढोला, मारवणी ऐसी है मानो कर्णिकार की छड़ी हो।

४७४—(उसका) उरस्थल हाथी के (कुमस्थल) जैसा है, और पैर (पहने हुए स्वर्ण-विनिर्मित नुपूरों के कारण) भ्रमर (की भाँति मुखर) है। (वह) हंस की चाल से चलती है। मारवणी कबूतर की तरह आँखों में लालिमा (लाल डोरे) वाली है।

४७१—अग (ज) । अभोछण (ज. थ) । अछीयो (ज) । तनु (ज) । ज्युं (ज) । लागै (ज) । मोरज्यइ (थ)=मउर जिम । सोवन्न गळाइ (थ)=सोवन सगलाइ । केवल (च. ज थ) में ।

४७२—नयण सुगंधा भाइ (न)=सो...लाय । जोवन में न समाय (न)=झरइ ज लग्गे वाइ । केवल (ट. न) में ।

४७३—झघ (ज) । कमल । (ज) । कणियरि (ज) कुसुम (थ)=कुँअळ । कंबु (च) । केवल (च. ज थ) में ।

४७४—वदन तसु ससिहर मुंह भमर (ट)=उरि···भर । उरं गमर गेहज (ट)=हलंती गय हंस । कडि (ज)=नइ । भमर (ज)=पग भमर । गयंद (च)= गय हंस । मद (थ)=हंस । पारेअहर (ट)=पारेवाह । जम (ट) । आंखी (ट) । राता (ट) रत्ता (ज) मडि (च) । आँखी रत्ता मद (थ) । केवल (च. ज. ट. थ) में ।

मारू मारइ पहियड़ा, जउ पहिरइ सोवन्न।
दंती, चूड़इ, मोतियाँ, त्रीयाँ हेक वरन्न ॥४७५॥
[कसतूरी कड़ि केवड़ा मसकत जाय महक्क।
मारू दाड़म-फूल जिम दिन-दिन नवी डहक्क ॥४७६॥
ढोला, सायधण साँणने, झीणी पाँसळियाँह।
कइ लाभे हर पूजियाँ, हेमाळे गळियाँह ॥४७७॥
मारू सी देखी नहीं, श्रण मुख दोय नयणाँह।
थोड़ो सो भोळे पड़इ, दणयर उगहताहँ ॥४७८॥

४७५—मारवणी यदि सुवर्ण धारण कर लेती है, तो पथिकों को मोहित कर लेती है। (उसके) दाँत चूड़ा और मोती तीनों एक रग के (दिखाई देते) हैं।

४७६—(मारवणी ऐसी है मानो) कस्तूरी और केवड़े की कली की महक उड़ती हुई जा रही हो। वह दाड़िम की फूल के भाँति दिन दिन नया विकास पाती है।

४७७—हे ढोला, उसकी पँसुलियाँ बड़ी सुकुमार हैं। रग (प्रेम) करने के लिये वैसी प्रेयसी या तो शिव की आराधना करने से मिल सकती है या हिमालय में (तपस्या करते हुए) गलने से।

४७८—मारवणी जैसी स्त्री इस (मेरे) मुख ने (अपनी) दो आँखों से नहीं देखी। (हाँ ', सूर्य का उदय होते समय उसका थोडा सा भ्रम होता है (थोडी सी झलक दिखाई देती है)।

४७५—मीरे (च)। पंथियां (थ)=पहियड़ा। पंथी मारसी (ट)=मारइ पहियड़ा जो (ट)। पेहरे (ट)। परिहरो (ध)=पहिरै। सोवण (ट) चुडां दांतां (ट)=दंती तूडै दंतां (ध)। हाथि ज्युं (ध)=मोतियां तीने (ट) त्रिहुवां (थ)। एक (च, ज)। वरण (ट)।

(ट) में इस दोहे की पक्तियों का क्रम विपरीत है।

४७६—केवल (ट) में।

४७७—केवल (ट) में।

४७८—केवल (ट) में।

चंदवदन, मृगलोयणी, भीसुर ससदळ भाल।
नासिका दीप-सिखा जिसी, केळ-गरभसुकमाळ ॥४७६॥

दंत जिसा दाड़म कुळी, सीस फूल सिणगार।
काने कुंडळ भळहळइ, कंठ टँकावळ हार ॥४८०॥

बाँहे सुंदरि बहरखा, चासू चुड़ स वचार।
मनुहरि कटि थळ मेखळा, पग झांझर झणकार ॥४८१॥

बाँहड़ियाँ रूँआळियाँ, घण वंके नयणेह।
जण-जण साथ म बोलही, मारू बहुत गुणेह ॥४८२॥

मारू-देस उपन्नियाँ, नड़ जिम नीसरियाँह।
साइ धण, ढोला, एहवी, सरि जिम पध्धरियाँह ॥४८३॥

४७६—(वह) चंद्रमुखी और मृगलोचनी है। (उसका) ललाट चंद्रमा के समान दीप्तिमान है। (उसकी) नासिका दीप की लौ जैसी है (और वह) केले के पेड़ के भीतरी भाग जैसी सुकोमल है।

४७०—(उसके) दाँत दाड़िम के दानों जैसे हैं, (उसके) शीश पर फूलों का शृंगार है, कानों में कुंडल झिलमिला रहे हैं और गले में बहुमूल्य हार है।

४८१—सुंदरी की बाँहों में बोरखा नामक आभूषण है और चुस्त चूड़ा पहना हुआ है, मनोहर कटि प्रदेश में करधनी पड़ी है और पैरों में झाँझर की झंकार हो रही है।

४८२—उसकी बाँहें रूपमयी हैं। वह प्यारी बाँके नेत्रोंवाली है। वह प्रत्येक के साथ नहीं बोलती। मारवणी बहुत गुणों वाली है।

४८३—मारू देश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ ऐसी हैं मानो झरने निकल पड़े हैं। हे ढोला, वह प्रेयसी ऐसी है जैसे कोई सीधा बाण हो।

४७६—केवल (क) में।

४८०—केवल (क) में।

४८१—केवल (क) में।

४८२—बाहुडीयां (घ)। रूवालीयां (ग) रूयाडिया (थ) रूपालीया (च)। धन (ग)। वंगी (क ख ग. घ)=वंके। नयणांह (ज. थ) नवणेहि (च)। सथ (घ)। म (ख)=न। गुणेहि (च) गुणाह (ज)। बहु गुणियांह (थ)।

४८३—ज्यू (घ)=जिम। धन (ख)। ज्यूँ (घ)। केवल (ख. ग. घ) में।

मारू-देस उपन्नियाँ, सर ज्यउँ पध्धरियाँह।
कड़ुआ बोल न जाणही, मीठा बोलणियाँह ॥४८४॥

देस सुहावउ, जळ सजळ, मीठा-बोला लोइ।
मारू कॉमण भुइँ दखिण, जइ हरि दियइ त होइ ॥४८५॥

गह छडइ गहिलउ हुअउ, पूछइ वळि पूछंत।
मारू तणइ सदेसड़इ, ढोलउ नहु धापंत ॥४८६॥

तेता मारू मॉहि गुण, जेता तारा अम्भ।
उचळचित्ता साजणाँ, कहि क्यउँ दाखउँ सम्भ ॥४८७॥

४८४—मारू देश में जन्मी हुई (कामिनियाँ) बाण की तरह सीधी (लम्बी) होती हैं। कटु वचन वे जानती ही नहीं, वे मीठी बोलने वाली होती है।

४८५—देश सुहावना है, जल स्वास्थ्यप्रद है, लोग मधुरभाषी हैं। (ऐसे) मारू देश की कामिनी दक्षिण देश मे यदि भगवान् ही दें तो मिल सकती है।

४८६—घर छोड़ कर पागल सा बना हुआ, बार बार पूछ कर फिर पूछता है, मारवणी के समाचारों से ढोला तृप्त नहीं होता।

४८७—वीसू कहता है—

मारवणी मे उतने गुण हैं जितने आकाश मे तारे है, हे चलचित्तवाले प्रेमी कहो, सबका वर्णन कैसे करूँ ?

४८४—सरि ज्यौ (ज)। पधरियाँ (ज)। कडिवा (ज)। बोलही (ज.थ)= जाणही। बोल त्रियांह (थ)=बोलणियाँह। केवल (च ज. थ) में।

४८५—निवाणु (च. थ) निवांणी (ज)=सुहावउ। भुइं (क. ख ग घ)= जळ। सयळ (क)। भुय सयळ (त)=जळ सजळ। मीठा-चोली (क ख. ग. थ) लोय (ज)। कांमिन (ग) कामिण (क. घ) कांमणि (च)। ने भुइ (ग)= भुइँ। भुय (त)। दिक्षण (ज) सजळ (ग) = दखिण। दक्षिणवर (ध)=दक्षण घर (च)=भुइँ दखिण। दई (ख)=जइ हरि। हर (घ)। जो हरि दियौ तो होय। (ज)।

४८६—गहि (घ)। गहलो (ज) हुवा (ज) हुयौ (घ)। पूछी (ज)। वळ (ध)। नहि (ख) नह (ग. घ) धापति (घ)। केवल (क ख. ग. घ ज) मे। (ग. ज) पूछति (घ)। चारण (ज) = मारू। तणा (ज)। सदेसडा (ज)। ढौले

४८७—जेता (क ख. ग. घ) एता (न) = तेता। मज्झि (न)। गुन (ग) तेता (क. ख ग घ)=जेता। उचल (घ)। चित्तौ (क ख. घ)। साहिबौ

एकरिग जीभ किसा कहूँ, मारू - रूप अपार।
जे हरि दियइ त पाँमियइ उदियइ इरग संसार ॥४८८॥
वीस कहिया दूहड़ा, मारू - रूप विचार।
ऊतर मुहर पसाउ करि, दीन्ही साल्हकुमार ॥४८९॥
वीसू, सुणि, ढोलउ कहइ, हिव खड़ि पूगळ जात।
देह वधाई दिन थकइ म्हे आपस्याँ रात ॥४९०॥

(ढोला की यात्रा और चिंता)

दीह गयउ डर डंबरे, नीले नीझरणेहि।
काळो-जाया करहला, चाल्यउ किसे गुणेहि ॥४९१॥

४८८—मारवणी के अपार रूप का वर्णन एक जीभ से कैसे करूँ। इस संसार में, भाग्योदय होने पर, यदि भगवान् ही दे तो (ऐसी स्त्री) मिल सकती है।

४८९—मारू के रूप को विचारकर वीसू ने ये दोहे कहे। उत्तर में साल्ह-कुमार ने प्रसन्न होकर (उसे) मोहरों का पुरस्कार दिया।

४९०—ढोला बोला—हे वीसू, सुनो, अब (ऊँट को) चलाकर पूगल जाओ। तुम जाकर दिन रहते बधाई दो। हम रात को आवेंगे।

४९१—(वीसू के चले जाने पर तीसरे पहर ढोला चला। चलते चलते संध्या हो गई और पूगल अभी तक नहीं आया। ढोला ऊँट से नाराज होकर कहता है)—

(क. ख. थ झ)। ऊठिया (न) सजनां (ज)=सज्जणाँ। को (ज)=कहि। किम (ग)। कुण (न) क्या (ख. झ)। क्यु (क. व)=क्यउँ। दाखां (ज) दाखूं (क. ख. ग. झ)। तुझ (क. ख. ज)। शुभ (झ) सम (ग. घ)।

४८८—एकण (ग)। तौ (क ख) = त। पामिजे (न)। उदयै (घ)। केवल (क. ख. ग घ) में।

४८९—अपार (घ)=विचार। महुरां (ख. ग) मुहरां (क) मौज कीयां= पसाव करि (क) लाग पसाव (घ)=पसाउ। कीयै (व)=करि दीन्हो (ग) दीन्हा (व)। कुंवार (ग) कुवार (व)।

केवल (क. ख ग व) में।

४९०—सुण (घ) सुनि (ग)। ग्वड (घ)। जाह (व) मे (ग)=म्हे। आविस्यां (ग) आणुसां (व)। रावि (ग व)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४९१—गयो (क.ख.ग.व.ज)। दंबरि (च) डूंगरे (ध) डेबरे (व)=डंबरे।

सड़-सड़ वाहि म कंबडी, रॉगॉ देह म चूरि।
बिहुँ दीपाँ विचि मारुई, मो-थी केती दूरि ॥४६२॥
करहा, तो वेसासडउ, मो विण-साऱ्या काज।
अंतरि जउ वासउ हुवउ, मारू न मिळइ आज ॥४६३॥
ढोला, वाहि म कंबड़ी, दसिए एकरिए पूरि।
जे साजरण वीहंगडे, वीहंगड़उ न दूरि ॥४६४॥

दिन बीत गया। (आकाश मे) अबर डबर छा गए। झरने नीलायमान हो गए। अरे काली ऊँटनी से उत्पन्न हुए ऊँट, तू किस बूते पर बोला था (कि मैं पहुँचा दूँगा)?

४६२—ऊँट बोला—

सड़ सड छड़ी मत मारो। रानों से (मेरी) देह को चूर चूर मत करो। दोनों द्वीपों के बीच मे मारवणी मुझसे कितनी दूर (हो सकती) है?

४६३—ढोला कहता है—

हे ऊँट, तुम्हारा भरोसा है। मेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ। जो बीच में ठहरना पड़ा तो मारवणी आज नहीं मिल सकेगी।

४६४—ऊँट कहता है—

हे ढोला, दस दस छड़ियाँ एक ही साथ मत मारो। यदि (तुम्हारी) प्रेयसी पक्षी हो तो वह पक्षी भी (मेरे लिये) दूर नहीं है।

नोट—इस दूहे का अर्थ अस्पष्ट है।

काळे (थ) नीचे (च) काळी (क. ज. घ)=नीले। नीझरणेह (क ख. ग. घ)। काळे (ग)। काधा (च)=जाया। करह हा (घ)। वाल्यौ (ख)। गुणेह (ख)।

४६२—पासे राग (च. ज)—राँगाँ देह। पास (ग)=देह। चूर (क. ग घ)। बिहूँ (ख)। दियां (ख) दीभां (च) दांतां (ज) दीहां (थ)=दीपां। विच (ख) मैं (क ग) मांहि (घ)=विचि। मारुवी (क) मारवी (ख. ग. घ) मेता (ख) मीथी (घ)। दूर (क)।

४६३—वेसासडै (ज. थ)। वेणासड्या (थ)। विणढां सचि (ज)= विणसारया। अंतरि (ज)। यो (ज)=जौ। हुवो (ज)।

केवल (च ज) में।

४६४—न (क. झ)। दस दस (क. झ) डिसदस (ज)=दसिए। एकण पूर (क. झ) दसणे दिसि किणि सूरि (थ)। साजन (ज)। वहा गडो (ज) वेहगडे (थ)= वीहंगडे वेहागढो (ज) वेहुंगडो (थ)।

केवल (च. ज थ) में। (क. झ) में एक दूहा है जो इस दूहे की प्रथम पंक्ति तथा आगे दूहा संख्या ४६७ की दूसरी पंक्ति लेकर बनाया गया है।

विहॉगड़े ज उदाध्धयाँ, राइ ज्यउँ, पंडुरियॉह ।
कालर कांझा कमळ ज्यउँ, ढळि ढळि ढेर थियाह ॥४६५॥
करहा काछी काळिया, भुईं भारी, घर दूर ।
हथड़ा कॉइ न खंचिया राहु गिलंतइ सूर ॥४६६॥
करहा, वामन रूप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि ।
तूँ थाकउ, हूँ ऊसनउ, भुइँ भारी, घर दूरि ॥४६७॥

४६५—समुद्रों पर जिस प्रकार पक्षी (उड़ते ही जाते हैं, जब तक वे हार नहीं जाते), सरोवरों में जिस प्रकार पडुख (तैरते ही जाते हैं, जब तक वे हार नहीं जाते), और कीचड में फँसे हुए कमल जिस प्रकार मुरझा मुरझाकर ढेर हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं भी चलता ही जाऊँगा, जब तक कि हार न जाऊँ या ढेर न हो जाऊँ ।

नोट—इस दूहे का अर्थ भी अस्पष्ट है ।

४६६—हे कच्छ देश के काले ऊँट, फासला बहुत है और घर दूर है । राहु ने सूर्य को ग्रास करते समय हाथ क्यों नहीं खींच लिया (ताकि सूर्य अस्त नहीं होता) ।

४६७—हे ऊट, अब वामन का सा रूप धारण करके अपने चारों पैरों से पथ को नाप ले । तू थक गया है और मैं भी खिन्न हो गया हूँ । फासला बहुत है और घर दूर है ।

४६५—विहागडो (ज) । वेहगडे जु दधियाँ (थ) । जे (ज)=ज । दधीयाँ (ज) । परिज्यो (ज)=सर ज्यउँ । पडिरियांह (च) । कायर (च) । खांघा (ज) —कांझा । कळवर कांझी कमळज्यो (थ)=कालर ..ज्यउँ । ढरि ढरि (ज) ।

विहगडो जो दखीओ परजुं पंडरिआँह,

काकर कमळ ज काळजो ढइ ढइ ढार थयांह (ध) ।

केवल (च. ज. थ. द ध) में ।

४६६—भुइ (व)=भुइ । घरि (व) दूरि (ख) । कोई (ग)=कांइ । गहंते (ख ग) । गिलते (व)=गिलतइ ।

केवल (क. ख. ग. घ) में ।

४६७—पंथ (ज)=पग । पथ दूरि (थ)=पग पूरि । ऊंसाहियो (ज) = ऊसनऊ । हुं थाके तुं उमाहीये (क) हुँ थाँकौ तुझ महीयौ (झ) । घण चगी पथ दूर (क) धण चंगी वर दूर (झ) । पंथ (क ज) = घर ।

नोट—(क झ) में पहली पंक्ति दूहा ४६४ की भाँति है ।

करहा, लंबी वीख भरि, पवनाँ ज्यूँ वहि जाह।
झंभ वळंतइ दीवळइ, धण जागंती जाँह ॥४९८॥
करहा काछी काळिया, चाली गइ किरणाँह।
संझ वळतइ दीवळइ, धण जागंती जाँह ॥४९९॥
सकती बाँधे वीटुळी, ढीली मेल्हे लज्ज।
सरढी पेट न टियउ, मूँध न मेळउँ अज्ज ॥५००॥

४९८—हे ऊँट, लबी लबी डगें भर। तू पवन की तरह उड़ जा, जिससे (सध्या को) दीपक जलते जलते, और प्रिया के जागते हुए ही, पहुँच जायँ।

४९९—हे कच्छ के काले ऊँट, (पृथ्वी से सूर्य की) किरणे चली गईं। (किसी प्रकार) सध्या के दीपक जलते जलते, प्रिया के जागते हुए ही, पहुँच जायँ (ऐसा उपाय कर)।

५००—ऊँट कहता है—

पगड़ी कसकर बाँध लो, लगाम को ढीली छोड़ दो। मैं ऊँटनी के पेट मे नहीं लेटा यदि आज उस मुग्धा को तुम्हें न मिला दूँ!

४९८—काछी काळीयाँ (ज)=लंबी वीख खरि। जउ (च)=ज्यूँ। जाय (ज)। थंभ (ज)=झभ। आवतै। (ज. थ)=वळतइ।

केवल (च. ज थ) में।

४९९—कछा (ख) कछी (ग)। काळीयां (क)। लब कराडियां (थ)= काछी काळिया। सांझ (क. ग. घ) थांभ (थ)। हवतै (न)=वळंतइ। दीवडै (ख)। जागती लहांइ (थ)।

५००—सगती (च) काठी (ख. ग) सकसी (क. घ)=सकती। वांधे (क) वांधै (ख. ग) बांधी (च) वंधे (ज)। पाघडी (ख. ग) वीटळी (क. घ)= वीटुळी। मूके (च) मुके (ज)=मेल्हे। लाज (क. ख. घ. च) राग (ग)=लज्ज। सरली (च)=सरढी। पेटि (च)। लोटीयो (घ. ज) पेटियइ (च)=लेटियउ। सूध (क) जे मुंध (ख) आज (क. ख. ग. घ. च)।

(मारवणी का स्वप्न)

जिण दिन ढोलउ आवियउ, तिण अगलूणी रात।
मारू सुहिणउ लहि कह्यउ, सखियाँ सूँ परभात ॥५०१॥
सुपनइ प्रीतम मुझ मिळया, हूँ लागी गळि रोइ।
डरपत पलक न खोलही, मतिहि विछोहउ होइ ॥५०२॥
सुपनइ प्रीतम मुझ मिळया, हूँ गळि लग्गी धाइ।
डरपत पलक न छोडही, मति सुपनउ हुइ जाइ ॥५०३॥
आज ज सूती निसह भरि, प्रीय जगाई आइ।
विरह-भुयंगम की डसी, लथथबती गळ लाइ ॥५०४॥

५०१—जिस दिन ढोला (पूगल) आया उसकी पहली रात को मारवणी ने स्वप्न देखकर प्रातःकाल सखियों से कहा।

५०२—हे सखियो, स्वप्न मे प्रियतम मुझसे मिले। मे रोती हुई (उनके) गले लगी। डरती हुई मैंने पलकें नहीं खोलीं कि कहीं (उनसे) विछोह न हो जावे।

५०३—स्वप्न मे मुझे प्रियतम मिले। मै दौड़कर गले लग गई। मैंने (इस डर से) डरते हुए पलकें नहीं खोलीं कि कहीं यह (सचमुच ही) स्वप्न न हो जाय।

५०४—आज जो रात भर सोई हुई थी (तो ऐसा जान पड़ा) मानो प्रियतम ने आकर जगाया। (प्रियतम को देखते ही) विरह रूप साँप से डसी हुई मैंने डगमगाकर (उन्हें) गले लगा लिया।

५०१—जिन (ग)। आविसी (व) आविस्ययैं (क)। ताह (व)=तिण। राति (ग. व)। सुवणौ (ग) सुपनौ (व)।

केवल (क. ख ग. घ) मे।

५०२—सुपनौ (घ)। मुझि (व)। गळ गली (ग)=लागी गळि। डरती (ग)। सुपनै (ग)=हि विछोहउ।

केवल (क. ख ग. घ) मे।

५०३—सुपनौ (व)। मुझि (व)। मिलौ (घ)। गळ लागी (ख)। खोलही (ग. व)=छोडही। मत (ग)। जाय (व)।

केवल (क. ख. ग घ) मे।

५०४—हु (ग) म (व)=ज। निन्न (ग. व)। भर (ग)। जाणि (व)। जगाई

सोरठा

मोती-जड़ी ज हाथि, सुरह - सुगंधी वाटली।
सूती मॉझिम राति, जाणूॅ ढोलूॅ जागवी ॥५०५॥

दूहा

धर नीगुल दीवउ सजळ, छाजइ पुणग न माइ॥
मारू सूती नींद्र भरि, साल्ह जगाई आइ॥५०६॥

सोरठा

सुरह सुगधी वास, मोती काने झुळकते।
सूती मंदिर खास, जाणूॅ ढोलइ जागवी ॥५०७॥

५०५—(ढोला का स्वागत करने के लिये) मोतियों से जड़ा हुआ और सुरभित द्रव्य से भरा हुआ पात्र हाथ मे लिए हुए मैं मध्य रात्रि के समय सोई थी उस समय मुझे जान पड़ा मानो ढोला ने मुझे (आकर) जगाया।

५०६—महल में बिना गुल का सुदर दीपक (जल रहा) था। (उसकी लौ) सर्प के फण के आकारवाले छज्जे मे नहीं समाती थी। (ऐसे समय) मारू भर नींद सोई हुई थी, (उस समय मानो) साल्हकुमार ने आकर जगाया।

५०७—मेरे वस्त्र सौरभ से सुगधित थे, कानों मे मोती झलमला रहे

(घ)। भुयंग (घ)। गळि (घ)। थाइ (क)=लाइ। लुबधवती विळलाइ (झ)=लबथबती गळ लाइ।

केवल (क ख ग घ झ) मे।

५०५—जडीया (ग) जडीए (च. ज)=जडी ज। हत्थडे (च ज) हाथ (ख. घ)। सुन्है (क ख) सुरै (ग. घ) सोहै (झ)=सुरह टाटळी (ग) वटळी (घ) वाटि (च) वात (ज)। जिण जाणुॅ (ख) = जाणूॅ। साल्ह जगाईया (क. ख. ग घ झ) ढौले (ज)।

यह सोरठा (ग ज) में दूहा के रूप में है।

५०६—घरि (ज)। नीगळ (क. ख. ग घ)। दीपक (क. ख. घ)। दीवौ (ग) दीवळो (ज)। वळइ (च ज. थ)=सजळ। आछी (च.ज थ)= छाजइ। पुणिग (घ) ति (क घ) नि (च)=न। माय (ग)। विमाय (ज)। सूती सजण सभरया (क. ख ग. घ)=मारू भरि। जाणुॅ ढोलइ। (च ज)=साल्ह। लीध्री जगाइ (थ)=जगाई आइ। आय (ग ज)।

५०७—सुरह सुगंधी वाट जाणे किर मोती जडया (थ)।

दूहा

राति ज बादळ सघण घण, बीज - चमंकउ होइ।
इण समईयइ, हे सखी, साल्ह जगाई मोइ ॥५०८॥

[हुंता सज्जण - हीयड़े सयणाँ - हंदा हत्त।
जउ सोहणो साचइ होअइ, सोहणो वडी वसत्त] ॥५०९॥

सोहण याई फर गया, मईं सर भरिया रोइ।
आव सोहागण नींदड़ी वळि प्रिय देखूँ सोइ ॥५१०॥

जद जागूँ तद एकली, जब सोऊँ तब बेल।
सोहणा, थे मने छेमरी, वीजी भीजी हेल ॥५११॥

सुहिणा, हूँ तइ दाहवी, तोनइ दहियउ अग्गि।
सब जोयण साजण वसइ, सूती थी गलि लग्गि ॥५१२॥

थे। खास महल में सोती हुई (ऐसी मुझको) मानो साल्हकुमार ने आकर जगाया।

५०८—रात को बहुत से घने बादल छाए हुए थे। बिजली चमक रही थी। ऐसे समय में, हे सखी, साल्हकुमार ने मुझे जगाया।

५०९—(इस प्रिया) के हृदय पर प्रियतम के हाथ थे। यदि (यह) सपना सच्चा हो तो सपना बड़ी वस्तु है।

५१०—सपना आकर चला गया, मैंने रो रोकर सरोवर भर दिए। हे सौभाग्यवती नींद, आ, (जिससे) फिर उसी प्रियतम को देखूँ।

५११—जब जागती हूँ तो अकेली रह जाती हूँ और जब सोती हूँ तो दो हो जाते है। हे सपने, नए नए खेल करके तूने मुझे ठग लिया।

५१२—हे स्वप्न, तूने मुझे जलाया, तुझे अग्नि जलावे। (तूने मुझे ऐसा धोखा दिया कि जो) प्रियतम (यहाँ से) सौ योजनों पर बसते हैं, मैं उन्हीं प्रियतम के गले लगाकर सोई हुई थी।

५०८—सघन घन (ग) घण घणा (घ)। समये (क)। मोहि (क ख. घ)। केवल (क ख. ग. घ) में।

५१२—तो (ज)=तइ। दूहवी (थ)। दहिज्यो (ज)। अग्गि (च)। सौ (ज) गळ (च) लग्गि (च)।

जिम सुपनंतर पामियउ, तिम परतख पामेसि ।
सज्जन मोतीहार ज्यूँ, कंठा-ग्रहण करेसि ॥५१३॥
सुहिणा, तोहि मराविसूँ, हियइ दिराऊँ छेक ।
जद सोऊँ तद होइ जण, जद जागूँ तद हेक ॥५१४॥
सहिए फिरि समझावियउ, सुहिणाइ दोस न कोइ ।
सउ जोयण साहिब वसइ, आँण मिळावइ तोइ ॥५१५॥
आज फरूकइ अंखियाँ, नाभि, भुजा, अहरॉह ।
सही ज घोड़ा सज्जणाँ साम्हाँ किया घरॉह ॥५१६॥

५१३—जैसे स्वप्न मे पाया वैसे यदि प्रत्यक्ष पाऊँ तो प्रियतम को मोतियों के हार की भाँति कठ मे धारण करूँ ।

५१४—अरे सुपने, तुझे मैं मराऊँगी, तेरे हृदय मे छेद करवाऊँगी । जब सोई होती हूँ तब तो (हम) दो होते हैं (और जब) जागती हूँ तब एक ही रह जाती हूँ ।

५१५—फिर सखियों ने समझाया कि स्वप्न को कोई दोष नहीं । जो प्रियतम सौ योजन दूर रहते हैं (वह) उन्हे भी लाकर तुमसे मिला देता है ।

५१६—मारवणी फिर कहती है—

आज आँखें, नाभि, भुजाएँ और अधर फड़क रहे हैं । हे सखी, अवश्य ही प्रियतम ने (मेरे) घर की ओर घोड़े किए हैं ।

५१३—जौ (ज) = जिम । सपनंउतर (च) । जदि (ज)=तिम । परतखिहूँ (थ) प्रतख (च) । मिलेस (ज)=पामेसि । प्रीय (ज) = सज्जन । करेस (ज) ।

५१४—सुपना (क. ख. ग) । मराविस्युं (ग) दिराउ (ग. घ) । जब (ग) जदि (व) । तदि (ग. व) जब (ग) । जणा (व) । जदि (व)=वदि । एक (क. ख. ग)

केवल (क. ख. ग. व) में ।

५१५—सखियाँ (ग) । समझाइयो (ग) । जोइण (ग) । तोहि (ग) । सो किम आवे अज (क)=आँण...तोइ ।

केवल (क. ख. ग. व) में ।

५१६—फुरकं (क. ख. व) । नाभ (घ) । अहिगढ (ग) । साजणां (ख. व) सजनां (ग) । साम्हा (क) सामा (ग) ।

केवल (क. ख. ग. व) में ।

अहर फुरक्कइ, तन फुरइ, तन फुर नयँण फुरंत ।
नाभी-मंडळ सहु फुरइ, साँझइ नाह मिळंत ॥५१७॥

आज उमाहउ मो घणउ, ना जाणूँ किव केण ।
पुरुख परायउ वीर वड, अहर फुरक्कइ केण ॥५१८॥

सहिए; साहिब आविस्यइ, मो मन हुई सुजाँण ।
आगम-वाधाऊ हुया अग-तणा अहिनाँण ॥५१९॥

आँखि निसाँणी क्या करइ, कउवा लवइ निलज्ज ।
सउ जोइन साहिब वसइ, सो किम आवइ अज्ज ॥५२०॥

५१७—अधर फडकते हैं, शरीर फड़कता है, और शरीर फड़ककर नयन फडकते है, नाभिमडल (इत्यादि) सभी (अग) फडकते हैं। (निश्चय ही, आज) साँझ को नाथ मिलेंगे।

५१८—आज मुझे बडा उल्लास है, नहीं जानती कि क्यों और किस कारण ? पर पुरुप तो (मेरे लिये) वड़े भाई के समान है, फिर अधर किस कारण फड़कता है ?

५१९—हे सखि, प्रियतम आवेगे, (ऐसी) मेरे मन मे प्रेरणा हुई है। मेरे अगों के चिह्न (उनके आगमन की) पहले से वधाई देनेवाले हो रहे है।

५२०—फडकती हुई आँख क्या करेगी और निर्लज्ज कौवा बोलता है (उसमे भी क्या ?)। प्रियतम तो सौ योजन (की दूरी पर) बसते हैं, वे आज कैसे आ सकते है ?

५१७—अहिर (ग)। नयन (ग)। फिरै (क. ख. व)। संझ्या (ग)।
केवल (क ख. ग व) मे।

५१८—क्यु (क. ख) किम (ग) = किव। वीरवर (ख व)। आखि (ग) = अहर।

५१९—सखीए (ग)। आविसै (व) आवसी (ग)। हूआ (ख. ग)।
केवल (क. ख. ग. व) मे।

५२०—आंख (व)। फिरै (व)=करै। कोवा (व)। लिवै (व)। जोयण (व)। आज (व)।
केवल (ग व) में।

(ढोला का पूगल पहुँचना)

कालो-कंठळि वीजुळी नीची खिवइ निहल्ल।
उर भेदंती सज्जणां, ऊचेड़ंती सल्ल ॥५२१॥
सांझी वेळा सामहलि कंठळि थई अगासि।
ढोलह करह कँघाइयउ, आयउ पूगळ पासि ॥५२२॥
ऊँडा पाणी कोहरइ, थळे चढीजइ निट्ठ।
मारवणी-कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ठ ॥५२३॥
ऊँडा पाणा कोहरे दीसइ तारा जेम।
ऊसारंता थाकिस्यइ, कहउ, काढिष्यइ केम ॥५२४॥

५२१—काली कंठुली (-वाले मेघों) मे बिजली बहुत ही नीचे चमक रही है। प्रेमियों के हृदयो का भेदन करती हुई वह (विरहरूपी) शल्य को उखेलती है।

५२२—संध्या समय आकाश मे सामने बादलों की कंठुली (वाली घटा) उमड आई। ढोला ने ऊँट को छड़ी से मारा और (उसे तेजी से हाँककर) पूगल के पास आ पहुँचा।

५२३—ढोला कहता है—

पानी बहुत गहरा कुओं में मिलता है और थलों (अर्थात् कँकरीले ऊँचे स्थानों) पर बड़ी कठिनाई से चढा जाता है। मारवणी के कारण (ऐसे) अदृष्टपूर्व देश देखे।

५२४—वहाँ किसी पानी निकालनेवाले को देखकर ढोला कहता है—

कुओं मे पानी (इतना) गहरा है कि (ऊपर से) तारे की तरह (नीचे चमकता हुआ) दिखाई देता है। उसको खींचते हुए (तुम) थक जाओगे, कहो, कैसे निकालोगे ?

५२१—कांठळि (ज. घ)। सजनां (ज)। उचायदी=ऊचेडंती (ज)।
केवल (ज. ज थ) मे।

५२२—सांमळी (ज) सामुही (थ)=सामहळि। अकासि (ज)। खिवह जु अविक अगासि (क)। ढोलो (ज)। कघावियो (ज)।

५२३—कोहरां (ड़)। नीठ (ड)। तुझ (ड)=कइ। कारणै (ड)। दीठ (ड)।
केवल (ज. ड) मे।

५२४—कोहरा (ड़)। तारा जिम मिळकंत (ड)=दीसइ तारा जेम। ऊसारतां (ड़)। थाकीस नही (ड)=थाकिस्ये। काढेसी (ड)। कथ (ड)=केम।
केवल (ज. ड) में।

तुम्ह जावउ घर आपणइ, म्हाँरी केही तात।
दीहे-दीह उसारिस्याँ, भरिस्याँ माँझिम रात ॥५२५॥

एण समईयइ आवियउ वीसू तिणहीं वार।
पिंगळ-राजानूँ कहइ, आयउ साल्हकुमार ॥५२६॥

राजा राँणी हरखिया, हरख्यउ नगर अपार।
साल्हकुँवर पधारियउ, हरखी मारू नार ॥५२७॥

(मारवणी का हर्ष)

साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियाँह।
पूनिम केरे चंद ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह ॥५२८॥

५२५—पानी निकालनेवाला उत्तर देता है—

तुम अपने घर जाओ, (तुम्हें) हमारी क्या चिंता पड़ी है? दिन भर हम पानी खींचेंगे और मध्यरात्रि में (कोठे) भरेंगे।

५२६—इसी समय, उस काल में वीसू (पूगल) आ पहुँचा। उसने पिंगल राजा से कहा कि साल्हकुमार आ गया है।

५२७—राजा और रानी प्रसन्न हुए। सब नगर बहुत आनंदित हुआ। साल्हकुमार आया (यह जानकर) नारी मारवणी हर्षित हुई।

५२८—मारवणी ने सखी से कहा—

हे सखी, स्वामी आए, सब कार्य सफल हुए। पूर्णिमा के चंद्र की तरह (ढोलारूपी चंद्र के उदय होने से) चारों दिशाएँ प्रफुल्लित हो गई हैं।

५२५—थे ? (ड)=तुम्ह। किसी पराई (ढ)=म्हांरी केही। दीहाडो अवसर चोलसां (ड) = दीहे दीह उसारिस्याँ। मांजिम (ढ)।

५२६—इलौ (झ)। काळ (ख)=वार। कह्यौ (घ)।

केवल (क. ख. ग. घ. झ) में।

५२७—सहु परिवार (झ)=नगर अपार।

केवल (क. ख. ग. घ. झ) में।

५२८—साजण (थ) सजण (ग न) सजन (ज)=साहिब। मिळिया घति हुई (थ. ज. न)=आया हे सखी। कजा (ख. घ)। म्हहि (ज. ग. घ)। पूनिम चंद मयंक (क. ख. ग. घ. थ) पूनिम रात मयंक (न)=पूनिम चंद। ज्यौं (ख) जिम (ग) ज्यु (क. ज)। दिस (ग. ज)। वसीयांह (थ)=फळियांह।

सखिए; साहिब आविया, जाँहकी हूँती चाइ ।
हियड़उ हेमाँगिर भयउ, तन-पंजरे न माइ ॥५२९॥
संपहुता सज्जण मिल्या, हूँता मुझ हीयाह ।
आजूणइँ दिन ऊपरइ बीजा वळि कीयाह ॥५३०॥
आजूणउ धन दीहड़उ, साहिब कउ मुख दिट्ठ ।
माथा भार उळाथियउ, आँख्याँ अमी पयट्ठ ॥५३१॥
सखिए, साहिब आविया, मन चाहंदो मोइ ।
वाड़ी हुआ वधाँमणा, सज्जण मिळिया सोइ ॥५३२॥

५२९—हे सखी, (वे) स्वामी आ गए जिनकी लगन थी । मेरा हृदय (प्रफुल्लित होकर) हिमालय (जैसा विशाल) हो गया है और तनरूपी पजर मे नहीं समाता ।

५३०—जो मेरे हृदय में थे वे प्रियतम आ पहुँचे और मिले । (मैंने) आज के (शुभ) दिन पर दूसरे (सब दिन) बलिहार कर दिए ।

५३१—आज का दिन धन्य है कि स्वामी का मुख देखा । (मेरे) सिर का भार उतर गया और आँखों में अमृत पैठ गया ।

५३२—हे सखी, स्वामी आ गए, मेरी मनचाही हुई । वही प्रियतम आ मिले और घर मे बधावे हुए ।

५२९—सजन मिलिया हे सखी (ङ) सजण आया हे सखी (ग. घ)=सखिए...आविया । ज्यांरी (ङ) । हुंती (क) हुती (ग) हुत्ती (ङ) । चाहि (ग. घ ङ) चाह (ख) । हीयौ (ख. घ) । हेम झलकीयो (ङ) हेसागर हुवौ (ग) । मन (झ)=तन । माय (क) । बुझी वळती लाय (ङ) वूझी वलंती भाइ (घ)=तन...माइ ।

केवल (क. ख. ग. घ. ङ. झ) मे ।

५३०—संपति हूंता सज्जणां (झ) । साजण (क) । आजून (ग) ।

केवल (क. ख. ग. घ. झ. त) मे ।

५३१—पईठ (ग) । हिव (घ)=भार ।

५३२—सखीये (ग) । चाहती । (क. ग. त) । सोही (क. ख. त) । जोइ (ग)=मोइ । वाटां (ग) वाटी (त) । हूई (ग) हुया (क) हूआ (त) । बधाइयां (ग) । सजण (क) । आया (ग)=मिळिया ।

केवल (क. ख. ग. घ. झ. त) में ।

सखी, सु सज्जण आविया, हुंता मुम्झ हियाह ।
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह ॥५३३॥
सज्जण मिळिया सज्जणाँ, तन मन नयण ठरंत ।
अणपीयइ पाणग ज्यूँ नयणे छाक चचंत ॥५३४॥

(सखियो द्वारा मारवणी का शृगार और ढोला)
के पास ले जाया जाना)

साखिए ऊगट माँजिणउ खिजमति करइ अनत ।
मारू तन मंडप रच्यउ, मिलण सुहावा कंत ॥५३५॥
मारवणी सिणगार करि मदिर कू मल्हपंति ।
सखी सुरंगी साथ करि गयगयणी गय गंति ॥५३६॥

५३३—हे सखि, वे प्रियतम आ गए जो मेरे हृदय मे थे । जो मनोरथ सूखे थे वे पल्लवित हो गए और पल्लवित होकर फल गए ।

५३४—प्रियतम प्रेयसी से आ मिले । (मेरे) तन-मन और नयन शीतल हो रहे हैं । (मद्य का) प्याला पिए बिना ही मेरे नयनों में नशा-सा छा रहा है ।

५३५—सखियाँ उबटन, स्नान आदि अनेक प्रकार से मारवणी की सेवा कर रही है । उन्होंने सुहावने कत से मिलने के लिये मारवणी के तनरूपी मडप को सजाया ।

५३६—सुदर गजगामिनी मारवणी शृगार करके रँगीली सखियों को साथ लेकर गज की चाल से महल को जाती है ।

५३३—हुता (ग. त) । पाल्हया (ख) पालव्या (त) । सु फळीयाह (क. व) फळ्याह (ग) । से (त)=सू ।

५३४—सखी सू (ग)=सज्जण । पीवै (ग) । पांणगसु (ग) । यं पीये पांणिग ज्युं (त) । नेणे (व) । चढंति (त) चटंत (ध) ।

५३५ – सखीयै (ज) । माजणा (क. ख. ज) मंजणा (ग) मंजण (त) । खिजमत (ग ज) खिजमित (व) खिजमिति (थ) । सुहावै (क. ग. व) । (ज. थ) में द्वितीय पक्ति इस प्रकार है—

मारवणी मदिर महलि, कामिणि मिळियो कंत (थ) ।
मारवणी मदिर महिलि, कमणि मिळिया कंत (ज) ।

५३६—सु (ग) ढिस (त)=कुं । मल्हपंत (क. ख) । साथि (क) । गत्त (क) । गत (ख) ।

केवल (क. ख. ग. घ. ङ. त) में ।

घम्मघमन्तइ घाघरइ, उलट्यउ जॉण गयंद ।
मारू चाली मंदिरे, झीणे बादळ चद ॥५३७॥
मारू चाली मदिरॉ, चन्दउ बादळ मॉहि ।
जॉणे गयॅद उलट्टियउ कज्जळ-वन महॅ जाहि ॥५३८॥
घम्मघमंतइ घूघरइ, पग सोनेरी पाळ ।
मारू चाली मंदिरे, जॉणि छुटो छंछाळ ॥५३९॥
बोली वीणा, हंस गत, पग बाजंती पाळ ।
रायजादी घर-अंगणइ छुटे पटे छंछाळ ॥५४०॥
सोई सज्जण आविया, जॉहकी जोती बाट ।
थॉभा नाचइ, घर हँसइ, खेलण लागी खाट ॥५४१॥

५३७—घूमते हुए घाघरे को पहिने हुए मारवणी महल की ओर चली, मानों गजेंद्र उमड चला हो अथवा झीने बादल मे चद्रमा चल रहा हो ।

५३८—मारवणी महलों में चली मानो चद्रमा बादल में चलता हो अथवा मदोन्मत्त हुआ गजेंद्र कजलीवन में जा रहा हो ।

५३९—छम छम बजते हुए घुंघरू और सोने की पायल, पैरों मे पहने हुए मारवणी महल को चली, मानो फव्वारा छूटा हो ।

५४०—(उसकी) बोली वीणा के समान है, चाल हस जैसी है, पैरों मे पायल बज रही है। इस प्रकार राजकुमारी घर के आँगन मे (चल रही) है। उसके खुले हुए केशपाश फव्वारे के समान हैं ।

५४१—वही प्रियतम आ गए जिनकी बाट जोह रही थी। (चारों ओर

५३७—घम-घम-घमकै घूघरा (क) घम-घमते पाय घूघरा (ड) घम-घमाट पायै घुघरा (ट) । ऊलटो (क) उलटो (ट) । मोहल पधारी मारवी (क) महिल पधारे मारवी (ड) महिल पधारी मारुई (ट) । मदरां (झ) । भीनै (क) भीने (ड)=झीणे ।

५३८—केवल (झ) में ।

५३९—केवल (झ) में ।

५४०—चाल वळी हंस चालती (ट)=बोली.. गत । पायळ (ट) । राय अंगण (ट) = घर अंगणइ । छुटो जांण (ड)=छुटे पट ।

केवल (ट, ड) में ।

५४१—सेइ (ग) । ते साजन पधारिया (ज) सो सजन घरे आवीया (न)

(ढोला-मारवणी-मिलन)

सखि वउळावी फिरि गई, प्री मिळियउ एकंत ।
मुळकत ढोलउ चमकियउ, वीजळ खिवी क दंत ॥५४२॥
[ढोलइ जॉण्यउ वीजळी, मारू जॉण्यउ मेह ।
च्यारि ऑख एकठि हुई, सयणे वध्यो सनेह ॥५४३॥]
ढोलउ मिळियउ मारवी दे आलिंगण चित्त ।
कर ग्रह ऑणी अंक-मई, सेज सुणेसी वत्त ॥५४४॥

आनंद का इतना उल्लास है कि) खंभे नाच रहे हैं, घर हँस रहा है और पलँग खेलने लगा है ।

५४२—सखियाँ (मारवणी को ढोला के पास) भेजकर लौट गईं और प्रियतम एकांत में मिला । (मारवणी के) मुसक्याते ही ढोला चौंका कि यह बिजली चमकी या दाँत ।

५४३—ढोला ने समझा कि (मारवणी) बिजली है, मारवणी ने समझा (ढोला) मेघ है । जब चार ऑखें एक हुई तो (दोनों) प्रेमियों में प्रेम की वृद्धि हुई ।

५४४—ढोला हृदय से आलिंगन करके मारवणी से मिला । (उसने उसको) हाथ पकड़कर अंक में ले लिया और कहा—सेज पर (बैठकर) बात सुनो ।

सजन मिलीया हे सखी (ज)=मोहे. आविया । ज्याह (ज. न) ज्यां (ड) । री (न) = की । जोऊँ (क. ख. त) जोवंती (ड. न) । कुदे (ड) बोले (क. ख)=नाचइ । वरि (न) । फाग (ख) ।

५४२—सखी (क. ख. ग. ज. त) । वौलाए (क. ख. ग) वोलावे (ज) । फिर (ख. न) वरि (ज. थ) । गया (क. ख) गयां (त) । प्रीय (ख) प्रीव (ज) प्रिय (थ) । एकंति (ज. थ) । हसवौ (क) । वीजुळि (थ) खिवइ (थ) । कि (क) ज्यु (थ)=क । दंति (ज) ।

५४४—मारवी (ख) । चित्त मे (ग)=अक मैं ।
केवल (क. ख ग. व त) मे ।

मारू वइठी सेज-सिर, प्री मुख देखइ तास।
पूनिम-केरे चद ज्यूँ मदिर हुवउ उजास ॥५४५॥
काया झबकइ कनक जिम, सुंदर, केहे सुक्ख।
तेह सुरगा जिम हुवइँ, जिण वेहा बहु दुक्ख ॥५४६॥
मनि संकाणी मारुवी, खुणसउ राखइ कंत।
हँसतॉ पीसूँ वीनवइ, सॉभळि, प्री, विरतत ॥५४७॥
पहुर हुवउ ज पधारियॉ मो चाहंती चित्त।
डेडरिया खिण-मइ हुवइ घण वूठइ सरजित्त ॥५४८॥

५४५—मारवणी सेज पर बैठी। प्रियतम उसके मुख को देखता है। पूनों के चद्र के समान (उसके मुखमडल की आभा से) महल मे उजेला हो गया।

५४६—(ढोला ने विनोद में मारवणी से प्रश्न किया—) तुम्हारी काया कचन के समान झलक रही है। हे सुदरी, कौन से सुख से? वे सुरगे कैसे रह सकते हैं जिनको बहुत से दुःखों ने बींध रखा है।

५४७—मारवणी मन में संकुचित हुई कि प्रियतम मन मे खुनस रखता है। वह हँसती हुई प्रियतम से विनय करती है—हे प्यारे, वृत्तात सुनो।

५४८—आपको पधारे हुए और (आपको) चित्त मे चाहते हुए मुझे एक प्रहर हो गया है। मेढक तो घन के बरसते ही क्षण भर मे सजीवित हो जाते हैं।

५४५—पर (ग)=सिर। प्रीय (क. ख)। हूओ (त)।
केवल (क. ख. ग. घ. त) मे।

५४६—झलक्कै (न)। ढोलौ पूछै मारुवी दे आलिगन मुख (क. त)= काया...सुक्ख। सुख (ख)। जिउ (थ)=जिम। ताह (क. ख) तिके (ग)। क्यौं (ख) क्यउ (क)। हुवै (क ख. ज)। जे (क. ख. ग) जां (थ)। देहाँ (थ)। दाधा साहे (क. ख) दाधा हुवे ज (ग) दाधा हूवै जु (झ)=वेहा बहु। त्रीया सरीर न सौभही बहु दीहाँके दुक्ख (न)।

५४७—मन (क. ख. ग) संकोची (क ख ग)। मारुई (ज) मारवी (ख ज थ)। खुणसइ (थ) खुणस (त. ज)। रालसे (त) रक्खे (थ) करैलो (ज)। वनिता (क. ख) अरधी (ग) पदमणि (क) हँसि करि (थ)=हँसतॉं। प्रीउ (क) पीउ (ख)। प्रति (ज थ)=सु। इस कहइ (ज थ)=वीनवइ। प्रीय (ज) त्री (ख) ए (ग घ)=प्री।

५४८—पहर (क. त. थ)। हूवौ (ख) हुयौ (क) हुवो (ज)।

पहिली होय दयामणउ रवि आथमणउ जाइ।
रवि ऊगइ विहसइ कँमळ, खिण इक विमणउ थाइ ॥५४९॥
ढोलउ मन आणंदियउ चतुर तणे वचनेह।
मारू - मुख सोरंभियउ, आवि भमर भणकेह ॥५५०॥
कंठ विलग्गी मारवी करि कंचूवा दूर।
चकवी मनि आणँद हुवउ, किरण पसारथा सूर ॥५५१॥
आसालूँध उतारियउ धण कुचुवउ गळाँह।
घूमइ पड़िया हसड़ा भूला मॉनसरॉह ॥५५२॥

५४९—सूर्य को अस्त होते (देखकर) पहले (जो) दयनीय दशा को प्राप्त हो जाता है (वही) कमल सूर्य के उदय होते ही क्षण भर उन्मना होकर (पुनः) विकसित हो जाता है।

५५०—चतुर (मारवणी) के वचनों से ढोला मन में आनंदित हुआ। मारवणी के सुरभित मुख पर (ढोला रूपी) भ्रमर आकर मँड़राने लगा।

५५१—कंचुकी को दूर करके मारवणी (प्रियतम) के कंठ से लगी। मानों सूरज ने किरणें फैलाईं और चकवी के मन में आनंद हुआ।

५५२—आशालुब्ध प्रेयसी ने गले से कंचुकी को उतार दिया। (उसके कुचयुग इस प्रकार दिखाई दिए) मानो मानसरोवर में भूले हुए हंस पड़े घूम रहे हैं (अथवा मानसरोवर को भूलकर हंस यहाँ पड़े घूम रहे हैं)।

पावधारीय (थ)। ज्यांसु मन की प्रीत (ज) जहसुं मनरी प्रीति (थ)=मो··· चित्त। डेडर तौं (ज थ)। मो (घ) एक (ग) माँहि (क. ख) = मइ। हेक में (झ)=में हुवे। घडियाँ थयाँ (थ) घडीयां हुवै (ज)=खिण मै हुवै। त्रुट्टै (थ)। सरि (ज) जीत (क. थ)।

५४९—पहिलौ (क ग न)। होय (ज) हुवइ (क. ख ग)। अत्थमणे (घ)। ऊगतौ लोइ (ख) प्रगटतै लोइ (क. ग)=आथमणउ जाइ। विवणो (थ न)। एह पटतर जोइ (क) एह पटंतर लोइ (ख) एह पतंतर लोइ (ग)=खिण · थाइ।

५५०—आवत (ग)=आवि। भमेह (ग)=भणकेह।
केवल (क. ख. ग घ. त) से।

५५१—सेज रमंता (ग)=कंठ विलग्गी। मारवणी ढोलै मिली (थ) मारवणी ढोलो मिल्या (ज)=कंठ···मारवी। सब कप्पड (क. ख. त. थ. न) सब कपडा (ग)=कंचूवा। दूरि (ख. ग थ. ज)। मन (ख. ग)। भयौ (क. ख. ग)। पसारइ (थ)। जांणे किरण (ज)=किरण। जांणिक ऊगौ सूर (क. ख. ग. घ)।

५५२—उतारिया (ज)। धन (ग)। कंचूअउ (थ)। उजास (ग)=गळांह। घूमें (ज) हँसला (ज)। भूलां (क. ख)। मान (क. थ)। सराह (थ. त)।

मन मिळिया, तन गड्डिया, दोहग दूरि गयाह।
सज्जण पाणी खीर ज्यूँ खिल्लोखिल्ल थयाह ॥५५३॥

पंचाइण नइँ पाखरयउ, मइँगळ नइ मद कीध।
मोहण वेली मारुई, कंत पेम-रस पीध ॥५५४॥

ढोलउ मारू एकठा करइ कतूहळ-केळि।
जाँणे चंदन-रूँखड़इ विळगी नागर-वेळि ॥५५५॥

५५३—मन मिल गए, तन गड गए (परस्पर दृढ़ आलिंगित हो गए) और दुर्भाग्य दूर हो गए, प्रेमी दंपति पानी और दूध की तरह मिलकर एक हो गए।

५५४—मानो सिंह था और भक्ष्य पाकर छक गया, हाथी था और मद कर लिया। (इसी प्रकार) मारवणी मोहन वेलि तो थी ही फिर उसने प्रियतम के प्रेम का रस पी लिया (अब उसकी शोभा का क्या कहना!)।

५५५—ढोला और मारवणी एकत्र कौतूहलक्रीड़ा करते है, मानों चदन वृक्ष पर नागरवेलि लिपट गई हो।

५५३—गडीया (ख. ग. ज. त)। थयांह (क. ग) थयाह (ख. त)=गयाह। साजड=(क. त)। बाण (त)=खीर। पाणीवाण (क. ग) पाणीवीण (ख) पाणीखाण (झ) पाणेवाण (न)=पाणी खीर। महि (ख)=ज्युं। खिलीखीर (ख) खिलेखीर (ग) खालीखीर (घ) खील्लेखीर (झ)=पुलेखीर(न)=खिल्लोखिल्ल। थयांह (क)।

५५४—एक सीह (त) केसर (न)=पचाइण। अर (त व.)=नइ। एक सीह अरु पाखर्‍यौ (क. ख) पाखरियो ने पंचमख (ड) इस केसर वळि पाखर्‍यौ (न)=पचाइण नइँ पाखरयउ। मैंगळ (ज)। इक हस्ती (क. ख. ग)=मइँगल नइ। ने (ज)। पीद्ध (ज) दीध (ड) अंध (थ) पीध (क ख)=कीध। वसि किद्ध (न)=मद कीध। आगैं हुंती (ड)=मोहण वेली। मारवण (ढ) मारवी (ग. थ न)। कतै (क ग. घ)। समरस (घ) सोहागिणि (थ) सुहागण (ज. ड)=पेमरस। किद्ध (ज. थ. न) कीध (ड)=पीध।

५५५—कुतूहल (क)। केळ (क. ग घ त)। जाणै (क. ख) चांणै (ग) जाणे (घ) जांणें (ज)। रूखडउ (ग) रूखडे (त) रूखड़ौ (ग)। चढीसु (ख) चढीजु (ज) चढीज (त. ज) चढीजु (थ)=विलगी। वेळ (क. ग. घ. त)।

लहरी सायर-संदियाँ, वूठइ-संदउ वाव।
वीछुड़ियाँ साजण मिळइ, वळि किउँ ताढउ ताव ॥५५६॥

हियमाँ करइ वधाँमणाँ, सही त सीधा काज।
जे सुपनंतर दीखता, नयणे मिळिया आज ॥५५७॥

जिणनूँ सुपनें देखती, प्रगट भया प्रिव आइ।
डरती आँख न मूँदही, मत सुपनउ हुय जाइ ॥५५८॥

आजे रळी-वधाँमणाँ, आजे नवला नेह।
सखी, अम्हीणी गोठमइँ दूधे वूठा मेह ॥५५९॥

५५६—समुद्र की लहरियाँ हों, बरसे हुए की हवा हो और बिछुडे हुए प्रियतम मिल जायँ। फिर (हृदय को शीतल करनेवाले इन सुखों के सामने शरीर का) ताप कैसे ठहर सकता है?

५५७—(मारवणी) हृदय में बधाइयाँ करती है कि सभी कार्य सिद्ध हो गए। जो स्वप्न में दिखाई पड़ते थे वे आज आँखों के सामने (प्रत्यक्ष) आ मिले।

५५८—जिनको स्वप्न में देखती थी वे प्रियतम आकर प्रकट हो गए। मैं डरती हुई आँख नहीं मूँदती कि कहीं स्वप्न (यह सब) न हो जाय।

५५९—आज आनंद बधाइयाँ हो रही हैं, आज नया नेह छा रहा है। हे सखि, हमारी गोठों में आज दूध का मेह बरसा है।

५५६—वूठे (ग)=वूठइ। संदी (क, ग, त) हंदी (भ)। वाह (त)। वीछड़ियां (ग, त, व)। सजन (ग, त)। किम (ग) क्युं (व) तदौ (भ)। वाह (ग)। वाळे वाढो वाव (भ)=वळि···ताव। क्यूं तदो=किउ ताढउ (त)।

५५७—दीसता (थ) दीयतो (न)। करे (थ, ज)। वधामणौ (थ, न)। ज (थ)=न। सर्यां सगळा काज (न)। सुपनंतर (ज)। ते नयणे (ज) सो सजण (न) ते मानन (थ)=नयणे।

५५८—देवल (ज) में।

५५९—आज (क, ख, ग, व, न)। वधामणा (ख) वाधावणा (त) आज (क, ख, ग, व, त)। अमाने (ग)। मे (त)=मइँ। आंगणे (भ)=गोठमइँ।

सजण मिल्या, मन ऊमग्यउ, अउगुण सहि गळियाह ।
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह ॥५६०॥
सेज रमंताँ मारुवी खिण मेल्हणी म जाइ ।
जाँणि क विकसी केतकी भमर वयट्ठउ आइ ॥५६१॥
जिम मधुकर नइ कमलणी, गंगासागर वेळ ।
लुबधा ढोलउ-मारुवी कॉम-कतूहल-केळ ॥५६२॥
धरती जेहा भरखमा, नमणा जेही केळि ।
मञ्जीठाँ जिम रच्चणाँ, दई, सु सज्जण मेळि ॥५६३॥

५६०—प्रियतम मिले, मन उमगयुक्त हुआ, सारे अवगुण गल गए । जो (प्रेमरूपी वृक्ष) सूखा था, सो पल्लवित हो गया और पल्लवित होकर फल गया ।

५६१—सेज पर रमण करते हुए (प्रियतम द्वारा) मारवणी क्षण भर भी छोड़ी नहीं जाती । मानों केतकी विकसित हुई और उस पर भ्रमर आकर बैठ गया हो ।

५६२—मधुकर और कमलिनी, तथा गगा नदी और सागरवेला की तरह प्रेमलुब्ध ढोला और मारवणी काम की कौतूहल क्रीडा कर रहे हैं ।

५६३—जो पृथ्वी की तरह सहनशील, कदली के समान नमनशील और मजिष्ठ की तरह गहरा रग लानेवाले हैं, विधाता उन प्रेमियों को मिला ।

५६०—सज्जण (क) सज्जन (ख ग) । मिलिया (क. ख. ग घ) । उमग्यो (क. ख. ग) । ओगण (त) । सो (झ) से (त) पलहया (ग) पलह्न्या (त) । पाल्हवि (त) सुफल्याह (ख) सुफळीयाह (क ग. त) ।

५६१—रमंती (क. घ) । मारवी (त. ख) । मूकडी (घ) मेलहवी (त) । जाणी (घ) जाण (त) । वयठौ (घ) वइठ (त) आय (त. घ) ।

५६२—ने (त)=नइ । केतकी (ग)=कमलणी । वेलि (झ) । लबधा (घ त. क) लुबध (ग) । ढोला (क. ख) । मारवी (घ. त) । तिण विधि साल्ह कुमार रमइ (झ)=लुबधा· · ·मारुवी । कुतूहळ (क) । केलि (ख) ।

५६३—भरखमी (त) । रमणी (झ त)=नमणी । जेहा (त) केळ (त. ग घ) । मजीठा (ग) मंजीठा (त) । रचणा (ग. घ) रचणी (त) । साजण (क) सजण (त) सजन (ग. घ) मेल (ग. घ. त) ।

ज्यूँ सालूराँ सरवराँ, ज्यूँ धरतीसूँ मेह।
चंपक-वरणउ वालहउ चंदमुखीसूँ नेह ॥५६४॥

चंद्रायणा

बेऊँ चतुर सुजाँण पेम-रँग-रस पिया।
बरखा रुति घण बरख जाँणि क हरखिया॥
मी सिणगार सँवारि क आई सेज परि।
(परिहाँ) जाँणे अपछर इंद्र क बैठा आप घरि ॥५६५॥
दोउ मयमंत सुजाँण सेज दिसि आहुड़इ।
जाँण धरती-काज असप्पति आहुड़इ॥
अहरे अहर लगाइ तनं तन मेळिया।
(परिहाँ) जाँणि क गाँधी-हाट जुवाँने मेळिया ॥५६६॥

५६४—जिस प्रकार मेंढकों का प्रेम सरोवरों से और मेघ का प्रेम पृथ्वी से होता है, उसी प्रकार चंपक वर्णवाले प्रियतम (ढोला कुमार) का चंद्रमुखी (मारवणी) से प्रेम है।

५६५—दोनों (दंपति) चतुर और सुजान हैं और प्रेमरंग का रस पिए हुए हैं। मानो वर्षा ऋतु में बादल बरसकर हर्षित हुए हों।

फिर (मारवणी) शृंगार सजकर सेज पर (ढोला के पास) आई, मानो अप्सरा और इंद्र अपने घर पर बैठे हों।

५६६—दोनों मदमत्त प्रेमी सेज की ओर चले, मानो दो राजा धरती के लिये (युद्ध में) जुट रहे हों।

अधर से अधर लगाकर शरीर से शरीर मिला दिया, मानों गंधी की हाट पर युवकों ने धावा किया हो।

५६४—सालूराँ सरवर बिना (न ग) सालूराँ अरु सरवराँ (स)=ज्यूं सरवराँ। अर सरवराँ (क)। ज्यउ (स)। वरणो (क स ग) वरणो (त)। वालहो (न)। चंद-वदनी (त) चंद-मांणी (व)।

५६५—प्रेम (त)। बरसन (त) बरषि (ग)। जांग (त)। बरख कीया (त) बरखीया (स)=हरखिया। जांणि कुँवर हरखीया (ग)। बरखा रुति अति मेह नयण (? कुँवर) मन हरषीया (क)। श्री (त) सा (व)=सी। समारि (त) सुनारि (ग)। पर (त व. ग)। जिनके (ग)=जाँणे। इंद (ग)। बैठा (त)। घर (क त व)।

५६६—दुऊँ (ग)। मदमत (त) मदमात (ध)। दिस (क ग त)। वाहुडे

दूहा

मारवणी इम वीनवइ, धनि आजूणी राति ।
गाहा-गूढा-गीत-गुण कहि का नवली वाति ॥५६७॥
गाहा-गीत-विनोद-रस सगुणाँ दीह लियति ।
कइ निद्रा, कइ कळह करि, मूरिख दीह गमंति ॥५६८॥
विरह वियापी रयण भरि, प्रीतम विणु तन खीण ।
वीण अलापी देखि ससि, किस गुण मेल्ही वीण ॥५६९॥
वीण अलापी देखि ससि रयणी नाद सलीण ।
ससिहर मृगरथ मोहियउ, तिण हसि मेल्ही वीण ॥५७०॥

५६७—मारवणी यो विनय करती है कि आज की रात धन्य है। आज कोई गाथा या पहेली या गीत या गुणोक्ति या कोई नई कथा कहो।

५६८—गुणवान् मनुष्यों के दिन गाथा, गीत और विनोद के रस मे बीतते हैं और मूर्ख या तो नींद मे या कलह मे दिन बिताते है।

५६९—ढोला प्रश्न करता है—

प्रियतम के वियोग मे कृश शरीरवाली नायिका ने रात भर विरहव्यथा से व्याप्त होकर वीणा बजाई, फिर चद्रमा को देखकर किस कारण उसे रख दिया?

५७०—मारवणी उत्तर देती है—

विरहिणी को वीणा बजाते देखकर चद्रमा रात्रि मे उसके नाद मे लीन हो गया और चद्रमा के रथ के मृग मोहित हो गए। इसीलिये उसने हँसकर वीणा को रख दिया।

(त)। जाण (ख. त)। धरंती (ग)। असपत (ग घ) असपति (त)। आहुडे (त)। अहरां (ग) लगाय (ग)। तनां (ग)। जुवाना (ख ग) जुवाना (त)। मेल्हियां (ग)।

५६७—मारविणी (त)। अप (घ)=इम। वीनवे (त)। धन (क ख. ग. घ)। वात (त)।

(ग) मे दूसरे और चौथे चरणों का क्रम विपर्यय है।

५६८—गूढ (ख)=गीत। गुणां (ख)=सगुणा। रमति (क्ष) गमति (क. ग. त)। के (त) का (ग क्ष)=कै। मूरख (त) इम बोलति (त)=दीह गमति।

५६९—रेण (त) भर (त)। विण (ग घ) विन (त) आलापी (ग)। शशि (क. घ. त) शसि (ख) सिस (क्ष)। वींणं (क)।

५७०—शशि (क. त)। रेणी (त)। संलूण (त)। शांशहर (क त)।

सुंदरि चोरे संग्रही, सब लीया सिणगार ।
नक-फूली लीधो नहीं, कहि सखि, कवण विचार ॥५७१॥
अहर रंग रत्तउ हुवइ, मुख काजळ मसि ब्रन्न ।
जाँण्यउ गुंजाहळ अछइ, तेण न ढूकउ मन्न ॥५७२॥
परदेसाँ प्री आवियउ, मोती आँण्या जेण ।
धण कर कँवळाँ झालिया, हसि करि नाँख्या केण ॥५७३॥
कर रत्ता मोती नृमळ, नयणे काजल-रेह ।
धण भूली गुंजाहळे, हसिकरि नाँख्या तेह ॥५७४॥

५७१—ढोला—

सुंदरी को चोरों ने पकड़ लिया और उसके सब शृंगार (आभूषण) उतार लिए परंतु नकफूली नहीं ली। हे सखि, कहो किस विचार से ?

५७२—मारवणी—

नकफूली अधर के रंग में लाल हो रही थी और उसका मुख काजल के कारण काले रंग का हो रहा था। अतएव चोरों ने जाना कि गुंजाफल है और इसलिये उनका मन उसे लेने को नहीं हुआ।

५७३—ढोला—

परदेश से प्रियतम आया जिसने मोती लाकर दिए। प्रेयसी ने उनको अपने करकमलों में ग्रहण किया और फिर हँसकर उनको किस कारण डाल दिया ?

५७४—मारवणी—

हाथ लाल (रंग के) थे, मोती निर्मल थे और नयनों में काजल की रेखा थी। इन (हाथ और नयनों) का प्रतिबिंब मोतियों पर पड़ने से

रयमृग (क ग त)। मोहीम्या। (त)। विणि (झ)। ससि (झ) हस (त)= हसि। मूँकी (ग)=मेल्ही।

५७१—सुंदर (त)। चोर (क)। सहि लीधा (ग) शृंगार (त) वैसर (ग)=फूली। लीध्री (त)। कविण (घ) कोण (त)।

५७२—ग्रहरग (त)। रता (ख त) रातो (ग)। हुवौ (ग)। मुंख (त)। मिम (क)। ग्रंन (त) ग्रन (ग)। जाँण (ग त)। गूजाहळ (त)। तिन (ग) तेणि (व)। ग्र (झ)=न। ढयोको (घ)। मन (ग) मंन (त)।

५७३—कमले (ख ग)। झलीया (ग)। तेण (क ख ग, त)=केण।

५७४—निरमळा (झ) निमळ (त)। नेणे (त)। गूजा (त)। हसकर (त)। तेण (क ख ग व त)।

गाहा

तरुणी पुणोवि गहियं परीयच्चय भितरेण पिउ दिट्ठं ।
कारण कवण सयाणे दीपक्को धूणए सीसं ॥५७५॥

दूहा

वालँभ, दीपक पवन-भय अंचळ-सरण पयट्ठ ।
कर-हीणउ धूणइ कमळ, जाँण पयोहर दिट्ठ ॥५७६॥

गाहा

वनिता-पति विदेस गय मंदिर-मझे अद्धरयणीए ।
वाळा लिहइ भुयंगो, कहि सुंदरि, कवण चुज्जेण ॥५७७॥

प्रियतमा को उनके गुंजाफलों का भ्रम हुआ और इसीलिये उसने हँसकर मोतियों को डाल दिया ।

५७५—ढोला—

प्रिय ने देखा कि फिर तरुणी द्वारा हाथ मे लिया हुआ दीपक अंचल के अंदर से सिर धुन रहा है । हे सजनी इसका क्या कारण है ?

५७६—मारवणी—

हे प्रिय, दीपक पवन के भय से अचल की शरण में गया परतु अचल के अदर पयोधरो को देखा तो हाथ न होने के कारण वह सिर धुनने लगा ।

५७७—ढोला—

स्त्री का पति विदेश गया । अर्धरात्रि को महल में वह बाला साँप का चित्र लिखती है । हे सुंदरि, कहो किस चीज से ?

५७५—पणो (म) पुण्ये (झ) । पणव (त)=पुणोवि । विगहीयं (क) । परि अंतराय (झ) परिच्छेयतेरीयं (घ) परिछेरीयं (त)=परी.. रेण । पीउ (ख) प्रिय (ग. झ. घ) प्रीय (त) । कमण (त)=कवण । अयांणो (क घ) सयाणो (त) । दीपको (घ. त) भूंणिये (झ) धूणे (त) ।

५७६—वालम (ग. त) । सरणि (झ) । जाम (ख) ताम (त)=जांण । पयोहरि (झ) ।

५७७—तास प्रीय विदेस गयौ (क. घ. त) जाम प्रिय गयौ विदेसे (ग) । मंझे (त) मझेय (ग) मधि (घ) । अद्द (ख) । अधि-सेरेणी (त) अधरयणाए (ग) अधि से रयणीए (घ) । लिखै (ग) लिखौ (व) लिख्यो (त) । भयंगो

दूहा

सा बाळा प्री चिंतवइ, खिणखिण रयणि विहाइ।
तिण हर-हार परठ्ठ्यउ, ज्यूँ दीवळउ बुझाइ ॥५७८॥
बहु दिवसे प्री आवियउ, सिझया त्री सिणगार।
निजरि दिखाई आदिरस, किम सिणगार उतार ॥५७९॥
इन्द्रॉ-वाहण-नासिका, तासु तणाइ उणिहार।
तस भख हूवउ प्राहुणउ, तिणि सिणगार उतार ॥५८०॥

५७८—मारवणी—

वह बाला प्रिय का चिंतन करती हुई क्षण क्षण करके रात्रि को बिता रही है। उसने महादेव का हार (अर्थात् साँप) लिखा जिससे कि दीपक बुझ जाय (साँप पवन का भक्षण कर लेता है और पवन न होने से दीपक नहीं जल सकता)।

५७९—ढोला—

बहुत दिनों से प्रियतम आया। नायिका ने शृंगार सजाए। फिर एक नजर ने शीशे को देखकर, कहो, किसलिये शृंगार उतार दिया?

५८०—मारवणी—

पाहुना (अर्थात् प्रत्यागत प्रियतम) इंद्र के वाहन (अर्थात् हाथी) की नासिका (अर्थात् सूँड़) के समान आकृतिवाले (अर्थात् साँप) का भक्ष्य हो गया इसलिये उसने शृंगार उतार दिए।

(त) भुयंगा (ध)। कमण (ग) कवल (त)। कज्जेण (झ. त) चुजेण (घ) चज्जेण (ग) चुज्जेण (क)।

५७८—प्रीउ (ग)। चीतवे (ग त)। रयण (क. ख. ग) रैण (व त)। विहाय (ग त)। हरको=तिण हर (ग)। परठीयो (क ख. ग) परठीउज (घ)। ज्यो (ग न) ज्यं=ज्यूँ (न)। दीपको (त)। बुझाय (व त)।

५७९—बह (त)। प्रिउ (क. ग) सजीया (ग)। त्रिय (ग)। नजर (क ख ग. त)। मंदिर (घ)=निजरि। आदरस (ख. त)। शृंगार (व)। उतारि (ग. घ)।

५८०—आनन (घ त)=वाहण। नास (ख ग त)। तणा (झ. त)। उणहार (ग) अनुहारि (ध. न)। हुवौ ज=हूवउ (झ) तिणा (ग)।

नोट—(क ख घ न) मे तीसरा और चौथा चरण इस प्रकार है—

हुई न होसी पुणि जुग मारू सरीखी नारि।

ससनेही सज्जण मिल्या, रयण रही रस लाइ।
चिहुँ पहुरे चटकउ कियउ, वैरणि गई विहाइ ॥५८१॥

(अष्टयाम वर्णन)

[पहिलइ पोहरे रैणकै, दिवला अंबर झूल।
धण कसतूरी हुइ रही, प्रिव चंपारौ फूल ॥५८२॥

दूजै पोहरे रयणकै मिळियत गुफ्फागुध्ध।
धण पाळा, पिव पाखर्यौ, विहूँ भला भड़ जुध्ध ॥५८३॥

त्रीजै प्रहरै रैणकै मिळिया तेहा-तेह।
धन नहिँ धरती हुइ रही, कत सुहावौ मेह ॥५८४॥

चौथे प्रहरै रैँणकै कूकड़ मेल्ही राळि।
धण संभाळै कंचुवौ, प्री मूँछाँरा वालि ॥५८५॥

पँचमै प्रहरैँ दीहरै सायधण दियै बुहारि।
रिमझिम रिमझिम हुइ रही, हुइ धण-त्री जौहारि ॥५८६॥

५८१—स्नेहवाले प्रेमी मिले। रात्रि आनदमय हो गई। चारों प्रहरों ने शीघ्रता की और वैरिन रात बीत गई।

५८२—रात्रि के पहले प्रहर मे दीपक आकाश मे झूल रहे हैं। प्रिया कस्तूरी हो रही है और प्रियतम चपा का फूल (हो रहा है)।

५८३—रात्रि के दूसरे प्रहर में दपति दृढ आलिंगन देकर मिल रहे हैं। प्रिया पैदल है और प्रियतम सवार है। दोनों युद्ध मे भले योद्धा है।

५८४—रात्रि के तीसरे प्रहर में पति पत्नि खूब गहरे मिलकर एक हो गए हैं—प्रिया धरती हो रही है और कत सुहावना मेघ (हो रहा है)।

५८५—रात्रि के चौथे प्रहर मे मुर्गे ने बाँग दी। प्रिया चोली को सँभालती है और प्रियतम मूँछों के बालों को (सँभालता है)।

५८६—पाँचवे प्रहर दिन को वह प्रिया (छितराए हुए मोतियो को बटोरने के लिये) बुहारी दे रही है। (उसके पायल की) रिमझिम रिमझिम ध्वनि हो रही है और प्यारी एव प्यारे का जुहार हो रहा है।

५८१—सजण (ख त) सजन (ग)। चहु (ग) च्युं (झ) च्योंह (त)। पहरे (ग त)। हूओ (ग त)=कियउ।

५८२-५९०—केवल (ज) मे।

छट्ठै प्रहरँ दिवसकै हुई ज जीमणवार ।
मन चावळ, तन लापसी, नैंण ज घीकी धार ॥५८७॥

सत्तम प्रहरँ दिवसकै धण जु वाड़ियाँ जाइ ।
आँणै द्राख-बिजोरियाँ, धण छोलइ, प्रिउ खाइ ॥५८८॥

आठम प्रहर सझा समै धण ठव्वै सिणगार ।
पान कजळ पाखर करै, फूलाँकौ गळि हार ॥५८९॥

प्रहरै-प्रहर ज ऊतरयुँ, दि्वला साख भरेह ।
धण जीती, प्रिव हारियउ, वेल्हा मिलण करेह ॥५९०॥

(ढोला मारवणी की क्रीड़ा)

म्हँ ने ढोलो झूबिया लूँगे लक्कड़ियेह ।
म्हाँने प्रिउजी मारिया चंपारै कलियेह ॥५९१॥

म्हँने ढोलो झूबिया, म्हाँनूँ आवी रीस ।
चोवा केरै कूँपळै ढोळी साहिब सीस ॥५९२॥

५८७—छठे प्रहर दिन में ज्यौनार हुई जिसमे मन चावल, तन लपसी एव नेत्र घी की धारा है ।

५८८—सातवें प्रहर दिन में प्रिया वाटिका को जाती है और दाख एवं बिजोरे लाती है । प्रिया छीलती है और प्रियतम खाता है ।

५८९—आठवें प्रहर सध्या समय प्रिया शृंगार सजाती है और पान खाकर एव काजल लगाकर उसको तीक्ष्ण (विशेष मनोमोहक) करती है तथा गले मे पुष्पों का हार धारण करती है ।

५९०—जो प्रहर पर प्रहर बीता उसमे प्रिया जीती और प्यारा हारा । हे दीपक, तू इसकी साख भरना और उनके मिलन की वेला करना ।

५९१—मारवणी सखियों से कहती है—ढोला कुमार मुझे लवंग की छडी लेकर झूम गया । प्रियतम ने मुझे चपा की कलियों से मारा ।

५९२—ढोला मुझे झूम गया । मुझे रोष आया और मैंने चोवा (अरगजा) का पात्र स्वामी के सिर पर उँड़ेल दिया ।

५९१-५९२—केवल (ज) में ।

राति दिवसि रंगइँ रमइ, विलसइ नवरस भोग।
जोड़ी सारीखी जुड़ी केसव-तणइ सँजोग ॥५६३॥

(ढोला का नरवर को लौटना)

पनरह दिन लग सासरइ रहियउ साल्हकुमार।
पूगळ भगताँ नव-नवी कीधी हरख अपार ॥५६४॥

सोवॅन-जड़ित सिंगार बहु मारुवणी मुकलाइ।
गय, हेंवर, दासी बहुत दीन्हीं पिंगळ-राइ ॥५६५॥

साथे दीन्ही छोकरी दीन्हो पिंगळ-राव।
ढोलउ नरवरनूँ खड़इ, आणँद अधिक उछाव ॥५६६॥

५६३—इस प्रकार दंपति रात दिन प्रेम क्रीड़ा करते हैं और नव रसों का विलास भोग करते हैं। भगवान् केशव की कृपा से उनकी अनुरूप जोडी जुड़ी।

५६४—साल्हकुमार पद्रह दिनो तक ससुराल मे रहा। पूगल (निवासियों) ने अपार हर्ष के साथ (प्रतिदिन) नई नई खातिर की।

५६५—मारवणी का गौना करके राजा पिंगल ने बहुत से सुवर्णजटित श्रृंगार, अच्छे अच्छे हाथी, घोडे और बहुत सी दासियाँ दीं।

५६६—साथ में राजा पिंगल ने सहेली (खास दासी) दी। अब ढोला अत्यंत आनद और उत्साह के साथ नरवर की ओर प्रस्थान करता है।

५६३—दिवस (क. ख. ग. घ. त)। रंगमां (झ)। रमैं (क.ख.ग.घ)। विलवे (थ)। नव नव (थ)=नवरस। जुडइ (थ)। साहिब (थ)=केसव। तणो (झ)। संयोगि (थ)।

५६४—राज (क. ग. त)=साल्ह। पिंगळ (ग) = पूगळ। अधक (ग. घ त) = हरख।

नोट—(न) में इस दोहे का पाठ इस प्रकार है—

पुंगळ ढोलो प्राहुणो रहियो सासरवाडि।
पनर दिहाडा पदमणी माणी मनहरु हाडि ॥

५६५—जटित (ख. त)। दे (ख) = बहु। मारवणी (ख ग त)। हय (क.ग.झ)। हय गय (झ) = गय हैं। दीन्हा (ग)। राउ (ख) राय (ग त)।

५६६—राइ (ख क)। नें (ग)। हिव ढोलौ (क) = ढोलउ। उछाह (क. ख ग त)।

निसि भरि सूती सुंदरी वालॅभ कंठ विलग्गि ।
मोहण वेली मारुई पीधो नाग भुयंग्गि ॥६०१॥

प्रह फूटी, दिसि पुंडरी, हणहणिया हय-थट्ट ।
ढोलइ धण ढंढोळियउ, सीतळ सुंदर-घट्ट ॥६०२॥

सोरठा

झाबकि पइठी झाळि, सुदरि कॉइ न सळसळइ ।
बोलइ नहीं ज बाळ, धण धंधूणी जोइयउ ॥६०३॥

[झाबकि पइठी झाळि, सुंदरि दीठी सास विँण ।]
जिमि व्हालॉ बिच बाळ, प्रिव जोई मारू नहीं ॥६०४॥

६०१—रात्रि भर सुदरी प्रियतम के कठ से लगकर सोती रही। तभी मोहनलता मारवी को पीणे सॉप ने पी लिया।

६०२—पौ फटी, दिशाएँ पीली हुई और घोड़ों के समूह हिनहिनाए। ढोला ने प्रिया को टटोला तो सुदरी का शरीर शीतल था।

६०३—ढोला के हृदय में सहसा ज्वाला उठी कि सुदरी क्यों नहीं हिलती डोलती। जब सुदरी नहीं बोली तो पति ने उसको खूब हिला डुलाकर देखा।

६०४—सुदरी को सॉस विना देखा तो हृदय में सहसा ज्वाला उठ खड़ी हुई (नोट—दूहे का उत्तरार्ध अस्पष्ट है , ।

६०१—निस (क ग ज)। मारवी (ग त) मारूवी (ज) = सुंदरी। ढोला मेल्हे अग (क ख. ग. घ)=वालॅभ···विलग्गि। भुयंग (क ख ग. घ)। पीवी सुतह भयग (त)। सासतणैं सोरग गुण पीधा इण पीयणैं (ज) सासतणैं सोरभि गुणि पीधी पीणैं पन्नगि (थ)।

नोट—(ज) और (थ) मे यह दूहा सोरठे के रूप में है।

६०२—ऊठी (ख. त) फुटी (क व)। प्रगडो भयौ (क. ख ग. घ. त)= दिसि पुंडरी। दिस (ज)। पंडरी (थ)। कलहळिया (घ. त)। ढंढेळियो (ग) ढढोडियो (झ)। धण ढढोळी ढोलणैं (ज. त)। सास न (क. ख ग. घ त)= सीतल। सुंदरि (ग थ. ज)।

६०३—झावकि (थ)। पेटी (थ)। झाळ (थ)। साइ (थ) = कॉइ। जौं बोलै नहीं (ज)=दीठी सास विँण। धधोणी (थ)। जोवियो (थ)।

६०४—केवल (ज) मे।

हिव सूँमर डेरा हुवइ, मारू भूँवणहार।
पिंगळ वाळावा दिया सोहड़ सो असवार ॥५९७॥

(साँप के पीने से मारवणी की मृत्यु)

वहताँ दिन बीजइ पछइ राति पड़ती देखि।
रोही मँझि डेरा किया ऊजळ जळधर देखि ॥५९८॥

ढोलउ मारू पउढिया रस मइँ चतुर सुजाँण।
च्यारे दिसि चउकी फिरइ सोहड़ भूप जुवाँण ॥५९९॥

मारवणी मुखसास तणइ कसतूरी महकाइ।
पासइ पन्नग पीवणउ विळकुळियउ तिणि ठाइ ॥६००॥

५९७—अब ऊमर सूमरा को खबर मिली की मारवणी जानेवाली है और पिंगल राजा ने उसे पहुँचाने के लिये सौ सवार दिए हैं।

५९८—चलते हुए, दूसरे दिन के पश्चात्, रात पड़ती जानकर (ढोला ने) निर्मल जल और स्थान देखकर जगल के बीच मे डेरा किया।

५९९—चतुर सुजान ढोला और मारवणी प्रेम मे मग्न हुए सो रहे और चारो ओर सुभट युवा सरदार पहरा देने लगे।

६००—मारवणी के मुखचद्र से कस्तूरी की महक आ रही थी। उसी स्थान पर पास ही एक (प्राण पी जानेवाला) पीणा साँप निकला।

५९७—डेरा (क. त)। भूवणहार (ग व)। सवसुहड (ग) सवळ सुहळ (क)=सोहड सो।

५९८—रात (क)। पडीती (ग)। मझ (ख) मभ (क. त)। डेरो (ग)। लीयो (ग) = किया। धर थळ (क ख ग व. त) = जलधर।

५९९—रमि (ग)=मइँ। रग रसे (व) = रस मइँ। दिसि (क) दिस (ख त)।

६००—मिस (क)। तणा (क ख. ग)। कदि कसतूरी महमहे मारवणी मुंह सास (ग) मारवणी महमास करि कसतूरी महमहे (थ) = मारवणी··· महकाइ। नाग (ग)=पन्नग। पीवणे (ग) पीयणा (थ)। नीसर्यो (क ख ग व त)=विळकुळियउ। तिण (ग. क. ज)। वाइ (ग. त) माझि (थ) ठाम (त) = ठाइ।

नोट—(थ) मे यह बड़ा दूहा है।

मारू त्रिहुँ बरसे वड़ी, चंपारइ उणिहार।
सा कुँमरी परणाविस्यॉं, चालउ, राजकुँमार ॥६१३॥
इणि भवि मारू कॉमिणी, अन-पाणी इणि सथ्थ।
पूगळनूँ सहु को वळउ, न करउ म्हॉंकी कथ्थ ॥६१४॥
टोलउ किम परचइ नहीँ, सहु रहिया समझाइ।
के पुळिया पूगळ-दिसी, के कॉंही कजि काइ ॥६१५॥

(योगी द्वारा मारवणी का पुनर्जीवित होना)

इक जोगी आणंद-मइँ आव्यउ तिणहिज घाट।
जॉंगे श्रीपति भेजिया भॉंजण साल्ह - उचाट ॥६१६॥

६१३—साथ के लोग कहते हैं—

मारवणी से तीन बरस बड़ी और चंपा के समान रूपवाली जो राजकुमारी है वह आपको ब्याहेंगे, हे राजकुमार, वहाँ से चलो।

६१४—ढोला ने उत्तर दिया इस जन्म में मारवणी ही मेरी स्त्री है। मेरा अन्न जल इसी के साथ है। सब कोई पूगळ को लौट जाओ, मेरी बात मत करो।

६१५—ढोला किसी प्रकार नहीं समझता। सब लोग समझाकर रह गए। फिर कुछ तो पूगल की ओर चले गए और कुछ किसी काम से कहीं चले गए।

६१६—एक योगी अपने आनंद में उसी रास्ते पर आ निकला मानो साल्हकुमार की व्यथा को दूर करने के लिये भगवान् ने भेजा हो।

६१३—हु तिहु (ख ग)=त्रिहु। ता त्रि वरस (त)=त्रिहुँ बरसे। अणुहारि (ग)। कुमारी (क) कुआर (ग)।

यह दोहा (ग) में इस प्रकार है—

पिंगल राय कहावियउ ढोला पाछे आव।
मारू लहुडी बहिनडी तोहि-भणी परणाव॥

६१४—इण (ख ग)। कामिनी (क ख) कांमनी (ग)। अण (ग)= अन। उण (ग) इण (क, ख त)=इणि। साथी (क) साथ (ख, ग)। सर्व्हांणी (ख)। कथ (ख) काथ (ग)।

६१५—सो तो (ग) सो तई (त)=ढोलो। कहा (ग)=किम। सह (ग) सहि (क)। परचाइ (ग)=समझाइ। चळिय (ग)=पुळिया। दिसा (क)। की (ग)=के। स्यारी (क)। कज (ख, ग ख) किम (क)=काजि।

६१६—एक (क ख)। जोगी (क)=जोगी। आनंद (ग)। आयो (ग) आया

साथइ सुंदरि जोगिणी, मारवणीसूँ प्यार ।
तिण जोगी ओळखिया ढोलउ मारू नार ॥६१७॥
नर नारीसूँ क्यूँ जळइ, नरसूँ नारि जळत ।
साल्हकुँवर, जोगी कहइ, अहलउ केम मरत ॥६१८॥
जोगी सुणि, ढोळउ कहइ, तोनूँ केही तात ।
थे पंथी, हुओ पंथ सिर, म करि पराई बात ॥६१९॥
जोगिण जोगीसूँ कहइ, साँभळि नाथ समथ्थ ।
का जीवाड़उ मारुवी, हूँ पिण इणहिज सथ्थ ॥६२०॥

६१७—उसके साथ मे एक सुदरी जोगिन थी जिसका मारवणी से प्रेम था। उस जोगी ने नारी मारवणी और ढोला को पहचान लिया।

६१८—वह जोगी ढोला को देखकर कहने लगा—नर के साथ नारी जलती है, पर नर नारी के साथ क्यों जले? जोगी कहता है कि हे साल्हकुमार व्यर्थ ही क्यों मरता है?

६१९—ढोला कहता है कि हे जोगी सुनो, तुम्हे क्या चिंता है? तुम पथिक हो, अपना रास्ता पकड़ो, पराई बात मत करो।

६२०—(तब) जोगिन जोगी से कहती है कि हे समर्थ स्वामी, सुनो, या तो मारवणी को जिला दो, नहीं तो मैं भी इसी के साथ (जल मरती) हूँ।

(झ) आव्या (क)। उणहिज वार (ग)=तिणहि ज वाट। चिंता भाजण (झ)=भाजण साल्ह।

६१७—साथे (ख. ग)। जोगणी (ग)। री यारि (क. ख. त)=सू प्यार। प्यार (ख)=नार।

६१८—क्यौं (ख)। बळै (घ)। अहिलौ (ग) इहलौ (त)। कींह (ग) = केम।

६१९—तूँ काहे कमळात (त)=तोनूँ केही तात। चंपैथी (ग)=थे पंथी। हुऔ (क ख ग. घ) ह्वो (त)। न (क ख घ. त) = म। करौ (क ग. त)। म्हाँकी (ग) म्हाँरी (त)=पराई। तात (घ त)=वात।

६२०—नूं (घ)=सूँ। समाथ (ग त)। जीवारौ (ग)। मारवणी (घ)। का हूँ इण साथ (ग)। इणही (क)=इण हिज।

जोगिण जोगी परचव्यउ वयणाँ अधिक अपार।
पाँणी मंत्रे पाइयउ, हुई सचेती नार ॥६२१॥

हुई सचेती मारवी, ढोलइ मनि आणंद।
जाणि अँधारी रयणमइं प्रगट्यउ पूनिम चंद ॥६२२॥

ढोलइ मारू आपणा सब सिणगार उतार।
जोगिण जोगीनूँ दिया तिण वेळा तिण बार ॥६२३॥

(ढोला की पुनः नरवर यात्रा)

ढोलइ मनइ विमासियउ, एक करीजइ एम।
करहइ चढि आपाँ खड़ाँ, नरवर पहुँचाँ जेम ॥६२४॥

के मेल्ह्या पूगल दिसइ, किहीं भळाया भार।
सल्हकुँवर करहइ चढ्यउ, बाँसइ चाढी नार ॥६२५॥

६२१—जोगिन ने जोगी को अनेक प्रकार की बातों से समझाया। तब जोगी ने जल मंत्रित करके पिलाया जिससे मारवणी सचेत हुई।

६२२—मारवणी सचेत हुई और ढोला के मन में आनंद हुआ, मानो अँधियारी रात्रि में पूर्णिमा का चंद्रमा निकल आया।

६२३—ढोला और मारवणी ने अपने सारे शृंगार उतारकर उसी समय जोगी और जोगिन को दे दिए।

६२४—फिर ढोला ने मन में सोचा कि एक ऐसी विधि करनी चाहिए कि हम लोग ऊँट पर चढ़कर चल दें जिससे शीघ्र नरवर पहुँच जायँ।

६२५—(फिर उसने) कुछ लोगों को पूगल की ओर भेज दिया और कुछ को साथ का सामान सँभला दिया। फिर ढोला ऊँट पर चढ़ा और नारी मारवणी को पीछे चढ़ा लिया।

६२१—जोगिन (ग)। बहि अखाण (ग)=वयणां अधिक। करहो (ब) [illegible] (ग. ग)। [illegible] (ग)। नारि (क. ख. ग)।

६२२—मन (ख. ग. ग)। उछाह (ग)=आणंद। नाह (ग)=चंद।

६२३—[illegible] (ग)। सहि (ग)। उतारि (क ख)। जोगीजोगिणनूँ (क)।

६२४—[illegible] (ग)। विमासियउ (ग)। ऐम (क. ख)=एम। आगे ([illegible])=[illegible]। [illegible] ([illegible] ग)।

६२५—[illegible] (ग) [illegible] (ग)। किंहि (ग)। [illegible] (ग)। बाँसे ([illegible])=[illegible]। [illegible] (ग)=[illegible]।

(ऊमर सूमरे की कथा)

हेरा गया ऊँमर-कन्हइ, कहिजइ एही बात।
ढोलउ मारू एकला, लहसि न एही घात ॥६२६॥

(ऊमर का पीछा करना)

एही भली न, करहला, कळहळिया कइकाँण।
का, प्री, रागाँ प्राँण करि, काँइ अचंती हाँण ॥६२७॥
किउँ, ठाकुर, अळगा वहउ, आवउ, अमल कराँह।
म्हे पिण जास्याँ नरवरइ, एकण साथ खड़ाँह ॥६२८॥
ऊँमर साल्ह उतारियउ, मन खोटइ मनुहारि।
पगसूँ ही पग कूँटियउ, मुहरी झाली नारि ॥६२९॥

६२६—(इधर ऊमर सूमरे के) दूत ऊमर सूमरे के पास गए और यह बात कहने लगे कि अब ढोला और मारवणी अकेले हैं, ऐसी घात फिर नहीं मिलेगी।

६२७—पीछे आते हुए ऊमर सूमरे के घोड़ों की टापों का शब्द सुनकर मारवणी कहती है—

अरे ऊँट, यह तो ठीक नहीं, घोड़ों का शब्द हो रहा है। (फिर ढोला से कहती है कि) हे प्रिय, या तो इनको अपने प्राणों का मोह है (ये प्राणों के भय से भाग रहे हैं) या हमको कोई अचिंत्य हानि होनेवाली है।

६२८—ऊमर ढोला के पास पहुँच गया तो कुछ दूर से बोला—

हे ठाकुर! यों अलग क्यों चल रहे हो, आओ, विश्राम एव जलपान आदि कर लें। हम भी नरवर जायँगे, (सभी) एकही साथ चलें।

६२९—ऊमर सूमरे ने साल्हकुमार को खोटे मन से, आग्रह करके, उतार

६२६—गया (क ख ग घ)। ऊँवर (झ)। कहीज (ख. ग)। ये ही (ग)। एकठा (ख)। लहिरिए (ग) हिए (क. ख) इसडी (ग. ज)।

६२७—एह (ख ग थ) एक (झ)। कहकहिये (क ख)। थल मयै झेकाणि(थ)=कळहळिया कइकाँण। कै (ख ग) केइ (थ)। प्रिउ (थ) रागे (थ झ)। अत्रेही (क ग) अचींती (थ)। हाणि (ख. थ झ) हानि (क)।

६२८—किम (ग)। कमल (ख)=अमल। म्हेई (ग)=म्हे पिण। नरवराँ (ख)। नळवर जाइस्याँ (ग) नरवर जाइस्याँ (झ)। खड्ग बाँधि खडाह (क ख ग)।

६२९—मनुहार (ख त)। पगै (क. ख ग)=पगसूँ ही। कूटियइ (झ)। महुरी (ख)। झाले (त. घ)।

पीहर संदी डूँमणी ऊँमर हंदइ सथ्थ।
मारवणीनूँ तंतमई कहि समझावइ कथ्थ ॥६३०॥
तंत तणाकइ, पिउ पियइ, करहउ ऊगालेह।
भल वउलावो दीहड़ा, दई वळावण देह ॥६३१॥
थळ मथ्थइ ऊजासड़उ, थे इण केहइ रंग।
धण लीजइ प्री मारिजइ, छोंड़ि विडाणउ संग ॥६३२॥

लिया। ढोला ने उतरकर ऊँट का पैर बाँध दिया और मारवणी ने ऊँट की मुहरी (बाग) पकड़ ली (और ढोला ऊमर के पास चला गया)।

६३० – मारवणी के पीहर की एक ढोलिन ऊमर के साथ में थी (उसे यह घात मालूम थी)। वह मारवणी को सब बात बाजे में बजाकर समझाती है।

६३१—तंत्री (बाजा) झनझन करके बज रही है, पति ऊमर के साथ मद्य पी रहा है और ऊँट जुगाली कर रहा है। इस प्रकार दिन भले ही बिताओ, यदि विधाता बिताने दे।

६३२—इस थली पर यह उजाड़ जगह है, तुम इस कौन से रंग में हो (तुम्हारा यह क्या ढंग है)? अभी स्त्री छीन ली जाती है और पति मारा जाता है। पराया साथ छोड़ दो।

६३०—हदी (ज झ थ)। डुंबणी (ज)। घाले नचली वत्त (ज) पाले नचली वत्त (थ)—ऊमर हदइ सथ्थ। सदे (त) = हदइ। सथ (ग)। नै (ग)। मारू ढोलो ऊगरे (च ज थ)=मारवणीनूँ तंतमइँ। समझाई (झ) समझावी (थ) समझावा (ज) समझावे (त) समझाया (च)। वत्त (थ. ज) वत (च) कथ (ग त)॥

६३१—तती (च थ)। तणके (क ग. ज) तनके (ग) झुणके (च) झुणकइ (त)। पीउ (क च) पीउ (क) पीय (ग) पीव (ज) प्रिय (थ)। पीवे (क ग) पिवे (त) पीये (च ज)। उगालेह (ग) ऊगालेहि (च ज) उग्गालेहि (थ)। भला (क. ग थ) भले (त)। वउळावत (च) वउळावता (थ)। दीहडा भलां वउळावता (थ)। जउ दइ (त) देव (च)=दई। ऊलावाण (च)। देहि (च) देह (थ)। जिर धाऊणी टालेह (त) = दई वलावण देह।

६३२—थळ (च ज थ)। उजासडउ (च ज) रोही मझे (क ख ग घ त)। काई कइ कुसग (च) अही संग कुसग (ज) कांई काठ कुसंग (थ)=थे इण केहइ रंग। लीजे (थ)। प्रीय (क) पीव (ग) पीव (ज) प्रिय (थ)। मारजे (त)। छोड (ग च ज, त)।

मारवणी, तूँ अति चतुर, हीयइ चेत, गिँमार।
जउ कंतासूँ कामड़उ, करहउ कोंवे मार॥६३३॥
मारू मन चिंता धरइ, करहइ कंब लगाइ।
करहउ उठ्यउ उतोंमळउ, साल्ह अचंभे थाइ॥६३४॥
ऊँमर ढोलइनूँ कहइ, करह अणावाँ तोहि।
करहउ केण न झालियउ, हूँ आणेसूँ मोहि॥६३५॥
ढोलइ करहउ झालियउ, मारू आई सत्थ।
प्रिउ, ए ऊँमर सूँमरउ, करिस्यइ थाँ भारत्थ॥६३६॥

६३३—हे मारवणी, तू बड़ी चतुर है, अरी गँवार, जरा हृदय में चेत। यदि कंत से काम है तो ऊँट को छड़ी से मार।

६३४—मारू मन में चिंता करती है और ऊँट को छडी से मारती है! ऊँट हड़बड़ाकर उठा। उसको यों उठता देखकर ढोला को आश्चर्य होता है।

६३५—ऊमर ढोला से कहता है—

अभी तुझे ऊँट मँगा देते हैं। इस पर ढोला उत्तर देता है कि मेरे ऊँट को (अभी तक) मेरे सिवाय किसी ने नहीं पकड़ा है (इस कारण उसे दूसरा कोई नहीं पकड़ सकेगा), इसलिये मै स्वय जाकर लाऊँगा।

६३६—ढोला ने ऊँट को पकड़ लिया, इसी समय मारवणी भी साथ-साथ चली आई और कहने लगी—हे प्रिय, यह तो ऊमर सूमरा है और आपसे लडाई करेगा।

६३३—मणहरणि (च) मनिहरणि (ज) मनहरणि (थ)=अति चतुर। नाद न भुल्लै मारवी (न)=मारवणी तूँ अति चतुर। हीयै तु छै गिंमार (क) मनमा एम विचार (ख. ग) हिव तुं बूझि गमारि (च) राअळि नीकी नारि (ज) हीयै तूंही गिमार (त) हिव तूं मूधि गमारि (थ) गहिली मुद्ध गिवार (न)। जे (क. ख) जो (ग. ज) तउ (च)। प्रीतम (क. ख ग. घ)=कंता। सू (च)। काम छै (क. ख. ग. घ.) कम्मडो (ज)। कांवा (च) कवे (ज)। मारि (च. ज. घ थ)।

६३४—लगाय (ग)। ऊठी (ख) ऊठौ (ग)। उतावलो (ग)। अहचो (क. ग) अचभौ (ख)। थाइ (ग घ)।

६३५—अणावौ (क) बंधावु (ग) वीजै कही न झलजै करह वेसामौ मोहि [(ग) मे द्वितीय पक्ति]।

६३६—साथ (क ख ग)। दाखी कत्थ (झ)=आई सत्थ। अहो प्रीय ए ऊमरो (झ) था करिसी (ग)। भाराथ (क. ख ग)।

पीहर मंदी डूँमणी ऊँमर इंदइ सत्थ।
मारवणीनूं वतसडॅं कहि समझावइ कथ्थ ॥६३०॥
तंत तणक्कड, पिउ पियइ, करहउ ऊगालेह।
भल वउलावो दीहड़ा, दई चळावण देह ॥६३१॥
थळ मथ्थइ ऊजासड़उ, थे इण केहइ रंग।
धण लीजइ प्री मारिजइ, छाँडि चिडाँणउ संग ॥६३२॥

लिया। ढोला ने उतरकर ऊँट का पैर बाँध दिया और मारवणी ने ऊँट की मुहरी (बाग) पकड़ ली (और ढोला ऊमर के पास चला गया)।

६३०—मारवणी के पीहर की एक ढोलिन ऊमर के साथ में थी (उसे यह बात मालूम थी)। वह मारवणी को सब बात बाजे में बजाकर समझाती है।

६३१—तंत्री (बाजा) झनझन करके बज रही है, पति ऊमर के साथ मद्य पी रहा है और ऊँट जुगाली कर रहा है। इस प्रकार दिन भले ही बिताओ, यदि विधाता बिताने दे।

६३२—इस थली पर यह उजाड़ जगह है, तुम इस कौन से रंग में हो (तुम्हारा यह क्या ढंग है)? अभी स्त्री छीन ली जाती है और पति मारा जाता है। पराया साथ छोड़ दो।

६३०—दूहो (ज झ थ)। डुंबणी (ज)। वाले नवली वत्त (न) पाले नवली वत्त (थ)—ऊमर हदइ सत्थ। मंदे (त) = हंदइ। सथ (ग)। नैं (ग)। मारू ढोली वर्णी (च ज थ)=मारवणीनूं वतसडूँ। समझाइ (क) समझावी (थ) समझावा (ज) समझावे (न) समझाया (च)। वत्त (थ ज) वत (च) कथ (ग त)॥

६३१—दूहो (च थ)। तणक्के (क ग. ज) तनके (न) सुणाके (च) सुणाके (त)। पीउ (ग च) पीउ (न) पीय (ग) पीव (ज) प्रिय (थ)। पीवे (क ग) पिवे (ग) पीवे (च ज)। उगालेह (न) ऊगालेहि (च ज) उग्गालेहि (थ)। भल्ला (क, ग थ) भले (न)। वउळावत (च) वउळावता (थ)। दीहडा भला वउळावता (थ) जउ दइ (न) देव (च)=दई। चुलावाण (च)। देहि (च) देउ (थ)। जिउ आपणा दानेद (न) = दई चलावण देह।

६३२—सो (च ज थ)। उजाणड़उ (च ज) रोहो सके (क ख. ग. घ. त)। काली कउ कुरंग (च) अठी सग कुरग (ज) कोठे काठे कुरंग (थ)=थे इण ..रग। लीजे (थ)। प्रीय (क) पीउ (ग) पीव (ज) प्रिय (थ)। मारजे (न)। छोड (ग च ज त)।

मारवणी, तूँ अति चतुर, हीयइ चेत, गिँमार।
जउ कतासूँ कामड़उ, करहउ कॉवे मार ॥६३३॥
मारू मन चिंता धरइ, करहइ कंब लगाइ।
करहउ उठ्यउ उतॉमळउ, साल्ह अचंभे थाइ ॥६३४॥
ऊँमर ढोलइनूं कहइ, करह अणावाँ तोहि।
करहउ केण न झालियउ, हूँ आणेसूँ मोहि ॥६३५॥
ढोलइ करहउ झालियउ, मारू आई सत्थ।
प्रिउ, ए ऊँमर सूँमरउ, करिस्यइ थाँ भारत्थ ॥६३६॥

६३३—हे मारवणी, तू बड़ी चतुर है, अरी गँवार, जरा हृदय मे चेत। यदि कत से काम है तो ऊँट को छड़ी से मार।

६३४—मारू मन मे चिंता करती है और ऊँट को छड़ी से मारती है। ऊँट हड़बड़ाकर उठा। उसको यों उठता देखकर ढोला को आश्चर्य होता है।

६३५—ऊमर ढोला से कहता है—

अभी तुझे ऊँट मँगा देते हैं। इस पर ढोला उत्तर देता है कि मेरे ऊँट को (अभी तक) मेरे सिवाय किसी ने नहीं पकड़ा है (इस कारण उसे दूसरा कोई नहीं पकड़ सकेगा), इसलिये मै स्वय जाकर लाऊँगा।

६३६—ढोला ने ऊँट को पकड़ लिया, इसी समय मारवणी भी साथ-साथ चली आई और कहने लगी—हे प्रिय, यह तो ऊमर सूमरा है और आपसे लड़ाई करेगा।

६३३—मणहरणि (च) मनिहरणि (ज) मनहरणि (थ)=अति चतुर। नाद न भुल्लै मारवी (न)=मारवणी तूँ अति चतुर। हीयै तु छै गिमार (क) मनमा एम विचार (ख. ग) हिव तुं बूझि गमारि (च) सांभळि नीकी नारि (ज) हीयें तूंही गिमार (त) हिव तू सूधि गमारि (थ) गहिली मुद्ध गिवार (न)। जे (क. ख) जो (ग. ज) तउ (च)। प्रीतम (क. ख ग. घ)=कंता। सू (च)। काम छे (क. ख. ग. घ.) कम्मडो (ज)। कांवा (च) कवे (ज)। मारि (च. ज. घ. थ)।

६३४—लगाय (ग)। ऊठी (ख) ऊठौ (ग)। उतावलो (ग)। अहचो (क ग) अचभौ (ख)। थाइ (ग घ)।

६३५—अंणावौ (क) बंधावुं (ग) बीजै कही न झलजै करह वेसासौ मोहि [(ग) मे द्वितीय पक्ति]।

६३६—साथ (क ख ग)। दाखी कत्थ (झ)=आई सत्थ। अहो प्रीय ए ऊमरो (झ) थां करिसी (ग)। भाराथ (क. ख ग)।

ढोलइ मनह विमासियउ, साँच कहइ छइ एह।
करह झेक्कि दोनूँ चढ्या, कूँट न संभाळेह ॥६३७॥

[प्रिउ ढोलउ, त्री मारुई, करहउ कूँ कूँ व्रन्न।
ऊमर दीठा एकठा, वड़ा ज तीन रतन्न ॥६३८॥]

ऊमर दीठी मारुई, डौंभू जेही लंकि।
जाँणे हर सिरि फूलड़ा, डाके चढ़ी डहक्कि ॥६३९॥

ऊमर ऊतावळि करइ पल्लाणियाँ पवंग।
खुरसाणी सूधा खयंग चढिया दळ चतुरंग ॥६४०॥

६३७—ढोला ने मन मे सोचा कि यह सच कहती है। तब ऊँट को बिठाकर दोनों चढ़ गए परतु ऊँट के पैर के बधन की ओर ध्यान नहीं दिया।

६३८—पति ढोला, स्त्री मारवणी और कुकुम वर्णवाला ऊँट—इन तीन बड़े रत्नों को ऊमर ने एक ही साथ जाते देखा।

६३९—ऊमर ने बर्र जैसी (पतली) कमरवाली मारवणी को देखा। वह ऊँट पर चढ़ी डहडहा रही थी मानों महादेवजी के सिर पर फूल डहडहा रहे हों।

६४०—ऊमर ने जल्दी करके घोड़ों पर जीन कसे। सीधी खुरासानी तलवारों को लेकर चतुरगिनी फौज बढ़ी।

६३७—मन (न)। करहो (क ख ग घ)। झेक (ख. ग)। दूने (घ. त) दूनू (क) बिन्हे (न)।

६३८—मारू हदे देसमें दीठा तीन रतन्न।
इक ढोलो इक मारवी करहो कूँकूँ व्रन्न॥ (न)

नोट—केवल (ट) और (न) में।

६३९—डिभू (च ज)। जेहै (ज) जेही (च)। लंकि (ख)। सिर (च ज)। चढी (थ)। डम्क्कि (थ)।

६४०—ऊमरि (थ)। अति ऊतावलि (थ)=ऊतावळि। पाथर्‌या (ज) सही (थ)=खयंग। चढियो (ज)।

ऊँमर दीठा जावता, हळहळ करइ करूर।
एराकी ओखभिया, जइसइ केती दूर ॥६४१॥
मारू स्रवणे संभळी, वळि दीठी नयणेह।
ऊमर खड़इ उतॉमळा लागउ अधिकउ नेह ॥६४२॥
ऊॅमर विच छेती घणी घाते गयउ जिहाज।
चारण ढोलइ सॉमुहउ आइ कियउ सुभराज ॥६४३॥
चारण ढालइनूँ कहइ, किस गुण आया, राज।
ऊपर थे विन्हैं चळ्या, करह कूट किण काज ॥६४४॥

६४१—ऊमर ने उनको जाते हुए देखा और वह क्रूर (दुष्ट) हलबड़ी करने लगा। उसने घोड़े पीछे दौड़ा दिए और कहने लगा कि कितनी दूर जायगा।

६४२—ऊमर ने मारवणी (के रूप) को कानो से सुना ही था अब ऑखों से देख लिया। इसलिये अधिक लगन लगा हुआ ऊमर घोड़ों को शीघ्रता के साथ दौडाने लगा।

६४३—जहाज (ऊॅट) ऊमर और अपने बीच मे बहुत फासला डाल गया। इसी समय एक चारण ने ढोला के सामने आकर शुभराज किया।

६४४—फिर चारण ढोला से कहने लगा—आप किस बूते पर यहॉ तक आए। तुम दोनों तो ऊपर चढ़े हो फिर ऊॅट के पैर मे बधन किसलिये ?

६४१—हरहळ (ग)। कळहळ (झ)। जावै (क. ग) जस्यै (झ)।

६४२—नित सुणी (क. त)=सभळी। वळ (ग) वळी (ख)। ऊँतावळा (ख. ग) उतावळौ (झ)। अधिक स्नेह (क. ख)।

६४३—विच (ख ग)। पडी (ख)=घणी। संमहौ (ख)। साल्ह साम्हो (क घ)=ढोलइ सामुहउ। आय (ग) मिल्यौ (क)=आइ। तास करै (क घ)= कियौ।

केवल (क ख. ग घ त) मे।

६४४—सुं (क घ)=नूँ। वेउं (ख)। करहौ (क ग घ)। कूटयौ (क. ग घ.) कूटै (ख)।

केवल (क. ख. ग. घ. त) में।

कूट कटाड़ी दे छुरी उणही कर तिण तास।
चारण, तूँ देखइ जिसा, कहिज्यउ ऊँमर पास ॥६४५॥
बीजइ दिन ऊँमर मिल्यउ, पह ऊगतइ सूर।
ढोलउ - मारू एकठा, कहि, केतीहेक दूर ॥६४६॥
ऊँमर, सुणि मुझ बीनती, दउड़ि म मार तुरंग।
करहउ लँघियउ कूटियउ आडावळ वड वंग ॥६४७॥
ऊँचा डूंगर, विखम थळ, लागा फिर तारेहि।
कूट्यइ करहइ लंघिया, घोड़ा म म्मारेहि ॥६४८॥

६४५—तब उसने चारण को छुरी देकर उसी के हाथ से उस (ऊँट) का बंधन कटवाया। और चारण से कहा,—हे चारण, तुम हमको जैसा देखते हो, जाकर वैसा का वैसा ऊमर से कह देना।

६४६—(चारण वहाँ से चला।) दूसरे रोज सूर्य के उदय होते हुए मार्ग में ऊमर मिला (और उससे पूछने लगा कि) बताओ, ढोला और मारवणी, जो एक साथ जा रहे हैं, कितनी दूर पर हैं?

६४७—(उत्तर में चारण ने कहा)—हे ऊमर, मेरी प्रार्थना सुनो, बेचारे घोड़ों को दौड़कर मत मार डालो। (वहाँ तो) पैर बँधा हुआ ऊँट आडावळा की महान् घाटी को लाँघ गया है।

६४८—ऊबड़ खाबड़ भूमि को और ऊँचे पहाड़ों को, जो मानो तारों से बातें करते हैं, ऊँट पैर बँधे हुए ही लाँघ गया है। (अब) तू घोड़ों को दौड़ाकर मत मार।

६४५—कढि कटारी (ख. ग) = कूट कटाडी। काटे कूटौ तास (ख. ग) काटे बंधण तान (झ)=उणही कर तिण तास। जिसी (क) तिसौ (ख)।
केवल (क. ख ग. ध. त झ) में।

६४६—अह (क ध)। कहो स (क. घ)=कहि। केती (क ध)=केतीहेक। एक (ग) इक (झ)=हेक। कहो स केती (त)=कहि केती हेक। दूरि (क)।
केवल (क ख ग ध त झ) में।

६४७—सुणी (ख)। बीनती (क)। न (ख)=म। करहे (ख)। कूँटै करहै लघीया (क ग)। उळघीयौं (ध)। आडवळारो वंग (ख)।
केवल (क ख. ग. ध त) में।

६४८—ऊचा (च)। पंथ (ज)=डूंगर। लगा (ज)। कुंट्यौ (ज) कुहटे (थ)। मा (थ)। गी पिण त्रिण पाँवाँ थका मति घोडा मारेह [(ज) में द्वितीय पंक्ति]।

कूटि कटाड़ी इणि करह, हिव नरवर नेड़ेह।
ऊँमर, सुणि सुझ वीनती, घोड़ा म म्मारेह ॥६४६॥

(ढोला का नरवर लौट आना)

ऊँमर मन विलखउ हुयउ चारण वचन सुणेह।
उणिहि ज पँथ पाछउ वळ्यउ, साल्ह निचत करेह ॥६५०॥
ढोलउ नरवर आवियउ मंगळ गावइ नार।
उछव हुवउ आयउ घरे हरख्यउ नगर अपार ॥६५१॥

(दंपति विनोद)

साल्हकुमार विलसइ सदा काँमिण सुगुण सुगात।
माळवणीनूँ एक निस, मारवणी दुइ रात ॥६५२॥

६४६—ढोला ने इन्हीं हाथों से ऊँट का बंधन कटवाया है और अब तो वह नरवर के निकट होगा। हे ऊमर, मेरी विनती सुन, घोड़ों को मत मार।

६५०—चारण के वचन सुनकर ऊमर मन मे उदास हो गया और उसी मार्ग से वापिस लौट गया और इस प्रकार साल्हकुमार को निश्चित कर गया।

६५१—ढोला नरवर लौट आया। वहाँ नारियाँ मंगल गीत गाने लगीं और उत्सव होने लगा। ढोला घर लौट आया (यह सुनकर) सारा नगर बहुत हर्षित हुआ।

६५२—अब साल्हकुमार सद्गुणवती और सुंदरी नारियों के साथ नित्य

६४६—कूँट (क)। करढ (क. घ) = करह। नळवर। (ग)। गढ नेडेह (क घ)=नेडेह। छै तेह (झ)=नेडेह। सुण (ग)। न (ख ग)=म। घोडा दौड न मारेह (झ)।

केवल (क ख. ग. घ. झ त) में।

६५०—मनह (ख)। कियौ (क. घ)। भणेह (झ)=सुणेह। उण (क. ग)। नचीत (ख)।

केवल (क. ख. ग घ. झ. त) मे।

६५१—नळवर (घ)। नारि (क. ख)। हूवा (ग) करि (क. घ)= हूवो। आया (ग) हरख्या (क)।

६५२—कामणि (ग)। निशि (क)। मारवणी (ख) = माळवणी। राति (ग. त)।

केवल—(क. ख. ग. ए. त) मे।

मारवणी नइ माळविण ढोलउ तिण भरतार।
एकणि मंदिर रँग रमइ, की जोड़ी करतार ॥६५३॥

(मारवाड़ की निंदा)

ततखण माळवणी कहइ, सॉभळि कंत सुरंग।
सगळा देस सुहॉमणा, मारू देस विरंग ॥६५४॥
वाळऊँ, बाबा, देसड़उ, पॉणी जिहॉ कुवॉह।
आधीरात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसॉं मुवॉह ॥६५५॥

सुख भोगने लगा। उसने मालवणी को एक रात और मारवणी को दो रातें दीं (एक रात मालवणी के साथ रहता और दो रात मारवणी के साथ)।

६५३—मारवणी, मालवणी और उनका पति ढोला एक ही महल में आनंद से रंग मनाते हैं। विधाता ने यह (अपूर्व) जोड़ी बनाई।

६५४—उस समय मालवणी कहती है—हे रसिक कंत, सुनो, सारे देश सुहावने हैं, किंतु एक मारू देश (मारवाड़) ही विरंगा (नीरस) है।

६५५—हे बाबा, ऐसा देश जला दूँ जहॉ पानी गहरे कुँवों मे मिलता है और जहॉ पर (लोग) आधी रात को ही पुकारने लगते हैं मानों मनुष्य मर गए हों।

६५३—मारू अर माळवणी (क. ख ग व)। ढोलै (क ख ग व) त्याहरे ढोलो (न)=ढोलो तिण। एकण (ग. न) सुखे (न)=रँग। रँग में (क ग)=रँग रमइ। कीई (ग) करि (न)=की।

केवल (क ख. ग व न) में।

६५४—सँभळ (न)। सिगळा (ग)।

केवल (क ग ग व) में।

६५५—बाळूँ (क ख ग व न)। बाबा वाळूँ (च थ)। ढोला प्रीतम (न)=बाबा। जहॉं पाणी (क ख) जिहॉं पॉंणी (ज. थ. न. च)। कुणहि (च) कुवेह (ज) कूआ (न) कूवेहि (थ) राते (न) रातइ (थ)। पुंकारण (च) कूकवा (ज) कुकुयउ (थ) कूकुआ (न) बिहांवणौ (क. ख. ग. घ)= कुहक्कड़ा। ज्यौं (क ख. ग व) जिउ (च) जाणें (ज) जिम (न)। मांणिसां (न) माणस (च. न)। मुणहि (च. थ) मुवेह (ज) मूआह (न) मुवां (ग)।

वाळउँ, बाबा, देसड़उ, पाँणी संदी ताति।
पाणी केरइ कारणइ प्री छंडइ अधराति ॥६५६॥

[वाळूँ, ढोला, देसड़उ, जइँ पाँणी कूँवेण।
कूँ कूँ वरणा हथ्थड़ा नहीं सुँ घाढा जेण ॥६५७॥]

बाबा, म देइस मारुवाँ, सूधा एवाळाँह।
कंधि कुहाड़उ, सिरि घड़उ, वासउ मंझि थळाँह ॥६५८॥

बाबा, म देइस मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि।
हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सीचंती य मरेसि ॥६५९॥

६५६—हे बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी का भी कष्ट है और पानी (निकालने) के लिये प्रियतम आधी रात को ही छोड़कर चले जाते हैं।

६५७—हे ढोला, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी गहरे कुँवो मे मिलता है और जहाँ कुंकुमवर्णवाले सुदर हाथ उसको नहीं निकालते।

६५८—बाबा, मारू देश मे सीधे सादे भेड़ चरानेवालों को मुझे मत देना (विवाहना), जहाँ कधे पर कुल्हाडा और सिर पर घड़ा रखना पड़ेगा और थळी (मरुभूमि) के बीचों बीच रहना पड़ेगा।

६५९—बाबा, मुझे मारू देश मे मत देना, कुमारी चाहे रह जाऊँ।

६५६—वाळूँ (क. ख. ग. घ) वाळुँ (न)। बाबा वाळूँ (च. थ)। पांणि (च)। जहाँ पाँणी की (क ख. ग. घ)=पांणी सदी की (क. ख. ग घ. न) हंदी (ज) हुती (च)। तात (क. ख ग. घ) वात (च थ)। धण एकली सुइ रहे (क. ख ग. घ, न) एक घडी के कारणें (ज)=पांणी केरइ कारणइ। प्रीव (ज) प्रिय (थ)। सीचै (क. ख ग. घ. न) छांडै (ज)=छंडइ। आधी (च ग थ)। रात (ज. क. ख. ग. घ)।

६५७—केवळ (ज) मे।

६५८—न (च थ)=म। देईस (क ख. ग. घ. झ) मारवाडि (ज) मारुई (च थ)। जावा (ज. थ. च)=सूधा। गोवाळांह (क. ख. ग. घ न) एहवळाँहँ (ज)। सिर (क ख. ग. घ. ज)। मझि (थ) मझि (क. ख. ग. घ)।

६५९—न (च. थ)। देई (ग. च. ज)। मारुइ (च. थ) मारुवाडि (ज)। थळि (च) वळि (थ)। कुमारि (क. ख. ग. घ) कुँआरि (च. ज) कुँवारी (थ)। राह (थ)। हुचै पेट भरेस (ज)=वर कूँआरि रहेसि। हाथ (च. ज. क. ख. ग. घ)। सिर (क. ख ग घ. च. ज)। पांणी भरति (ज) सीचता (थ) सीचंती (क. ख. ग. घ) सीचतौ (झ)=सीचंती य। कूवाह (थ)=मरेसि।

मारू, थाँकइ देसड़इ एक न भाजइ रिड्डु।
ऊचाळउ क अवरसणउ, कइ फाकउ, कइ तिड्डु ॥६६०॥

जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाळा रूँख।
आके फोगे छाँहड़ी, हूँछाँ भाँजइ भूख ॥६६१॥

पहिरण - ओढण कंबळा, साठे पुरिसे नीर।
आपण लोक उभाँखरा, गाडर छाळी खीर ॥६६२॥

वहाँ हाथ में कटोरा (जिससे घड़े में पानी भरा जाता है), और सिर पर घड़ा, इस प्रकार पानी ढोती ढोती ही मर जाऊँगी।

६६०—हे मारवणी, तुम्हारे देश में एक भी कष्ट दूर नहीं होता, या तो ऊचाळा होता है, या वर्षा नहीं होती, या फाका या टिड्डी आ पड़ती है (एक न एक कष्ट सदा लगा ही रहता है)।

६६१—(तुम्हारा देश ऐसा है) जिस भूमि में पीणे साँप हैं, जहाँ करील और ऊँटकटारा घास ही पेड़ गिने जाते हैं, जहाँ आक और फोग के नीचे ही छाया मिलती है और जहाँ भुरट नामक कँटीली घास के बीजों से ही भूख दूर होती है।

६६२—जहाँ पहिनने ओढ़ने के लिये कंबल ही मिलते हैं, जहाँ साठ पुरुष नीचे पानी मिलता है, जहाँ लोग स्वयं भ्रमणशील (?) हैं, और जहाँ भेड़ और बकरी का ही दूध मिलता है।

६६०—मारवाड़िकै (झ) मारवाड़कै (न) मारुआड़ि कै (क-भू, थ)=मारू थाँकइ। देसमैं (झ न) देस मांहि (क-भू) देस मइँ (थ)। मारूकोइ देसमांहि (च)। तीजे (क. ख) जावै (न) जाइ (च) जाई (थ) जाग्रै (क-भू) भाजइ। रीड (क ख) रडु (क-भू) पीड (न. झ) रिड (ग)। कबही होई (ग) कबही हुवै (न) कब्ही होइ (च) कदीही होई (थ)=ऊचाळउ क। अवरसणा (क-भू)। कबही मेह बरसे नहीं (झ)। का (क. ख. घ)=कइ। पाका (ग) फाकउ (क. ख ग. घ.झ)। का (क.ख)। कबही फाका (न)=कइ फाका कइ। तीड (क ख.ग.न.झ)।

६६१—पीवणा (थ)। जिहाँ छै मांगर रूखड़ो (ज)=जिण भुइ पन्नग पीयणा। कटाळो (ज) कूवा कठै (थ)=कयर कँटाळा। हुंचै (ज) फूंगा (घ)। मुख (थ)। हुंचा तणा भुरठ (थ)।

६६२—पहरणा (ज)। पुरसे (च)। देस खरो ही मंखरो (ज)।

(मालव देश की निंदा)

वळती मारवणी कहइ, मारू देस सुरंग।
वीजा तउ सगळा भला, माळव देस विरंग ॥६६३॥
वाळूँ, वावा, देसड़उ, जहाँ पाँणी सेवार।
ना पणिहारी झूलरउ, ना कूवइ लैकार ॥६६४॥
वाळूँ, बाबा, देसड़उ, जहाँ फीकरिया लोग।
एक न दीसइ गोरियाँ, घरि घरि दीसइ सोग ॥६६५॥

(मारवाड़ की प्रशसा)

मारू देस उपन्निया, तिहाँ का दंत सुसेत।
कूम्फ बची गोरंगियाँ, खंजर जेहा नेत ॥६६६॥

६६३—उत्तर मे मारवणी कहती है कि मारू देश सुरगा है, और सब देश तो अच्छे हैं पर मालव देश विरंगा है।

६६४—बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी पर सेवार छाया रहता है और जहाँ न तो पनिहारिनों का झुड आता जाता रहता है और न कूँवों पर पानी निकालनेवालों का लयपूर्ण शब्द ही होता है।

६६५—बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ के लोग फीके (नीरस) हैं, जहाँ एक भी गोरी (सुदरी) दिखाई नहीं देती, और जहाँ (काले वस्त्र पहनने का रिवाज होने के कारण) घर-घर शोक छाया-सा दिखाई देता है।

६६६—जो मारू देश मे उत्पन्न हुई है उनके दाँत बड़े उज्जवल होते हैं, वे कुंम्फ पक्षी के बच्चो की भाँति गौर वर्ण होती हैं और उनके नेत्र खंजन जैसे होते हैं।

६६३—मारू (क. ख)=माळव। वळ बीजा केइ क भला पिण मालव देस विरंग (न)।

६६४—ललकार (भ)।

६६५—प्रातम (न) = बावा। फीकरिया (ग. न)। गोरड़ी (न) घर घर (क. ख. न)।

६६६—उपनीया (ग)। ताहकां (ग)। सपेत (ग) सुस्वेत (च)। कूंम्की (ग)। वचा (ग)। खंज गली लांग अगिया (थ)।

मारू देस उपन्नियाँ, सर ज्यउँ पध्धरियाह।
कड़वा कदे न बोलही, मीठा बोलणियाह ॥६६७॥
देस निवाणू, सजळ जळ, मीठा बोला लोइ।
मारू कॉमिणि दिखणि धर हरि दीयइ तउ होइ ॥६६८॥
देस सुरंगउ, भुइं निजळ, न दियाँ दोस थळाँह।
घरि घरि चंद वदन्नियाँ, नीर चढइ कमळाँह ॥६६९॥
सुणि, सुंदरि, केता कहाँ मारू देस वखाँण।
मारवणी मिळियाँ पछइ जाणयउ जनम प्रवाँण ॥६७०॥
झगड़उ भागउ गोरियाँ, ढोलइ पूरी सख्ख।
मारू हळियाइत हुई; पाँमी प्रीच परख्ख ॥६७१॥

६६७—मारू देश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ तीर की भाँति सीधी होती हैं, वे कभी कटुवचन नहीं बोलतीं और स्वभाव से ही मीठी बोलनेवाली होती हैं।

६६८—वहाँ की भूमि नीची और उपजाऊ है, पानी स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद है, और लोग मीठे बोलनेवाले हैं। ऐसे मारू देश की कामिनी, ईश्वर ही दे तो, दक्षिण की भूमि में मिल सकती है।

६६९—ढोला कहता है—

(मारवाड़ का) देश सुरंगा है, यद्यपि भूमि निर्जल है—थळी को दोष मत दो—वहाँ जल पर खिले हुए कमलों के समान, घर-घर चंद्रवदनी स्त्रियाँ हैं।

६७०—हे सुंदरी, सुनो, मैं मारू देश का कितना बखान करूँ। मारवणी के मिलने के बाद मैंने जन्म को प्रमाणित (सफल) जाना है।

६७१—ढोला ने मारवणी की साख भरी (समर्थन किया), और दोनों

६६७—सरि जिम (ज) पधरीयाह (ज ग) पधरीयाँ (च)। कडुआ बोल न जाणही (ध) कडवा बोल ण बोलही (ज) कडवा बोल ण जाणही (च) सो मीठा (च)=मीठा।

६६८—निवाणि (ज)। जळ सजळ (थ)। बोली (ज थ)। दखण धरा (च) दखिण धर (ध)। जे हरि (ज) जौ हरि (च)=हरि। जे हरि दिय त होइ (ध)।

६६९—कमळ (ग)। वदनीया (ग)। चंदा (क)। चढौ (ध)

६७०—कहुँ (च) कहू (थ)। पछै (ध)। जाणां (च) जाण्या (थ)।

६७१—दे त्रियाँ (ग ज)। कँवरै (ज)=ढोलै। सखिख (च) साख (ज) माखि (थ)। रळिआइत (ज थ)। पीव (ज) परख (ज)।

माळव-देस विखोडिया, मारू किया वखाण ।
मारू सोहागिण थई सुंदरि सगुण सुजाण ॥६७२॥
जिम मधुकर-नइँ केतकी, जिम कोइल सहकार ।
मारवणी-मन हरखियउ तिम ढोलइ भरतार ॥६७३॥

उपसहार

आणद अति, ऊछाह अति नरवर मॉहे ढोल ।
ससनेही सयणॉ-तणॉ कळिमॉ रहिया बोल ॥६७४॥

———

स्त्रियों का झगडा मिट गया । मारवणी आनदित हुई । उसने प्रियतम के प्रेम की परीक्षा पा ली ।

६७२—ढोला ने मालव देश की अप्रशसा की और मारू देश की प्रशंसा की । इस प्रकार सद्‌गुणवती और चतुर मारवणी सौभाग्यवती हुई ।

६७३—जिस प्रकार केतकी से मधुकर का, और जिस प्रकार आम्रवृक्ष से कोकिल का मन हर्षित होता है उसी प्रकार ढोला पति से मारवणी का मन हर्षित हुआ ।

६७४—अत्यत आनंद और बड़े उत्सवो के साथ ढोला नरवर मे रहने लगा । उन प्रेमी स्नेहियों की वार्ता इस कलियुग मे रह गई है ।

६७२—मालवणी (क ख. घ. न) । बिखोडियो (ग. न) । कीयां (न) । सोहागणि (क ख) सुहागण (ग) । हुई (न) = थई । सुगुण (ग न) ।

६७३—सिर (न) = नइँ । सुं (न)=मन । ज्यो (क ख ग) = तिम । सु ढोलौ (ग) = ढोलइ । ढोळो (न) । ज्युं हंस सोहै मांनसर ज्युं ढोलौ मारूरै भरतार [(क) मे द्वितीय पक्ति] ।

६७४—अधिक (न) = अति । वाज्या (न) = माँहे । ससनीहौ (क ख) । सयणां (ग न) । तणौ (क ख) तणी (न) । मैं (ग न) । रहियौ (ग) ।

परिशिष्ट

नोट

परिशिष्ट मे भिन्न भिन्न प्रतिलिपियों मे उपलब्ध पद्य अथवा गद्य का वही अंश दिया गया है जिसका हमारे अनुसार वाचक कुशललाभ से पूर्व की 'ढोलामारूरा दूहा' की असली प्राचीन प्रति में, यदि प्राप्य होती तो, होना संभव नहीं था।

जो दोहे मूल में रख लिए गए है उनकी सख्या, मूल के अनुसार, परिशिष्ट में उद्धृत प्रतिलिपियों में दे दी गई है जिससे यदि कोई विद्वान् उन प्रतिलिपियों के पूर्ण रूप को खड़ा करना चाहे तो, सख्याओं के स्थान पर मूल के उन्हीं संख्याओंवाले दोहों को रखकर, सहज ही में कर सकते हैं।

परिशिष्ट (१)

टिप्पणी

शीर्षक

ढोला—अप० ढोल्ला। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के दुर्लभ शब्द से हुई बताई जाती है (दुर्ल्लभ, दुल्लभ, दुल्लह, डुल्लह, ढोल्लह, ढोल्ल, ढोल्ला)। अपभ्रंश कविता में यह शब्द नायक के अर्थ में आता था। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण के अपभ्रंश भाग में यह शब्द तीन बार आया है[1] और तीनों बार नायक के अर्थ में। प्राकृत[2]-पिंगल-सूत्र में भी एक स्थान पर यह शब्द आया है और टीकाकारों ने यहाँ पर उसका अर्थ ढोल किया है पर वीर, नायक, नेता यह अर्थ भी किया जा सकता है।

राजस्थानी भाषा में यह शब्द बहुत प्रचलित रहा है और आज भी है। राजस्थान की ग्रामीण कविता एवं गीतों में इसका बहुत प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ नायक, पति या वीर होता है और यह बहुधा संबोधन में ही प्रयुक्त होता है। दो चार उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(१) गोरी छाई छै जी रूप, ढोला, धीराँ-धीराँ आव।

---

१. (१) ढोल्ला सामला, धण चंपावण्णी। (८-४-३३०)

(२) ढोल्ला, मइँ तुहुँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु।
णिद्दए गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु॥ (८-४-३३०)

(३) ढोल्ला; एह परिहासडी अइभ न कवणहिं देसि।
हऊँ झिज्जउँ तउ-केहिँ, पिअ, तुहुँ पुणि अन्नहि रेसि॥ (८-४-४२५)

२ ढोल्ला मारिय ढिल्लि महँ मुच्छिउ मेच्छ-सरीर।
पुर जज्जल्ला मंतिवर चलिअ वीर हम्मीर॥
चलिअ वीर हम्मीर पाअ - भर मेइणि कंपइ।
दिगमग णह अंधार धूलि सुररह आच्छाहिइ॥
दिगमग णह अंधार आण खुरसाण कउल्ला।
दरमरि दमसि विपक्ख मारु ढिल्ली मह ढोल्ला॥

(२) सावण खेती, भँवरजी, थे करी जी, हाँजी ढोला, भादूड़े करयो छो निनाण। सीट्याँरी रुत छाया, भँवरजी, परदेश में जी, ओ जी म्हाँरा घणा-कमाऊ उमराव, थाँरी प्यारी ने पलक न आँवड़े जी।

(३) गोरी तो भीजै, ढोला, गोखडे, आली जो भीजै जी फौजाँ माँय। अब घर आय जा आसा थारी लग रही हो जी।

(४) दूधाँने सीं चावो ढोला जीरो नीं बूडो ओ राज।

हमारी समति मे यह ढोला शब्द किसी व्यक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। किसी प्रसिद्ध लोकप्रिय व्यक्ति का नाम ढोला (स० दुर्लभराज) रहा होगा और बाद मे उसका नाम नायक के अर्थ मे प्रचलित हो गया होगा। राधा और कृष्ण वास्तविक व्यक्ति थे परतु अत मे वे समस्त कविता के नायक-नायिका हो गए। यह ढोला या दुर्लभराज कौन था यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता पर हमारा अनुमान है कि यह ढोला इसी ढोलामारूरा दूहा काव्य का नायक था। यह ढोला एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। वह जयपुर के राजवश का पूर्व पुरुष था। जयपुर का कछवाहा राजवश पहले नरवर में राज्य करता था। इस नरवर को नल नाम के राजा ने बसाया था और इसी नल का पुत्र ढोला था। ढोला की दो तीन पीढियों के बाद कछवाहे राज-पुताने मे चले गए और वहाँ राज्य करने लगे। इतिहास के अनुसार ढोला का समय सवत् १००० के आसपास आता है। नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है कि इस ढोला के दो स्त्रियाँ थीं जिनमें एक मारवाड की और दूसरी मालवे की थीं। राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक मुशी देवीप्रसादजी लिखते हैं कि आमेर के कछवाहों की लबी चौड़ी वशावली में लिखा है कि नल नरवर का राजा था जिसकी रानी दमयती थी और ढोला उसका बेटा था जो बहुत बलवान् और स्त्रियों का रसिया था। वह मारवणी नाम की एक स्त्री को बहुत प्यार करता था। ढोला और मारवणी के विवाह तथा प्रेम की कथा का राजस्थान में बहुत प्रचार हुआ और ढोला मारू ये नाम घर घर में प्रसिद्ध हो गए। धीरे धीरे इन्होने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि ये नायक-नायिका के साधारण अर्थ मे प्रयुक्त होने लगे।

मारू—स० मरु से। इसका अर्थ है मरु का या मरु की। यहाँ यह शब्द स्त्रीलिंग है। इस शब्द के अनेक रूपातर मिलते है जैसे मारू, मारुवी, मारवी, मारुवणी, मारवणी, मारवण, मरवण। राजस्थान मे रानी का नाम प्रायः देश के नाम पर रख दिया जाता है, जैसे मीराँ के लिये मेड़तणी राणी (मेड़तावाली

रानी)। इसी प्रकार ढोला की इस रानी का नाम मारवणी प्रसिद्ध हुआ। उसकी दूसरी रानी मालवा की थी और वह माळवणी (माळवे की) नाम से प्रसिद्ध थी। कभी कभी कन्या का नाम भी अपने देश पर रख दिया जाता है। सभव है, ढोला की स्त्री मारवणी का यह नाम उसके पितृगृह का ही रखा हुआ हो।

ढोला की भाँति मारू या मारवण शब्द भी राजस्थान मे खूब प्रचलित रहा है। गीतों आदि मे इसका बहुत प्रयोग मिलता है। वर्तमान काल में नायिका के अर्थ में मारू शब्द नहीं आता, मारवण या मरवण आता है। मारू का प्रयोग अब पुँल्लिग मे, नायक के अर्थ में होता है और वह कभी कभी ढोला शब्द के साथ भी आता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते है—

(१) उर चवडी, कड़ पातळी, ठावो-ठावो मंस।
ढोला, थारी **मारवण** पाबासररो हस॥

(२) **मारवण** थारे तो नैणाँरो पाणी लागणो।
हो प्यारी **मारवण**, थारा नैणाँरो पाणी लागणो॥

(३) मदछकिया महाराज, थाँने कण तो पियाई दारूडी।
बोलो नी, दारूरा **मारू**, पूछै थाँरी **मारूड़ी**॥

(४) इतरा मे, **ढोला-मारू**, थे ही जी गँवार। नित उठ घुडला थे कसो जी म्हाँरा राज। इतरा में, **मरवण**, म्हे ही ए सपूत, नित उठ रण में म्हे ही चढाँजी म्हारा राज।

मारू इस काव्य की नायिका है। यह पूगळ के परमार राजा पिंगळ की कन्या थी। सभव है कि इसकी कथा के अत्यत प्रसिद्ध होने के बाद व्यक्तिवाचक मारू या मारवणी शब्द जातिवाचक बन गया हो और नायिका के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा हो।

रा—पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) मे सबधकारक का चिह्न रो (पुरानी वर्त्तनी मे रउ या रौ) है। हिंदी की भाँति राजस्थानी मे भी भेद्य के अनुसार यह चिह्न बदल जाता है—

पुँल्लिग एकवचन—रो (रउ, रो)	= (हिं०) का
पुँल्लिग बहुवचन—रा	= (हिं०) के
विकारी रूप (पुँल्लिग)—रे (रइ, रै)	= (हिं०) के
(स्त्रीलिंग)—री	= (हिं०) की

प्राचीन राजस्थानी कविता में रो के स्थान पर अन्यान्य संबंध कारक के प्रत्यय भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—को (पूर्वी राजस्थानी और ब्रज), नो (गुजराती), चा (मराठी), जो (सिंधी), दो (पंजाबी)।

रो प्रत्यय की उत्पत्ति प्रा० और अप० केरो-केरउ प्रत्यय से हुई है।

दूहा—अप० हिं० दोहा। इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत दोधक या दोग्धक शब्द से की जाती है। हमारी सम्मति में दोहा अपभ्रंश का ही शब्द है। यह छंद दो पंक्तियों में लिखा जाता है इसी कारण इसका यह नाम पड़ा है। राजस्थानी में यह दूहो (बहु० दूहा) कहलाता है। अपभ्रंश काल से यह साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय छंद है। छोटे होने के कारण इसको याद रखने में सुभीता होता है। राजस्थान में आज भी हजारों दूहे लोगों की जबान पर पाए जाते हैं।

राजस्थानी में दूहा छंद सब छंदों का मानो प्रतिनिधि है। अतः कभी कभी सामान्य छंद अर्थ में भी इसका प्रयोग कर दिया जाता है।

राजस्थानी में सोरठा भी दोहे के अंतर्गत समझा जाता है और उसे सोरठियो दूहा (= सोरठ देश का दोहा) कहते हैं। जैसे—

> सोरठियो दूहो भलो, भलो, भलि मरवणरी बात।
> जोबन छाई - धण भली, तारॉ छाई रात॥

राजस्थानी में दूहा चार प्रकार का होता है। चारों प्रकारों के नाम ये हैं—

(१) दूहो, (२) सोरठो, (३) बड़ो दूहो या अंतमेळ दूहो—१–४ चरण ११ मात्रा के, २–३ चरण १३ मात्रा के, (४) तूँवेरी या मध्यमेळ दूहो—१–४ चरण १३ मात्रा के, २–३ चरण ११ मात्रा के। तुक सदा ११ मात्रावाले चरणों की ही मिलती है।

गाहा १—गाहा—अप० प्रा० गाहा, सं० गाथा। संस्कृत पिंगल में इस छंद का नाम आर्या है पर प्राकृत और अपभ्रंश में यह गाथा या गाहा नाम से ही प्रसिद्ध है। प्राकृत साहित्य का मुख्य छंद गाथा ही है। हाल कवि की गाथा सप्तशती इसी छंद में लिखी हुई है। गाथा छंद का प्रयोग बहुत पुराना है। प्राचीन बौद्ध साहित्य में पाली और संस्कृतमिश्रित गाथाएँ मिलती हैं जिनकी भाषा को कई विद्वानों ने भ्रमवश संस्कृत और पाली के बीच की भाषा माना है।

राजस्थानी मे (और हिंदी मे भी) गाथा छद का प्रयोग नहीं होता। राजस्थानी के प्राचीन आख्यानक काव्यो मे कहीं कहीं गाथाएँ मिलती है। वे उपदेशात्मक अवतरणो की भॉति आई है। इनकी भाषा बडी विचित्र प्राकृत अपभ्रश एवं राजस्थानीमिश्रित होती है। उसे टूटी फूटी प्राकृत कहना चाहिए। उससे प्राचीनत्व की झलक अवश्य उत्पन्न हो जाती है।

पूगंळि – पूगळ + इ (अधिकरण का प्रत्यय) = पूगळ मे।

पूगळ बीकानेर राज्य मे बीकानेर नगर से कोई ५० मील पश्चिमोत्तर मे है। पहले यहॉ परमार राजपूतो का राज्य था और पीछे यह जेशळमेर के भाटियो के अधीन हुआ। बीकानेर राज्य की स्थापना के समय यह एक स्वतत्र राज्य था और इसका शासक बडा प्रतापी एव प्रभावशाली था। बीकानेर के सस्थापक राव बीकोजी ने अपना प्रभाव बढाने के लिये उसकी राजकुमारी से विवाह किया। पीछे से यह बीकानेर राज्य मे मिला लिया गया। इस समय दूसरे दरजे की रियासत है। पूगळ के ठाकुर को राज्य की ओर से वशपरपरागत राव की उपाधि प्राप्त है।

परमारों का मूल राज्य आबू के आसपास था जहॉ से वे मारवाड़, सिंध, मालवा और गुजरात तक फैल गए। परमारों के दो बड़े प्रतापशाली राज्य थे। एक आबू मे और दूसरा मालवा मे, जिसकी राजधानी धार थी। आबू के परमारो के राज्य के नौ बड़े विभाग थे जो बाद मे स्वतत्र हो गए। इन्हीं नौ राज्यो के कारण मारवाड राज्य अब भी नौ-कोटी मारवाड कहलाता है। इन नौ राज्यों मे एक पूगळ भी था।

इस समय पूगल की प्राचीन महत्ता सर्वथा नष्ट हो चुकी है। साहित्य और जनसमाज मे पूगळ की पद्मिनी स्त्रियॉ बहुत प्रसिद्ध हैं। अब भी उधर की स्त्रियॉ सुंदर समझी जाती हैं।

पिंगळ—यह पूगळ का परमारवशी राजा था। इतिहास मे इसका पता नहीं चलता। (तत्कालीन इतिहास की अभी पूरी खोज हुई भी नहीं है)।

राऊ—स० राजा, प्रा० राअ, राय, राउ।

नळ—यह कछवाहा वंश का राजा जयपुरवालों का पूर्वज था। उस समय कछवाहों का राज्य ग्वालियर के आसपास था। ये पहले कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों के सामंत थे फिर उनके निर्बल होने पर स्वतत्र हो गए। नळ ने नळवर या नरवर नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी

बनाया। भाट इसे प्रसिद्ध पौराणिक राजा नल (जो दमयंती का पति था) बतलाते हैं।

नरवरै—नरवर+ए (अधिकरण प्रत्यय) नरवर में। नरवर ग्वालियर राज्य में एक कसबा है।

अदिठा—सं० अदृष्टाः, प्रा० अदिठ्ठा। यद्यपि परस्पर देखे हुए नहीं थे। यह बहुवचन का रूप है, एकवचन अदिठ या अदिठो होगा।

दूरिठ्ठा—सं० दूरस्थिताः या दूरे स्थिताः।

थे—सं० थे। यह शब्द किसी प्रति में नहीं है, केवल (भ) प्रति में दूरठाय पाठ है। छंद की मात्राएँ पूरी करने के लिये हमने इसे जोड़ दिया है।

दईय—दई+य (संबंध प्रत्यय)=दैव का। सं० दैव, प्रा० दइव, दइअ, राज० दइ।

दूहा २—दूकाळ—सं० दुकाल। आधुनिक राजस्थानी में अकाल के लिये विशेषतः काळ शब्द आता है। दुकाळ भी कभी कभी कह देते हैं।

थियुँ—वर्तमान देशभाषाओं में संस्कृत भू और प्राकृत हुव धातु के अनेक रूपांतर हो गए हैं। गुजराती में 'होना' के लिये 'थवुँ' क्रिया है। हिंदी में वर्तमान और भविष्य में होना के रूप 'है' और 'होगा' होते हैं परंतु भूतकाल में 'था' हो जाता है। राजस्थानी में तीनों कालों में 'ह' ही रहता है (है, हुसी, हो तथा हुवै है, हुसी, हुयो) पर पुरानी कविता में कई प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। भूतकाल में हुवउ (हुवौ, हुवो) के अतिरिक्त भयउ (भयौ-भयो), हुयउ, थयउ, थियउ, थायउ, थ्यउ (थ्यौ, थ्यो) आदि रूप पाए जाते हैं। भूतकाल के इन रूपों में लिंगभेद भी होता है। थयुँ थयूँ, थियुँ-थियूँ ये रूप नपुंसक लिंग के हैं। माध्यमिक और आधुनिक राजस्थानी में नपुंसक लिंग नहीं होता पर प्राचीन राजस्थानी के प्रभाव के कारण उसके नपुंसक लिंग के कुछ रूप माध्यमिक राजस्थानी में अवशिष्ट रह गए। वैसे नपुंसक लिंग और पुल्लिंग में कोई अंतर नहीं।

इस शब्द की व्युत्पत्ति सं० स्था (स्थित) और प्रा० था (थिअ-थिय) से की जाती है।

किणही—मिलाओ—हिं० किसी (किस+ही)। संस्कृत किम्, प्रा० क, अप० काइँ कवण, राजस्थानी में कुण या कोण (हिं० कौन) हो जाता

है। उसका विकारी रूप किए या के (कभी कभी कुए भी) होता है। उसी के आगे ही अव्यय जुड़ा हुआ है। यह 'ही' अव्यय कभी कभी सानुनासिक कर दिया जाता है। जैसे—किएहीँ अवगुए कूँझड़ी कुरळी मॉझिम रच। (दूहा ५७)

विसेसि—विसेस (विशेष) + इ (कर्ता का प्रत्यय)।

ऊचाळउ—स० उच्चलन; प्रा० उच्चालो। अकाल पडने पर मरुस्थल की कई जातियाँ अपने परिवार तथा पशुओं के साथ स्वदेश को छोडकर किसी पानी और घासवाले स्थान को चली जाती थीं। कभी कभी सभी लोग ऐसा करते थे। आजकल सब लोग तो ऐसा नहीं करते किंतु गाय, बैल आदि पालनेवाली जातियाँ कभी कभी ऐसा करती हैं। राजस्थान के लोग प्रायः मालवा की ओर चले जाते थे। ऐसे जानेवाले लोगों को मऊ कहा जाता था— माळवे जातोड़ी मउरी राख लीजो लाज। (नरसी-मेहतोरो मायेरो)

कियउ—सं० कृत, प्रा० कअ-कय, किअ-किय। मिलाओ—हिं० किया। करणो क्रिया का सामान्य भूतकाल। यह रूप कविता मे ही विशेषतया आता है। बोलचाल में 'कस्यो' अधिक प्रयुक्त होता है। सामान्य भूतकाल के अन्य रूप—कस्यउ, कीधउ, किद्धउ, किद्ध, कीध्यउ।

हिंदी की भाँति राजस्थानी के अधिकाश भूतकालों के रूप भूत कृदत से बने है और उनमे, यदि क्रिया सकर्मक है तो कर्म के लिंग-वचन-पुरुषानुसार परिवर्तन होता है।

नरवरचइ—चइ (चै-चे) चो का विकारी रूप है। चो सबध का प्रत्यय है। आधुनिक भाषाओं मे मराठी के सबध कारक मे चा प्रत्यय लगता है। पुरानी राजस्थानी तथा गुजराती कविता मे भी इसका प्रयोग अन्यान्य कई संबध प्रत्ययों के साथ साथ हुआ है। मिलाओ—ऊपर 'रा' प्रत्यय पर टिप्पणी।

दूहा ३—दियउ—सं० दत्त, प्रा० दअ-दय, दिअ-दिय। सामान्य भूतकाल, पुल्लिग। अन्य रूप—दयउ, दीधउ, दीध्यउ, दिद्धउ, दिद्ध। मिलाओ—दूहा न० २ मे 'कियउ' पर टिप्पणी।

जउ—स० याः, प्रा० जो।

राजवियाँ—राज + अवी प्रत्यय। राजवी शब्द के बहुवचन का विकारी रूप। विभक्ति प्रत्यय विकारी रूप के आगे जोड़े जाते हैं पर पुरानी भाषा में

विशेषतः कविता मे ये प्रत्यय लुप्त भी हो जाते हैं। यहाँ संबंध का प्रत्यय लुप्त है। अर्थ है राजवियों के। राजवी शब्द का अर्थ राजा और राजवंशी दोनों होता है। राजा के निकट संबंधी राजस्थान मे राजवी कहे जाते हैं।

सवि०—सं० सर्व, प्रा० सव्व, सव, सवि। अन्य रूप—सउ, सौ, सहु, सहू, सब, सव्व।

रावळा—सं० राजकुल, प्रा० राअउल, राउल। बहुवचन। राजस्थानी में 'रावलो' का अर्थ राजमहल या जनाना महल होता है। लक्षणा से 'रानियों का समूह' अर्थ भी ग्रहण किया जाता है।

अइ—ओ शब्द का बहुवचन=ये। आधुनिक रूप ऐ, अप० एइ।

लोग—यहाँ नौकर चाकरों से अभिप्राय है।

दूहा ४—तणउ—आधुनिक रूप तणो। संबंध-प्रत्यय। इसमें भेद्य संज्ञा के लिंग-वचनानुसार परिवर्तन होता है (तणा, तणी, तणे तणै तणइ)।

रॉणि—सं० राज्ञी, प्रा० रण्णी, अप० राणी, हिं० रानी। पुल्लिंग राणो (हिं० राणा०)। छंद की मात्राएँ ठीक करने के लिये णी को ह्रस्व कर दिया गया है।

दूहा ५—पदमिणी सं० पद्मिनी। अन्य रूप—पदमणी-पदमणि, पदमिणि-पदमणि, पदमण। स्त्री की चार जातियों में पद्मिनी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वसुंदर जाति होती है। सिंहल एवं पूगल की पद्मिनी स्त्रियाँ साहित्य मे प्रसिद्ध है।

कभी कभी सामान्य स्त्री के अर्थ मे भी यह शब्द प्रयुक्त होता है—पीउ चहे बिन पदमणी पूत न लेहि उछंग (कबीर)।

तिणि—सं० तत्। मिलाओ—हिं० तिन। 'इ' संबंध प्रत्यय।

नॉम—राजस्थानी मे (और अपभ्रंश म भी) यदि आगे कोई नासिक्य वर्ण हो या व हो तो पूर्व का स्वर सानुनासिक कर दिया जाता है। इसी प्रकार नासिक्य वर्ण र और व भी कभी कभी सानुनासिक बना दिए जाते हैं।

जोइ—प्रा० जो, जोअ, जोव (पूर्वकालिक रूप)। जोणो या जोवणो क्रिया। इसका अर्थ आधुनिक राजस्थानी मे देखना और खोजना भी होता है। गुजराती मे भी यही क्रिया आती है। मिलाओ—हिं० बाट जोहना।

धन्न—सं० धन्य, प्रा० धण्ण। अन्य रूप—धन, धिन, धिन्न।

कॉम—स० कर्म, प्रा० कम्म। यहाँ रचना (कृति) का अर्थ है।

दूहा ६—सारीखी स० सदृश, प्रा० सारिक्ख। ई स्त्रीलिंग का प्रत्यय है।

जोड़ी—सं० युज्। राजस्थानी मे जुड़नो क्रिया बनती है, उसका सकर्मक जोड़नो हुआ। जोड़ना क्रिया के आगे ई प्रत्यय लगाकर सज्ञा बनाई गई है। अर्थात् वस्तुओं का अनुरूप मेल जैसे इन दोनों की जोडी है। साथ रहनेवाली (विशेषतः दो) वस्तुओं को जोडी कहते हैं। दो के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—हाथों की जोडी (कगन), पैरों की जोड़ी (जूतियाँ)।

जुड़ी—स० युज्: प्रा० जुड। सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन।

आ—ओ (यह) का स्त्रीलिग।

अउ—ओ का प्राचीन रूप।

नाह—स० नाथ = स्वामी, पति, वर।

रॅ—राजस्थानी में करण और अपादान का चिह्न। अन्य रूप—स्यउँ-स्यौं-स्यों, सुँ सूँ सौँ सौँ सँ सैँ स्यैँ स्यइँ। कविता मे ते तैं थी आदि रूप भी आते हैं।

इसकी व्युत्पत्ति सुतों से बताई जाती है पर बहुत सभव है कि यह सस्कृत विभक्ति स्मात् या सम शब्द से निकला हो। इसका एक रूप सम भी कविता में आता है।

कहइ—स० कथा, प्रा० कइ। कहणो क्रिया—कह + अइ। अइ वर्तमान अन्य पुरुष का और मध्यम पुरुष एकवचन या प्रत्यय है। आधुनिक रूप—कहे। आधुनिक राजस्थानी मे यह सभाव्य भविष्यत् का रूप है। आधुनिक वर्तमान बनाने के लिये, हिंदी की भॉति, है क्रिया के रूप आगे और जोड़ने पडते है।

कीजइ—स० क्रियते, प्रा० किज्जइ। आज्ञा का रूप। राजस्थानी मे कर्तृवाक्य आज्ञार्थ और कर्मवाच्य वर्तमान काल के रूप एक से होते हैं। आधुनिक राजस्थानी मे कीजै के स्थान पर करीजै रूप प्रयुक्त होता है। मिलाओ—हिं० कीजै, कीजिए।

वीमॉह—स० विवाह, प्रा० वीवाह। व और म का पारस्परिक परिवर्तन अपभ्रश, हिंदी, राजस्थानी एव गुजराती मे पाया जाता है।

दूहा ७—नूँ—कर्म का प्रत्यय। आधुनिक राजस्थानी में ने आता है। यह संभवतया संस्कृत विभक्ति-प्रत्यय आन् (जैसे रामान्) से निकला है।

विचारउ—विचारणो क्रिया। विचार+अउ। आज्ञा का रूप, मध्यम पुरुष, बहुवचन। आधुनिक रूप—विचारो।

विषइ—विखो+इ (अधिकरण चिह्न)। विखो = सं० विषय। इसका अर्थ दुःख के दिन होता है।

द्यॉ—देणो क्रिया।। संभाव्य भविष्यत्, उत्तम पुरुष, बहुवचन का रूप। आधुनिक रूप—दॉ।

दीकरी—राजस्थानी देशी शब्द। हिंदी-शब्दसागर मे इसकी व्युत्पत्ति सं० डिंबक से की गई है।

हॉसउ—सं० हास=हँसी। सजातीय कर्म।

हसिसी—सं०हसिष्यन्ति, प्रा० हसिस्सइ। सामान्य भविष्य।

लोइ—सं० लोक, प्रा० लोअ-लोय।

दूहा ८ कोइलॉ—सं० कोकिल, प्रा० कोइल, आधु० राज० कोयल। बहु-वचन (ऑ)।

सालूराह—सं० शालूर-सालूर राज० सालूर सालूरो। बहुवचन। अंत में ह छंद की मात्रा पूरी करने के लिये जोड़ा गया है। राजस्थानी मे ऐसा बहुत होता है।

राज—सं० राजन्। संबोधन। यह शब्द आपके अर्थ में भी आता है।

हिवइ—अन्य रूप-हिवै, हवैं, हवैं, अबै, अब, हणॉ=अब।

मा—सं० मा; प्रा० मा-म, राज० मा-म-मत। मिलाओ—हिं० मत। यह शब्द विशेषतया आज्ञार्थ मे आता है।

पॉतरउ—सं० प्रमत्त, प्रा० पमत्त, पवंत-पॉत। पॉतरणो क्रिया। आज्ञार्थ।

धण—यहॉ धण शब्द स्त्री, कन्या के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

द्यउ—ऊपर दूहा ७ मे द्यॉ देखो। आज्ञार्थ बहुवचन।

अवरॉह—सं० अपर-अवर। बहुवचन, विकारी रूप, संप्रदान कारक, विभक्ति प्रत्यय लुप्त हो गया है। ह पाद-पूर्त्यर्थ जोड़ा गया है। अन्यार्थ—अन्य।

दूहा ९ ज्यूँ—सं० यथा या यद्वत्; प्रा० जधा या जद्व, अप० जिध, जेवँ, जिवँ, जिउँ, ज्युँ, ज्यूँ। अन्य रूप—ज्युं, जिउँ, जिवुँ, जिम, जिमि, जेम। मिलाओ—हिं० ज्यों।

थे—राजस्थानी मे मध्यम पुरुष का बहुवचन। एकवचन मे तू होता है। आदर दिखाने के लिये एकवचन में भी थे का प्रयोग होता है (हिंदी में ऐसी जगह आप आता है)। बहुत अधिक आदर दिखाने के लिये राजस्थानी मे भी आप आता है पर अधिकतर थे काफी होता है। राजस्थानी का तू हिंदी के तू के स्थान पर और राजस्थानी का थे हिंदी के आप या तुम लोग के स्थान पर है। हिंदी तुम का पर्याय राजस्थानी मे नहीं है।

जाणउ—सं० ज्ञा, प्रा० जाण, राज० जाणनो; हिं० जानना। आधुनिक रूप—जाणो। सभाव्य भविष्य, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

त्यूँ—देखो ज्यूँ।

करउ—करणो (हिं० करना) क्रिया का आज्ञार्थ बहुवचन रूप।

आइस—स० आदेश, प्रा० आएस, मिलाओ—हिं० आयसु।

दीध—सं० दत्त। सामान्य भूतकाल। अन्य रूप—दिध्ध, दिध्धो, दीधो। यह रूप सीधे सस्कृत से आया है। नियमित रूप दियो, दिया, दी होते हैं। दीध या दिध्ध सब लिंगों और वचनों में एक सा रहता है। दिध्धो या दीधो मे कर्म के लिंग वचनानुसार परिवर्तन होता है।

ओ—यह अक्षर यहाँ एकमात्रिक है। प्राचीन रूप—अउ।

म्हाँ—प्रा० अम्हे; राज० म्हे = हम, म्हे का विकारी रूप म्हाँ होता है। हिंदी मे जहाँ सप्रत्यय कर्ता आता है वहाँ राजस्थानी मे विकारी रूप का प्रयोग होता है। म्हाँ कर्यो = हमने किया।

नातरउ—अन्य रूप—नातो, नातरो, हिं० नाता = संबध। यहाँ मतलब विवाहसबध से है। आधुनिक राजस्थानी मे इसका एक दूसरा अर्थ विधवा के साथ विवाह सबध का है।

कीध—स० कृत, प्रा० किद्ध। अन्य रूप—किध्ध, किध्धउ, कीधउ। मिलाओ—ऊपर दीध पर टिप्पणी।

दूहा १० परणिया—स० प्रा० परिणी। परणनो क्रिया का सामान्य भूत, पुँल्लिग, बहुवचन। इसका अर्थ विवाहित होना है।

वरदळ—(१) वर = अच्छा, दळ = दल, समूह, अच्छे दल का अर्थात् धूमधाम या ठाटबाट का या (२) वर = अच्छे । दळ = पक्ष, दो अच्छे पक्षों या कुलों मे ।

वि०—इस शब्द का ठीक अर्थ निश्चित नहीं हो सका ।

हुवउ—स० भू, प्रा० हुव । हुवणो क्रिया का सामान्य भूत, पुंल्लिग एकवचन । अन्य रूप—थयउ, भयउ ।

उछाह—स० उत्साह, प्रा० •उच्छाह, ऊसाह । अन्य रूप—उछाव । सस्कृत मे इस शब्द का अर्थ उत्साह होता है पर राजस्थानी मे यह उत्सव और आनद के अर्थ म भी आता है । यह भी सभव है कि यह स० उत्सव, प्रा० उच्छव, राज० उच्छव-उच्छव-उछाव से बना हो ।

दूहा ११ आवियउ—स० आ + या, प्रा० आव । आवणो क्रिया का सामान्य भूत, पुंल्लिग एकवचन ।

देसे—दस + ए (अधिकरण का प्रत्यय) ।

थयउ—मिलाओ—ऊपर दूहा ७ मे थियुं ।

सुगाळ—स० सुकाल, प्रा० सुगाल ।

तेणि—स० तेन, प्रा० तेण, तेण = तिससे, उस कारण से, इसलिये ।

राखी—स० रक्ष, प्रा० रक्ख, राख, हिं० रखना । राखणो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन ।

सासरइ—सासरो + इ (अधिकरण प्रत्यय) सं० श्वाशुर (श्वशुरस्य अय) प्रा० सासुर (देखो - सुरसुंदरी चरिअ ८-१६४)

अजे—स० अद्यापि प्रा० अजवि = अभी । अन्य रूप—ओजूं, अजूं ।

स—एक निरर्थक अव्यय जो जोर देने के लिये, या पादपूर्त्यर्थ, जोड़ दिया जाता है । इसका मूल सो या सु हो सकता है । गानेवाले कभी कभी छद के बीच मे इसे जोड़ देते हैं—जेठ महीनो लागियो (स) ।

दूहा १२ जिम—स० यथा या यद्वत्, प्रा० जहा या जद्व, अप० जेंव, जिंव, जेवं-जिवं ।

अमले—अरबी अमल = अधिकार । यह अधिकरण का प्रत्यय है ।

करिअइ—करणो का वर्तमानकालिक अनियमित रूप = करता है ।

चढती—प्रा० चड, हिं० चढना, राज० चढणो क्रिया का स्त्रीलिंग वर्तमान कृदत (Fem. Present Participle) । मिलाओ—हिं०

चढती = चढती हुई)। आधुनिक राजस्थानी मे वर्तमान कृदंत चढतो-चढती होता है पर कविता मे चढंतो-चढंती रूप भी मिलते है।

जाइ—स० या, प्रा० जा, जाग्र, जाव, राज० जावणो क्रिया का वर्तमान काल। आधुनिक—रूप जावे।

तरणापउ—तरण + आपउ। तरण = स० तरुण। आपउ या आपो भाववाचक सज्ञा बनाने का तद्धित प्रत्यय है। मिलाओ—बूढापो (हिं० बुढ़ापा)।

थाइ—स० स्था, प्रा० ठा, था। राज० थावणो=होना वर्तमान काल का रूप। मिलाओ—दूहा २ मे थियुँ। यह क्रिया केवल कविता मे आती है।

दूहा १३ चलण—स० चलन = चाल।

कदळीह—ह एक अर्थहीन प्रत्यय है जो पाद-पूर्त्यर्थ या कभी कभी जोर देने के लिये जोड दिया जाता है।

जॅघ—स० जघा। सस्कृत मे यह शब्द प्रायः पिंडुली के अर्थ मे आता है पर हिंदी व राजस्थानी मे इसका अर्थ सदैव जाँघ (उरु) होता है।

केहर—स० केसरी, हिं० राज० केहरी। राजस्थानी में अतिम ईकार को लुप्त या ह्रस्व करने की (इसी प्रकार अतिम इकार को लुप्त करने की भी) प्रवृत्ति पाई जाती है।

मुख—मुखमडल, चेहरा।

सिसहर—स० शशधर, प्रा० ससहर। राजस्थानी मे कभी कभी शब्द के आरभ का आधार इकार मे वदल जाता है।

खंजर—(१) स० खज (खंजन पक्षी)। स्वार्थ मे र प्रत्यय। मिलाओ—ऊपर दूहा ८ मे पॉतरउ। (२) यह शब्द संभवतः खजन का ही अपभ्रश होगा। अथवा (३) खजर का अर्थ कटार लिया जाय। खंजर के समान अर्थात् तीक्ष्ण, कटीले।

श्रीफल—वेल का फल, नरियल भी हो सकता है।

कॅठ—कठस्वर।

वीण—वीणा का स्वर।

दूहा १४ इसइ—इसउ (इसो) का विकारी रूप। मिलाओ—हिं० ऐसे, सं० ईदृश, प्रा० ईहस, राज० इसो।

आरखइ—आरखउ (आरखो) का विकारी रूप, अधिकरण का प्रत्यय लुप्त अथवा आरखो + इ (अधिकरण प्रत्यय)।

सूती सं० सुप्त, प्रा० सुत्त, राज० सूतो। सामान्य भूत स्त्रीलिंग या स्त्रीलिंग भूत कृदंत। सूवणो या सोवणो क्रिया का नियमित रूप सोई सूई-सुई होते हैं। इन नियमित रूपों की अपेक्षा सूती रूप अधिक प्रयुक्त होता है।

साल्हकुँवर—ढोला का नाम।

सुपनइँ—सुपनो + इँ (अधिकरण प्रत्यय)। सं० स्वप्न। यह शब्द राजस्थान में प्राकृत से होता हुआ नहीं आया है। अन्य रूप—सुहिणो (प्रा० सुविण)।

मिल्यउ—मिलनो और मिळनो दोनों रूपों में यह क्रिया राजस्थानी में प्रयुक्त होती है।

जागि—जाग + इ (पूर्वकालिक प्रत्यय)। अन्य प्रत्यय ए, ई, करि, कै, कइ, नइ, नै-ने, अर।

निसासउ—सं० निःश्वास, प्रा० णीसास, राज० निसासो, निसास।

खाइ—खावणो (सं० खाद्, प्रा० खा, खाव) क्रिया का वर्तमान-कालिक रूप।

दूहा १५ ऊलवे—सं० अवलग्, प्रा० ओलग, राज० ओलग या ऊलग। ये पूर्वकालिक प्रत्यय हैं।

हथ्यड़ा—ड़ो अपभ्रंश एवं राजस्थानी में एक प्रत्यय है जो कभी कभी स्वार्थ में और कभी कभी अनादर प्रकट करने के लिये जोड़ा जाता है। गुजराती में भी यह आता है। डा डो का बहुवचन है।

चहटी—चाह (= चाहना, देखना, बाट जोहना) क्रिया का स्त्रीलिंग वर्तमान कृदंत। यह पंजाबी का प्रभाव है। राजस्थानी रूप चाहंती या चाहती अथवा चावती होता है।

अन्यार्थ—चाह (= प्रेम) + हंदी (= की)। हंदो संदो राजस्थानी में संबंध कारक के प्रत्यय हैं। इनकी व्युत्पत्ति प्रा० हुतो-सुतो से की जाती है।

घण—सं० घन, प्रा० घण।

ऊमह्यउ—ऊमहणो का सामान्य भूत, पुलिंग, एकवचन। अन्य रूप—ऊमड़णो-ऊमदनो, ऊमहणो-ऊमहनो। मिलाओ—हिं० उमडना।

थाह—सं० स्थाघ, प्रा० थाह।

निहाळइ—निहाळनो का वर्त्तमानकालिक रूप। सं० निभाल्; प्रा० णिहाल; राज० निहाळ = देखना, खोजना, पता लगाना। अन्य रूप—निहारणो = देखना।

मुध्ध—सं० मुग्धा; प्रा० मुध्धा। अंतिम स्वर का लोप। अन्य रूप—मुधा-मुध, मूँधा-मूँध मूध-मुगधा। साहित्य मे एक प्रकार की नायिका जो यौवन मे प्रवेश कर चुकी हो परंतु जिसमे न तो कामचेष्टा उत्पन्न हुई हो और न जिसने विरह संताप भोगा हो।

दूहा १२—उक्कत्री—उक्कत्रणो का पूर्वकालिक रूप (उक्कत्र + ई)। सं० उत्कथा (?); या प्रा० उक्कत्र = काठ से बाँधना। सिर को हाथों पर बाँधकर अर्थात् रखकर।

चाहती—चाहणो का स्त्रीलिंग वर्तमान-कृदत। चाह + अती। ऊपर दूहा न० १५ मे चाहदी देखिए। चाह का अर्थ प्रेम भी होता है अतः चाहती का अर्थ प्रेम करती हुई—प्रेममग्न होती हुई भी हो सकता है।

ऊँची—स० उच्च। राजस्थानी मे यह विशेषण है और इसका प्रयोग क्रियाविशेषण की भाँति होता है। वाक्य मे इसके लिंग वचन विशेष्य के अनुसार बदलते हैं। जैसे—छोरो ऊँचो चढ्यो, छोरी ऊँची चढी, छोरा ऊँचा चढ्या; छोरयाँ ऊँच्याँ चढ्याँ।

चातृंगि—सं० चातकी, प्रा० चातगी। अपभ्रश और राजस्थानी में कभी कभी बीच मे र या सानुस्वार र जोड़ दिया जाता है। चातक = चात्रग इस र को फिर ऋ कर दिया गया है।

मागि—स० मार्ग; प्रा० मग्ग, माग। इ कर्म का प्रत्यय है। अन्य रूप—मारग।

दूहा १७ गिणइ—स० गण, प्रा० गण, गिण, हि० गिनना। दिन गिणना = निरंतर प्रतीक्षा करना।

आसालुध्ध—सं० आशालुब्ध = आशा से लुभाई हुई। आशा उसे बराबर लुभाए रहती है अर्थात् बनी रहती है। यह आशा न तो पूरी होती है और न पीछा छोड़ती है।

घाँघल—प्रा० घंघल; जैसे—जिवँ सुपुरुस तिवँ घंघलइँ, जिवँ नइ तिवँ कमलाइँ। जिवँ डोंगर तिवँ कोट्टरइँ, हिआ, विसूरइ काइँ?

(हेमचद्र—व्याकरण ८-४-४२२)

घणा—सं० घन, प्रा० घण, गद० घणो हिं० घना। राजस्थानी मे यह बहुत (संख्यावाचक और परिमाणवाचक) के अर्थ में आता है।

दूहा १८ ऊनमियउ—ऊनमणो का सामान्य भूत पुॅल्लिग, एकवचन। सं० उन्नम्. प्रा० उण्णम। अन्य रूप—उनवणो, उनमणो। पुरानी हिंदी में उनवना क्रिया बहुत आई है। मिलाओ—

(१) उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः। (मृच्छकटिक)

(२) ऊँनमि आई बादली बरसण लगे अँगार।
उठि कबीरा धाह दे दाझत है ससार॥
(कबीर—साखी ५१—२)

उनई घटा चहूॅ दिसि, आई। छूटहिं बान मेघ झरि लाई॥
(जायसी)

इसका एक दूसरा रूप उनरना या ऊनरना भी हिंदी कविता मे आया है—

(१) उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।
(तुलसी—रामलला नहछू)

(२) ऊनरी घटा में आली तू न री अटा पे बैठ। (हरिश्चद्र)

यहाॅ ऊनमियउ क्रिया का कर्ता मेह (मेघ) लुप्त है। कभी कभी आकाश, या दिशा जिधर मेह उमड़ता है, इस क्रिया का कर्त्ता बना दिया जाता है। जैसे—नभ ऊनम्यउ = आकाश उमड़ आया अर्थात् आकाश में मेह उमडा। उत्तर ऊनम्यो—उत्तर दिशा उमड़ी अर्थात् उत्तर दिशा मे मेह उमडा। मिलाओ—उत्तर आज स ऊतरयो (दूहा २८६, २९८)।

दिसइॅ—दिस + इॅ (अधिकरण प्रत्यय)।

गाज्यउ—स० गर्ज् प्रा० गज्ज, गाज। अन्य रूप—गाजियउ। यह क्रिया गजणो और गरजणो इन रूपों मे भी प्रयुक्त होती है।

यहाॅ भी कर्त्ता मेह लुप्त है। यह क्रिया भी ऊनमणो की भाॅति आकाश और किसी दिशाविशेष के साथ भी आती है।

गुहिर—स० गभीर; प्रा० गहिर, गद० गहर, गहीर, गुहिर, गहरो। गहर गंभीर राजस्थानी का एक मुहावरा है।

प्रिउ—स० प्रिय। अन्य रूप—प्रियु, प्री, प्रिव, पी, पिव, पिय, पियु, पीउ, पियो।

सभरयउ—सभरणो का सामान्य भूत, पुॅल्लिग, एकवचन। स० सस्मृ; प्रा० सभर, सभल। अन्य रूप—सॉभरणो, सॉभळनो, सॅभारणो। मिलाओ—

बंदि पितर सब सुकृत सँभारे। (तुलसी)

तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा। (तुलसी)

नयणे—ए अपादान का प्रत्यय।

वूठउ—वूठणो का सामान्यभूत, पुँल्लिंग, एकवचन। स० वृष्ट, प्रा० वुट्ठ; राज० वूठणो। यह क्रिया संस्कृत के भूत कृदंत से बनी है। संस्कृत धातु वृष् या वर्ष् से बरसणो क्रिया बनती है। मिलाओ—

हरिया जॉणै रूखड़ा उस पाणी का नेह।

सूका काठ न जॉणइ कबहूँ वूठा मेह॥ (कबीर ५५—१)

परब्रह्म वूठा मोतियाँ घड़ बाँधी सिखराँह।

(कबीर—साखी ५५—३)

दूहा १६ आखइ—आखणो का वर्तमान। स० आख्या, प्रा० आख। मिलाओ—जे अब के सतगुरु मिलै सब दुख आखौं रोय। (कबीर)

काइँ—प्रा० कइँ = क्यों। अन्यार्थ—क्या। आधुनिक रूप—काँई। यह 'क्या' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

चित्रॉम—राजस्थानी शब्द = चित्र।

कॉम-चित्रॉम—काम चित्र अर्थात् ढोले की काम जैसी मूर्त्ति जो मारवणी ने स्वप्न में देखी थी।

जु—स० यत्, प्रा० ज, जो। यहाँ पर यह शब्द अव्यय है। जोर देने के लिये या पाद पूर्त्यर्थ या कभी कभी ही के अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

दिट्ठ—स० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि, राज० दिट्ठ, दीठ।

मइँ—अधिकरण का प्रत्यय। मिलाओ—हिंदी 'में'। अन्य रूप मैं, में (आधुनिक राज०)।

इसकी उत्पत्ति संभवतः संस्कृत प्रत्यय स्मिन् और प्रा० म्मि से हुई है। मध्ये शब्द से होना भी संभव है—मध्ये, मज्झे, मज्झि, महि, महिँ, मइँ, में।

दिट्ठ मइँ—अन्याथ—मैंने देखा है। दिट्ठ=स० दृष्ट, प्रा० दिट्ठ = देखा। मइँ = स० मया; प्रा० मइँ = मैंने।

रूप—मूर्ति।

भूलइ—भूलणो का वर्तमान। प्रा० भुल्ल। यहाँ यह अकर्मक क्रिया है सकर्मक नहीं। अर्थ है—उसका रूप मुझे नहीं भूलता है अर्थात् उसका रूप मुझसे भुलाया नहीं जा सकता है।

तास—स० तस्य, प्रा० तस्स। अन्य रूप—तासु, ताह।

दूहा २०—अम्हाँ—स० अस्माकम्, प्रा० अम्हाह, अप० अम्हह।

सखियाँ—सखी का बहुवचन। सख्याँ रूप भी होता है।

एम०—अप० एम्व, एवँ।

तईं—स० त्वया, प्रा० तईं। हिंदी के सप्रत्यय कर्ता तूने की जगह राजस्थानी में तईं तैं होता है। अप्रत्यय कर्ता हिंदी की भाँति तू होता है।

अणदिट्ठा—स० निषेधवाचक अ-अन् उपसर्ग के स्थान पर राजस्थानी में अण होता है। अ और अन भी आते हैं। दिट्ठा क्रिया का उलटा है अण-दिट्ठा = नहीं देखा।

सज्जणाँ—स० सजन, प्रा० सज्जण, राज० सज्जण, साजण, सज्जन, साजन, सयण, सैण, सज्जणो साजणो (बहुवचन में ही)। नासिक्य वर्ण को या नासिक्य वर्ण के पूर्व आनेवाले वर्ण को प्रायः सानुनासिक कर देते हैं। यहाँ आदर के लिये बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

तईं इ०—अन्यार्थ—तुझमे अदृष्ट सजन के प्रति।

किउँ—अप० केम्व, किम्व, किवँ, किउँ। ऊपर दूहा ६ में ज्यूँ देखिए। अन्य रूप—किऊँ, क्यूँ, क्यु, क्यो।

करि—करणो क्रिया का पूर्वकालिक। किउँ करि प्रायः साथ ही आता है। मिलाओ—हि० क्योंकर।

लग्गा—स० लग्न, प्रा० लग्ग। व्याकरण की दृष्टि से लग्गो होना चाहिए। लग्गा इस शब्द पर खड़ी बोली का प्रभाव ज्ञात होता है अथवा यहाँ प्रेम को बहुवचन कर दिया है जिससे क्रिया भी बहुवचन हो गई है।

पेम—स० प्रेमन्, प्रा० पेम्म, पेम।

दूहा २१ जे—स० ये, प्रा० अप० जे।

जीवण—स० जीवन। जीवन का आधार या जीवन का कारण अतः जीवन रूप।

जिन्हाँ—जिनका विकारी रूप। मिलाओ—हिं० जिन्हों (का)।

वसत—वसणो धातु का वर्तमानकालिक रूप। स० वसति। अत प्रत्यय प्रायः बहुवचन में आता है पर कभी कभी एकवचन में भी प्रयुक्त होता है।

धारइ—धार या धारा + इ (करण या अधिकरण का प्रत्यय)।

पयोहरे—पयोहर + ए (अपादान प्रत्यय)।

काढत—काढणो का वर्तमानकाल। सं० कृष्ट; प्रा० कड्ढ; राज० कढणो। काढणो कढणो का सकर्मक है।

तात्पर्य—दूध बालक का जीवन है। वह माता के शरीर मे ही रहता है। बालक उसको नहीं देख सकता तो भी निकाल लेता है। इसी प्रकार जो जिसका जीवन होता है वह उसके पास ही अथवा उसके शरीर मे ही रहता है।

दूहा २२ ससनेही—सं० सस्नेह। ई मूल से जोड दिया गया है। यह शब्द राजस्थानी साहित्य मे बहुत आता है।

समदाँ—सं० समुद्र, प्रा० समुद्द, राज० समुद, समद, समँद, समद। आँ विकारी रूप का प्रत्यय है। सबध का चिह्न लुप्त है।

परइ—सं० पर। मिलाओ—हिं० परे।

वसत—वसणो का वर्तमान। अन्य रूप वसइ-वसै, वसत।

हिया—सं० हृदय। अन्य रूप हियो, हीयो।

मझार—सं० मध्य, प्रा० मज्झ, राज० मंझ। मज्झ आर (मझआर भी) देशी शब्द है। देखिए—देशी नाममाला ६–१२१।

आँगणइ—आँगणो (सं० अगन)+इ (अधिकरण प्रत्यय)

जाँणि—सं० जाने, प्रा० जाणे। अन्यय रूप—जाँणि, जाँणे। मिलाओ—हिं० जनु। आधुनिक राजस्थानी मे जाँणे शब्द मानो के अर्थ मे आता है।

दूहा २३ सखिए—ए सबोधन का प्रत्यय है। अप्रत्य कर्ता कारक के बहुवचन मे (क्वचित् एकवचन मे भी) यही रूप आता है। मिलाओ—

सहिए फिरि समुझावियो (दूहा ५१५)।

सखिए ऊगट माँजिणउ खिजमति करइ अनत।

सबोधन में यह शब्द दूहा ५२६ और ५३२ मे भी आया है।

वल्लहा—सं० वल्लभ, प्रा० वल्लह, राज० वल्लहो, व्हालो, वालो। अन्य रूप—वालभ (=प्रियतम)। यह शब्द प्रिय (प्यारा और प्रियतम) के अर्थ मे आता है। आदरार्थ बहुवचन।

जइ—सं० यदि, प्रा० जइ। अन्य रूप—जै, जे।

तोइ—सं० तदापि, प्रा० तोवि।

विसारइ - सं० विस्मृ, प्रा० विस्सर, राज० विसरणो, वीसरणो। प्रेरणार्थक—विसारणो। विसरणो और विसारणो का एक ही अर्थ होता है।

खिण खिण इ०—अन्यार्थ—वह प्रियतम क्षण क्षण मे अपनी याद कराता रहता है और अपने आपको भुलवाता नहीं। (सभर = याद करना या याद आना)।

दूहा २४ एह—यह, अन्य रूप—ए।

हमारी—राजस्थानी रूप म्हॉरी है पर प्राचीन कविता मे हमारो हमारी भी मिलता है।

बुझ्झ—स० बुध्; प्रा० बुज्झ, राज० बुझणो, हिं० बूझना। बूझणो क्रिया से भाववाचक सज्ञा बुझ्झ या बूझ बनती है। इसका अर्थ है समझ। मिलाओ—हिं० पहेली बूझना। बूझणो क्रिया का अर्थ राजस्थानी मे समझना भी होता है। जैसे—

जाणता बूझया नहीं बूझि न कीया गौण।
भूलॉ कूँ भूला मिल्या पथ बतावै कौण॥

सुहिणई—सुहिणो + इ (अधिकरण प्रत्यय) स० स्वप्न, प्रा० सुरण, सुविण, सुमिण, सिविण, सिमिण।

साहित्य तथा दतकथाओं के प्रेम वर्णन मे स्वप्न का विशेष महत्व है। कभी कभी केवल स्वप्न मे दर्शन होने से ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है जैसे उषा का प्रेम अनिरुद्ध के प्रति। साहित्य शास्त्र मे स्वप्न को तेंतीस सचारी भावों में गिनाया गया है।

यहॉ पर यह प्रश्न हो सकता है कि मारवणी ने ढोला को पहले कभी देखा ही नहीं था उसे स्वप्न मे क्योंकर देखा और फिर विरह क्यों उत्पन्न हुआ। परन्तु उषा की भी यही अवस्था है। उसने भी अनिरुद्ध को पहले नहीं देखा था, और स्वप्न द्वारा ही प्रेम उत्पन्न होकर विरह उत्पन्न हुआ था। फिर मारवणी तो ढोला को एक बार बचपन मे देख चुकी है—अवश्य ही अब उसे ढोला की आकृति स्मरण नहीं रह सकती। इसी लिये वह स्वप्न मे ढोला को देखकर उसे पहचान नहीं पाती।

सउ—स० सा', प्रा० सो, आधुनिक राज० सो।

तुझ्झ—अप० तुज्झ।

दूहा २५ सुणया—सुणनो क्रिया का सामान्य भूत, पुँल्लिग, बहुवचन। स० श्रु प्रा० सुण, हिं० सुनना।

की—पूर्वी राजस्थानी मे सबध प्रत्यय को (की, का, के) जाता है और पश्चिमी राजस्थानी मे गो (गी, गा, रे)।

झाल—सं० ज्वाला = जलन, ताप, लपट। अन्य रूप—झळ। मिलाओ—साहब मिलै न झल बुझै रही बुझाइ बुझाइ। (कबीर)

मिर्च या राई आदि की चरपराहट या तीक्ष्ण स्वाद को भी झाल (हिं० झाल) कहते है। मिर्च खाते ही समस्त शरीर मे एकदम आग सी लग जाती है। मारवणी के शरीर मे भी वैसी ही विरहज्वाला प्रसूत हो उठी।

ऊपन्नउ—स० उत्पन्न; प्रा० उप्पण्ण, सामान्य भूत, पु०, एकवचन।

दूहा २६ तनह—तन + ह (अपादान या सबध का प्रत्यय)।

अपभ्रंश काल मे अधिकाश विभक्ति प्रत्यय घिस घिसाकर ह के रूप मे रह गए। अतः ह प्रायः सभी कारको के प्रत्यय का काम करता है। इससे अर्थ-बोध मे असुविधा होने लगी अतः अपभ्रश के उत्तरकाल मे कारक सबध प्रकट करने के लिये अन्य शब्द या विभक्ति प्रत्यय जोड़े जाने लगे।

जावइ—जावणो क्रिया का वर्त्तमान काल। अन्य रूप—जाइ (यह रूप केवल कविता मे आता है)।

बाबहियउ—अप० बप्पीहा, हिं पपीहा। अन्य रूप—बाबीहो, पपीहो, पपइयो। इसे सस्कृत मे चातक कहते है। यह एक प्रसिद्ध पक्षी है। इसकी लंबाई प्रायः ५½ इच होती है। मध्य भारत, नैपाल, बगाल, आसाम, अराकान और मलय प्रायद्वीप मे यह विशेष रूप से पाया जाता है। इसका रग हरा और काला होता है। यह वर्ष मे दो बार रग परिवर्तन करता है। यह बागों में कीड़ों की तलाश मे फिरता है। मई मे अडे देना प्रारभ करता है जो सख्या मे तीन होते है। इसका घोंसला भूमि से थोड़ी ऊँचाई पर कटोरी के आकार का बहुत ही सुदर होता है।

भारतीय साहित्य मे इस पक्षी का वर्णन बहुत आया है। इसे लेकर भारतीय कवियों ने बड़ी सुदर सुदर उक्तियाँ कही हैं। गोस्वामी तुलसीदास का चातक प्रेम वर्णन (दोहावली) साहित्य की एक अपूर्व वस्तु है। चातक का प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है। चातक के विषय मे यह प्रवाद है कि वह पडा हुआ पानी नहीं पीता। जब मेह बरसता है तो उसका जल ऊपर से ही ले लेता है। प्यास से चाहे मर जाय पर तालाब और नदी का पानी वह कभी नहीं पीता। यह भी प्रवाद है कि वह स्वाती नक्षत्र के दिन को छोड़कर और कभी बरसता हुआ पानी भी नहीं पीता।

भाषा के कवियों ने मान रखा है कि वह जो बोली बोलता है सो 'पी कहाँ, पी कहाँ' इस प्रकार पुकारा करता है। इसकी बोली कामोद्दीपक तथा विरहवर्धक मानी गई है। चातक विषयक कुछ सूक्तियाँ दी जाती हैं—

बप्पीहा, पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुवहि हयास।
तुह जलि मह्नु पुणु वल्लहउ बिंहू वि न पूरिअ आस ॥ १ ॥
बप्पीहा, कइँ बोल्लिएण निघिण वारइ वार।
सायर भरियइ विमल जलि, लहहिं न एक्कइ धार ॥ २ ॥

(हेमचंद्र)

चातक सुतहि पढावही आन नीर मति लेइ।
मम कुल यही सुभाव है स्वाति बूँद चित देइ ॥ १ ॥
पपिहा पन को ना तजै तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे है कछु नहीं पन छूटे है लाज ॥ २ ॥
पपिहा कौ पन देखि करि धीरज रहै न रच।
मरते दम जल में पड्या तऊ न बोरी चच ॥ ३ ॥
ऊँची जाति पपीहरा पियै न नीचा नीर।
कै सुरपति कौ जाँचई कै दुख सहै सरीर ॥ ४ ॥

(कबीर)

पपैया प्यारे कद को बैर चितारयो
मैं सूती छी अपणे भवन में पिउ पिउ करत पुकार्यो।
दाधी ऊपर लूण लगायो हिवडै करवत सार्यो ॥ १ ॥
पपीहा रे पिउ को नाँव न लेइ।
काइक जागे विरहिणी रे पीउ कह्याँ जिउ देइ ॥ २ ॥
पपइया रे पिउ की वाँणि न बोल।
सुणि पावेली विरहिणी रे थारी रालैली पाँख मरोड़ ॥
चाँच कटाऊँ पपइया रे ऊपर गालूँ लूँण।
पिउ मेरा मैं पीउ की रे तूँ पिउ कहै स कूँण ॥ ३ ॥

(मीराँ)

ज्यों चातक बस स्वाति-बूँद के बस ज्यों जीय।
सूरदास, प्रभु, अति बस तेरे समुझि देखि धौं हीय ॥ १ ॥
सखी री चातक मोहिं जिआवत।
जैसेहि रैन रटति हों पिय पिय तैसहि सो पुनि पुनि गावत ॥

अतिहि सुकंठ नाँउ प्रीतम को ताहि जीभ मन लावत।
आपु न पियत सुधा रस सजनी बिरहिन बोलि पिआवत ॥ २ ॥

चातक न होइ, कोउ बिरहिनि नार।
अजहूँ पिय पिय रजनि सुरति करि झूठेहि माँगत बारि ॥
अति कृस गात, देखि सखि, याको अहनिसि रटत पुकारि।
देखो प्रीत बापुरे पसु की मानत नाहिँ न हारि ॥ ३ ॥

हौं तो मोहन के बिरह जरी, तू कत जारत ?
रे पापी, तू पखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत ॥
सब जग सुखी, दुखी तू जल बिन, तऊ न तन की बिथा बिचारत।
सूर, स्याम बिन ब्रज पर बोलत, हठि अगिलोऊ जनम बिगारत ॥

(सूर)

जो, घन बरखै समय सिर, जो भरि जनम उदास।
तुलसी, याचक चातकहि तऊ तिहारी आस ॥
उपल बरखि, गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ?
मान राखिबो, माँगिबो, पिय सो नित नित नेहु।
तुलसी, तीनिउ तब फबै, जब चातक मन लेहु ॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउडो, कियो कनौड़ो दानि ॥
बधिक बध्यो, पर्‌यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहुँ लगा न खोंच ॥

(तुलसी)

दादुर-मोर-किसान-मन लग्यौ रहै घन माँहि।
पै रहीम चातक रटनि सरवरि को कोउ नाँहि ॥

(रहीम)

अरे पपैया बावरा, आधी रात न कूक।
होळे होळे सुलगती, सो तैं डारी फूँक ॥
पीहू पीहू करणारी बुरी, पपीहा, बाण।
थारो सहज सुभाव ओ, म्हाँरे लागै बाँण ॥

(राजस्थानी सुभाषित)

आसाढ—चातक का वर्णन वर्षा ऋतु मे किया जाता है। वह वर्ष भर प्यासा रहता है, वर्षा के आने पर उसे प्यास बुझाने की आशा होती है (आषाढ मे वर्षा का आरभ माना जाता है)। आषाढ मे ही चातक को मेघ का प्रथम दर्शन होता है, अतः वह जोरों से पुकारने लगता है।

विरहणि—स० विरहिणी। अन्य रूप—विरहिण-विरहिणि-विरहिणी, विरहण-विरहिणी।

दूहा २७ नइ—स० अन्यत्, अन्य रूप—अनइ अने। जोधपुरी और गुजराती मे ने और अने 'और' के अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं। बीकानेरी आदि मे और का प्रयोग होता है।

दुहुवॉ—उहूं = दोनों। ऑ विकारी रूप का प्रत्यय है जो यहॉ वॉ हो गया है। सबंध कारक का चिह्न लुप्त।

सहाव—स० स्वभाव, प्रा० सहाव। अन्य रूप—सुहाव सुभाव, सभाव।

जब—बोलचाल की राजस्थानी मे जद आता है।

घण—स० घन, प्रा० घण।

प्रियाव = प्रिय + आव=हे प्रिय, तू आ। आव आवणो क्रिया का आज्ञा का रूप है। न शब्द के साथ अवणो क्रिया की भी सधि हो जाती है। जैसे—संदेसा ही नाविया (दूहा १४०)।

कवियो ने पपीहे की बोली के कई अर्थ लिए हैं—(१) पी पी, (२) पी कहॉ, पी कहॉ, (३) पी आव, पी आव।

दूहा २८ गउख—स० गवाक्ष।

सिरि—यह शब्द अधिकरण प्रत्यय 'पर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कबीर ने इसका ऐसा प्रयोग कई स्थलों पर किया है। जैसे—

> विरहिणि ऊभी पथ सिरि पथी पूछै धाइ।
> एक सबद कहु पीव का कबर र मिलैंगे आइ॥

ऊँचहरी—ऊँचउ + एरउ। स्त्रीलिंग। एरउ या एरो प्रत्यय स्वार्थ में लगता है। मिलाओ—वेगइरउ (दूहा १३४) आवेरउ (दूहा ६३)।

मत हीं = कहीं न।

साहिब—अरबी साहब। कविता में यह शब्द प्रियतम या पति के अर्थ में आता है। आजकल यह आदरार्थ सबोधन में प्रयुक्त होता है और यूरोपवासी के अर्थ मे भी आता है। अन्य रूप—सायब, सा'ब (आधु०)।

वाहुड़इ—वाहुड़णो क्रिया का संभाव्य भविष्य। वहुड़णो और बाहुडणो एक ही अर्थ मे आते है। ये सभवतः वहु से निकले हैं। कुमारपाल प्रतिबोध मे वाहुडिअ शब्द गए हुए के अर्थ मे आया है। कोष मे इसे देशी शब्द कहा गया है। मिलाओ—हिं० वहुरि, वहुरना।

को—स० कोऽपि, प्रा० कोवि, राज० कोइ, कोई। अतिम इ छद की सुविधा के लिये लुप्त कर दिया गया है।

गुण—इस शब्द के वात, प्रेरणा, वूता, शक्ति, प्रकार आदि कई अर्थ होते हैं। देखो—दूहा ४६१ और ६४४।

आवइ—सभाव्य भविष्य। कविता मे सभाव्य भविष्य और वर्तमान कालो के रूप एक से होते है।

चीत—चीत आवणो का अर्थ याद आना है। चीत (चीत भी) संभवतः चित् से वना है। मिलाओ—चींतणो=मन मे लाना, सोचना और चितारणो=याद करना।

दूहा २६ पाज—तालाव के चारों ओर मिट्टी जमा करके जो ऊँची भूमि वना दी जाती है उसे राजस्थानी मे पाज या पाळ कहते हैं। हिंदी में इसके लिये पार शब्द आता है। उदाहरण—

वाई ऊभी सरवर-पाळ ऊँची चढै नीची ऊतरै।

(नरसी मेहतेरो माहेरो)

दूहा ३० सोरठा—राजस्थानी मे सोरठा दूहे का ही भेद माना जाता है। इसे सोरठियो दूहो कहते हैं। यह सोरठ देश का छद है। करुणरस मे इस छंद का अधिकतर प्रयोग किया जाता है। सुभाषित प्रसिद्ध है—**सोरठियो** दूहो भलो, भलि मरवणरी वात।

चोर—अर्थात् दुष्ट, छिपकर सतानेवाला।

चॉच—स० चंचु, हिं० चोंच। अन्य रूप—चंच, चॉच, चूॅच।

कटाविसूॅ—कटावणो का सामान्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन। कटावणो काटणो का प्रेरणार्थक है।

ज—यह अव्यय पद पूत्यर्थ या जोर देने के लिये जोड़ दिया जाता है।

दीन्ही—प्रा० दिण्ण; देवणो क्रिया का (अनियमित) सामान्य भूत काल स्त्रीलिंग का रूप। अन्य रूप—(अनियमित) दिग्ध, दीध, दीधो-धी, दीन्ह। (नियमित) दयो दी।

लोर—मिलाओ—हिं० लोरी।

प्री—सं० प्रिय।

दूहा ३१ निल—सं० नील।

पंखिया—पंख+इया (वाला अर्थ का तद्धित प्रत्यय)। निल-पंखिया निलपखियों का संबोधन है।

मगरि—सं० मुकुल (=देह), प्रा० मउळ, मगुळ। राजस्थानी में मगर पीठ को कहते हैं।

रेह—सं० रेखा प्रा० रेहा, अंतिम स्वर का लोप।

मति—देखो—ऊपर दूहा नं० २८।

पावस—सं० प्रावृष्: प्रा० पाउस।

तळफि—सं० तप् (?), प्रा० तळप्प। प्राकृत पिंगल सूत्र में यह तळप्प शब्द आया है।

जिउ—सं० जीव, प्रा० जीअ, अप० जीउ। अन्य रूप—जिव, जिय, जीं, जिया।

देह—देवणो का संभाव्य भविष्य। ह पादपूर्त्यर्थ जोड़ा गया है अथवा देय के य का स्थानापन्न है।

दूहा ३२ तर—फारसी=हरा।

तई—प्रा० अप० तई। देखो—दूहा २०।

किउँ—क्यों। देखो—दूहा २०।

चकोर—भारतीय साहित्य में जिन पक्षियों को अधिक महत्व दिया गया है वे चक्रवाक, चातक और चकोर हैं। चकोर साधारण तीतर से कुछ बड़ा होता है। हिंदी शब्दसागर में उसे एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर कहा गया है। यह नैपाल, नैनीताल तथा पंजाब और अफगानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में मिलता है। इसके ऊपर का रंग काला होता है। जिस पर सफेद सफेद चित्तियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफेद होता है। चोंच और आँखें रक्तवर्ण होती हैं। यह झुंड में रहता है और वैशाख ज्येठ में बारह बारह अंडे देता है। इसके पंख बहुत ही नयनाभिराम होते हैं।

प्राचीन समय में राजा लोग इसे पाला करते थे और भोजन के समय खाद्य पदार्थ इसे दिखाकर खाते थे। यदि उनमें विष होता तो चकोर की दृष्टि पड़ते ही उसकी आँखें रक्तवर्ण हो जाती थीं और वह मर जाता था।

चकोर चाँदनी का बड़ा प्रेमी होता है। चद्रमा की ओर टकटकी लगाकर बराबर देखा करता है। उसके विषय मे प्रवाद है कि वह जलती हुई चिनगारियाँ खा जाता है। एक पक्षीप्रेमी सज्जन का कहना है कि उन्होंने चकोर को पत्थर के कोयले की जलती हुई चिनगारियाँ खाते देखा है। साहित्य मे चकोर के विषय मे बहुत सी सूक्तियाँ है। कुछ नीचे दी जाती हैं—

> चित दै देखि चकोर त्यो, तीजै भजै न भूख।
> चिनगी चुगै अँगार की, चुगै कि चद-मयूख॥

शीत ऋतु का वर्णन—

> लगत सुभग सीतल किरन, निसिसुख दिन अवगाहि।
> माह ससी-भ्रम सूर त्यो रहत चकोरी चाहि॥
>
> (बिहारी)

> तैं, रहीम, मन आपुनो कीन्हो चारु चकोर।
> निसि बासर लाग्यो रहै कृष्णचद की ओर॥
>
> (रहीम)

दूहा ३३ बाढत—बाढणो राजस्थानी मे काटने या चीरने के अर्थ में आता है। अत वर्तमान का प्रत्यय है। अन्य रूप—बाढंत। नियमित रूप—बाढइ (बाढै) है।

दइ—पूर्वकालिक प्रत्यय कभी कभी लुप्त हो जाता है। अन्य रूप—देई-देई (कविता मे)

लूण—स० लवण, हिं० लौन।

मेरा—खड़ी बोली का प्रभाव। राजस्थानी व्याकरण के अनुसार मेरो होना चाहिए।

स—सो का सक्षिप्त रूप।

कूण—अप० कवण, हिं० कवन, कौन। अन्य रूप—कुण, कौण। वि० ऐसा ही भाव मीराँ के एक पद में आया है। देखो—दूहा २६ की टिप्पणी मे उद्धृत मीराँ का तीसरा भजन।

दूहा ३४ रत—सं० रक्त, प्रा० रत्त, रात।

बोलइ—मीठे मीठे शब्द बोलकर विरह को जगाता है अतः।

काइ—सं० किं०। अन्य रूप—का, कइ, कै (देखो-दूहा ६६०)। इसका अर्थ या होता है। मिलाओ—हिं० क्या तो, यह, क्या यह।

लवतउ—लवणो का वर्तमान कृदत, स० लप् , प्रा० लव।

माठि—स० मष्ट, प्रा० मट्ठ। मिलाओ—मष्ट करहु, अनुचित भल नाहीं। (तुलसी)

करि—करणो का आज्ञा का रूप।

परदेसी—परदेशवासी, प्रवासी।

आँणि—आणनो क्रिया का आज्ञा का रूप। स० आ+नी, प्रा० आण। वि०—परदेशी शब्द के पहले 'काइ' (=या) शब्द लुप्त है।

दूहा ३५ काइक—काइ+इक=कोई एक। यहाँ एक अनिश्चय के अर्थ म आया है। मिलाओ—केतीहेक (दूहा ६४६)। इस एक का कभी कभी क ही शेष रह जाता है। जैसे—आधीक रात=आधी एक रात (कोई आधी रात, लगभग आधी रात)।

कह्याँ—मिलाओ—हिं० कहे (=कहने से या कहने पर)। कह्यो का बहुवचन विकारी रूप।

देह—सभाव्य भविष्य सामान्य भविष्य के अर्थ मे अथवा देसी—देही इस सामान्य भविष्य का सक्षित रूप।

दूहा ३६ डूँगर दहण—अपने मर्मभेदी स्वर से पर्वतो मे भी ज्वाला उठा देनेवाला। जिसके करुण शब्द से पर्वत जैसी कठोर चीजो मे भी ज्वाला उत्पन्न हो जाय वह यदि विरही हृदय को जलन से विकल कर दे तो कौन बड़ी बात है।

छॉडि—प्रा० छड्ड, छड। आज्ञा का रूप—छडणो, छाडणो, छोड़नो। बोलचाल मे छोडनो प्रयुक्त होता है।

हमारउ—प्रा० अम्ह+रउ (सबंध चिह्न)। हमारो व्रज मे तथा हमारा हिंदी मे आता है। राजस्थानी के अपने रूप महारउ, म्हारउ हैं।

पुकारियउ—पुकारणो क्रिया अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार से प्रयुक्त होती है।

दूहा ३७ मए—व्रज का रूप, राजस्थानी रूप 'भया' होगा।

मारू इ०—मिलाओ—चातक न होइ ए विरहिनि नार।

(सूर)

(पूरा पद ऊपर दूहा २७ की टिप्पणी मे देखो।)

दूहा ३८ बोलग—बोलण चाहिए। बोलणो+अण। मिलाओ—हिं० बोलने।

कता—कंत का सबोधन, कंत, कता तीनों रूपों में प्रयुक्त होता है।

नवि—इसके अर्थ न और नहीं तो (=अन्यथा) दोनों होते हैं।

कीधउ—सं० कृत; प्रा० किद्ध; सामान्य भूत, पुँल्लिंग, एकवचन का अनियमित रूप।

जोर करणो—प्रबल होना, पूरे बल पर होना, पूर्णत्व को पहुँचना, मन मे प्रियतम के लिये तीव्र भावनाओं का उत्पन्न होना।

दूहा ३६ गहक्किया—गहक्कणो का सामान्य भूत, पुँल्लिंग बहुवचन। कविता मे मात्राएँ पूरी करने के लिये कभी कभी अक्षर को द्वित्त कर देते हैं। गहकना=चाह या उमग से भरना, ललकना, उमगित होना (उमगित होकर बोलना भी)।

मूँक्या—मूँकणो का सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन। स० मुच्, प्रा० मुच, मुक्क; राज० मुक्क या मुक। मिलाओ—गुज० मूँकवुँ। इसका अर्थ छोडना होता है। लक्षणा से 'दे देना' अर्थ है।

धणियाँ—धणी का बहुवचन विकारी रूप। कर्म का प्रत्यय लुप्त। धणी का अर्थ पति और मालिक होता है। मिलाओ—हिं० धनी (द्वार **धनी** के पड़ रहे धका **धनी** का खाइ—कबीर)।

धण—यह शब्द राजस्थानी मे नायिका, स्त्री, प्रेयसी इन अर्थों में आता है। इसका पुँल्लिंग धणी है जो धण से ही बनाया गया है। इसकी व्युत्पत्ति स० धन्या से की गई है पर सं० धन से भी हो सकती है। पुराने जमाने मे स्त्री को भी एक प्रकार का धन ही समझा जाता था। इसका पुँल्लिंग धणी सभवतः धनिन् (धनवाला—स्त्रीवाला) से बना हो। इसका प्रयोग अपभ्रश काल से मिलता है। राजस्थानी मे तो यह बहुत आता है। आधुनिक गीतों मे भी इसका प्रयोग खूब होता है। कबीर और जायसी मे भी यह आया है। पीछे दूहा ८ में यह सामान्य रूप में स्त्री के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। प्रयोगों के उदाहरण—

> ढोला सामळा धण चपावण्णी। (८-४-३३०)
>
> सामि पसाउ, सलज्जु पिउ, सीमा सधिहिँ वासु।
>
> पेक्खिवि बाहु बलुल्लडा धण मेल्लइ णीसासु॥ (८-४-४३०)
>
> (हेमचद्र)
>
> धन मैली, पिउ ऊजला, लागि न सक्कौं पाइ। (५-३६)
>
> (कबीर)

ढो० मा० दू० २९ (११००–६२)

(१) धनि सूखै भरे भादौं माँहा । अबहुँ न आएन्हि सींचेन्हि नाहा ।

(२) बरस दिवस धनि रोइकै हारि परी चित झखि ।
मानुस घरि घरि बूझिकै बूझै निसरी पखि ॥

(जायसी—नागमती-वियोग—खड १७)

(१) उदियापुरसूँ बीज मँगाय, ओ धण वारी रे हजा ।
जोधाणेरी बाड़्याँ मे नींबू नीपजै ओ राज ।
माखणियारी पाळ बँधाय, ओ धण वारी रे हजा ।
दूधाँ ने सींचावो ढोलाजीरो नींबूडो ओ राज ॥

(२) धण रे आँगण बाग लगावो
सायब मिलणेरे मिस आवो ।

(३) थाँने आय पुजास्याँ गणगोर,
सुदर धण, जावा दो जी ।

(४) आवो, ए कुरजाँ, बैठो म्हाँरी पास, कुणांरी तो भेजी अठे आई जी म्हाँरा राज । थाँरी धणरी तो भेजी अठे आई जी थारी धणरा कागद साथ, भँवर, थे बाँच लेवो जी म्हाँरा राज ।

(राजस्थानी गीत)

सालण—सालणो का तुमंत रूप, हिं०—सालने । सालणो = सं० शल्य; प्रा० सल्ल ।

वूठैंतौ— वूठणो + ऐतौ (वर्तमान कृदत का प्रत्यय) । अन्य रूप—वूठतो, वूठतो । व्याकरण के अनुसार यहाँ विकारी रूप वूठैते होना चाहिए ।

दूहा ४० गुणिय—स० गुणी ।

सगळाँ—स० सकल प्रा० सगळ, सयल, राज० सगळो । विकारी रूप । सबध का प्रत्यय लुप्त ।

ऊछव—स० उत्सव, प्रा० उच्छव ।

दूहा ४१ ऊनमि इ०—मिलाओ—ऊँनवि आई बादली बरसण लगे अँगार ।

(कबीर)

बद्दळी—अन्य रूप—बादळी । बादळ की व्युत्पत्ति कुछ लोग सं० वार्दल से करते हैं और कुछ लोग उसे देशी शब्द बनाते हैं । हेमचद्र ने देशी कहा है ।

प्रयोग—

श्रो गोरी मुह णिज्जिअउ वद्दलि लुक्कु मियकु ।
अन्नुवि जो परिहविय तणु सो किवँ भँवइ निसकु ॥

(८—४—४०१)

चित्त—चित्त मे (या स्मृति में)—दूहा २८ ।

यो—इसकी सज्ञा मेह है । वद्दली को माना जाय तो या होना चाहिए ।

दूहा ४२ दिसई—ई अधिकरण प्रत्यय है, अन्य प्रत्यय ए, इ ।

मेड़ी—प्रा० । देखो—मेडय । मिलाओ—तस्स य सयणट्ठाण सचारिय-कट्ठमेड्यसुवरिं (सुपाहनाहचरिअ पृ० ३५१) ।

जीवसे—जीवणो का सामान्य भविष्य । से भविष्य का प्रत्यय है । अन्य प्रत्यय—सी, सइ, स्सइ । आधुनिक बोलचाल की राजस्थानी में सी (जीवसी) प्रत्यय प्रयुक्त होता है । कई मुसलमान जातियाँ से का भी प्रयोग करती हैं । देहाती बोली मे भी से प्रायः आता है । जैसे—जासे ।

सनेह—सनेही । तुक के लिये अतिम स्वर का लोप किया गया है । अथवा विशेषण के लिये सज्ञा प्रयुक्त की गई है ।

दूहा ४३ काळी कंठळि—काली गोलाकार घटा । देखो—दूहा ५२१ ।

दूहा ४५ मिलऊँली—मिलणो का सामान्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एक-वचन, स्त्रीलिंग । राजस्थानी मे भविष्यकाल के चार पाँच प्रकार के रूप होते हैं । मिलसूँ मिलूँला (इनमें लिंगभेद नहीं होता), मिलूँली, मिलूँगी (इनमें लिंगभेद होता है) ।

दूहा ४८ टवक —नगाड़े आदि का शब्द ।

भावार्थ—दादुर, मोर और मेघ का शब्द मानो नगाड़े की आवाज है और बिजली, जो चमक रही है, मानो तलवार है । इस प्रकार मानो कोई सेना उस विरहिणी पर चढ़ी आ रही है ।

दूहा ४६ कगार—यहाँ सरोवर आदि के किनारे ।

दूहा ५० नीळज्जियाँ—निर्ल्लज्जा, यहाँ विशेष्य के साथ साथ विशेषण को भी बहुवचन किया गया है । साधारणतया तथा गद्य मे ऐसा नहीं किया जाता (ओकारात पुँल्लिग विशेषण इस नियम के अपवाद हैं) ।

मधुरइ मधुरइ—जोर जोर से गरजकर विरहवेदना को न जगा किंतु अपनी धीमी धीमी मीठी आवाज से लोरी की भाँति उसे धीरे धीरे सुला दे ।

दूहा ५१ काइ—स० कापि, प्रा० कावि ।

कुरळी—कुरळनो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन। कुरलना राजस्थानी का एक बडा ही भावपूर्ण शब्द है। इसका प्रयोग विशेषतः क्रौंच, चातक, सारस, कोयल, मयूर आदि के करुण किंतु मधुर शब्द के अर्थ में होता है। उदाहरण—

(१) हूँ चातक ज्यूँ कुरळाऊँ जी।
कछु बाहर कहि न जणाऊँ जी॥

(२) मोर असाढाँ कुरळहे घन चात्रग सोई हो।

(मीराँबाई)

सरवर सँवरि हस चलि आए।
सारस कुरळहिँ, खजन देखाए॥

(जायसी—नागमती-वियोग खड)

अंबर कुजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल। (कबीर)

उवै—साधारण रूप वै है। मिलाओ-हिं० वे, अगला दोहा देखो।

मेळी—मिलाई, बंद कीं। अखि मेळी = सोई।

दूहा ५२ कहिजइ—कहणी का कर्मवाच्य, आधुनिक रूप—कहीजै। अन्य रूप—कहियइ यै।

पसू—पशु की भाँति विवेकरहित।

केरा—केरो का बहुवचन। केरो सबध का प्रत्यय है।

प्रा० केर, अप० केरअ। इसी से राजस्थानी रो, बँगला एर, ब्रज को, एव हिंदी 'का'—ये सबध प्रत्यय बने है।

अणुराव—अनु + रव = पीछे पीछे बोलना। वैसा ही शब्द करना। अणुराव गूँज को भी कहते है।

दूहा ५३ तिणका—बहुवचन = उनके।

जिणकी इ०—अर्थात् जो प्रियतम से बिछुड जाते हैं वे सदा इसी प्रकार करुण शब्द से रोया करते हैं जो चारों ओर फैलकर गूँजने लगता है। मिलाओ—

अबर कुजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।
जिनिपै गोविंद बीछुटे तिनिकै कवन हवाल॥
अंबर घनहर छाइया बरसि भरे सब ताल।
चातक ज्यों तरसत रहै तिनिकौ कवन हवाल॥

(कबीर)

कुरझड़ियाँ कुरला रही, गूँजि उठे सब ताल।
जिनकी जोड़ी वीछड़ी तिनका कोण हवाल ॥
(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५४ कूँझड़िया—सं० क्रौंच, प्रा० कुंच, कोंचः राज० कुज-कूँज, कुंझ-कूँझ, कुंझ कूँझ, कुंझो कूँझी, कुरज, कुरझ कुरझी, कुजड़ी कुँझड़ी कूँझड़ी-कूँझड़ी। अनुवाद मे इसका अर्थ कुररी दिया गया है, जो ठीक नहीं है। हिंदी मे इसको कराँकुल कहते हैं। यह सारस की जाति का पक्षी होता है और सरोवर आदि के जल के किनारे रहता है। यह झुंड बनाकर आकाश में उड़ता है। इसका स्वर बड़ा ही करुण होता है। राजस्थानी साहित्य में यह पक्षी चातक की ही भाँति महत्वपूर्ण है। चातक राजस्थान में नहीं होता, क्रौंच होता है अतः उसका महत्व और भी अधिक है। क्रौंच के करुण रुदन ने ही भारतीय काव्य रचना को जन्म दिया। आदिकवि वाल्मीकि की कवित्व शक्ति का आकस्मिक स्फुरण एक क्रौंच पक्षी के व्याध द्वारा निहत अपने प्रियतम के प्रति करुण रुदन को सुनकर ही हुआ था और भारतीय साहित्य की उस प्रथम काव्य कृति ने क्रौंच को अमर कर दिया है—

मा, निषाद, प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

क्रौंच के बच्चे निर्मल श्वेत वर्ण के होते हैं। स्त्रियों के गौर वर्ण से उनकी उपमा दी जाती है (कूँझ बचाँ गोरगियाँ खजर जेहा नेत—दूहा ४५७)। कहते हैं कि कुंज पक्षी अपने बच्चों को छोड़कर जब चुगने जाता है तब वहाँ से उनको बराबर पुकारता रहता है और बच्चे भी बराबर गर्दन ऊँची किए उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं (देखो—दूहा २०२ से २०५)। कबीर ने भी इस भाव का एक दोहा कहा है (देखो—दूहा २०२ की टिप्पणी में अवतरण)। उदाहरण —

तूँ छै ए, कुरजाँ, भायेली, तूँ छै धरम की बहण।
एक संदेसो, ए बाई म्हारी, ले उडो, ए म्हारी
राज, कुरजा, म्हारा पीव मिला दे ए ॥
(राजस्थानी गीत)

करळव—स० कलरव। यह शब्द प्रायः मधुर किंतु करुण शब्द के अर्थ मे आता है।

वरोहि—वण (स० वन) + एहि (अधिकरण प्रत्यय)।

द्रह—स० ह्रद, द्रह; प्रा० दह।

दूहा ५५—दरग+इ। दरग = सं० दुर्ग। अन्य रूप—द्रंग, दुग्ग। अपभ्रंश और राजस्थानी में कभी कभी आगे का द्वित्त वर्ण Single कर दिया जाता है। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि पुराने लेखक द्वित्त अक्षर लिखने का परिश्रम बचाने के लिये पूर्व अक्षर पर अनुस्वार का सा एक चिह्न कर देते थे (मिलाओ—उर्दू का तशदीद), वही बाद में भ्रम से अनुस्वार हो गया। मक्कड का मकड हो गया, द्रग्ग का द्रग, इसी प्रकार और भी।

करवत—सं० करपत्र, प्रा० करवत्त।

वूही—वूहणो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन। राजस्थानी में वहणो (हिं० वहना) क्रिया चलना के अर्थ में आती है। कविता में तथा कुछ देहाती बोलियों में यह क्रिया बुहणो और बूहणों के रूप में भी प्रयुक्त होती है। प्रयोग—

जिण मारग केहर बुहो लागी वास तिणाँह।
ते खड़ ऊभा सूकसी नहिं चरसी हिरणाह॥

(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५६ बइसि—बइसणो का पूर्वकालिक। बइस = सं० उपविश्; प्रा० बइस। राजस्थानी में बैसणो और बैठणो दोनों रूप आते हैं।

सारहली—सं० शल्य, प्रा० सल्ल, साल, राज० सार। हली ऊनवाचक प्रत्यय। बढ़ई के छेद करने के औजार को सार कहते हैं।

सल्हियाँ—मिलाओ—हिं० सालना।

दूहा ५७ समदाँ—समुद्रों के, यहाँ जलाशय के।

बींट—(१) सं० वृत, प्रा० विंट = फल पत्तों आदि के डंठल या बंधन। (२) सं० विष्ठा। पक्षियों की विष्ठा को राजस्थानी में बींट कहते हैं। वि०—(ख) प्रति का बैट (= बैठकर) पाठ स्पष्टतर है।

जामोपत्त—जाम (सं० जन्म, प्रा० जम्म)+उपत्त (सं० उत्पत्ति)। इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट नहीं है।

मॉझिम रत्त—सं० मध्यम रात्रि = आधी रात।

दूहा ५८—कळिअळ—सं० कलकल, प्रा० कलयल।

वाउ—सं० वायु।

त्याँ—विकारी रूप, कर्म का प्रत्यय लुप्त = उनको।

दूहा ५६ पइलइ—हिं० परला; राज० पैलो, गुज० पेलुं।

वूहा—(१) देखो दूहा ५५ मे वूही। (२) स० वृष्ट, राज० वूठो, वूहो।

सोरठा ६० आवी—आवणो का पूर्वकालिक। आवी वहइ संयुक्त क्रिया है—आकर बहती है = आ बहती है (आ निकलती है)।

एकणि—एकण + इ (अधिकरण प्रत्यय)। ण प्रत्यय स्वार्थ मे लगता है। एकण का अर्थ 'एक ही, अकेला' भी होता है।

दूहा ६१ आडा—यह विशेषण बीच में क्रियाविशेषण का काम देता है।

वणइ—वणनो का वर्तमानकाल, हिं० बनता है।

जाणइ—जाणो कृदंत संज्ञा का विकारी रूप, संबंध प्रत्यय लुप्त = जाने की।

भत्त—हिं० भाँति, राज० भाँत = प्रकार, उपाय।

वणइ इ०—अन्यार्थ—बीच में वन हैं, उन वनों मे जाने का अर्थात् वनों को पार करने का उपाय नहीं है।

संदइ—सदउ का विकारी रूप। सदउ (सदो) राजस्थानी में संबंध का प्रत्यय है। ऐसा ही दूसरा प्रत्यय हदो है। इसकी व्युत्पत्ति प्रा० सुतो से की जाती है।

हिलूसइ—हिलूसणो का वर्तमानकाल। स० उल्लस्।

दूहा ६२ यउ नइ—मिलाओ—हिं० दो न।

विनउ—मिलाओ—हिं० बना।

लघी—लघणो का पूर्वकालिक (लघ+ई)

मिलउँ—अन्य रूप—मिलौं, मिलूँ।

दूहा ६३ आवेरि—स० अग्र, प्रा० अग्ग, राज० आगो, आघो, एरो। स्वार्थिक प्रत्यय है। मिलाओ—वेगेरो, ऊँचेरो।

दूहा ६४ उपराठियाँ—पीठ किए हुए। देखो—दूहा ३५० और ३६३।

नइ—कर्म का प्रत्यय। वर्तमान रूप—ने। अन्य रूप—नूँ।

इनके अतिरिक्त कूँ, कौं, को, कौ, कहुँ आदि भी प्रयुक्त होते हैं।

कहियाँह—कहना।

दूहा ६५ हवाँ—हुवणो का सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन । अन्य रूप—हुवाँ ।

चवाँ—चवणो का सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन । प्रा० च्चव ।

छाँ—वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन । पश्चिमी राजस्थानी—हाँ; हिं—हैं ।

पाठविसि—भेजेगी (तो) ।

दूहा ६६ थाहरइ—(१) थाहरणो का वर्तमान काल । अन्य रूप—ठाहरणो, ठहरणो । (२) आधुनिक रूप—थारे = हिं० तुम्हारे; गुज० त्हारे ।

काजळ—अर्थात् मसि जिससे सदेश लिखा जाय ।

गहिलाइ—गहिलाणो का कर्मवाच्य, सभाव्य भविष्य । स० गृहीत ।

कहिवाइ—कहणो का प्रेरणार्थक, कर्मवाच्य, वर्तमानकाल = कहाए जाते हैं । प्रेरणार्थक रूप—कहवाणो, कहावणो, कहाड़नो ।

दूहा ६७—सँमार—किसी शिकारी से अभिप्राय है ।

आखर—स० अक्षर, प्रा० अक्खर = प्रेरणा । प्रयोग—

काटी कूटी माछली छीं के धरी चहोडि ।
कोइ एक आखिर मनि वस्या, दह मैं पड़ी बहोड़ि ॥

(कबीर)

सँमार—अन्य रूप—सँवार, सम्हाल ।

दूहा ६८ हुवइ—हुवणो का सभाव्य भविष्य ।

मनाँ—मन का बहुवचन, विकारी रूप, कर्म का प्रत्यय लुप्त=मनोँ को ।

बँधाँड़ाँ—बाँधणो का प्रेरणार्थक बँधाड़नो । सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन । अन्य रूप—बँधावणो ।

दूहा ७० भुइ—स० भू , जमीन, बीच की जमीन, अतः फासला ।

माँगी ताँगी—मिलाओ—हिं० रोटी ओटी ।

दूहा ७१ ई—ही ।

किंउ—स० किम् , अप० किंव, किवँ । यहाँ किमपि—कुछ का मतलब है ।

अवाट्ट—सं० अपवृत्त (?) = विपरीत ।

दूहा ७२ मिळीजइ—मिळनी का आज्ञार्थ या कर्मवाच्य = मिलिए या मिला जाना है ।

हूँ—अपादान का प्रत्यय। यह दूसरे अपादान प्रत्यय सूँ से बना है। राजस्थानी मे स का ह प्रायः हो जाता है। मिलाओ—हिं० हू, हूं।

मेल्हियइ—प्रा० मेल्ल, मिल्ल, आज्ञा का रूप। मेल्हणो क्रिया राजस्थानी मे छोड़ना, भूलना, रखना, भेजना आदि अर्थों मे आती है।

दिणियर—सं० दिनकर; प्रा० दिणयर।

दूहा ७३ हुति—हेतुहेतुमद्भूत = होता या होते। अन्य रूप—हुत, होत, हुता, होता (आधुनिक राजस्थानी)।

दूहा ७४ वजउ—(१) स० व्रज्; प्रा० वज्ज। (२) स० वा; प्रा० वाय, राज० वाज।

उआँ—ऊ (= वह) का विकारी रूप। कर्म का प्रत्यय लुप्त। अन्य रूप—वाँ।

लाख पसाउ—सं० लक्ष+प्रसाद। पुराने जमाने मे राजा लोग बहुत प्रसन्न होकर कवियों आदि को कई प्रकार के पुरस्कार देते थे जिनमें लाख-पसाव, कोड़पसाव और अड़बपसाव मुख्य है। इन नामों का मतलब है प्रसाद या अनुग्रह करके लाख, करोड़ या अरब द्रव्य का दान देना। अडबपसाव करनेवाले राजा इनेगिने ही हुए हैं। पहले वास्तव मे इतना द्रव्य दिया जाता था पर बाद मे तो लाख आदि का नाम ही नाम रह गया। यह आवश्यक नहीं था कि पुरस्कार मे नकद द्रव्य ही दिया जाय। जागीर, घोड़े, हाथी, वस्त्र आदि भी दिए जाते थे। राजस्थानी साहित्य मे नीचे लिखे दानी प्रसिद्ध है—

[1](१) सिंध का राजा ऊनड़—इसने नौ लाख गाँववाली सिंध की समस्त भूमि एक ही दिन मे दान दे डाली।

(२) अजमेर का गौड़वशी राजा बच्छराज—इसने अड़बपसाव (एक अरब द्रव्य) दान किया था।

---

१. (१) माई एहा पूत जण जेहा ऊनड़ जाम।
दीधी सातूँ सिंध इम जिम दीजै इक गाम॥

(२) देवो अड़बपसाव दन धिनो गोड बछराज।
गढ अजमेर सुमेरसूँ ऊँचो दीसै आज॥

(३) काढ दीध कमधज कमै, सवा कोड़ यह सींग।
बीकाणे दाता बडा, उभै हुवा अरडींग॥

(३) बीकानेर नरेश राजा रायसिंह ने सवा करोड़ का दान किया।

(४) बीकानेर के राव लूणकरण का छठा पुत्र करमसी—इसने एक चारण को करोड़ रुपए का दान दिया। जो कुछ पास था वह सब दे चुकने पर भी जब एक करोड की रकम पूरी नहीं हुई तब अपने कीरतसी नामक कुँवर को चारण के हवाले कर दिया।

दूहा ७५ दिऊँ—आधुनिक रूप—दूँ।

मेळइ—मेळनो मिळना का प्रेरणार्थक है।

मुज्झ, तुज्झ—कारक प्रत्यय लुप्त। हि०—भाव के लिये मिलाओ—

काढि कलेजो मैं धरूँ, रे कौवा तूँ ले जाइ।
ज्यॉं देसॉं म्हॉंरो पिव वसै वे देखै तू खाइ॥

दूहा ७६ जागवइ—जागवणो, जागणो का प्रेरणार्थक है। अन्य रूप—जगावणो।

परि—भॉंति, ज्यॉं। मिलाओ—

तिल तिल बरस परि जाई। पहर पहर जुग जुग, न सेराई॥
(जायसी)

गावै करि मगल चढि चढि गउखे मनै सूर सिसुपाल मुख।
पदमिणि अनि फूलै परि पदमिणि, रुखमिणी कमोदणी रुख॥
(कृ० रु० री वेलि)

दूहा ७७ भॉंणी—मिलाओ—हि० भावनी।

कुँमलॉंणी—कुमलावणो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन। अनियमित रूप। मिलाओ—बिकाणी, लजाणी।

दूहा ७८ ऊमा देवड़ी—देवड़ा चौहान राजपूतों की एक शाखा है। ये सोनगरा चौहानों से निकले हैं। आजकल सिरोही का राज्य देवड़ों का है। देवड़ा नाम क्यों पड़ा, इसका ठीक पता नहीं चलता। ख्यातों में लिखा है कि चौहान राजा आसराज के यहॉं देवी रानी होकर रही और उसके वशज देवड़े कहलाए। कुछ लोग कहते हैं कि एक राजा का दूसरा नाम देवराज था जिसकी सतान देवड़ा कहलाई। (विशेष देखो, भूमिका)

ऊमा पिंगळ की स्त्री एव मारवणी की माता थी। कुशललाभ और जोधपुरीय कथानकों में इस काव्य का एक धुर सबध (प्रस्तावना या उपोद्घात) भी मिलता है जिसमे पिगळ और ऊमा के विवाह की कथा दी गई है जो इस प्रकार है —

एक बार राजा पिंगळ शिकार खेलने को गया। वहाँ उसे एक भाट मिला जिसने ऊमा के रूप की बहुत प्रशसा की। नगर मे लौट आने पर राजा ने अपने प्रधान को ऊमा के पिता सामंतसिंह के पास जालोर भेजा और ऊमा को माँगा। ऊमा की सगाई इससे पूर्व गुर्जर नरेश उदयादित्य (उदयचद) के पुत्र रणधवल के साथ हो चुकी थी पर ऊमा की माता इस सबध से संतुष्ट न थी। उसने पिंगळ को कहलवाया कि अमुक अमुक लग्न के दिन तुम आबू यात्रा के बहाने यहाँ आ जा और हम ऊमा का विवाह तुम्हारे साथ कर देंगे। उधर उक्त लग्न के थोडे दिन पहले एक दूत लग्न लेकर उदयादित्य के पास भेजा गया। उदयादित्य से दूत ने कहा कि मैं मार्ग मे बीमार पड गया इसलिये पहले न आ सका। उदयादित्य ने देखा कि लग्न पर बरात नहीं पहुँच सकती पर उसने रणधवल को बरात के साथ रवाना कर दिया। उधर लग्न पर पिंगळ पहुँच गया। जब गुजरात की बरात ठीक समय पर नहीं आई तो ऊमा का विवाह पिंगळ के साथ कर दिया गया क्योंकि तेल चढी हुई कन्या कुमारी नहीं रखी जा सकती। उदयादित्य को यह खबर मिली तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने जाळोर को घेर लिया। विवाह के बाद पिंगळ तो पूगळ पहुँच गया पर ऊमा साथ न भेजी जा सकी। इसलिये पिंगळ के प्रधान जेसळ ने एक बैलों की जोड़ी ऐसी तैयार की जो खूब तेज जाकर लौट आ सके और उदयादित्य के सैनिकों द्वारा पकड़ी न जा सके। उस जोड़ी को गाडी मे जोतकर वह एक रात को जाळोर गया और ऊमा को ले आया (विशेष देखो परिशिष्ट मे (थ) और (भ) प्रति का प्रारभिक अश।)

कहिवा—कहने (के लिये)। अन्य रूप—कहण।

भणी—यह एक प्रत्यय है जो कई कारक प्रत्ययों का काम देता है।

जैसे—

(१) कर्म—जिम पहुँचाँ नळवर-गढ-भणी (को)।

(२) करण—छाना मिळिया भाऊ-भणी (से)।

(३) संप्रदान—घणा गरथ दिया तिण-भणी (को)।

(४) अपादान—माँगी हूती राजा-भणी (से)।

इसके सिवा यह 'प्रति' और 'पास' का भी अर्थ देता है। जैसे—

ऊमावो हूओ तुझ-भणी (प्रति)।

नरवरगढ ढोलइ-भणी (पास)।

(ये सब उदाहरण कुशललाभ की चौपाइयों के हैं। देखो—परिशिष्ट में (थ) प्रति।)

दूहा ८० आखय—आखइ। इ का य हो गया है।

दाइ—दाव (?)।

दूहा ८१ साँढिया—साँढ+इया (वाला अर्थ देनेवाला, प्रत्यय) = साँढवाले, साँढ़नी सवार। मिलाओ—ऊँटिया (ऊँटवाला, ऊँट का सवार)।

पाठवइ—सं० प्रस्थापम्, प्रा० पट्ठव पट्ठाव, राज० पाठवणो, पठावणो।

तेड़न—तेड़नो का तुमंत रूप। तेड़ना क्रिया राजस्थानी तथा गुजराती में बुलाने, न्यौता देने के अर्थों मे प्रयुक्त होती है।

काजि—हिंदी में भी यह शब्द 'लिये' के अर्थ में आता है।

दूहा ८२ को—कोइ। इ लुप्त हो गया है।

सँडेसड़ा—सं० संदेशक, प्रा० संदेस, अप० सदेसडउ, राज० सदेसड़उ (सदेसडो)। बहुवचन—डो प्रत्यय स्वार्थ मे या अनादर में आता है।

वगड—(१) राज० वाघड़। (२) वग्गड़ या वागड़ विना बस्ती के देश को भी कहते हैं। अतः मरुभूमि के जगल के बीच मे।

विचाहू—बीच में ही। विच देशी प्राकृत शब्द है और हू ही का दूसरा रूप है।

दूहा ८३ आवंत—(१) सं० आयात, प्रा० आवंत। आता हुआ है = आता है। (२) सं० आयाति; प्रा० आवंति। आवत, आवत ये रूप वर्तमानकाल के दोनों वचनों मे प्रयुक्त होते हैं।

वेच्या—वेचे हुए अर्थात् वेचे जाने पर। वेच्याँ पाठ हो तो 'वेचने पर' अर्थ होगा।

लाख लहत—लाख रुपए लाते हैं, लाख रुपयों मे विकते हैं (देखो—दूहा २८० और २७०)।

दूहा ८४ करे—कर+ए (पूर्वकालिक प्रत्यय)।

दूहा ८६ अउझकइ—अचानक। मिलाओ—हिं० औचक।

खिँवी—चमकी। विजली के चमकने के लिये यह क्रिया आती है। यह द्रुतता सूचित करती है।

सझ—सं० सध्या, प्रा० संझा।

दूहा ८७ सोवन—सुनहरा।

तसु—सं० तस्य, प्रा० तस्स; राज० तास, तस, तसु।

अलत्ता—सं० अलक्तक।

दूहा ८८ सउदागर—इस चरण मे एक मात्रा कम है।

लइ मन्न—मन लेकर, अपने अनुकूल पाकर या बनाकर।

दीसइ—स० दृश्यते; प्रा० दीसइ, दीखती है, देखी जाती है।

रायंगण—सं० राजागण।

व्रन्न—सं० वर्ण। राजस्थानी मे आगे के वर्ण पर का रेफ कभी कभी पूर्व वर्ण के नीचे चला जाता है। अन्य उदाहरण—ध्रम्म (धर्म्म), क्रम्म (कर्म्म), क्रीति (कीर्ति), सोव्रन्न (सुवर्ण), न्रिमल (निर्मल), स्त्रग (स्वर्ग)।

दूहा ८९ किह—प्रा० अप० किह, किहँ; हिं० कहाँ।

पीहर—पितृगृह।

विगतइ—विगत (ब्यौरा) + इ (करण प्रत्यय)।

दूहा ९० पुहकर—पुष्कर नामक स्थान।

दूहा ९२ कन्हे—पास, से।

एकति—अन्यार्थ—एक।

दाखूँ—दाखणो का सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन। दाखणो राजस्थानी क्रिया है जो संभवतः आँख के साम्य पर बना ली गई है।

भंति—भाँति।

दूहा ९३ जिसउ—स० यादृश; अप० जइस, राज० जिसउ, हिं० जैसा। लाखाँ—हिं० लाखों।

बगसइ—फा० बख्शना।

भड़—स० भट।

सिर—पर, ऊपर।

दूहा ९४ सुधू—सु + धू (स० दुहिता, प्रा० धूआ, धूया)। आधुनिक रूप—धी, धीवडी।

ढोळइ तिण—ढोले मे और उसमे।

दूहा ९६ कउ—कोउ। देखो—दूहा ८२ मे को।

निरति—खबर, सुध।

तियउ—अन्य रूप—तिको = वह। सो, वो, जो, इनकी जगह राजस्थानी में तिको, जिको-जको ये रूप भी आते हैं।

जिकोइ—जिको = जो। अन्यार्थ—जि = जो + कोइ = कोई।

दूहा ९७ सुं—छंद पूर्त्यर्थ ह्रस्व कर दिया गया है।

कहृ—कहता है। वर्तमान काल।

छानी—स० छन्न, प्रा० छण्ण = प्रच्छन्न, गुप्त, छिपा। स्त्रीलिंग।

से—सो

तथ्य—स० तथ्य = रहस्य।

दूहा ९८ सही—सखी।

समाँणी—समान उम्र की।

मल्हपत—प्रा० मल्ह (=लीला करना)। लीला के साथ धीमे धीमे चलना।

नेडी—सं० निकट, प्रा० णिअड, नेड विशेषण, स्त्रीलिंग।

दूहा ९९ साँभळिया—स० सभल, प्रा० सभल, गुज० सामळवुं।

मूकयउ—सं० मुक्त, प्रा० मुक्क।

दूहा १०० विमासियउ—स० विमश, प्रा० विमस्स।

दूहा १०२ माँगणहार—याचक। यहाँ याचक जाति के पुरुष से अभिप्राय है। चारण, भाट, ढोली, ढाढी आदि याचक जातियाँ कहलाती हैं।

गारा—फारसी गर प्रत्यय, जो सभवतः सस्कृत कार से बना है। राजस्थानी मे यह वाला या करनेवाला के अर्थ में आता है। मिलाओ—कामणगारा।

रीझवइ—रीझवणो रीझणो का प्रेरणार्थक है। अन्य रूप—रिझावणो।

ल्यावइ—लावइ का रूपातर।

दूहा १०३ मोकळि—स० मुक्त, प्रा० मुक्क, मोक्कल, गुज० मोकळवुं। आशार्थ।

उत्तिम—उत्तम।

मगता—याचक। आजकल मँगता बुरे अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

घररा—घर के, अपने।

जगावइ—सगीत द्वारा विरह को उद्दीप्त करें।

दूहा १०४ भेदक—स० भेदज्ञ।

दूहा १०५ ढाढी—विवाह, जन्मोत्सव आदि शुभ अवसरों पर बधाई आदि के गीत गानेवाले मुसलमान गवैए। प्रयोग—

हौं तो तेरो घर घर को ढाढी सूरदास मो नाउँ। (सूर)

श्री गौरीशंकर हीराचद ओझा ने हमारे पूछने पर लिखा है—'ढाढी जाति की उत्पत्ति का ठीक ठीक पता नहीं चलता, परतु अदाजे से ढाढी शब्द लगभग १६वीं शताब्दी से काम मे लाया जाता है। जब वे इस नाम से पुकारे जाने लगे, करीब करीब उसी समय से मुसलमान हो गए थे। सभवतया पहले वे ढोली या भाट थे, परतु मुसलमान होते ही वे अपनी जातिवालों से नीची निगाह से देखे जाने लगे और 'ढाढी' कहलाने लगे। ढाढियों और ढोलियों का पेशा एक ही सा है—उत्सवों पर गाना, बजाना, बदीजन और सदेशवाहक का काम करना। ढाढियों का अब तक यही पेशा है और वे सारे हिंदू रीति रिवाजो का पालन करते हैं। वास्तव मे मुसलमान तो वे केवल नाम के हैं।

राजस्थान मे अब भी कोई उत्सव या मगलकार्य ढाढियों के सहयोग बिना अधूरा ही समझा जाता है। गढों के द्वार पर नौबत और शहनाई यही बजाते है। सवारी के समय नगाड़े और तुरही बजाते हुए और विरुद गाते हुए निशान का (झंडा) हाथ मे लिए घोड़ों या ऊँटों पर चढ़कर वही सबसे आगे चलते हैं। जान पड़ता है, पहले युद्धयात्रा के समय भी ऐसा ही होता रहा होगा। वे अपने यजमानो की वीरगाथाओं को कविताबद्ध भी करते रहे हैं और शाति के समय उनका विरुद बखान कर, सगीत सुनाकर तथा वीरता या प्रेमपूर्ण सुदर सुदर कहानियाँ कहकर उनका मनोरजन भी करते रहे है। यजमानों का भी उनपर सदा से अटल विश्वास रहा है। राजपूत जाति के इतिहास मे युद्ध और प्रेम इन दो बातों का सदा प्राबल्य रहा और ढाढियों ने उनके दोनों प्रकार के कार्यों मे पूरा सहयोग दिया है। अब भी इस जाति मे बड़े बड़े गुणी, उच्चकोटि के गवैए, सब प्रकार के वाद्य बजानेवाले, कहानी कहनेवाले और अच्छे अच्छे कवि मौजूद हैं। हिंदी के सिद्धहस्त गद्य पद्य लेखक मुशी अजमेरी जी, जिन्होने आगरा मे महात्मा गाधी को अपनी विनोद और हास्यपूर्ण बातों से प्रसन्न किया था और अपने गानों और कथाओं से रिझाया था, इसी जाति के रत्न थे।

बोलाविया—स० ब्रू, प्रेरणार्थक, प्रा० बोल्लावइ, बुल्लावइ; हिं० बुलाना राज० बोलणो का प्रेरणार्थक बोलावणो, सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन। यहाँ यह शब्द 'बुला भेजने' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, 'पुकारने' के अर्थ मे नहीं।

ताळ—सं० ताल। ताली बजाने में जितना समय लगता है, उतना समय। क्षण, समय। उदाहरण—

'तिणि ताळि सखी गळि स्यामा तेही'। (वेलि १७७)

वागरवाळ—सं० वागर, प्रा० वागर = विद्वान्, पंडित। वाळ प्रत्यय (= हिं० वाला)। प्रत्यय यहाँ पर निरर्थक जान पड़ता है।

विद्याव्यसनी होने के कारण कदाचित् ढाढियों को इस नाम से पुकारा जाता है। धीरे धीरे इस शब्द का अर्थ याचक या गा बजाकर माँगनेवाला रह गया है।

दूहा १०६ सीख—सं० शिक्षा, प्रा० सिक्खा, हिं० सीख। राजस्थानी मे यह शब्द 'विदा' के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है, जैसा कि इस स्थल पर हुआ है।

मेल्हि—सं० मुच्, प्रा० मेल्ल, राज० मेल्हणो + इ (पूर्वकालिक प्रत्यय)।

तेड़ाविया—सामान्य भूत, पुँल्लिग, बहुवचन। राजस्थानी—तेड़णो + आव (प्रेरणार्थक प्रत्यय) तेड़ावणो + इया, प्रा० तेड़, राज० तेड़ा (संज्ञा) = न्यौता, निमंत्रण, बुलावा।

मागणहार - राज० मागणो + अण + हार। माँगनेवाला, याचक। मागणा—सं० मार्ग, प्रा० मग्ग, हिं० माँगना। हार (प्रत्यय)—सं० धार; हिं० हार, हारा।

दूहा १०७ दियण—राज० देणो + अण = देने के लिये। सं० प्रा० दा, हिं० देना।

कज्ज—सं० कार्य, प्रा० कज्ज, हिं० काज = लिये, के हेतु, निमित्त।

कदे—सं० कदा, प्रा० कदा, हिं० कब, राज० कद = किस समय।

चालिस्यउ—(सामान्य भविष्य, मध्यम पुरुष, बहुवचन) सं० चल्, प्रा० चल, हिं० चलना, राज० चालणो।

विहाणइ—(अधिकरण) सं० विभात, प्रा० विहाण = प्रभात में। उदाहरण—निद्दए गमिही रत्तड़ी दडवड होइ विहाणु॥

(हेमचंद्र ८-४-३३०)

अज—(क्रियाविशेषण) सं० अद्य, प्रा० अज्ज, हिं० आज।

दूहा १०८ निसह—सं० निश, निशा, प्रा० निस, निसा = रात्रि में। ह अधिकरण कारक का चिह्न है। मिलाओ—

जल विन हस निसह विन रवू ।
कबीरा कौ स्वामी पाइ परिकैं मनैंबू लो ।
(२१३—३७६)

म्हे—(सर्वनाम, कर्ता कारक, बहुवचन) स० अस्मत्, प्रा० अम्हे, अप० अम्हइ, अम्हे, हिं० हम ।

बहिस्याँ—(भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन) सं० वह, प्रा० वह, हिं० वहना = चलेंगे । राजस्थानी म यह शब्द मनुष्यों के अथवा वाहन के मार्ग चलने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है ।

पथी—स० पथिन्, प्रा० पथिय ।

जीव्या—(सामान्यभूत, पुँल्लिग, बहुवचन) स० जीव, प्रा० जीव, हिं० जीना=जिए, जीते रहे ।

मुया—सं० मृत, प्रा० मुअ, मूअ, हिं० मुए, मर गए तो ।

त—(अव्यय) स० तद् या तु, राज० हिं० तो, तब = त, उस दशा मे ।

'सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाडी भोल' ।
(कबीर)

किसी शब्द पर जोर देने के लिये राजस्थानी मे स, त, ज का निरर्थक प्रयोग भी होता है ।

दूहा १०६ भगताविया—स० भुज्, भोग, हि० भोगना, भुगतना, भुगताना; राज० भोगणो, भोगावणो (प्रेरणार्थक), भुगतणो, भुगताणो, भुगतावणो (प्रेरणार्थक) । राजस्थानी मुहावरे मे यह शब्द सदेस के साथ साधारणतः प्रयुक्त होता है, जैसे—'सदेसो भुगतावणो' ।

मारू—स० मरु, प्रा० मरू, मरुअ ।

(१) एक राग जिसको **माँड** भी कहते हैं । इस राग की उत्पत्ति मरु० स्थल से हुई जान पडती है अथवा मारवाड मे अधिक गाए जाने से इसका नाम 'माँड' पड़ा, जिस प्रकार पूर्व से 'पूर्वी' सिंध से 'सिंधरा' और सौराष्ट्र से सोरठ । मारवाड़ मे अब तक यह राग सबसे अधिक लोकप्रिय है और उत्सव के अवसरों पर गाया जाता है । 'सोरठ' और 'देश' का भी राजस्थान मे बहुत प्रचार है परतु उतना नहीं जितना माँड का ।

पहले जब राजस्थान भारत का आदर्श युद्धक्षेत्र बना हुआ था, तब योद्धाओं को उत्साहित और उत्तेजित करने के लिये इसी राग मे त्याग, वीरता

और यश के गान गाए जाते थे परतु ज्यों ज्यों यह देश विलासभूमि बनता गया और अपने उच्च आदर्श भ्रष्ट होकर 'दारुड़ा पियो और मारूडा गाओ' तक ही रह गया, त्यों त्यों इस राग ने भी पलटा खाया और इसमे श्रृगाररस का प्रवाह बहने लगा। रात्रि के समय जब कोई इस राग मे विरह की टेर लगा देता है तो हृदय व्याकुल हो जाता है।

मॉड सपूर्ण राग है। इसमे सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह श्री राग का पुत्र समझा जाता है। मारवाड़ के गवैए ढोला मारू के प्रसिद्ध दूहे इस राग मे बडे सुदर ढग से गाकर मन को लुभा लेते हैं। मॉड राग की चीजों मे जब तक बीच बीच मे दोहे नहीं रहते तब तक उसका मजा अधूरा ही रहता है।

(२) इस शब्द का दूसरा अर्थ मरुस्थल निवासी भी होता है। जयपुर निवासी विहारीलाल कवि ने इस अर्थ मे प्रयोग किया है—

मरुधर पाय मतीरह मारू कहत पयोधि। (बिहारी)

आधुनिक राजस्थानी मे 'ढोला' की तरह यह शब्द केवल 'नायक' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जैसे—पन्ना मारू, जल्ला मारू। उदाहरण—

आई रे आई, मारू, सावणियॉरी तीज, राज सइयॉ,

कसूबो रे म्हारा गाढा मारू ओढियो।

(प्रचलित 'कसूबो' गीत')

निपाइ—स० निष्पद, प्रा० णिप्पाअ, राज० निपाणो, नीपाणो, नीपावणो; हिं० निपजाना = बनाकर, रचकर। उदाहरण—

किणि नीपायो तदि त्रिकुटी ए मठ पूतळी पाखाण मैं। (वेलि ११०)

तियॉ—सं० तत्; हिं० तिन = उनको। विकारी रूप, कारक प्रत्यय लुप्त। अन्य रूप—त्यॉ।

दूहा ११० सुहॉमणउ—(विशेषण) स० शुभ, प्रा० सोह, राज० सोहणो + ऑमणो (प्रत्यय)। अन्य रूप—सोहणो, सुहावणो, सुवावणो। मिलाओ—हिं० सुहावना।

पहियाह—सं० पथिक, प्रा० पहिय; राज० पहिय + आ (सबोधन-चिह्न) + ह (पाद पूर्त्यर्थक) = हे पथिको।

दूहा १११ सदेसा—सदेसॉ होना चाहिए। अनुस्वार का लोप हो गया है। विकारी रूप, करण कारक का प्रत्यय लुप्त।

लख लहइ—स० लक्ष; प्रा० लक्ख; हिं लखना, राज० लखणो = जान लेता है। 'लख' धातु है जो लहइ से मिलकर सयुक्त क्रिया बनाता है।

लहइ—सं० लभ, प्रा० लह, हिं० लहना, राज० लहणो। केवल कविता मे प्रयुक्त होता है।

आखइ—(सभाव्य भविष्य) स० आख्या; प्रा० अक्खा, अक्ख, हिं० आखना, राज० आखणो। (क) में, जो अब तक प्राप्त प्रतियों मे सबसे प्राचीन है, इस दूहे के प्रथम और दूसरे 'आखइ' के स्थान पर क्रमशः 'देखूँ' और 'देखै' पाठ है, जो 'दाखूँ' (कहती हूँ) और 'दाखे' (कहे) के स्थान पर प्रतिलिपिकार की गलती से लिख गया जान पड़ता है। (क) का यह पाठ रखने से अर्थ होता है—'जिस प्रकार मैं आँखें भरकर देखती हूँ, उसी प्रकार यदि वह देखे'—जो ठीक नहीं जँचता।

दूहा ११२ बळि—सं० ज्वल्, प्रा० बल, हिं० बलना, बरना। पूर्वकालिक। प्रयोग—

कमल बालि विरहिणी वदन किय,
अब पाळि सजोगि उर। (वेलि २२२)
मद्दु कतहो गुद्दट्टि अहो कउ झुंपड़ा बलति।
(हेमचद्र ८-४-४१६)

कुइला—स० कोकिल, प्रा० कोइला, हिं० कोयला।

ढँढोलिसि—सं० ढुढनम्, प्रा० ढुढुल्ल, ढढुल्ल, ढढोल, राज० ढूँढणो, ढढोलणो, हिं० ढूँढना, ढँढोरना। प्रयोग—

(१) सायर माहि ढंढोलताँ हीरा पड़ि गया हत्थ।
(कबीर)

(२) दुपहर दिवस जानि घर सूनो, ढूँढि ढँढोरि आप ही आयो।
(सूर)

दूहा ११३ यूँ—(अव्यय) अप० एम्व, इम्व, एवँ, इवँ, राज० एम, इम, इयुँ।

प्राँणियउ—प्राण + इयउ (अनादरवाचक प्रत्यय) = बेचारा प्राण।

झळ—स० ज्वाल; हिं० झल, झार = ताप, दाह, उग्र कामना, उत्कट इच्छा। उदाहरण—

(१) झाँखाँणा उरि उठी झळ। (वेलि १४०)

(२) साहिब मिलै न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय।
(कबीर)

दूहा ११६ ओळग—सं० अपलग्न, अप० ओळग्ग; राज० अळगो, हिं० अलग = दूर, जुदा, भिन्न, पृथक्।

रूडा—सं० रूढ़ = प्रशस्त, हिं० रूरा = अच्छा, भला, प्रशंसनीय। मिलाओ—

लटकन ललित ललाट लटूरी,
दमकत द्वै द्वै दँतुरिया रूरी। (सूर)

दूहा ११७ साख—राजस्थानी में 'साख' फसल को कहते हैं।

दूहा ११८ उपाड़ियउ—सं० उत् + पाट्य, प्रा० उप्पाड़िय; राज० उपाड़णो, हिं० उपाड़ना = ऊपर उठाना, उखेड़ना। उदाहरण—

ऊपड़ी रजी मझि अरक एहवो। (वेलि ११५)

दूहा ११९ वइसइ—सं० उपविश, प्रा० वेस, वईस, गुज० वेसवुँ, राज० वैसणो = बैठना। उदाहरण—

ते मंदिर खाली पड़े, वैसण लागे काग। (कबीर)

दूहा १२० मउरियउ—सं० मुकुलित, प्रा० मउरिअ, मउलिअ, हिं० मौरना = मंजरी युक्त होना। उदाहरण—

मारगि मारगि अंब मौरिया। (वेलि ५०)

चुटइ—प्रा० चुट। राजस्थानी में (और अपभ्रंश में भी) कभी आगे द्वित्व वर्ण होने पर उसे एक करके पूर्व वर्ण को सानुस्वार कर देते हैं और कभी इसके विपरीत अनुस्वार को हटाकर आगे के वर्ण को द्वित्व कर देते हैं।

दूहा १२१ कण—(सं०) धान्य कण। उदाहरण—

कण एक लिया किया एक मण कण। (वेलि १२८)

करसण—सं० कर्षण, प्रा० करिसण। इसी से राजस्थानी में करसा (= किसान) और हिं० किसान बनता है।

भोग—(सं०) उपभोग, कर। इससे राजस्थानी भोगता शब्द (= जमींदार, जागीरदार) बना है।

दूहा १२२ फाटि—सं० स्फटित, प्रा० फट्टिअ (सामान्य भूत), राज० फाटणो, हिं० फटना। जोबण फाटि इत्यादि, मिलाओ—

सरवर हिया घटत नित जाई। टूक टूक होइकै बिहराई ॥
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीठ दवँगरा मेरवहु एका ॥
(जायसी)

तलावडी—सं० तडाग, तडागिका, प्रा० तलाग, तलाइत्रा; राज० तलाव; हिं० तलैया। ड़ी ऊनवाचक प्रत्यय।

पाळि—स० पालि, राज० पाळ, पाज, हिं० पाल, पार = मेड, जलाशय का किनारा। मिलाओ—

टूट पाळ सरवर बहि लागे। (जायसी)

सरवरियारी, बीग, ऊँची नीचो रे पाळ एक चढूँ दूजी ऊतरूँ।

(राजस्थानी गीत)

दूहा १२३ पैंहचाइ—स० प्र + भू, प्रा० पहुच्च, अप० पहुच्चइ (हेमचंद्र), राज० पूचणो; हिं० पहुँचना। प्रेरणार्थक, आज्ञा।

दूहा १२४ पही—सं० पथिक, प्रा० पहिश्र।

घातउ—प्रा० घत्त, राज० घातणो, घालणो। आज्ञा। मिलाओ—मराठी घेत, घेतले। उदाहरण—

धर श्यामा सरिस स्यामतर जलधर घेघूचे गळि बाहाँ घाति।

(वेलि २०१)

दूहा १२५ निकसी वेणी सापणी इत्यादि—ऐसा प्रसिद्ध है कि साँप के मुँह में स्वाती की बूँद पड़ने से विष बनता है, इससे सभवतः इसे सतोष और शांति प्राप्त होती है (?):

कदली, सीप, भुजग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी सगति बैठिए, तैसो ही गुण दीन॥

(रहीम)

दूहा १२६ उत्तर—(स०) लक्ष्यार्थ मे उत्तर का पवन, शिशिर वात, जिसके चलने से लता गुल्म आदि जल जाते हैं। उदाहरण—

प्रज उदभिज सिसिर दुरीस पीडतौ

ऊतर ऊथापिया असन्न। (वेलि २४९)

दखिखण—लक्ष्यार्थ मे दाक्षिणात्य पवन। शीतल, मंद, सुगधित वासतिक वायु, जिसके चलने पर सूखी हुई वनस्पति में फिर से प्राण का संचार होता है और नवांकुर प्रस्फुटित होने लगते हैं।

वाजइ—स० व्रज, प्रा० वच्च, वज्ज, वज्जइ, वाजइ = चलता है, चलती है। राजस्थानी मे हवा के चलने को 'हवा वाजणो' कहते हैं।

दूहा १२७ ओखद—स० ओषधि = दवा, उपचार।

दूहा १२८ सेहर—सं० शिखर, प्रा० सिहर। यहाँ पर शिखर पर गर्जन करने से—नायक का मेघ के रूप में गर्जन करके यौवन रूपी बाघ के दर्प को शान्त करने से—आशय है। बाघ को मेघगर्जन सुनकर क्रोध होता है, परंतु उस पर उसका वश नहीं चलता।

दूहा १२९ कुमळाँणी—सं० कु + म्लान, प्रा० कुम्मण, हिं० कुम्हलाना = मुरझा जाना, गतप्रभ होना। उदाहरण—

काटन बेलि कूँपलै मेल्हीं, सींचताड़ी कुमिळाँणी। (कबीर)

सिसहर—सं० शशधर; प्रा० ससहर = चंद्रमा। उदाहरण—

ससिहर कै घरि सूर न आने। (कबीर १५७–२०२)

दूहा १३१ खीर—सं० क्षीर, प्रा० खीर = दुग्ध। जिस प्रकार देवता और असुरों ने क्षीरसमुद्र का मथन कर सूर्य, चंद्र, विष, अमृत आदि चौदह रत्न निकाले थे, उसी प्रकार यौवन समुद्र का मथन करके प्रेमरूपी रत्न निकालने के लिये ढोला का आह्वान किया जा रहा है।

काढइ—सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण = निकालना। उदाहरण—

पुनि पताल पानी तहँ काढ़ा।

छीरसमुद्र निकसा हुत बाढ़ा॥ (जायसी)

दूहा १३२ केळिनि—सं० कदली (स्त्रीलिंग), प्रा० कयली, केळो का स्त्रीलिंग या केलोंवाली (केले के वृक्षों की बाड़ी)। मिलाओ—कमलिनी (स्त्रीलिंग)। कहा जाता है कि स्वाती नक्षत्र में वर्षा होने पर कदली में कपूर पैदा होता है। यथा—

सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।

अहि फन गयो तो विष भयो, सगत को फल सूर॥ (सूर)

स्वाति बूंद विष ज्यों, पीयूख ज्यों पपीहा मुख,

सीपी बूंद मोती, कदली मुख कपूर है। (देव)

दूहा १३३ साव—सं० स्वाद; प्रा० साद, साअ, साव। उदाहरण—

(१) नगाँ नाहराँ नरवराँ, पाकाँ पाकाँ साव।

(पृथ्वीराज)

(२) कबीर प्रेम न चाखिया चाखि न लीया साव। (कबीर)

संबळ—सं० शम्बल = रास्ते का भोजन, पाथेय।

वैसासणइ—सं० विश्वास, प्रा० विस्सास, वीसास, राज० वैसासणो। अपभ्रंश = विश्वास करने से। उदाहरण—

मनि परतीति न ऊपजै, जीव वैसास न होइ।

(कबीर)

पाठांतर—'सावज सकळ तोडस्यइ वैसासणइ न जाइ'—अर्थात् मेरा यौवनरूपी अदमनीय हिंस्र पशु बंधन को तोड़ा चाहता है, उससे (शांत) बैठा नहीं जाता।

सावज—सं० श्वापद = जंगली हिंस्र पशु। प्रा० सावय, गुज० सावज। उदाहरण—

सावज सींह रहे सब माँची, चंद अरु सूर रहे रथ खाँची।

(कबीर)

संकळ—सं० शृंखला, प्रा० संकल, संकला; हिं० साँकल। बंधन, शील-मर्यादारूपी बंधन।

वैसासणइ—सं० उपविश, प्रा० वैस, बईस, गुज० वेसवुं; राज० वैसणो = बैठना, शांत होकर रहना।

ते मंदिर खाली पड़े, वैसण लागे काग। (कबीर)

दूहा १३४ हेक—सं० एक। एक और उससे बने हुए शब्दों का ए राजस्थानी में प्रायः हे हो जाता है। मिलाओ—हेकठा। उदाहरण—

हेक वडो हित हुवै पुरोहित, वरैसुता सिसुपालवर।

(वेलि ३५)

वेगइरउ—सं० वेग, राज० वेगो (विशेषण)+एरउ या एरो प्रत्यय (स्वार्थ में)। मिलाओ—भलेरउ, आघेरउ, वडेरउ।

दूहा १३५ भमतउ—सं० भ्रम, प्रा० भम, राज० भम या भँव+अतउ (वर्तमान कृदंत प्रत्यय)।

कणयर—सं० कर्णिकार, प्रा० कण्णियार, हिं० कनेर, कनियर = एक पुष्पवृक्ष विशेष।

कंब—सं० कंबा, कंबी, प्रा० कंब, कंबा = लीलायष्टि, हाथ में रखने की छड़ी, बाँस की छोटी डाली। किसी पेड़ से काटी हुई, हाथ में रखने की अथवा पशु को त्वरित करने की, छोटी डाली।

सुरत्त—सं० स्मृति = याद, ध्यान, सुरति। उदाहरण—

सुरति समाँणी निरति मे, निरति रही निरधार। (१४—२२)

दूहा १३६ सात सलाँम से केवल सात बार ही अभिवादन करने का आशय नहीं है वरन् अनेकानेक प्रणाम का आशय है।

थीं—सं० तः (अपादान विभक्ति चिह्न) = से। मिलाओ—

तरवर थे फल झड़ पडे बहुरि न लागैं डार।

(कबीर)

दूहा १३७ बिललंती—सं० विलाप अथवा अनु० शब्द बिल बिल करना = बिलखना, विलाप करना।

(१) आघाई सीसी सुलखि बिरहबरी बिललात। (बिहारी)

(२) एक खड़े ही लहैं, और खड़ा बिललाइ। (कबीर)

'पग नॅ माहइ लीहटी'—मिलाओ—

चारु चरन नख लेखति धरनी।

नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥

स्वभावोक्ति का बड़ा सुंदर उदाहरण है।

माहइ—खींचती है, कुरेदती है। मिलाओ—भिन्न प्रयोग दोहा १३१ में।

लीहटी—सं० रेखा, प्रा० लेहा, राज० लीह+टी (ऊनवाचक प्रत्यय)

दूहा १३८ हर—सं० स्मर, प्रा० म्हर, हर = आकांक्षा, अभिलाषा, उत्कट इच्छा। राजस्थानी का साधारण प्रचलित शब्द है। उदाहरण—

हर म करो अनि गय हर। (वेलि ७७)

मनह—(सं० मनस्) मन से, मन में। उदाहरण—

(१) मनह मनोरथ छाडि दे, तेरा किया न होइ। (कबीर)

(२) मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथ। (कबीर)

हन—(१) हि० नहीं का विपर्यय। अथवा (२) ह = भी, न=नहीं।

दूहा १३९ सायर—सं० सा+वर=वह सुंदरी स्त्री।

अणीह—सं० आ+नी, प्रा० आ०+णय।

कप्पड़े—सं० कर्पटम्, प्रा० कप्पड, हि० कपड़े। उदाहरण—

पानि बिनटा कप्पडा, क्या करे बिचारी चोल।

(कबीर)

पाठांतर—

सारंगनयणीहि—(१) सारंगनयनी, मृगनयनी कामिनी के।

(२) आँखों के प्रत्यक्ष सामने।

(१) सं० सारंग—मृग। (२) सं० साक्षात=प्रत्यक्ष।

दूहा १४० कागळ—अरबी—कागज; गुज० कागळ । उदाहरण—

कागळ दीधो एम कहि । (वेलि ५६)

नाविया—(राज०) न + आविया की संधि । इस प्रकार के प्रयोग प्राचीन राजस्थानी मे मिलते हैं । मिलाओ—गुज० नथी, सं० नास्ति ।

दूहा १४१ थाइ—स० स्था, प्रा० था । वर्तमानकाल । मिलाओ—

ऊँची डाली पात है, दिन दिन पीले थाँहि । (७२—१३)

मोलइ—स० मूल्य, राज० मोल+इ (अधिकरण और कर्मविभक्ति का चिह्न)

दूहा १४२ वीजउ—स० द्वितीय; प्रा० विइज्ज, राज० विओ, वीजो । गुजराती मे भी प्रयुक्त होता है । देखो—'विइजो वीओ' । (हेमचद्र १—२४८)

वंभण मिसि वदै हेतु सु बीजो । (वेलि ७३)

आगळि—सं० अग्र, प्रा० अग्ग, स्वार्थ मे 'लो' प्रत्यय ।

आगळि पितु मात रमती अगणि । (वेलि १८)

ठवइ—स० स्थापय, प्रा० ठव ।

वहिलउ—(अप० वहिल्ल), गुज० वहेलो ।

ऐक्कु कइअ ह वि न आव ही अन्नु वहिल्लउ जाहि ।

(हेमचद ८–४–४२२)

मोकळे = स० मुच् , प्रा० मुक्क (प्रेरणार्थक), गुज० मोकळवुँ, मराठी मोकलणे = भेजना । भविस्सत्तकहा मे 'मोकल्लइ' का इस अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

दूहा १४३ पारेवा—स० पारावत, प्रा० पारेवय ।

भूल—स० दोला, प्रा० झुल्ल । कबूतर पालनेवाले घर के आँगन मे एक लबे बाँस के सहारे छत की ऊँचाई से कुछ ऊपर कबूतरों के बैठने का एक चौखट लगा देते हैं जिस पर कबूतर विश्राम करते हैं । बिल्ली कुत्ते आदि पशुओं से बचाने के लिये भूल बनाया जाता है ।

त्रूटि—स० त्रुट, प्रा० तुट्ट, तुड । त्रूटै कध मूल जड त्रूटै । (वेलि)

दूहा १४५ चाचरि—स० चर्चरी, प्रा० चचरी=फागुन मे होलिकोत्सव के उपलक्ष में होनेवाले गान, नृत्य इत्यादि । चर्चरी होली में गाए जानेवाले राग विशेष को भी कहते हैं ।

(१) तुलसीदास चाचरि मिस कहे राम गुन ग्राम। (तुलसी)

(२) खिनहिं चलहिं खिन चाँचरि होई।

नाच कूद भूला सब कोई॥ (जायसी)

झंपावेसि—(सं० झप्) उछलना, कूद पड़ना।

(१) करि अपनो कुल नास, बहिन सो अगिन झंप दे आई। (सूर)

(२) नैनाँ अंतरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेउँ। (कबीर)

दूहा १४६ कुंडियाँ—(१) सं० कूट = कूटे हुए अनाज की राशि, ढेर। यथा—अन्नकूट। (२) देशीय कुड़। कूरा, कूड़ा का भी यही अर्थ होता है। राजस्थानी मुहाविरा कूड़ा करना=खलिहान में काटे हुए धान्य की राशि का ढेर लगाना।

दूहा १४७ वाहळा—(दे०) राजस्थानी में क्षुद्र बरसाती नदी या नाले के अर्थ में बहुधा प्रयुक्त होता है। उदाहरण—

अति अँबु कोपि कुँवर उफणियौ, बरसालू वाहळा वरि (वेलि २४)

दूहा १४८ धड़ि—सं० घटिका, घटी। वस्तुराशि का तौल अथवा माप। यहाँ पर पृथ्वी के उद्भिज्ज पदार्थों की राशि से आशय है।

महारुह—(सं०) महा जलराशि। लाक्षणिक अर्थ में यहाँ पर प्रेम-जलधि का आशय है।

ऊमटइ—सं० उन्मडन, प्रा० उम्मटण, हिं० उमड़ना। बाढ़ आना, भर जाना, उतराकर चलना। पाठांतर—केता कहूँ = कहाँ तक कहूँ।

सँभार—(१) सभारणो का आज्ञा का रूप = सम्हाल। (२) प्रिय-संबंधी एकत्रित विचारसमूह, स्मृतियाँ अथवा हृदयोद्गार।

दूहा १४९ झबूकइ—(अनु० शब्द) झबूकणो (= झब झब करके चमकना) से संज्ञा। उदाहरण—

(१) मंदिर माँहि झबूकती, दीवा कैसी जोति। (कबीर ७३—१७)

(२) हृदय या पे उच्चरयो गुन की लहरि झबक्कि।

(कबीर २५४—७४)

दूहा १५० काजळियारी तीज—भाद्रपद कृष्णपक्ष की तृतीया को 'कजली' अथवा 'काजळियारी तीज' कहते हैं। राजस्थान में वर्षाऋतु और ऋतुओं से अधिक आनंदप्रद होती है। जनता का वर्षासंबंधी आनंदोल्लास इस त्योहार के रूप में प्रकटित हुआ है।

खिवती—सं० क्षिप्, प्रा० खिवण = बिजली का चमककर प्रेरित होना। राजस्थानी बोलचाल की भाषा में बहुतायत से प्रयुक्त होता है। उदाहरण—

कहौ कौन खिवै कहौ कौन गाजै कहाँ थैं पाणी निसरै।

(कबीर १७७—२६१)

दुहा १५१ जाळउ—स० जाल, राज० जाळो। मिल्यॉ—भूत कृदत, स्त्रीलिंग, बहुवचन=जाल की तरह मिल रही हैं। इस प्रकार मिल रही है कि जाल की तरह गुथी हुई दिखाई देती हैं।

समकि—'चमकि' का मारवाडी रूपातर। बोलचाल मे मारवाड के लोग 'च' के स्थान मे 'स' का उच्चारण करते है। जोधपुरी मारवाड़ी मे ऐसे प्रयोग बहुतायत से होते है, जैसे—चतुर्भुज का सतरभुज, चबूतरा का सबूतरा इत्यादि।

दुहा १५२ चहड्डियॉ—प्रा० चड्ड। राजस्थानी मे शब्द के बीच मे निरर्थक अक्षरों का आगम किया जाता है। यहॉ 'चड' शब्द मे 'ह' का निरर्थक आगम किया गया है। इस प्रकार—

अबरि का अबहरि। (वेलि १४)

उदाहरण—काटी कूटी मछली, छींके धरी चहोड़ि।

(कबीर ३९—२४)

दुहा १५३ पारोकियॉ—सं० परकीया=परकीया नायिकाएँ।

नीठ—स० अनिष्टि, प्रा० अणिट्ठि। राजस्थानी मे प्राथमिक 'अ' का कभी कभी लोप हो जाता है। =कठिनता से। हिं० उदाहरण—

(१) सदा समीपिन सखिन हूँ, नीठि पिछानी जाय। (विहारी)

(२) निसा तणा मुख दीठ निठ (वेलि १६३)

वाहुड़े—सं० प्रघूर्णन, प्रा० पहोलन, हिं० बहुरना, राज० वाहुडणो, वहोडणो (प्रेरणार्थक)। उदाहरण—

(१) काया हॉडी काठ की, ना ऊॅ चढै बहोड़ि।

(कबीर २४-३१)

(२) गई बहोरि गरीबनिवाजू। (तुलसी)

दुहा १५४ किया करायइ ··घणॉह—पंक्ति का दूसरा अन्यार्थ=तो मुझसे (किया+कर+आयइ) किस प्रकार आया जा सकता है, क्योंकि बीच मे अनेक बाधाएँ (दाधा) है।

दुहा १५५ लाल कमाण—फारसी—कमान। लाल कमान साहित्य मे प्रसिद्ध है। लाल रंग की कमान योद्धाओ को विशेष प्रिय होती है। उदाहरण—एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाँइ।

(कबीर २९-११)

दूहा १५६ रूँनी—स० रुदित, प्रा० रुण्ण।
उदाहरण—रात्यूँ रूँनी बिरहनी, ज्यूँ बचौ कूँ कुंज। (कबीर ७—१)
लोइ—स० लोक, प्रा० लोअ, लोय।
हाथाळी छाला पड्या—मिलाओ—
नीभडियाँ छाला पड्या, राम पुकार पुकार।
(कबीर ६—२२)

दूहा १५७ करकडइ—प्रा० करक = हाड़, अस्थि-पंजर
उदाहरण—(१) 'करंकचयभीसणे मसाणम्मि'।
(सुपासनाहचरिअ १७५)
(२) यहु तन जारौ मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करूँ करंक की, लिखि लिखि राँम पठाउँ॥
(कबीर ८—१२)
ऊडावेसि—स० उड्डी, प्रा० उड्ड, प्रेरणार्थक उड्डाव (भविष्यत् रूप)।
दूहा १५८ पइसि—स० प्र० + विश्, प्रा० पइस।
उदाहरण—(१) देवाळै पैसि अंबिका दरसे। (वेलि १०८)
(२) मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका।
(कबीर १४७—१७५)
पल्हवइ—स० पल्लव, हिं० पलुहना = फूलना फलना, हरा भरा होना।
उदाहरण—
(१) सूखि बेलि पुनि पल्हवै, जो पिउ सींचै आइ। (जायसी)
(२) पलुहइ नारि सिसिर ऋतु पाई। (तुलसी)
दूहा १५९ अकथ कहाणी इ०—भाव मिलाओ—
(१) अकथ कहाँणी प्रेम की, कछू कही न जाई।
गूँगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई॥ (कबीर १३९—१५६)
(२) अकथ कहाँणी प्रेम की कह्याँ न को पत्ययाइ।
(कबीर ६५—१०)
दूहा १६० प्रीतम तोरइ इ०—इसी प्रकार की ऊहात्मक प्रेमोक्ति के लिये मिलाओ—
कबीर हरि का डरपताँ, ऊन्हाँ धान न खाउँ।
हिरदा भीतर हरि बसै, ताथैं खरा डराउँ॥ (कबीर ७९—७ टि०)

दाझण—स० दह्, दग्ध, प्रा० दज्झ, राज० दाझणो की संज्ञा। उदाहरण—

आठ पहर का दाझणाँ, मोपै सह्या न जाइ। (कबीर १०-३५)

तौ—सं० तः (अपादान प्रत्यय)।

दूहा १६१ उल्हवण—स० उत् + लस=उल्लसित करनेवाला। हिंदी उदाहरण—

केलि-भवन नव वेलि सी दुलही उलही कत। (पद्माकर)

कदे—स०कदा। उदाहरण—

'षटरस भोजन भगति करि, ज्यूँ कदे न छाडै पास।'

(कबीर २०—१६)

दूहा १६२ बिवणउ—स० द्विगुण, प्रा० बिवण, बिउण। देखो-हेमचंद्र-१—६४ और २—७६, 'द्विन्योरुत्' दुउणो-बिउणो, दुइओ-बिइओ।

ओहि—सं० भू, प्रा० हुअ; हिं० होहि। पूर्व ह का लोप।

दूहा १६३ बिहूणी—स० विहीन, प्रा० विहीण, विहूण। उदाहरण—

देख्या चद बिहूँणाँ चाँदिणा, तहाँ अलख निरजन राइ।

(कबीर १३—१५)

नींव बिहूँणाँ देहुरा, देह बिहूँणाँ देव। (कबीर १५—४१)

विणजारा—स० वाणिज्य + कार, प्रा० वणिजार, हिं० बनजारा=मध्य-काल मे बैलों पर वस्तुएँ लादकर एक देश से दूसरे देश मे वाणिज्य करनेवाले व्यापारी। इनके बैलो की कतार को राजस्थानी मे 'बाळद' कहते हैं। ये लोग बड़ी लबी लबी यात्राएँ करते थे और मार्ग मे विश्राम करते करते आगे बढ़ते थे। जिस स्थान पर विश्राम करते थे, वहीं पर अग्नि जलाकर भोजन बनाते थे। विश्रामस्थल से चले जाने पर इनके परित्यक्त स्थल कुछ दिन तक इनकी यात्रा के स्मारक बने रहते थे।

भाइ—स० भ्राष्ट्र, प्रा० भट्ठ, हिं० भाड़ = भट्ठी।

धुकती—स० धुक्ष, प्रा० धुक्ख (=जलाना) = धुखती हुई।

यह शब्द राजस्थानी मे बहुतायत से प्रयुक्त होता है। इससे आग के प्रज्वलित होने की उस दशा का बोध होता है जब खूब धुआँ निकलता है, लपटें नहीं उठतीं। लाक्षणिक अर्थ मे हृदय की वैसी ही उद्विग्न दशा।

दूहा १६५ डबर—(स०) सध्या समय के आकाश की लाली को अबर-डबर कहते हैं। उसी से आँखों की लाली की समता दी गई है।

उदाहरण—अबर डबर साँझ के, बारू की सी भीत।

विडाणा—फा० बेगाना । मिलाओ—हिं० विराना ।

उदाहरण—भोमि विडाणी मे कहा रातो, कहा कियो, कहि मोहि ।

(कबीर)

दूहा १६७ वालॅभ—स० वल्लभ । अनुस्वार का आगम ।

उदाहरण—वे—स० द्वि प्रा० वि, वे ।

जिणि सेस सहस फण फणि फणि वि वि जीह । (वेलि ५)

हिलोर दे—आशयगर्भित मुहावरा है । जिस प्रकार समुद्र की तरंग का हिलोर अकस्मात् तट की ओर बह निकलता है, उसी प्रकार, हिलोर की तरह, पति के आगमन की प्रतीक्षा मारवणी करती है ।

काग उडाइ उडाइ—साहित्य मे प्रतीक्षोत्कठित नायिकाओं का काग को उडाकर पति के आगमन की शकुन चिंता करना रूढ़िसगत हो गया है । अपभ्रश और प्राकृत साहित्य मे ऐसी उक्तियाँ बहुतायत से उपलब्ध होती है । उदाहरण—

(१) काग उडावण धण खडी आयो पीव भड़क्क ।
आधी चूड़ी काग-गळ, आधी गई तडक्क ॥ (राजस्थानी सुभाषित)

(२) पिक चातक वन वसन न पावहिँ, वायस वलिहि न खात ।
सूरश्याम, सदेसन के डर पथिक न उहि मग जात ॥ (सूर)

(३) काग उडावत मोरी भुजा पिरानी । (कबीर)

दूहा १६८ वालहा—स० वल्लभ, प्रा० वल्लह ।

दूहा १६९ गरथ—(१) स० ग्रथ=सामग्री, सपत्ति, एकत्रित धन इत्यादि । या (२) अरथ (अर्थ=धन) के अनुकरण पर बना हुआ शब्द । अन्य गरथ बोला जाता है ।

अकथ्थ—स० अकथ्य, प्रा० अकथ्थ । य का आगम ।

टळ चड्या—राजस्थानी मुहावरा 'टळ चडणो' = घमड होना, मद होना ।

दूहा १७० अवर—स० अपर, प्रा० अवर ।

सुपनतरि—स० स्वप्न + अंतर + इ (अधिकरण चिह्न) = स्वप्न में । उदाहरण—दया धर्म औ गुरु की सेवा ए सुपनंतरि नाहीँ ।

(कबीर २७९—५०)

सोरठा १७१ पजर—तन-पजर । राजस्थानी और हिंदी मे दार्शनिक अर्थ मे यह शब्द बहुधा शरीर के लिये प्रयुक्त होता है ।

पुळइ—राजस्थानी देशीय शब्द = चलता है, गतिशील होता है।
उदाहरण—पुळियै मग पुळियाह, हुवै दरस अदरस हुवा।
जळ पैठाँ जळियाह, मदा क्रम मँदाकिनी॥
(राठोड पृथ्वीराज)

दूहा १७२ निघट्टियाँ—स० नि + घट्=उत्पन्न होने पर, घटित होने पर।
पत्तीजूँ—स० प्रत्यय (प्रति + इ); प्रा० पत्तिज, पत्तिअ=विश्वास करूँ।
उदाहरण—
(१) बोल्यो विहग विहँसि रघुवर बलि कहौ सुभाय पतीजै।
(तुलसी)
(२) जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूँ पतीजौं नाहिं। (कबीर)

दूहा १७३ विलक्खा—स० विकल या विलक्ष, प्रा० विलक्ख = दुखी, व्याकुल। उदाहरण—
(१) विकसित कज कुमुद विलखाने (तुलसी)
(२) बहु विलखी बीछड़ती बाळा। (वेलि १७)

दूहा १७४ निसद्द—सं० नि + शब्द, प्रा० निसद्द, णिसद्द।

दूहा १७५ परिवाँण—सं० प्रमाण, प्रा० पमाँण, राज० परवाँण = सचमुच, निश्चय। उदाहरण—
करता की गति अगम है, तूँ चलि अपणैं उनमान।
धीरै धीरै पाव दे, पहुँचेंगे परवाँन। (कबीर १८—१७७)

भावइँ—सं० भास्; प्रा० भाव, हिं० भाना (क्रिया) = अच्छा लगे। यहाँ अव्यय। मिलाओ—हिंदी 'चाहे'।
(१) एम्वहिं राह पओहरह जं भावइ तं होउ।
(हेमचद्र ८·४·४२०)
(२) भावइ पानी सिर पड़इ, भावइ पड़इ अँगार।

भावइँ जाँण म जाँण—मिलाओ—
जतन करत पतन ह्वै जैहै, भावै जाँण म जाँणी। (कबीर २१६—३६७)

म—सं० मा० (निषेधवाचक), अपभ्रंश म। उदाहरण—
लोणु विलिज्जइ पाणिएण अरि खल मेह म गज्जु।
बालिउ गलइ सुझुपड़ा गोरी तिम्मइ अज्जु (हेमचद्र ८·४·४१८)

दूहा १७६ पानही—सं० उपानह्, प्रा० पाणही, हिं० पनही।
उदाहरण—

बिनु पानहि हु पयादेहि पाए, सकरु साखि रहेउ यहि घाए।
(तुलसी)

दूहा १७७ ठाकुर—सं० ठक्कुर = ईश्वर, सरदार, स्वामी।
खिसइ—(दे०) = खसकना, स्थान से हटना, गिरना। मिलाओ—
(१) खसी माल मूरति मुसुकानी। (तुलसी)
(२) परमाते तारे खिसइ त्या इहु खिसै सरीरु।
(कबीर २५६-६०)

किसाकउ—स० कीदृशकः।
दूहा १७८ धयाळू—हिं० धधा + आळू (राजस्थानी प्रत्यय) = कामकाजी।
वदेस—स० विदेश। मिलाओ—
जिन पाऊँ से कतरी, हाडत देस बदेस। (कबीर)
सघळी—स० सकल, प्रा० सयल, सगल। उदाहरण—
स्वारथ को सबका सगा, जग सघला ही जाणि।
(कबीर ५२-१५)
सपजे—स० सपद्यते, प्रा० सपज्जइ = उत्पन्न होती है, एकत्रित होती है।
दूहा १७९ पहुत्त—स० प्र + भूत, प्रा० पहुत्त। उदाहरण—
जे जम आगे ऊबरौ, तो जुरा पहूँती आइ। (कबीर ७२-८)
सोरठा १८० सभारियाँ—याद करने पर। स० स + स्मृ, प्रा० सभर, सभळ।
काप—स० कृप्, प्रा० कप्प, राज० कापणो से सज्ञा।
दूहा १८१ यहु तन इ०—भाव मिलाओ।
यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वे राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि॥
दूहा १८२ भरइ—स० भृ, प्रा० भर। लाक्षणिक अर्थ मे राजस्थानी मुहावरा 'सदेसो भरणो', सदेश भेजने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।
पळट्टइ—स० पर्यस्त, प्रा० पलट्ट।
भी—(राजस्थानी देशीय)=फिर। उदाहरण—
(१) बिरहिन ऊठे भी पड़े, दरसनि कारनि राम। (कबीर ८-७)
(२) अजहूँ बीज अकूर है, भी ऊगण की आस। (कबीर ८६-६)
दूहा १८४ सॉभळे—स० प्रा० अप०—सभल, राज० साभळणो, गुज० साभळवु। ए पूर्वकालिक प्रत्यय।

उदाहरण—सॉभळि अनुराग थयो मनि स्यामा। (वेलि २६)

मागरवाळ—देखो दोहा १०५ मे वागरवाळ पर टिप्पणी।

दूहा १८५ हूँतॉ—प्रा० 'हिंतो' (अपादान विभक्ति का चिह्न)=से।
उदाहरण—

(१) हूँ ऊधरी त्रिकुटगढ़ हूँतो, हरि वधे वेळाहरण।
(वेलि ६३)

(२) कुसस्थली हूँता कुदणपुरि, किसन पधार्या लोक कहंति।
(वेलि ७२)

(३) जब हुँत कहिगा पखि विदेसी, तब हुँत तुम बिन रहै न जीऊ।
(जायसी)

माणसाँ—स० मानुष, प्रा० माणुस।

दूहा १८६ निचत—स० निश्चित, प्रा० णिच्चित=चिंतारहित।

दूहा १८७ ढूकड़ा—स० ढौक् ; प्रा० ढुक्क। ढूक+डो (ऊनवाचक प्रत्यय)=पास।

डेरउ लीध—(राजस्थानी मुहावरा) डेरा लेना, निवासस्थान स्थिर करके रहना।

दूहा १८८ मल्हार—स० मल्लार। वर्षा ऋतु का राग विशेष। राजस्थान में वर्षा सर्वप्रिय ऋतु होने के कारण ढाढियों ने उसी ऋतु के राग को अपनाया।

निवाज—स० निष्पाद्य, प्रा० णिवज्ज = बनाकर।

झड़ मडियउ—स० त्वर, प्रा० झड, हिं० झड़ी। वर्षा की झड़ी लगने के अर्थ मे राजस्थानी मे "झड़ मॅडणो" मुहाविरा आता है। उदाहरण—

झड़ मातौ माड़ियौ झड़ (वेलि १२१)

गुहिरइ—सं० गभीर; प्रा० गहिर। उदाहरण—

सघण गाजियौ गुहिर सदि। (वेलि १९६)

दूहा १८९ जोयणॉ—सं० योजन, प्रा० जोअण, जोयण।

सेरियॉ—अप० सेरी = लबी पतली तग गली। उदाहरण—

सेरी कबीर सॉकड़ी, चचल मनवा चोर। (कबीर २८-४)

दूहा १९० सुरहउ—स० सुरभि, प्रा० सुरहि।

लोद्र—(सज्ञा) देश विशेष का नाम। लुद्र, लुद्रवा, लोद्रवा पश्चिमी राजस्थान के भूभाग (जेसळमेर राज्य) का प्राचीन नाम है जिसकी प्राचीन राजधानी पूगळ थी।

भीनी—स० भिन्न, हिं० भीगना, भीजना। उदाहरण—

कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रस भीनी।

(रसखान)

ठोवड़ियाँह—स० स्थान, प्रा० ठाण, अप० ठाव, राज० ठावड़, ठोड; हिं० ठौर। इयाँ प्रत्यय।

दूहा १६१ निहल्ल—सं० निखिल, प्रा० णिहिल = बहुत अधिक, पूरी, खूब।

ऊचेड़ती—स० उत् + चालय, प्रा० उच्चाल, उच्चाड, हिं० उचाटना।

सल्ल—स० शल्य, प्रा० सल्ल = काँटा, मार्मिक वेदना।

दूहा १६२ वेळत—स० वेल्, प्रा० वेल्ल=हिलना, चलना, काँपना। यहाँ बेचैनी से चचल होना।

दूहा १६३ ई—स० इदम्, प्रा० इअम्। उदाहरण—

देवग्य तोडि वसुदेव देवकी, पहिलौ ई पूछै प्रसन।

(वेलि १४६)

रतन तळाव—(स० रत्न + तड़ाग) हृदय भावरूपी रत्नों से भरे हुए सरोवर की तरह है, जो दुःखरूपी तरगों से आकुल होने पर बाँध को तोड़कर चारों ओर बह निकलता है। सगीत ही म यह शक्ति है कि वह भाव तरगावली को पुनः व्यवस्थित करके मर्यादाबद्ध कर देता है।

दहदिसि जति—मिलाओ—

वनिज खुटानो पूँजी टूटि, पाडू दहदिसि गयौ फूटि।

(कबीर २१५—३८३)

दूहा १६५ मल्हाया—अप० मल्ह = मौज मानना, लीला करना। प्रेरणार्थक = खिलाना, लड़ाना, गाना। उदाहरण—

हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै। (सूर)

दूहा १६६ मेल्ह्या—स० मुच्; प्रा० मेल्ल् = छोड़ना, परित्याग करना, भेजना। उदाहरण—

(१) गाज लगै मेल्हियौ रुखमणी, समाचार इणि माँहि सहि।

(वेलि ५६)

(२) हँसै न बोलै उनमनी, चचल मेल्ह्या मारि।

(कबीर २—६)

दूहा १६७ अपछर—स० अप्सरा, प्रा० अच्छरी।

उणिहार—सं० अणुहार; प्रा० अणुहार = समान, समरूप।

सार—स० स्मृ, प्रा० सर, हर, हिं० सार = याद, स्मृति, सुधि। उदाहरण—

जन को कहु क्यो करिहै न सँभार
जो सार करै सचराचर की। (तुलसी)

दूहा १९८ चीतारेह—स० चित, चिंता करना, याद करना। उदाहरण—

चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारै।
(कबीर २५३—५०)

दूहा १९९ भडिक—(अनुकरणात्मक शब्द) अचानक, झट, बिना सोचे बूझे।

गाळि—स० गाल = फेंकना, दूर करना।

हळवइ—सं० लघु, प्रा० लहु का विपर्यय हलु हरु, हिं० हरुआ, हौले। उदाहरण—

(१) हौळे हौळे सुलगती सो तैं दीनी फूँक (राजस्थानी सुभाषित)
(२) ना सो भारी ना सो हलवा, ताकी पारिष लषै न कोई।
(कबीर १४४—१९९)

दूहा २०० वार—स० द्वार, प्रा० दुआर, वार, बार।

दूहा २०१ जळ माहि इ०— मिलाओ—

कमोदनीं जलहरि बसै, चदा बसै अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पासि॥ (कबीर ६७—१)

दूहा २०२ चुगइ, चितारइ इ०—मिलाओ—

चुगै चितारै भी चुगै, चुगि चुगि चितारै।
जैसे बच रहि कुज मन, माया ममता रै॥ (कबीर २५३—५०)

थकाँ—(दे०) = होते हुए। उदाहरण—

(१) भीतर थका बाहिर इम भासै,
मनि लाजती सुहाग सुख। (वेलि २१३)
(२) दिवस थकाँ साईं मिलौ, पीछै पड़िहै रात।
(कबीर २९—१३)

दूहा २०६ आसालुधी—सं० आशालुब्ध, प्रा० आसालुध्ध। हतोत्साह और निराश प्रेमी के मन को भी प्रिय मिलन की संभावना के प्रलोभन द्वारा लुभाए रखने की शक्ति आशा में होती है।

जजालेइ—(दे०) राजस्थानी मे 'जजाळ' स्वप्न के माया प्रपंच को कहते हैं।

सेकइ—सं० श्रेपण, हिं० सेंकना=गरम करना, भूनना।

झीणे—सं० क्षीण, प्रा० झीण=बुझे हुए। उदाहरण—

(१) पाणी ही तैं पातळा, धूवाँ ही तैं झीण।

(कबीर २६-१२)

(२) मनवा तो अधर बस्या, बहुतक झीणां होइ।

(कबीर २६-१४)

दूहा २०८ जे दिन इ०—मिलाओ—

जे दिन गए भगति बिन, ते दिन सालैं मोहि। (कबीर ७६-११)

दूहा २०९ सीख—सं० शिक्षा। राजस्थानी मुहाविरा 'सीख देणो' विदा करने के अर्थ में आता है।

सोवन—सं० सुवर्ण, प्रा० सुवण्ण।

नाँख्यउ—सं० नाश =फेकना, राज० 'नाखणो' = डालना, फेंकना। उदाहरण—निउछावरि नाँखिया नग (वेलि २४०)

उलाळ—(१) सं० उड्डी, प्रा० उड्डाव, उड्डाड, राज० उडाड, उडाळ, उळाळ (डलयोरभेदात्)। (२) सं० उन्नमय प्रा० उल्लाल = उडाया जाना, ऊँचा फेका जाना। उन्नमेरुत्थङ्घोल्लालगुलुगुञ्छोप्पेलाः। (हेमचंद्र ८-४-३६)

दूहा २११ सींचाणउ—सं० संचान; अप० सिंचाण, गुज० सिंचाणो, हिं० सचान। उदाहरण—

(१) काज सिचाँणाँ नर चिड़ा, औभड औच्यताँ।

(कबीर ७२—२)

(२) निरह अगनि लपटनि सकै, झपट न मीच सिचान। (बिहारी)

डोहीजइ—सं० डोलन हिं० डोलना=चलकर पार करना, उलाँघना। मिलाओ—मराठी डोही=गहरा।

महिराँण—सं० महार्णव; प्रा० महण्णव, डिं० महराण=समुद्र। मि०—

दरदाँ तो महाराँण को, ऊठि पड्यौ थळियाँह। (कबीर ७७—२)

दूहा २१२ ऊलाळीजइ—देखो दूहा २०९ मे 'उलाळ' पर टिप्पणी।

मूठ—सं० मुष्टि प्रा० मुट्ठि, हिं० मुट्ठी, मूँठ।

दूहा २१३ वींझ—सं० विन्ध्य, प्रा० विञ्झ। मिलाओ—

भील लुक्या बन बीझ मे, ससा सर मारै। (कबीर १४१-१६१)

दूहा २१४ पसरइ—सं० प्र०+सृ, प्रा० पसर, हिं० पसरना, राज० पसरणो = फैलना, बटना।

दूहा २१६ सळ—(दे०) = सिकुड़न । नाक सळ = नाक सिकोड़ना । मि०—हिंदी मुहावरा—नाक भौंह सिकोड़ना = अप्रसन्न होना ।

विणट्ठा—स० विनष्ट; प्रा० विणट्ठ, बिगड़ना, नाश होना । मिलाओ—
पासि बिनंठा कप्पडा, क्या करै बिचारी चोल । (कबीर ३—२४)

दूहा २१८—आमणदूमणा—स० उन्मनाः + दुर्मनाः; प्रा० उम्मण-दुमण; राज० आमणदूमणो = उदास, खिन्न, उद्विग्न मन । उदाहरण—

यहु मन आमन धूमनां, मेरो तन छीजत नित जाइ ।
(कबीर १६०—३०२)

इवडउ—सं० इयत्, प्रा० एवड, राज० एहड़ो, इतना । मिलाओ—

'एवडु अतरु' (हेमचद्र, ८-४-४०८)

काँइ इवड़ा हठ निग्रह कियाँ । (वेलि २८८)

दूहा २१६ धीरवइ—सं० धीर से क्रिया ।

दूहा २२० सयळ—स सकळ, प्रा० सयल, अप० सगल; राज० सगळा । चिंता...सिध्ध—इस दोहे के भाव से मिलाओ—

ससै खाया सकल जुग, ससा किनहूँ न खद्ध ।
जे बेधे गुर अख्खिराँ, तिनि ससा चुणि चुणि खद्ध ॥
(कबीर ३-२२)

दूहा २२१ दिसाउर—स० देशापर, प्रा० देसावर = दूसरा देश । मिलाओ—

पखी चले दिसावराँ, बिरषा सुफल फलत ।
(कबीर ७७-७)

दूहा २२२ दीपता—स० दीप, = प्रसिद्ध, प्रकाशित, शोभित । उदाहरण—

(१) दक्खिण दिसि देस विदरभति दीपति । (वेलि १०) ।

(२) द्वार में दिसान मे दुनी मे देस देसन मे ।
देख्यो दीप दीपन मे दीपत दिगत है । (पद्माकर)

दूहा २२३—तंती नाद—तत्री का नाद, संगीत । मिलाओ—

तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रग । (बिहारी)

दूहा २२४ ईडर—ईडर राज्य गुजरात में है ।

अउळगउँ—स० उल्लघ; प्रा० उलघ, ओलघ, हिं० उलाँघना = प्रवास यात्रा करना । 'बीसळदेवरासो' में यह शब्द इस अर्थ मे बहुत प्रयुक्त हुआ है ।

अउथि—सं० उतः + स्थ (क्रिया विभक्ति), हिं० उत, राज० ओथ, ओथिये। मिलाओ—अप० एत्थु, केत्थु। तेत्थु।

दूहा २२६ मुळताणी—मुलतान की, मुलतान पंजाब में प्रसिद्ध स्थान है।

सुहँगा—सं० समर्घ, प्रा० समग्घ, हिं० सुहँगा = सस्ता, अल्प मूल्यवाला।

सेलार—(१) देशी सेराह—सेलिया, घोड़े की एक उत्तम जाति। उदाहरण—

सिरगा, समँदा स्याह सेलिया सूर सुरगा।
मुसकी पँचकल्याण, कुमेद ओ केहरिरगा ॥ (सूदन)

हेडि—(संज्ञा स्त्रीलिंग) प्रा० हेडा, हिं० लेहँड़ी, हेड़ी, राज० हेड़ = समूह, झुंड। चौपायों के समूह जिनको व्यापारी या बनजारे मेले में बिक्री के लिये ले जाते हैं। वि०—ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

तुखार—सं० तुषार = हिमालय के उत्तर का एक प्राचीन देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। प्रा० तुक्खार = उत्तम जाति का घोड़ा।

दूहा २२७ लडग—सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि, हिं० लड़ी, लड़ = पंक्ति कतार, बड़ी संख्या (घोड़ों की)। वि०—ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

टालिमा—(दे०), हिं० टालना = चुनिंदा; चुने हुए, छूटे हुए।

वाँकड़—सं० वक्र, वक, प्रा० वंक, बाँक = टेढ़ा, तिरछा (बल और साहस का द्योतक) मिलाओ—रणवंका राठौड़।

विटग—ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

दूहा २२८ काछी—कच्छ नामक देश का। कच्छ देश के ऊँट प्रसिद्ध होते हैं।

करह—सं० करभ, प्रा० करभ, करह, राज० करहो, करहलो = ऊँट। उदाहरण—(१) बन ते भगि बिहड़े परा करहा अपनी बाँनि।
वेदन करह कासों कहै को करहा को जाँनि ॥ (कबीर)
(२) दादू करह पलाँणि करि को चेतन चढ़ि जाइ। (दादू)

बिथूंभिया—राज० वि० + थूंभि + इया। सं० स्तूप, प्रा० थूव; राज० थूही, थूह = ऊँट की कूब, ऊँट की पीठ पर की थूही। ऊँट एक थूहीवाले और दो थूहीवाले भी होते हैं। दो थूहीवाले उत्तम समझे गए हैं।

घडियउ—सं० घटिका; प्रा० घड़िश्रा, हिं० घडी = काल का एक मान जो २४ मिनट के बराबर होता है।

एथि—स० इतः + स्थ; राज० एथ, एथिये = यहाँ पर। मिलाओ—'श्रउथि' दूहा २२४।

विसाइ—स० व्यवसाय, हिं० बिसाहना = खरीद करना। पूर्वकालिक रूप। उदाहरण—

ओह सुनहि हर नाम जस उह पाप **विसाहन** जाइ।
(कबीर २५६-१३७)

दूहा २२६ परेरउ—स० पर। एरउ प्रत्यय सबंध का अर्थ देता है या स्वार्थिक प्रत्यय।

द्रग—स० दुर्ग, राजस्थानी में अनुस्वार का निरर्थक आगम। यहाँ गढ़ अथवा राज्य का अर्थ है।

भीभळ—स० विह्वल, प्रा० बिंभल, विब्भल = प्रेमप्रतीक्षा मे विह्वल, अथवा देखनेवाले को विह्वल कर देनेवाले (नेत्र), विह्वलता (तरलता) के कारण सुंदर (नेत्र) उदाहरण—

वउलसरी मद **भीभलु** ई भलु भणि अलि राजु।
संपति विण सुकुमाल ती मालती वीसरु आजु॥
(वसत विलास काव्य-७४)

दूहा २३० मोती हरि—सं० मुक्ताफल, प्रा० मुत्ताहल, मोताहल, हिं० मुताहल।

दूहा २३१ मरजीवउ—स० मरजीवक, प्रा० मरजीवय (देखो—प्राकृत श्री श्रीपालकथा ३८५ गाहा), हिं० मरजीवा, मरजिया = वह व्यक्ति जो समुद्र के भीतर उतरकर मोती आदि वस्तु निकालने का काम करता है, पनडुब्बा। उदाहरण—

(१) मोती उपजे सीप में, सीप समुदर माहिं।
कोई **मरजीवा** काढेसी, जीवनकी गम नाहिं॥ (कबीर)
(१) जस **मरजिया** समोंद धँसि मारे हाथ आव तब सीप।
(जायसी)

उघट—सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाडण, हिं० उघटना, उघड़ना। पूर्वकालिक रूप प्रकट होकर, ऊपर उठकर, ऊपर उछलकर।

दूहा २३२ सँकोडी—सं० सकोच, हिं० सिकुड़ना, सकुचना, सकुचाना= सकुचित हुई। उदाहरण—

संकुड़ित सम समा सध्या समयै। (वेलि १६२)

दूहा २३३ साटवि—(दे०) प्रा० सट्ट, हिं० सट्टा = विनिमय करके, खरीदकर। अवि पूर्वकालिक प्रत्यय। उदाहरण—

(१) सिर साटै हरि सेविए, छाडि जीव की बाँणि।
(कबीर ७०-३१)

(२) जब रे मिलेगा पारिषू, तब हीरौं की साटि।
(कबीर ७८-७४०)

वि०—इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट है। यह राज० शब्द सॉवट्ट का दूसरा रूप भी हो सकता है।

परिघळ—(१) स० परि + ग्रह (?), प्रा० परिघर, परिघल (?)। धारण करने योग्य वस्तु, वस्त्रादि। (२) परघळ = बहुत।

वि०—इसका ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

पट्टोळा—स० पट्टकूल, प्रा० पट्टऊल, पट्टोल = रेशमी वस्त्र। उदाहरण—

फाडि पुटोला धज करौ, कामलड़ी पहिराउँ। (कबीर ११-४१)

दूहा २३५ दूहवियाह—स० दुःख, प्रा० दूहव। उदाहरण—

'किम केणवि दूहविया'। (कुम्मापुत्तचरिय, पृ० १२)

वि०—इस दूहे के चतुर्थ चरण का यह अर्थ ठीक जान पडता है—'या हमने दुखी किया है।'

दूहा २३६ दाखउ—दे० दक्ख, राज० दाखणो = कहना। आज्ञा बहुवचन।

दूहा २३८ खति—मिलाओ राज० ख्यॉत, खॉत, खॅति = लगन, सावधानी, चैतन्य, चतुरता। उदाहरण—

खॅति लागौ त्रिभुवनपति खेड़ै।
धर गिरि पुर साम्हा धावति॥ (वेलि ६८)

दूहा २४० कुमकुमइँ—स० कुंकुम, हिं० कुमकुम = गुलाबजल। विकारी रूप।

(१) कुमकुमैं मॅजण करि धौत वसत धरि। (वेलि ८१)

(२) जहाँ स्यामघन रास उपायौ,
कुमकुम जल सुखवृष्टि रमायौ। (सूर)

वींझण—स० व्यजन, प्रा० वियण, विंजण, वीजण, हिं० बिजन, बीजन = पखा। उदाहरण—

विजन डुलाती से वै विजन डुलाती हैं। (भूषण)

वीभया—'वीभ्रण' से क्रिया। सामान्य भूत।

दूहा २४२ ऊन्हाळउ—स० उष्ण+काल, प्रा० उण्ह-आल, उण्हाल; राज० ऊन्हाळो = ग्रीष्म ऋतु।

ऊतारियउ—स० अवतरण; प्रा० उत्तरण, हिं० उतारना = ढलना, बीतना। स्वार्थ मे प्रेरणार्थक।

दूहा २४३ गउखे—स० गवाक्ष, हिं० गौखा, गोख = अटारी पर की खिड़की, झरोखा। उदाहरण—

"गावै करि मगळ चढि चढि गोखे"। (वेलि ४२)

दूहा २४५ नस—स० निश् = रात्रि।

दूहा २४८ कामणगारियॉ—राज० कॉमण (जादू)+गर (कर)= जादूगरनियॉ। देखो इस प्रकार के प्रयोग—मेळगर, निरतगर, बाणगर (वेलि)।

पॉगुरियॉह—राजस्थानी 'पॉगरणो' = पनपना, हरा भरा होना, पुनः पल्लवित होना। सामान्य भूत, बहुवचन।

दूहा २५३ डूँगरिया—अप० डुगर = पहाड़। उदाहरण—अब्भा लग्गा डुंगरिहिं पहिउ रडतउ जाइ। (हेम० ८-४-४४५)

झॅगोरूया—स० झकार; प्रा० झिंगार, राज० 'झिंगोरणो' = मोर का बोलना।

दूहा २५६ कादिम—स० कर्दम, प्रा० कद्दम, राज० कादो।

उदाहरण—करि ईंट नीलमणि कादो कुंदण। (वेलि २०४)

तिळकस्यइ—(दे०) तिलकना = फिसलना, राज० तिसळणो।

दूहा २५७ झाभी—स० दग्ध, प्रा० दज्झ, दाझ, राज० झाझ। इतनी अधिक शीतल कि जिससे जलने का भाव प्रतीत हो। अत्यधिक शीत भी अग्नि की तरह जलाता है, अतएव अत्यत शीतल वायु को झाभी (दग्ध करनेवाली) वायु कहा है।

दूहा २६२ समनेहॉ—स० सम+स्नेह। बहुवचन, विकारी रूप। यहॉ सभवतः 'ससनेहॉ' पाठ रहा होगा, लिखने मे 'स' का 'म' हो गया होगा; क्योंकि 'समनेहॉ' का प्रयोग राजस्थानी में प्रायः नहीं पाया जाता। ससनेहॉ का अर्थ 'स्नेहियों' है।

वयरी—स० वैरी। अपने पति को वैरी सम्बोधन इसलिये किया है कि वह उसे विरह के मुख में छोड़कर जाना चाहता है।

दूहा २६३ मडव—स० मडप, प्रा० मडव।

दूहा २६४ बहळ—स० बहुल। उदाहरण—

बहलो धणी सिंघासणवालो,
पाळो होइ हालियो पथ। (पृथ्वीराज)

ताढा—स० स्तब्ध, प्रा० थड्ढ, हिं० ठढा; मराठी तडा, थडा, राज० थाढा, ताढा।

रेस—अप० रेस रेसि, रेसिं, रेसिम्मि = निमित्त, लिये, वास्ते। उदाहरण—

(१) हउ झिज्जउ तउ केहिं पिअ
तुहुँ पुणु अन्नहि रेसि। (हेमचद्र ८-४-४२५)

(२) सुणि आगम नगर सहू साऊनम,
रुषमणि क्रिसन वधावण रेसि। (वेलि १४१)

दूहा २७१ घड़—स० घटा, प्रा० घडा, घड; राज० घड़, घटा। उदाहरण—

तोड़ाँ घड़ तुरकाणरी मोड़ाँ खान-मजेज।
दाखै अनमी भोजदे, जादम करै न जेज॥
(राजस्थानी दूहा)

ओळंबा—स० उपालभ; प्रा० ओलभ, राज० ओळभो, हिं० उलहना।

दूहा २७२ बाहर थाजइ इ०—भाव मिलाओ—

(१) कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आय।
अतरि भीगी आतमाँ, हरी भई बनराइ॥ (कबीर ४-३४)

(२) कबीर गुण की बादली, तीतरबानी छाँहि।
बाहिर रहे ते ऊबरे भीगे मदिर माँहि॥ (कबीर ३४-२३)

बाहर था जइ ऊगरइ—अन्यार्थ—"जो बाहर थे वे बच (उबर) गए"। अनुवाद के अर्थ से यह अर्थ अधिक युक्तिसगत जँचता है।

ऊगरइ—स० उद्+गृ, प्रा० उग्गिर, उग्गिल। राजस्थानी में उगरणो, उबरणो = बच रहना, निकलना।

दूहा २७३ ढोला, रहिसि इ०—अन्यार्थ—हे ढोला, मेरे रोकने पर रुक जा, विधाता का लेख तो मिलेगा ही।

निवारियउ—(१) निवारियउ=निवारण किया जाता हुआ, रोका हुआ। (२) नि=नहीं+वारियउ=रोका हुआ।

दूहा २७५ सुचीत—सं० सु+चित=शुभ है चिंतन जिसका, मनोज्ञ, मनोरम।

दूहा २७७ सीयाळइ, ऊन्हाळइ, वरसाळइ—स० शीत+काल, उष्ण+काल, वर्षा+काल।

चीकणी—स० चिक्कण=स्निग्ध, कोमल, फिसलनेवाली।

दूहा २७८ तात—देखो दूहा ५२५।

दूहा २७९ पाळउ—सं० प्रालेय, प्रा० पालेअ; हिं० पाला=तुषार, हिम का गिरना।

टापर—(दे०) पशुओ को ओढ़ाने का मोटा कपड़ा। राज० तप्पड़, तापड़। अँग्रेजी—तारपॉलीन। हिं० त्रिपाल, तिरपाल।

झुरइ—अप०=क्षीण होती है, व्याकुल होती है। उदाहरण—

दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि।

(कबीर ५४—८)

दूहा २८० गोरडी—स० गौरी। गोरी शब्द राजस्थानी में स्त्री, पत्नी, नायिका, प्रेयसी आदि के अर्थ मे आता है।

दूहा २८१ नीपजइ—सं० निष्पद्यते, प्रा० णिपज्जइ, हिं निपजना। उदाहरण—

उलटा सुलटा नीपजै ज्यों खेतन मे बीज। (कबीर)

दूहा २८२ तिल्ली—स० तिल।

त्रिड़इ—तड्तड् से अनुकरणात्मक क्रिया। राज० तिड़कणो, हिं० तड़कना=सूखकर चटख जाना।

झालइ—सं द्वेल, प्रा० झेल, हिं० झेलना, राज० झालणो=ग्रहण करना, धारण करना। उदाहरण—

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि। (कबीर २६—५२)

गाभ—स० गर्भ; प्रा० गब्भ=गर्भाधान।

आभ—स० अभ्र, प्रा० अब्भ=बादल, आकाश।

दूहा २८४ नीसरइ—स निः+सृ; प्रा० निस्सर, हिं० निसरना। उदाहरण—

कहौ कौन खिवै कहौ कौन गाजै, कहाँ थै पाणी निसरै। (कबीर)

दूहा २८६ उत्तर—देखो दूहा १२६।

उत्तरड—सं० अव+तृ, हिं० उतर आना=अचानक आ जाना।

सही—अवश्य, निश्चय करके। मिलाओ—

"हुए हरण हथलेवौ हूऔ, सेस ससकार हुवइ सहि।" (वेलि १५२)

सीह—सं० शीत, प्रा० सीअ=सरदी, जाड़ा। उदाहरण—

(१) जहाँ भानु तहँ रहा न सीऊ। (जायसी)

(२) प्रतिहार प्रताप करे सी पालै। (वेलि २२५)

चगा—सं० चग, पजाबी चगा, मराठी चॉगळा, हिं० चगा=स्वस्थ, नीरोग, सुदर। मिलाओ—मन चगा तो कठौती मे गगा।

दूहा २८७ वाहळिरॉह—देखो दूहा १४७ मे वाहळा पर टिप्पणी।

ओले—सं० क्रोड, हिं० ओल=ओट, शरण। उदाहरण—

(१) सूरदास ताको डर काको हरि गिरिवर के ओलै। (सूर)

(२) ढूँढत ढूँढत जग फिरया, तिण कै ओलहै रॉम। (कबीर)

काहळिरॉह—सं० कातर; प्रा० काहल=डरपोक, अधीर। देखो, हेमचद्र ८—१—२१४।

दूहा २८६ पल्लाणियॉ—सं० पर्याण, पल्लाण=जीन किए हुए, सवार, प्रवास को जाते हुए।

दरक—सं० दर, हिं० दरकना=विदीर्ण होना, फटना (हृदय का)

अक—सं० अर्क, प्रा० अक, हिं० आक=मदार का वृक्ष।

दूहा २६० दोहागिण—सं० दुः+भागिनी, प्रा० दुहागिणि=वह स्त्री जिस पर पति का प्रेम न रह गया हो।

दूहा २६१ रीठ—सं० अरिष्ट; प्रा० रिट्ठ=विनाशकारी (शीत) रूखी (सर्दी)। राजस्थानी में 'रट' असहनीय शीत को कहते हैं।

दूहा २६२ तरत—सं० तरत=समुद्र। पाले का समुद्र अर्थात् जोरों का शीत।

दूहा २६४ रवद—(सं० रव ?) जोर शोर का।

वासदर—सं० वैश्वानर=अग्नि। उदाहरण—

जिहि वैसंदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान।

(कबीर ६३—४)

मद—सं० मद्य, प्रा० मद्द, हिं० मद। अनुस्वार का आगम।

दूहा २९५ ऊकटिया—सं० अव+काष्ठ, हिं० उकठना=सूख जाना। उदाहरण—जिमि न नवै पुनि उकठि कुकाठू। (तुलसी)

सारेह—सं० शिरीष, प्रा० सरीह। शिरीष का वृक्ष राजस्थान मे बहुतायत से पाया जाता है।

बेलाँ—सं० द्वि, प्रा० बे, वि, एला प्रत्यय,=दो युग्म, दपति।

दूहा २९६ ऊपड़िया—सं० उत्पत्; प्रा० उप्पड़; हिं० उपड़ना। उदाहरण—

ऊपड़ी धुड़ी रवि लागी अंबरि। (बेलि १९३)

कोट—राजस्थानी मुहाविरा 'कोट-रा कोट'=अनत राशि।

पोयणी—सं० पद्मिनी; प्रा० पोइणी। उदाहरण—

(१) सर पोइणिए थई सुश्री (बेलि २०९)

(२) पोयण फूल प्रतापसी। (पृथ्वीराज)

घोट—सं० घोटक। लक्षणा से घोड़े के समान स्फूर्तिमान् युवा पुरुष।

दूहा २९७ ऊकठियइ—सं० उत्+कर्ष, प्रा० उकड्ढ हिं० कढना=बाहर निकल पड़ना।

केकाँण—(दे०) घोड़ा। सभवतः केकय शब्द से बना है जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध होते थे। उदाहरण—

केकाणाँ पाइ सुगह किया। (बेलि १२७)

कमेडि—हिं० कुमरी। पंडुख की जाति की एक चिड़िया, जो सफेद कबूतर और पडुख से उत्पन्न होता है। राजस्थान मे इसे कमेड़ी कहते है। इसकी बोली से 'केशव तू केशव तू' जैसी आवाज निकलती जान पड़ती है।

दूहा २९९ साले—सं० शल्य, प्रा० सल्ल, हिं० सालना।

दूहा ३०० ऊलहइ—सं० उत्+लस, प्रा० उल्लह। उदाहरण—

दोष वसत को दीजै कहा,
उलही न करील की डारन पाती। (पद्माकर)

द्रग—(१) सं० द्रग=वह नगर जो पत्तन से बड़ा और कर्वर से छोटा हो। (२) दुर्ग।

दूहा ३०१—दखिणाध—सं० दक्षिणतः दक्षिण की ओर का। आधुनिक राजस्थानी में दखणाद या दिखणाद बोलचाल का रूप है।

दूहा ३०३ सव—स० स. । प्रा० सो, सौ, सव ।

रत—स० ऋतु । अन्य रूप—रिति, रुति, रुत, रित, रत । आधुनिक राजस्थानी मे रुत् प्रयुक्त होता है ।

ऑवळी—स० अमल, स्त्रीलिंग । निर्मल ।

वि०—इस दूहे के प्रथम चरण का अर्थ अस्पष्ट है ।

दूहा ३०४ हल्लाणउ—अप० हल्ल + आणउ (भाववाचक संज्ञा बनाने का प्रत्यय) ।

झबझब, डबडब—अनु० शब्द ।

झूबइ—प्र० झप, हिं० झूमना ।

पागड़इ—दे०, रिकाब, ऊँट या घोड़े की काठी का पावदान जिस पर पैर रखकर सवार होते है ।

दूहा ३०६ रइबारी—दे० जातिविशेष जो ऊँटों को चराने और रखने का काम करती है ।

दूहा ३०७ वग्ग—स० वर्ग, प्रा० वग्ग = बाडा । मिलाओ—

मैं जाण्यो धोळो मुओ, खाली हुयगो **वग्ग** ।

बाड़े उड़हि ज बाछड़, औरूँ तॉडण लग्ग ॥ (बॉकीदास)

दूहा० ३०८ दाय आवइ—पसद आना । राजस्थानी मुहाविरा, जो बोल-चाल मे अब भी आता है ।

दूहा ३०९ दोवड-चोवड़ा—मिलाओ, हिं० दोहरा चौहरा = दुगुने चौगुने, भारी शरीरवाले ।

नागरवेलियॉ—स० नागवल्ली, पान की वेल ।

दूहा ३११ मॉगळोर—सभवतः किसी स्थान का नाम है । इसका पता नहीं चलता । जोधपुर राज्य में मॉगळोद नाम का एक गॉव है पर वह मॉगळोर से सर्वथा भिन्न है ।

दूहा ३१२ घालूँ—अप० घल्ल = डालना ।

वाहूँ—स० वध; हिं० बॉधना ।

लज—स० रज्जु, प्रा० लज्जु, लज=नकेल, लगाम ।

भलेरउ—भला + एरउ (स्वार्थिक प्रत्यय) ।

दूहा ३१९ अग्गर—स० आगार=रहने का सुदर आवास ।

आसगे— स० आ + सग से क्रिया प्रयोग=संग करना । सज्ञा आसंग सामर्थ्य के अर्थ मे राजस्थानी मे बोलचाल मे आता है; जैसे—म्हारी **आसंग** कोय नी ।

दूहा ३१६ दूमणी—सं० दुर्मना; प्रा० दुम्मण।
वरग—सं० वर्ग=बाड़ा। देखो—दूहा ३०७ में वग्ग।

दूहा ३१७ कन्हइ—हिं० कने=पास, नजदीक।
(१) मीत तुम्हारा तुम्ह **कने** तुमही लेहु पिछानि। (दादू)
(२) अब आके बुढापे ने किया हाय ! ये कुछ कहर।
अब जिसके **कने** जाते हैं लगते हैं उसे जहर॥

(नजीर)

खोड़उ—अप० (देशी नाममाला २–८०)।

दूहा ३१८ डॉभिज्यउँ—सं० दह्, प्रा० डभ, राज० डाँभणो; हिं० दागना। कर्मवाच्य, सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन। पहिचान के लिये अथवा रोगनिवारण के लिये पशु को दागा जाता है।
रळि—प्रा० रल, हिं० रलना=मिलना। उदाहरण—
कबीर, गुर गरवा मिल्या, **रळि** गया आटै लूँण।

(कबीर २–१४)

दूहा ३२० चोपड़िस्यूँ—अप० चोप्पड = स्निग्ध, चिकना करना।
चपेल—सं० चपा+तेल=चमेली अथवा चपा का तेल।

दूहा ३२१ हळफळ—दे० अनु० शब्द, प्रा० हल्ल फल्ल; हिं० हड़बड़ी=त्वरा, शीघ्रता, व्याकुलता। (देखो - हेमचद्र २–१८४)

दूहा ३२२ रूअड़उ—सं० रूढ = प्रशस्त, अच्छा, भला।
वेध्याँ—सं० विध्। वेध्यो का विकारी रूप, बहुवचन, कारक प्रत्यय लुप्त। पारस्परिक प्रेम से बिंधकर माला के मनकों की तरह ऐक्यसूत्र में आबद्ध अर्थात् प्रेमसयुक्त।
बप्पडा—अप० बप्पुड़ा, हिं० बापुरा, गुज० बापड़ु। उदाहरण—
प्रिय एम्वहिं करे सेल्लु करि छड्डहि तुहुं करवालु।
ज कावालिय **बप्पुडा** लेहिं अभग्गु कवालु॥

(हेमचद्र ८–४–३८७)

दूहा ३२३ कळाप—सं० कल्प=दुःख की उद्भावना करना, विलखना, विषाद करना। उदाहरण—
(१) मुख कहि कृसन रुषमिणि मगळ।
काँइ रे मन **कळपसि** कृपणा। (बेलि २८६)

(२) नेकु तिहारे निहारे बिना कलपै जिय क्यों पल धीरज लेखौ।
(पद्माकर)

लोपाँ—सं० लुप् = लुप्त करना = न मानना। संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन। उदाहरण—

कलि सकोप लोपी सुचालि निज कठिन कुचालि चलाई।
(तुलसी)

दूहा ३२४ सारउ—सं० सृ (?), हिं० सरना (?), राज० सारो=वश। बोलचाल का शब्द है।

दूहा ३२६ बतळावजूं—राजस्थानी में पुकारने के अर्थ मे 'बतळावणो' आता है।

दूहा ३२६ माँडि पलाँण—'पलाँण माँडणो'=ऊँट पर जीन कसना।

दूहा ३३० कूड़द—सं० कूट, प्रा० कूड़=असत्य, मिथ्या, झूठा, छल-युक्त। उदाहरण—

नामरा मरण बिचारि करि, कूड़े काम निवारि। (कबीर)

दूहा ३३१ तेडावियउ—राज० टे० 'तेड़णो'=निमंत्रित करना, बुलाना। प्रेरणार्थक रूप। उदाहरण—

दैवग्य तेडि वसुदेव देवकी, पहिलोई पूछै प्रसन। (वेलि १४६)

दूहा ३३२ गन्वउ करहउ डाँभस्यउ—अन्यार्थ—अरे अनजान मूर्खों। पाले हुए (रञ्जित) ऊँट को (क्या) दाग लगाओगे?

सँधाणा—सं० सधान, प्रा० सधाण=दवादारू से ठीक करना, स्वस्थ करने का उपचार।

दूहा ३३४ खेलाइद—सं० खेल + आड (प्रेरणार्थक प्रत्यय।

दूहा ३३६ ऊकरड़ी—अप० उक्करडु = कूरा, गंदगी इकट्ठा करने की जगह।

ढोरा—राजस्थानी शब्द—धान्य के पौदे के सूखे डंठल जो पशुओं के चारे की तरह काम में आते हैं।

अपस—सं० अपशु = कुत्सित पशु, गदहा।

दूहा ३३७ छेह—अप०=प्रान्त, अंत, किनारा। (देखो—देशी नाम-माला ३–३८)।

मेळा—स० मेल् = मिश्रण करना, इकट्ठे। उदाहरण—

भावी सूचक थिया कि **मेळा**, सिंघरासि ग्रहगण सकल।

(वेलि ६६)

दूहा ३३९ खोटॉ—सं० क्षुद्र, प्रा० खुड्ड। बहुवचन विकारी रूप।

दाखवइ—सं० दृश्, प्रा० दक्ख। प्रेरणार्थक।

दूहा ३४० सिध्धावउ—स० (प्रेरणार्थक); हिं० सिधाना = सिद्धि के लिये प्रयाण करना। उदाहरण—

लायक हे भृगुनाथ सो धनु सायक सौंपि सुभाय सिधाये।

(तुलसी)

दूहा ३४३ कसबी—(दे०) ऊॅट पर जीन कसने के लिये पट्टा अथवा मोटा फीता। कसबी जड़ाऊ अथवा चित्रित के अर्थ मे भी आता है।

सोवनवानी—स० सुवर्ण+वर्ण = सुनहले, सुवर्ण वर्णवाले। 'वानी' के प्रयोग के लिये देखो—

बादल **बानी** राम घन उनया, बरपै अमृतधारा।

(कबीर १३७ १५१)

परियाण—स० प्रमाण, प्रा० पवाण = वास्ते, लिये। उदाहरण—

कहिबे को सोभा नहीं देखा ही **परवांन**। (कबीर २५२-४८)

दूहा ३४५ झेक्यउ—(राज०) ऊॅट के बैठने को राजस्थानी में 'झेकणो' कहते हैं। ऊॅट को बैठाते समय 'झे झे' शब्द किया जाता है, उसी के अनुकरण पर यह शब्द बना है।

टहूकड़ा—(दे० अनु० शब्द) ऊॅट के बरगलाने का शब्द। कोयल के बोलने को भी 'टहूकड़ा' कहते हैं। साधारणतः सुदर और कर्णप्रिय शब्द के लिये प्रयुक्त होता है।

दूहा ३४६ कसणा—(सज्ञा) स० कर्षण, प्रा० कस्सण, हिं० कसना= बॉधने की रस्सियॉ या फीते।

करकउ—(अनु० शब्द) पशु के बोलने का शब्द।

दूहा ३४८ दॉवणि (१)—(फा० दामन) पहिनने के वस्त्र का निचला भाग या छोर, अथवा (२) (स० दाम = रज्जु, बंधन)—लाक्षणिक अर्थ में नियन्त्रण। दूहे की पहली पंक्ति का दूसरा अर्थ यों भी हो सकता है—हे सखी, दौड़ो, दौड़ो, (जब मेरा प्रियतम चल ही पडा) तो अब कौन सा बंधन (मर्यादा बंधन) रह गया, क्या लाज है।

दूहा ३४९ निसाँण—हिं० निशान = नगाड़ा, धौंसा । उदाहरण—

(१) बीस सहस घुम्मरहिं **निसाना** । (जायसी)

(२) घुरै **नीसाण** सोइ घण घोर (बेलि ४०)

संधाण—स० सधि, सधान = शरीर की संधियाँ । दोहा ३३२ में लाक्षणिक अर्थ मे, भिन्न आशय मे, यह शब्द प्रयुक्त हुआ ।

दूहा ३५० दमाज—फा० दमामा (?) = ढोल, नगाड़ा, धौंसा ।

दूहा ३५१ पडहउ—स० पटह, प्रा० पडह ।

ऑवळउ—स० अपर; प्रा० अवर (?), राज० ऑवळो = (१) उलटा, चक्करदार, (२) अस्वस्थ (स्वस्थ का उलटा)। राज० ऑवळा-सॅवळा= हिं० उलटा सुलटा ।

दूहा ३५२ पालखी—स० पल्यक = पालकी ।

विसहर—स० विषधर ।

दूहा ३५४ पाड़ा—स० पाटक, प्रा० पाड़य = महल्ला ।

दूहा ३५५ ऊभी—स० उत्+भू=खड़ा होना । उदाहरण—

विरहिन **ऊभी** पथ सिर, पथी पूछै धाय ।

एक शब्द कहु पीव का, कबर मिलैंगे आय ॥ (कबीर)

कड़—स० कटि, प्रा० कडि ।

दूहा ३५८ अवास—स० आवास = निवासस्थान ।

मावइ—स० मा, हिं० अमाना=समाना ।

दूहा ३६० टबूकइ—अनु० शब्द = टप् टप् अथवा टब् टब् शब्द करके गिरना ।

दूहा ३६१ पड़तालिया—स० परि+ताड् ; प्रा० पडताल = तेजी से चलाया ।

पूठि—स० पृष्ठ, प्रा० पिट्ठ, हिं० पीठ, पूठ । उदाहरण—

पच्छिम दिसि **पूठ** पूरब मुख परठित । (बेलि १५४)

वाबू—स० वायु, प्रा० वाव ।

दूहा ३६२ उवाँ ही—हिं० वहाँ ही ।

वहोड़या—स० प्रवूर्ण, प्रा० पहोल = लौटाना । सा० भू० बहु० । मिलाओ हिं० बहुरि । उदाहरण—

कबीर यहु तन जात है, सकै तो लेहु बहोड़ि । (कबीर)

दूहा ३६३ सलूँणी—स० सलावण्य, हिं० सलोनी ।

दूहा ३६५ मोकळ—(दे०) = बड़ा, घना, बहुत। उदाहरण—
मुकति दुआरा **मोकला** सहजै आवौ जाउ। (कबीर २५०–१७)

दूहा ३६६ वीखड़ियाँ—सं० वीखा=गति, पद, पदचिह्न।

दूहा ३६७ कुहड़ि—स० कुहेडि, हिं० कोहरा = जल कणों से युक्त शीतल भाप। यहाँ कोहरे से लाक्षणिक अर्थ मे अधकार से आशय है।

दूहा ३६८ वीज—स० विद्युत्, प्रा० विज्जु।

दूहा ३६९ राता—स० रक्त, प्रा० रत्त = लाल। उदाहरण—

भृकुटी कुटिल नैन रिस **राते**। (तुलसी)

दूहा ३७० बाहिरी—स० बहिर् =बिना, विहीन। उदाहरण—

जेहि घर कता ते सुखी तेहि गारू तेहि गर्व।
कंत पियारे **बाहरे** हम सुख भूला सर्व॥ (कबीर)

दूहे के भाव से मिलाओ—

साँई मै तुझ **बाहरा** कौड़ी हूँ नहि पावँ।
जो सिर ऊपर तुम धनी, महँगे मोल बिकावँ॥ (कबीर)

दूहा ३७१ लहक—हिं० लहकना = लहलहाना, प्रफुल्लित होना। उदाहरण—

लहर भरे **लहकहिं** अति कारे। (जायसी)

दूहा ३७२ सूकण लागी वेलड़ी इ०—मिलाओ—

सूकण लागा केवड़ा, तूटी अरहर माल।
पाणी की कल जाणतां, गया ज सींचणहार॥

(कबीर ७४–३५)

दूहा ३७३ मोजड़ी—अप० = जूती (देशीनाममाला ६–१३६)।

आ—यह (स्त्रीलिंग)।

ठाँण—स० स्थान, प्रा० ठाण = घोड़े आदि के चरने का स्थान।

आहीठाँण—(१) स० अभिस्थान, प्रा० अहिट्ठाण, राज० आहीठाँण। (२) स० अभिज्ञान, प्रा० अहिण्णाँण, राज० अहिनाण = चिह्न।

दूहा ३७६ बिलंबी—(१) स० विलब्, हिं० बिलमना अथवा (२) स० अवलब्। पूर्वकालिक क्रिया या भूत कृदत स्त्रीलिंग का रूप। उदाहरण—

(१) जीव **बिलंब्या** जीव सौं, अलष न लषिया जाय। (कबीर)
(२) कबीर तहाँ **बिलंबिया**, करे अलष की सेव। (कबीर)

दूहा ३७७ साई—सं० साति, प्रा० साइ, हिं० साई = वह धन जो किसी वस्तु निर्माण के लिये निर्माता को पेशगी दिया जाता है। यहाँ पर 'साई दे' का अर्थ है—प्रचार कर, प्रकट। साई दे दे रोवणो—यह मुहावरा धाड़ मारकर रोने के अर्थ में आता है।

प्रवाळी—सं० प्रवाल = मूँगिया, लाल रंग का एक पत्थर अथवा रत्न। उदाहरण—खुंभी पर्ना प्रवाळी खम। (वेलि २६)

चॅून— सं० चूर्ण।

सोरठा ३७८ रणेहि—सं० रणरणाय्; प्रा० रणरणक् = दुःखमय निःश्वास व्याकुलता।

सोरठा ३७९ रड़ी—सं० रट, प्रा० रड्, गुज० रडवुं।

चढ़ेहि—प्रा० चड = चढ़कर, बढ़कर।

सोरठा ३८० गळती—सं० गॄ, प्रा० गळ, हिं० गलती हुई = क्षीण होती हुई, समाप्त होती हुई। उदाहरण—

गत प्रभा थियौ ससि रयणि गळंती (वेलि १८२)

परजळती—सं० प्रज्वल्; वर्तमान कृदंत, स्त्रीलिंग = प्रकाशित होती हुई, रात बीतने के बाद होनेवाले प्रकाश के समय। उदाहरण—

दीपक परजळतो न दीपे। (वेलि १८२)

खड़हड़िया—अनु० शब्द 'खट् खट्', प्रा० खड खड = आवाज करना, खटकना।

खुरसाँण—फा० खुरासान। यहाँ तलवार से मतलब है। खुरासान की तलवार तथा घोड़े प्रसिद्ध थे। खुरासानी शब्द तलवार, घोड़ा और शाण-चक्र के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

दूहा ३८१ सिंघी—सं० शृंगी, प्रा० सिंघी, सिंघिया, हिं० सखिया = एक बहुत जहरीली वस्तु, जिसके खाते ही मौत हो जाती है।

दूहा ३८२ समर—सं० स्मर, प्रा० समर।

सहिनाण—सं० संज्ञान; प्रा० सण्णाण। देखो—दूहा ४४६।

दूहा ३८४ आपड़ाँ—सं० आ + पत्, प्रा० आपड = पहुँचना।

वालरे—सं० वल्, प्रा० वळ = चलना, लौटना, स्वार्थिक र प्रत्यय।

साद—सं० शब्द, प्रा० सद्द।

दूहा ३८५ घाटा—सं० घट्ट = पहाड़ी रास्ता, घाटी।

दूहा ३८६ धाहडी—अप० धाह = चिल्लाना, रोकर पुकारना, हिं० धाह या धाड़ मारना। उदाहरण—

रैणा दूर विछोहिया, रहु रे संष म झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि॥ (कबीर)

उरळउ—सं० उदार, प्रा० उराळ, उरल, राज० उरलो (?) = विशाल, विस्तीर्ण, विश्रब्ध, शात। राजस्थानी बोलचाल मे बहुधा प्रयोग होता है।

दूहा ३८७ मेहाँ—सं० मेघ, प्रा० मेह = बादल।

प्रगडउ—स० प्रकट, प्रा० पगड = प्रकाश, सूर्य का प्रकाश। मिलाओ—

कबीर, पगड़ा दूरि है जिनकै बिचि है रात।
का जाणौं का होइगा उगवतै परभात॥ (कबीर)

दूहा ३८८ सहड़इ—स० शब्द; प्रा० सद्द। ड़ो स्वार्थिक प्रत्यय, विकारी रूप।

थळ—स० स्थल, प्रा० थल, राज० 'थळ'। विशेष अर्थ मे रेतीली या कंकरीली ऊँची भूमि के लिये आता है। राजस्थान के रेगिस्तान को इसी लिते 'थळी' कहते हैं।

दाधी—स० दग्ध, प्रा० दध्ध, राज० दाधउ।

दूहा ३८९ चुणइ—सं० चि, प्रा० चिण, हिं० चुनना, चुगना = इकट्ठा करना, एकत्र करना (देखो—हेमचद्र ८-४-२४३)।

दूहा ३९० मथ्थइ—स० मस्तक; प्रा० मथ्थअ, हिं० माथे = ऊपर। राजस्थानी मे 'माथे' अधिकरण विभक्ति चिह्न की तरह 'पर या ऊपर' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

लबूकी—(दे०) लहलहाना, हरीभरी हो जाना।

बूरि—स० बूर; प्रा० बूर=एक घास विशेष जो राजस्थान में बहुत होती है।

दूहा ३९१ जाळ—दे०—राजस्थान का वृक्ष विशेष।

अग्गाळि—स० अकाल, प्रा० अगाल।

दूहा ३९३ झीलण—प्रा० झिल्ल, राज० झूलना = स्नान करना। 'झिल्लइ' का प्रयोग देखो—कुमारपाल चरित मे।

दूहा ३९४ सोळ सिंगार—साहित्य में प्रसिद्ध सोलह प्रकार के शृंगार।

मुळक्कयउ—अप० मुर=खिलना, स्वार्थ में क प्रत्यय। नेत्रों द्वारा हँसी प्रकट करना, मुसकराना। उदाहरण—

आगै थे हरि मुलकिया आवत देख्या दास। (कबीर)

जळहर—स० जलधर, प्रा० जलहर = सरोवर। उदाहरण—

जलहर भऱ्यौ ताहि नहिं भावै,

के मरि जाय के उहै पियावै। (कबीर)

दूहा ३९६ नवसर हार—स० नव + स्रक्=नौलडा।

दूहा ३९७ सूड़ा—स० शुक, प्रा० सुग्र + डो प्रत्यय। अन्य रूप—सूग्रो, सूवड़ो, सुग्रडो, सूटो, सूवटो।

पड़गन—सं० प्रतिग्रहण, प्रा० पडिग्गहण = प्रतिगृहीत कार्य का सपादन करना, वचनबद्ध कार्य करना।

वाळि—स० वल्, प्रा० वल। प्रेरणार्थक। उदाहरण—

वळी मरद अगलोक वासिए। (वेलि २०९)

दूहा ३९८ वार—स० वार, प्रा० वार = अवसर, वेला।

दूहा ३९९ परिठव्यउ—स० परि + स्थापय्, प्रा० परिठव। सामान्य भूत, एकवचन। उदाहरण—

परठित ऊपरि आतपत्र। (वेलि १५४)

मोर्जा—देखो दूहा ३७५ में मोजड़ी पर टिप्पणी।

दूहा ४०० चदेरी—स० चेदि, एक प्राचीन नगर जो वर्तमान ग्वालियर राज्य के नळवाड़ा प्रांत में है। आजकल की बस्ती से ४-५ कोस की दूरी पर पुरानी राजधानी के भग्नावशेष मिलते हैं। पहले यह नगर भारत में प्रख्यात था और समृद्ध दशा में था। रामायण, महाभारत और बौद्ध ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है। महाभारत काल में चदेरी का प्रसिद्ध राजा शिशुपाल था। प्राचीन समय में इसके आसपास का प्रदेश चेदि, कलचुरि और हैहय-वंश के अधिकार में था और चेदि देश के नाम से प्रख्यात था। चंदेल क्षत्रियों के राजा यशोवर्मा ने कलचुरियों के हाथ से कालिंजर का प्रसिद्ध किला छीनकर इस प्रदेश पर स० ९८२ से स० १०१२ तक राज्य किया। अल-बरूनी ने चदेरी का उल्लेख किया है। ई० सन् १२५१ में गयासुद्दीन बलबन ने चदेरी पर अधिकार किया। सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी के हाथ में चला गया। सन् १५२० में चित्तौर के महाराणा साँगा ने इसे जीतकर मेदिनीराय को सौंप दिया। उससे बाबर ने जीता। सन् १५८६ के बाद यह नगर बुंदेलों के अधिकार में रहा। अंत में सन् १८११ में ग्वालियर राज्य में सम्मिलित हुआ।

बूँदी—राजस्थान का प्रसिद्ध राज्य। बूँदी मे पहले मीणों का राज्य था। स० १३६८ के आसपास हाड़ा देवीसिंह ने मीणो से बूँदी को छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया। उक्त सवत् से बहुत पूर्व बूँदी का आबाद होना सभव है परंतु इसके बसने का निश्चित संवत् ज्ञात नहीं हुआ (ओझा)।

पुहत्तउ—स० प्र+भू, प्रा० पहुच। उ का व्यत्यय। सामान्य भूत, पुँल्लिग। आइ पुहत्तो कीर—मिलाओ—

पाणी माँहिला माँछली, सकै तो पाकड़ि तीर।
कड़ी कदू की काल की, आइ पहुँता कीर॥
(कबीर ७४-३२)

दूहा ४०४ वीहतउ—स० भी; प्रा० बीह। वर्तमान कृदत, पुँल्लिग।

अपूठा—स० आ+पृष्ठ; प्रा० आपुट्ठ, आपिट्ठ, राज० अपूठा=वापिस; पीछा, पीठ की ओर।

दूहा ४०६ साई—देखो—दूहा ३७७।

दूहा ४०७ पूजउ—स० पूर्यते, प्रा० पूजइ = पूरी हो, सफल हो।

दूहा ४०८ थकी—अपादान का प्रत्यय; प्रा० थक्क।

दूहा ४१० चटक्कड़ा—अनु० शब्द = पशु को छडी से मारने अथवा ताड़ने का चत् चट् शब्द।

गय—सं० गति, प्रा० गय = गति, चाल।

लबावइ—स० लब (प्रेरणार्थक) = लबा करना।

दूहा ४११ नीमाणी—स० निम्न, प्रा० णिएण=नीचा होकर रहना, लाक्षणिक अर्थ मे चुप रहना।

दूहा ४१२ पाखर—सं० प्रक्खर, प्रा० पक्खर = घोड़े का कवच, यहाँ पर साधारण अर्थ मे कवच के लिये उपयुक्त है।

दूहा ४१३ पति—स० प्रत्यय या प्रतिष्ठा, हिं० पत, पति = मर्यादा, प्रतिष्ठा, इज्जत, लज्जा। उदाहरण—

अब पति राखि लेहु भगवान। (सूर)

दूहा ४१४ बाँवळि—सं० बब्बूर, प्रा० बब्बूल, हिं० बबूल, राज० बाँवळ = काँटेदार वृक्ष विशेष।

बाढत—राज० 'वाढणो'= काटना, छेदन करना।

दूहा ४१५ साँवळि—स० श्यामला, प्रा० साँवळी = श्याम रग की बदली।

दूहा ४१६ सींगण—सं० शृंग, प्रा० सिंग, हिं० सींगी = सींग का बना हुआ वाद्य विशेष।

काठी—सं० कष्ट, कृष्ट, प्रा० कट्ठ = खूब मजबूती से। राजस्थानी का प्रचलित बोलचाल का शब्द है।

साहँत—सं० साध् प्रा० साह, हिं० साधना = पकड़ना।

कोडी—दे० कुड्ड, कोड्डु = हर्ष, प्रसन्नता। मिलाओ—

कुंजरु अन्नहँ तरु अरहँ कुड्डेण घल्लइ हत्थु।
मणु पुणु एक्कहि सल्लइहिं जइ पुच्छह परमत्थु॥
(हेमचन्द्र ८-४-४२२)

कासी—अरबी खास = प्रधान, राज० कासा, खासा = अधिक, विशेष। बोलचाल की राजस्थानी भाषा में 'ख' का 'क' उच्चारण प्रायः होता है। वि०—अंतिम चरण का अर्थ अस्पष्ट है।

दूहा ४१७ छेतरियाह—दे० राज०, यह शब्द गुजराती में भी प्रयुक्त होता है; 'छेतरवु' = छलना, कपट करना।

लाड—सं० लालय्, हिं लाड।

लडाड—राज० लडाणो, लडावणो=लाड़ करना।

दूहा ४१८ बतक—राज० = बत्तख की गर्दन के आकार की सुराही, जिसमें शराब रखी जाती है।

दूहा ४२१ विसरे—विसरणो का परोक्ष विधि काल, एकवचन।

दूहा ४२२ परमडळे—दूसरे के मडल में अर्थात् दूसरे के अधीन। दूसरे का अभिप्राय मारवणी या मारवणी के प्रेम से है।

हारिस्यइ—हारेंगे अर्थात् प्रेमशून्य होंगे।

मिळेवउ—मिळणो + एवो (भाववाचक संज्ञा बनाने का प्रत्यय)= मिलाप। मिलाओ—करेवो, देवो, जाएवो। इस अर्थ में वो वो प्रत्यय भी आते हैं।

त्यॉह—उनका।

दूहा ४२३ खड़ति—खडनो का वर्तमान काल। यह इकारात रूप विशेषतः स्त्रीलिंग में आता है। विलपन और खड़त पाठ लिए जाते तो ठीक होता। इसका अर्थ 'चलना' होता है। इसका प्रेरणार्थक खेडनो होता है। जिसका अर्थ 'चलाना, हाँकना' आदि होता है। मिलाओ—

सुग्रीवसेन नै मेघपुहप समवेग वळाहक इसै वहति ।
खँति लागौ त्रिभुवनपति खेड़ै धर गिरि पुर साम्हा धावति ॥ ६८ ॥
आयौ अस खेड़ि अरि सेन अतरै प्रथिमी गति आकास-पथ ।
त्रिभुवन नाथ-तणौ वेळा तिणि रव सभली कि दीठ रथ ॥१११॥

(कृष्ण-रुक्मिणीरी वेलि)

दूहा ४२४ ऊमाहियउ—स० उन्मद्, प्रा० उम्माय, या० स० उन्मथ् ; प्रा० उम्माह । उमहणो का प्रेरणार्थक । (आनद द्वारा) उमगित किया हुआ ।

वट्ट—स० वर्त्म, प्रा० वट्ट ।

पुहरि—राजस्थानी मे कभी उ जोड़ दिया जाता है, कभी लुप्त हो जाता है और कभी अदल बदल हो जाता है, जैसे—पुह (पथ) पुहचाइ (पहुचाइ), पुहर (पहर) । अन्य रूप—पहर, पहुर, पहोर, पोहर, प्होर ।

आडवळा—आडावळा नामक राजस्थान का प्रसिद्ध पहाड़ जिसे अँगरेजी वर्तनी की कृपा से लोग अरवली कहने लगे हैं। अन्य रूप—आडावळ, आडावळा ।

घट्ट—घाटी ।

दूहा ४२५ तिसाइयउ—स० तृषायित ।

पाइयउ—पीवणो का प्रेरणार्थक; अन्य रूप—पियावणो, हिं० पिलाना ।

दूहा ४२६ खंच—खचणो का पूर्वकालिक, खींचकर । खच का मतलब तृप्त होकर, पेट भरकर भी होता है। वही अर्थ यहाँ उपयुक्त जान पड़ता है ।

त्रासा—त्रास का पुँल्लिग । आधुनिक रूप = तासो । सभव है यह तृस शब्द से बना हो क्योंकि तासे का मतलब ज्यादातर प्यास होता है ।

ढूकिस—ढूकणो का सामान्य भविष्य । ढूकणो का अर्थ पास जाना होता है। जानवरों के पानी पीने के लिये पानी के पास जाने को भी ढूकणो कहते हैं। पूरा आना, बराबर बैठना, फिट होना, इन अर्थों में भी यह क्रिया आती है। ढूकड़ा (= ढूके हुए) शब्द पास के अर्थ में ऊपर दूहा न० १८७ में आया है ।

केथि—अप० केत्थु । जेसळमेर एव पश्चिमी बीकानेर की देहाती बोलियों में केथ, केथिये शब्द प्रयुक्त होते हैं। मिलाओ—कित्थुँ, कित्थेँ (पजाबी) प्रयोग—

जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थु विलेप्पिणु सिक्खु।
जेत्थुवि तेत्थुवि एत्थु जगि मह को तहे सारिक्खु ॥
(हेमचंद्र ८-४-४०५)

दूहा ४२७ विरगउ—बिना रग का, नीरस, सूखा।

ढोलणा—ढोलणो का संबोधन। 'अणो' ड़ा की भाँति ऊनवाचक प्रत्यय है।

गमता—मिलाओ, गुज० गमवुँ = अच्छा लगना, भाना।

पाम्या—सं० प्राप्, प्रा० पाम, गुज० पामवुँ, राज० पाणा, हिं० पामना।

दूहा ४२८ नीरूँ—नीरणो का संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन। नीरणो देशी प्राकृत का शब्द है। इसका अर्थ होता है चारे आदि को पशु के आगे उसके खाने के लिये डालना।

फोग—एक प्रकार का क्षुप पौधा जो राजस्थान मे बहुत होता है। इसमें छोटे छोटे दाने लगते हैं जिन्हें फोगला कहते हैं और जिनका रायता बनाया जाता है। देहात मे उनकी बूजी बनाकर रोटी के साथ खाई जाती है।

थोबड़—हिं० तोबड़ा=घोड़े को दाना खिलाने का थैला; लाक्षणिक अर्थ मुँह।

दूहा ४३० कुलिगाँमडइ—कुगाँव (?) = बुरा देश। अथवा व्यंग से कुलग्राम = बड़ा ग्राम।

कइर—सं० करीर, प्रा० कइर, करीर।

पारणउ—सं० पारणा=व्रत के दूसरे दिन का भोजन, यहाँ पर भोजन।

यूँही—इसी प्रकार।

ठेलि—हिं० ठेलना = आगे चलाना, बिताना।

दूहा ४३२ सासरवाड़ि—ससुराल।

जाळि—कदंब। राजस्थान मे भी जाल नाम का एक बड़ा पेड होता है पर वह कदंब से सर्वथा भिन्न है।

दूहा ४३३ लव कराडिया—(१) कराड ऊँट की आवाज को कहते हैं अत. लंबी आवाजवाले। मिलाओ—ठाढी माइ कराड़े टेरै है कोइ ल्याओ गहि रे। (कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १३७, पद १५१)। (२) लंबे और बाहर निकले हुए दाँतोंवाले को भी कराळ कहते है। (गउडवहो)।

लाखीणा—लाख + ईणा (प्रत्यय)=लाख के, लाख मुद्रा जिनका मूल्य हो, बहुमूल्य, यहाँ स्वादिष्ट।

दूहा ४३४ म—स० मा, प्रा० म, राज०, हिं० मत। पुरानी राजस्थानी में यह शब्द बहुत प्रयुक्त हुआ है। कबीर में भी जगह जगह इसके प्रयोग मिलते हैं—

हरि गुण सुमिर, रे नर प्राणी।
जतन करत पतन ह्वै जैहै भावँ जाण म जाणी॥

झूर—प्रा० झूर, आशा। झुरणों या झूरणो किसी की याद कर—करके दुखी होने को कहते हैं। क्षीण होने के अर्थ मे भी यह क्रिया आती है। देखो—दूहा ३८२। प्रयोग—

झुरै है बाबो नदजी अरे झुरै जसोदा माय।
सब गोपी ब्रज की झुरै बाला राधा रही मुरझाय॥

(मीराँ)

विरोळियउ—प्रा० विरोल = मथना, राज० विलोवणो, हिं० विलोना।
मेल्हे—खडीबोली का प्रभाव, राज० रूप = मेल्ह्या।

दूहा ४३५ बसाळ—राजस्थानी शब्द।

वचालइ—प्रा० विच्च, राज० बिच्च, बीच, पं० विच्च। वच्च+आळइ। आळो का अर्थ वाला है, वचाळो का अर्थ बीचवाला स्थान। बचालइ = बीच-वाले स्थान मे।

एवाळ—सं० अजपाल, प्रा० अयवाल। मिलाओ—गुवाळ (=गोपाल)।

दूहा ४३६ घोटड़ा—घोडा, लक्षणा से युवा घोडे की तरह सुदर एवं बलवान्।

तइँ—विकारी रूप। सबध प्रत्यय लुप्त।
कि—किम् = क्या।
नेहवी—नेह+वी = नेहवाली।
सी—सं शीत, प्रा० सीअ।

खाहि—खाता है, सहन करता है। क्या तुम्हारी प्रिया इतना स्नेह करनेवाली है कि तू इस भयकर शीत की पर्वाह विना किये इस तरह दौडा जा रहा है?

दूहा ४३७ छवडउ—प्रा० छवडी (देशी नाममाला ३—२५)।

हुती—प्रा० हुतो = से।
कियइ—पूर्वकालिक रूप मिलाओ—दूहा १२।

दूहा ४३८ खील्यौरी—राजस्थानी शब्द।

सुँणे—सुणनो का आज्ञा का रूप।

म्हाँजी—जो सिंधी में संबंध का प्रत्यय है।

गोठणी—सं० गोष्ठिनी, प्रा० गोट्ठिणी = सखी, वयस्का।

सैं—पंजाबी = हम।

सैण—सं०सज्जन, प्रा० सयण = मित्र, प्रेमी।

दूहा ४३६—आधोफरइ—इसका अर्थ अर्धमार्ग या अधर होता है। राजस्थानी में यह छज्जे के अर्थ में भी आता है। इस दूहे में इसका अर्थ या तो ढालू जमीन का हो सकता है जो छज्जे की तरह ढालू हो या यह हो सकता है कि जब ढोला आधा मार्ग तय कर चुका था (उस समय आडावळा पहाड़ में) मिलाओ—हिं० अधभर। प्रयोग—

> जळ जाळ अवति जळ काजळ ऊजळ पीळा हेक राता पहल।
> आधोफरै मेघ ऊधसता महाराज राजै महल ॥ (वेलि २०२)
> अध अधफर ऊपर आकास। चलत दीप देखियत प्रकास।
> चौकी दे मनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव ॥
> (केशव)

एवड़—यह शब्द सं० अजा, प्रा० अय से बना है। मिलाओ—हिं० रेवड। एवड़ की निगरानी करनेवाले या रखनेवाले को एवड़ियो या एवाळियो कहते हैं।

असन्न—सं० आसीन या सं० आसन्न।

भागइ—सं० भज्, प्रा० भज = तोड़ता है, खिन्न करता है, शंकाकुल या चल विचल करता है। आधुनिक राजस्थानी में भागणो तोड़ने के और भागणो टूटने के अर्थ में आता है।

दूहा ४४० क्रम—सं० क्रम = चलना।

पथ कर—रास्ता पकड़।

डाण—ऊँट की तेज चाल। डाण घालणो—तेज चलाना। मिलाओ—ऊँटने चढतॉ ही डाण नहीं घालणो (कहावत)।

महल—सं० महिला।

दूहा ४४१ ऊँमर—ऊमर या ऊमर सूमरा नामक जाति का राज्य सिंध में संवत् ११११ से १४०६ तक रहा। ये किस वंश के थे इसका ठीक पता नहीं चलता। भाट उन्हें सोढा परमारों की ऊमट शाखा में बतलाते हैं। तवारीख तुहफ़े तुल-कराम आदि मुसलमानी इतिहासों में उन्हें अरब जाति का लिखा

है। अन्य लोग उन्हे भाटी राजपूत वतलाते है जिन्हे सिंध मे मुसलमानों का राज्य होने पर कई अन्य जातियो के साथ मुसलमान होना पडा। संवत् ११११ के आसपास उन्होंने ठट्टे से मुसलमानो को निकालकर अपना राज्य कायम किया। सूमरा इस वश का पहला राजा था। छठे और सोलहवें राजाओ के नाम ऊमर थे जिन्होंने क्रमशः ४० और ३५ वर्ष राज्य किया। यहाँ यह ऊमर व्यक्तिवाचक नहीं किंतु जातिवाचक नाम जान पडता है। यह ऊमर स्वतत्र राजा नहीं किंतु कोई सरदार होगा क्योंकि संवत् १००० के लगभग सूमरे स्वतत्र नहीं हुए थे। ऊमर मारवणी को चाहता था और उसको अपनी स्त्री बनाना चाहता था। उसने कई बार पिंगळ पर जोर डाला पर पिंगळ राजी नहीं हुआ। यह जाति का परमार तो नहीं हो सकता क्योंकि परमार कभी परमार कन्या को पत्नी नहीं बना सकता। मुसलमान होना ही अधिक सभव जान पड़ता है। इसकी कथा आगे फिर आती है। (दूहा नं० ५९७ और ६२६ से ६५०)

जातउ—वर्त्तमान कृदत = जाता हुआ। अन्य रूप—जावतो, जावत। आधुनिक रूप—जातो, जाँवतो।

भागउ—खिन्न हुआ। देखो—दूहा ४३९।

दूहा ४४२ ऊमह्यउ = सामान्य भूत, पुँल्लिग, एकवचन। उमगित होकर चला है। देखो—दूहा ४२४।

सदावेस—(१) सदावणो = सदेश कहना। सदेश कहूँगा। (२) संदा=के। वेसि=वेश, रूप (ऐसा हो गया है)।

तन खिस्या—(१) शरीर खिस गया अर्थात् यौवनापगम होकर शिथिल हो गया। (२) स्तन शिथिल हो गए अर्थात् यौवन बीत गया।

दूहा ४४३ मोड़ो—राजस्थानी शब्द, विशेषण=देरी से, देर करके।

वेस—स० वयस्=अवस्था।

होई—सामन्य भूत, स्त्रीलिंग। अन्य रूप—हुई हूई।

खोरड़ी—सफेद केशोंवाली। खोरा पडना सिर की एक बीमारी है।

जाए—जावणो + ए (पूर्वकालिक)।

दूहा ४४४ आव्यउ—भूत कृदत, पुँल्लिग, एकवचन आया हुआ।

पाछउ—वि० वापिस।

वळइ—स० वळ्। लौटना, चलना, जाना।

करेह—समान्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन = करें।

दूहा ४४५ कासूं—यह शब्द संभवतः का और शूं (गुजराती) इन दो एकार्थवाची शब्दों को मिलाकर बनाया गया है।

जो—जोवणो का आज्ञा का रूप। जो प्राकृत की धातु है।

जकाह—जो (स्त्रीलिंग)। जो बात, जो घटना।

जाह—जा पूर्वकालिक क्रिया है। ह पादपूर्त्यर्थ जोडा गया है।

दूहा ४४६ हुती—होती हुई, होनेवाली, संभव।

दूहा ४४७ चलपत—सं० चलपत्र = पीपल के पत्ते हवा के न होने पर भी हिलते रहते हैं। अत्यंत चंचल, चलायमान।

साहइ—सं० साध्, प्रा० साह। साधना, सम्हालना। मिलाओ—साहणी = घोड़ों का निगरानीदार।

वीसू—एक चारण। वीसू संभवतया व्यक्तिवाचक नाम न होकर चारणों की किसी जाति विशेष का नाम है, जैसे—वीठू।

सुभराज—महाराज का शुभ हो। चारण, भाट, ढाढी, ढोली आदि याचक जातियाँ अपने जजमान को **सुभराज** कहकर आशीष देती हैं।

दूहा ४४८ एकइ—एक का विकारी रूप। राजस्थानी में विकारी रूप सप्रत्यय कर्ता के लिये प्रयुक्त होता है।

दूहा ४४९ सहिनाँण—सं० संज्ञान, प्रा० सन्नाण। इसी प्रकार अहिनाण (सं० अभिज्ञान)। मिलाओ—

> यह मुद्रिका, मातु, मैं आनी।
> दीन्ह राम तुम कहँ **सहिदानी** ॥ (मानस = सुंदरकांड)

दूहा ४५२ खमणी—खम धातु + अणी (कर्तृ = प्रत्यय) = खमनेवाली। सं० क्षम्, प्रा० खम।

कच्छ—सं० कक्ष, प्रा० कक्ख, कच्छ।

गरवी—सं० गुर्वी, हिं० गरुई।

दूहा ४५३ लंक—लंक का अर्थ भी कटि ही होता है। दो शब्दों के प्रयोग का अभिप्राय सौंदर्य पर जोर देना है। अथवा लंक का अर्थ बाँकी या लचकीली लिया जाय।

डसण—सं० दशन। सं० द के स्थान पर प्राकृत आदि में कई शब्दों में ड हो जाता है, जैसे—डंभ, डंड, डस, डज्झ, डोंभ, डोला इत्यादि।

दूहा ४५५ फुणिंद—सं० फणींद्र।

मयंद—सं० मृगेंद्र।

वि०—इस दूहे मे रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

दूहा ४५६ सियाइ—सुहाय (?)। अन्य संभव अर्थ—(१) गौरवर्णा (सं० सिता, प्रा० सिया) (२) श्री वाली (अप० सिअ=श्री)। इसका अर्थ अस्पष्ट है।

संपजइ—स० सपद्यते, प्रा० संपज्जइ।

जिम—मिलाओ—जिन=मत। या जि+म।

ठल्लउ—अप० ठलिय, ठल्ल=खाली, खाली हाथ।

दूहा ४५७ उपन्नियाँ—भूत कृदत, स्त्रीलिंग, बहुवचन। सं० उत्पन्न, प्रा० उत्पण्ण।

कूँभ इ०—देखो—दूहा ५४।

वचाँ—देखो—दूहा २०२, २०४-२०५।

नेत—स० नेत्र, प्रा० णेत्त। मिलाओ—

तारुणी सकजल सेतदत। वाणी सुवाणि नइ लाजवंत।
सोहली भूमि वाँका सुभट्ट। झूझार दियइ करिमाळ झट्ट॥
(राउ जइतसीरउ छद, १००)।

दूहा ४५८ चाही—अ० चाह। भूतकृदत, स्त्रीलिंग=देखी हुई अर्थात् देखी जाने पर।

चक्ख—सं० चक्षु; प्रा० चक्ख, राज० चाख। राजस्थानी मे चाख लगना नजर लगने को कहते हैं।

एकण—एक ही, अकेला, एकमात्र।

साटइ—अप० सट्ट=बदले। मिलाओ—सट्टा।

एराकी—इराक देश के घोड़े जो बहुत प्रसिद्ध होते हैं।

दूहा ४५९ करल—मुष्टि। लक्षणा से मुष्टिग्राह्य। मिलाओ—

स्यामा कटि कटिमेखला समरपित
कृसा अग मापित **करल** (वेलि ९६)

बिबीह—अप० बप्पीहा। देखो—दूहा २६।

विलूधउ—सं० विलुब्ध।

सीह—स० सिंह, प्रा० सीह, राज० सीँ।

दूहा ४६० डींभू—राजस्थानी शब्द।

सर—स० स्वर, प्रा० सर।

हंभ—स० हंस।

निवाँणि—सं० निम्न, प्रा० णिम्म, निम्व=नीचा। आण प्रत्यय। निचाई=नीचा स्थान=जलाशय।

दूहा ४६३ झँखइ—झँखणो, झाँखो पड़नो। झलक दिखाई देना, झलक पड़ना। मिलाओ—झाँकी।

सोरठा ४६४ वन्न—सं० वर्ण, प्रा० वण्ण। अन्य रूप व्रन्न।

पहिरउ—नियमित रूप पहिरयउ या पहिरियउ होगा।

रूपकउ—सं० रूप्यक। चाँदी का गहना।

दूहा ४६५ भमुहाँ—सं० भ्रू, प्रा० भमुह-हा।

सोहली—ललाट पर पहनने का एक आभूषण।

परिठिउ—सं० परि+स्थापय्; प्रा० परिट्ठव। परठनो राजस्थानी में एक ऐसी क्रिया है जो कई अर्थों में प्रयुक्त होती है। इसका साधारण अर्थ कोई कार्य करना या सपन्न करना है फिर चाहे यह धारण करने का हो या पहनने का या स्थापित करने का।

मिलाओ—

(१) प्रोळा प्रोळी तोरण **परठीजे** (स्थापित किए जाते हैं)।

(२) **परठि** द्रविण सोसण सर पंच (धारण करके)।

(३) पच्छिमि दिसि पूठ पूरब मुख **परठित** (स्थापित किया हुआ)।

(कृष्ण-रुक्मिणीरी वेलि)

(४) नारिकेळ फळ **परठि** दुज (पृथीराज रासो—पद्मावती समय)।

क—मिलाओ—हिंदी कि। जाँणि क=मानो कि।

दूहा ४६६ निलाट—सं० ललाट, प्रा० णिलाड।

अइहइ—ऐहै—ऐसे।

घाट—सं० घट्=बनावट, गठन।

वि०—लाटानुप्रास अलकार।

दूहा ४६८ जाइ—सं० जन्, प्रा० जा=उत्पन्न होना। आजकल केवल भूतकाल म यह क्रिया आती है। जायोजाई=जनमा+जनमी (इनका अर्थ जना-जनी भी होता है)।

वणराइ—सं० वनराजि। मिलाओ—

सात समँद की मसि करौं लेखणि सब **वणराइ**। (कबीर)

दूहा ४६९ लखण बतीसे—मिलाओ—

लखण बत्रीस, बाल-लीला-मै राजकुँअरि दूलड़ी रमति।
सै—से, समान। (बेलि १३)

दूहा ४७० मखल—(१) स० माक्षिक, प्रा० मक्खिअ। मधुमक्खियों का मधु। (२) प्रा० मंख, राज० मक्खण, माखण, हिं० मक्खन।

दूहा ४७१ अच्छियउ—अच्छ का अच्छियो बना लिया गया है।

दूहा ४७२ करि—इ कर्ता का प्रत्यय है।

झीणी—स० क्षीण, प्रा० झीण=पतली। देशी नाममाला में झीणी का अर्थ शरीर भी दिया हुआ है।

दूहा ४७५ चूडइ—चूड़ो=चूड़ियों का समूह। आजकल चूडे का अर्थ दूसरा होता है। राजस्थानी स्त्रियाँ हाथीदाँत की चूड़ियाँ दो भागो मे करके पहनती हैं। पहला भाग कुहनी के नीचे तक रहता है और दूसरा कुहनी के ऊपर से लेकर कंधे तक। इस दूसरे भाग की चूड़ियों को आजकल चूड़ो कहा जाता है। पहले भाग को मुठिया कहते हैं।

त्रीयाँ—त्री + याँ=तीनों।

दूहा ४७६ कड़ि—स० कली, राज० कळी।

डहक्क—डहडहाती हुई, प्रफुल्लित।

दूहा ४७७ हेमाळे—सं० हिमालय। इ अधिकरण का प्रत्यय है।

प्रथम पंक्ति का अन्यार्थ—हे ढोला, उस प्रेयसी से रंग करो न, उसकी पँसुलियाँ पतली हैं (वह पतले शरीर की है)।

दूहा ४७८ अण—नियमित रूप इण। इकार के लोप की प्रवृत्ति। उगहंताह—नियमित रूप उगताँह। ग और अनुस्वार के बीच मे एक ह जोड़ दिया गया है।

दूहा ४७९ भीसुर—स० भास्वर।

ससदळ—(१) शश है दल मे, जिसके=चंद्रमा। (२) शशधर का अपभ्रंश—ससधर, ससहर, ससहळ।

दूहा ४८० कुळी—स० कली।

सीस फूल—सीसफूल सिर का एक गहना भी होता है।

टॅकावळ—टका + आवळ (=वाला) = टकाँ वाला। बहुत टकों का। 'लाख टकों का हार' कहानियों मे प्रसिद्ध है। बहुमूल्य। टॅका रुपए के बराबर एक सिक्का होता था। (सुपाहनाहचरिअ पृ० ५१३)।

दूहा ४८१ बहरखा—बेरखा नामक हाथ का एक गहना।

चानू इ०—इस चरण का अर्थ अस्पष्ट है।

दूहा ४८२ रूँआलियाँ—रूँअ या रूअ=सं० रूप, प्रा० रूअ। आळो वाला का अर्थ देनेवाला प्रत्यय है, आळियाँ उसका स्त्रीलिंग बहुवचन का रूप है।

बोलही—प्रा० बोल्लइ। वर्तमान का इ प्रत्यय आगे चलकर हि एवं ही मे बदल गया। ऐसे रूप केवल कविता मे प्रयुक्त होते हैं। बोलचाल में तो अंतिम अइ आगे चलकर ऐ मे बदल गया है। हकारवाले रूप सूर, तुलसी आदि हिंदी कवियों मे बहुत पाये जाते हैं। जैसे—

कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।

दूहा ४८३ नइ—सं० नद, प्रा० णड, हिं० नाला, राज० नाळा, नाडो।

सरि—(१) सं० शर, प्रा० सर। (२) सं० सरित्, प्रा० सरि।

पथ्थरियाँह—प्रा० पद्धर (देशी नाममाला ६—१०), राज० पाधरो, गुज० पाधरूँ। स्त्रीलिंग बहुवचन।

दूहा ४८४ बोलणियाँह—बोलनेवाले या बोलनेवालियाँ। इया (=वाला) प्रत्यय।

दूहा ४८५ सजळ—सुंदर, स्वच्छ, निर्मल, नीरोग, प्रकाशमान। देखो—दूहा ५०६।

मीठा-बोला—मीठा बोलनेवाले, मीठे हैं बोल जिनके।

लोइ—सं० लोक, प्रा० लोअ, लोय।

दूहा ४८६ छडइ—इ पूर्वकालिक का प्रत्यय है।

गहिलउ—सं० गृहीत, प्रा० गहिल्ल, राज० गैलो, गुज० घेलुँ।

धापंत—वर्तमान काल। धापणो क्रिया संभवतः सं० ध्रै (तृप्त होना) के प्रेरणार्थक ध्रापय् से बनी है। सं० ध्रात (तृप्त हुआ) प्रा० धाअ से राजस्थानी में धायो रूप भूतकृदंत और सामान्यभूत मे बनता है।

दूहा ४८८ उदियइ—उदित होकर।

दूहा ४८९ पसाउ—सं० प्रसाद, प्रा० पसाव। देखो—दूहा ७४ में लाख पसाउ। अनुग्रह या प्रसन्न होकर दिया हुआ दान।

दूहा ४९० थकइ—होते हुए, रहते हुए।

दूहा ४९१ डर डबरे—मिलाओ—हिं० अबरडबर।

नीले—संध्या की कालिमा से नीलवर्ण हो गए। नीलणो नामधातु है। देखो दूहा २५१। अन्य रूप—नीलाणो। मिलाओ—

नीलाणी नोळवर न्याइ। (वेलि १९८)

जाया—स० जात; प्रा० जाअ; राज० जायो । सम्बोधन ।

गुणेहि—देखो—दूहा २८ ।

दूहा ४६२ रॉगा—मिलाओ—हिं० रान ।

विहुं दीपॉ—आकाश और पृथ्वी ।

थी—अपादान का प्रत्यय । गुजराती मे इसका प्रयोग होता है ।

दूहा ४६३ विण सारया—विण = बिना । सारया = सिद्ध किये हुए (स० सार्य, प्रा० सार = सिद्ध करना) । पाठातर—(१) वेणसड्या—विनष्ट हुए (२) विणठा सवि=सब विनष्ट हो गए ।

दूहा ४६४ दसिए—दसो, दसों ही ।

एकणि—एक ही (साथ) ।

पूरि—मरकर, एक साथ ।

विहंगड्उ—प्रा० विहग=आकाश (पाइअ-सद्द-महण्णवो)

दूहा ४६५ वि०—इस दूहे का अर्थ अस्पष्ट है । प्रथम पंक्ति का, अनुवाद मे दिए गए अर्थ के अतिरिक्त, नीचे लिखा अर्थ भी हो सकता है—चाहे वह आकाश में हो और चाहे समुद्र मे हो, चाहे तीर की तरह दौड़ रही हो और चाहे पङ्खा पत्ती की तरह (तो भी मैं उसे जा पहुँचूँगा) । पङ्खरियाँह का अर्थ पंङ्खा भी ठीक नहीं जान पड़ता ।

दूहा ४६६ काळिया—काळियो काळो का अनादरसूचक है ।

दूहा ४६७ चलणे—स० चरण, प्रा० चलण । ए करण कारक का प्रत्यय है ।

थाकउ—प्रा० थक्क । भूत कृदंत ।

ऊसनउ—स० अवसन्न या उत्सन्न, प्रा० उस्सण्ण=उत्सुक ।

दूहा ४६८ वीख—राजस्थानी शब्द । देखो—दूहा ३६६-३६७ ।

झंभ—शुद्ध पाठ संभवतः सझ है । थंभ पाठातर भी मिलता है । अथवा प्रा० झंप् से यह शब्द बना है = शीघ्रता से ।

दूहा ५०० सकती—फा० सख्त ।

वीटुळी—सं, वेष्ट्, प्रा० विंट, गुज० वींटवुं । घेर करके बाँधी हुई=पगड़ी । मिलाओ—राजस्थानी शब्द = वींटो = विस्तर ऊँटनी ।

सरढी—राजस्थानी शब्द=ऊँटनी ।

दूहा ५०१ अगलूणी—आगलो + ऊणी (= वाली) । आगेवाली, पूर्व की मिलाओ—आथूणी, उग्गूणी, आजूणी ।

सुहिणउ—सं० स्वप्न, प्रा० सुविण, सुहिण ।

दूहा ५०२ डरपत—डरपणो क्रिया का वर्तमान कृदत ।

मतिहि—कहीं न । देखो—दूहा २८, २६ । नीचे मति भी इसी अर्थ में आया है ।

दूहा ५०३ छोडही—छोडती है । पलक छोडना = मिले हुए पलकों को अलग करना ।

दूहा ५०४ लवथवती—लवथवणो का वर्तमान कृदत, स्त्रीलिंग । यह अनुकरणात्मक क्रिया है । पाठांतर—लुवधवती=पति प्रेम मे लुव्धा ।

सोरठा ५०५ वाटली—(१) स० वर्तुली, प्रा० वट्टुली, राज० वाटळा, वाटकी, वाटी = छोटी कटोरी । अर्थांतर—अँगूठी ।

जाणूँ—मानो ।

ढोलूँ—ढोलो का विकारी रूप (अनियमित) या ढोलो का नपुंसक लिंग मे प्रयोग । देखो—दूहा ६ ।

दूहा ५०६ नीगुल—विना गुल का ।

छाजइ—दीवट पर का छज्जा जो प्रायः सर्प के आकार का बना होता है ।

पुणग—स० पन्नग । उ जोड़ने की प्रवृत्ति पुहर, पुह आदि शब्दों में भी पाई जाती है ।

दूहा ५०८ चमकउ—हिं० चमक । अनुस्वार का आगम । मिलाओ—नींद्र, वक ।

समईयइ—समय समइ-समई + अइ-यइ ।

दूहा ५०६ हुता—अन्य रूप हुता, हूँता । मिलाओ—गुजराती—हता (= थे) ।

दूहा ५१० याई—आई=आकर ।

फर—फिर । इकार के लोप की प्रवृत्ति के लिये मिलाओ—गत, सर तरणो इ० ।

दूहा ५११ वेल—वे + एल । मिलाओ—अकेल, एकल, एकलो ।

थे—आधुनिक बहुवचन । यहाँ तैं के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

मने—मुझे । ने कर्म का प्रत्यय है ।

वींजी इ०—अर्थ अस्पष्ट है । मीजी को वीजी भी पढा जा सकता है ।

दूहा ५१२ हूँ इ०—सं० अह स्वया दाहिता ।

तांनइ—तुमको । तो + नइ (कर्म का प्रत्यय) ।

दूहा ५१३ पामेसि—पाऊँगी। सभान्य भविष्य के अर्थ में सामान्य भविष्य।

कंठा—कठ मे, कंठ से। एकवचन के लिये बहुवचन।

ग्रहण—धारण

दूहा ५१४ छेक—छेकणो (स० छिद्) क्रिया से सज्ञा। मिलाओ—

सतगुरु साचा सूरमा सबद जो मारया एक।

लागत ही भव मिट गया पड़या कलेजे **छेक**॥ (कबी०)

दूहा ५१५ सहिए—सखियो ने। ए कर्ताकारक का प्रत्यय।

सुहिणइ—सुहिणउ का विकारी रूप। कर्म का प्रत्यय लुप्त।

तोइ—अन्यार्थ—तो भी।

दूहा ५१६ फरूकइ—स० स्फुर्, प्रा० फुर, राज० फरक, फरक्क, फरुक्क, फरुक।

अहरॉह—स० अधर। आ स्वार्थ मे प्रत्यय। ह पादपूर्त्यर्थ।

दूहा ५१८ किव—अप० किंव। कैसे।

केण—स० केन=केन कारणेन।

वीर—भाई। अन्य रूप वीरो। मिलाओ—

वे हलधर के **वीर**। (विहारी)

वड—बड़ा।

दूहा ५१९ आगम—आगे से ही, पहले ही।

दूहा ५२० निर्माणी—नीची, बेचारी। देखो—दूहा ४११।

लवइ—स० लप्, प्रा० लव।

दूहा ५२१ काळी कठळि—गोलाकार काली घटाएँ। मिलाओ—

काळी करि **काँठळि** ऊजळ कोरण धारे श्रावण धरहरिया

गळि चालिया दसो दिसि जळग्रभ थभि न, विरहिण नयण थिया।

(वेलि १९२)

नीची—क्षितिज के पास।

निहल्ल—यह दूहा कुछ पाठातर के साथ पुनरावृत्त हुआ है। देखो—दूहा १९१।

दूहा ५२२ साभी—साँझ की।

सामहलि—साँमह+ली (=वाली)। मिलाओ—आगली, लारली, पाठली, नीचली, ऊँचली, ऊपरली, साँमली।

कॅबाइयउ—कब से नामधातु कबावणो=छड़ी से मारना। देखो—दूहा १३५, ४१०, ४१४, ४७३।

दूहा ५२३ ऊँढा—अप० उड (देशी नाममाला १-८५), बहुवचन।
कोहरइ—स० कुहर=कुँआ।

दूहा ५२४ ऊसारता—स० उत्सारय्, प्रा० उस्सार, राज० ऊसारणो का वर्तमान कृदत, बहुवचन।

दूहा ५२५ तात—स० तप्त, प्रा० तात (सज्ञा)=कष्ट।
दीहे दीह—दिन दिन, दिन भर।

दूहा ५२८ कज्जा—स्वार्थ मे आ प्रत्यय।

दूहा ५२६ जॉइकी—बीच मे इ व्यर्थ जोड दिया गया है।
हूँती—थी। अन्य रूप—हुती, गुज० हती।

दूहा ५३० सपहुता—स० उपसर्ग है।
आजूणई—आजूणो+ई (विकारी प्रत्यय। आजूणो=आज+ऊणो (का)=आज का।

दूहा ५३१ उळाथ्यियउ—मिलाओ—हिंदी उलटना।
अमी—स० अमृत, प्रा० अमिअ।
पयट्ठ—स० प्रविष्ट, प्रा० पइट्ठ।

दूहा ५३२ मन इ०—मेरे मन मे चाहते हुए, जब मै मन में चाह रही थी।
वाड़ी—मिलाओ—बंगला वाडी=घर।
वधॉमणा—स० वर्द्धापन, प्रा० वड्ढावण, वद्धावण, राज० वधामणा, वधावणा।

दूहा ५३३ सु, सू—सो का सक्षिप्त रूप।

दूहा ५३४ ढरत—ढरणो क्रिया का वर्तमान काल=ढ्ढे होते हैं।
अणपीयइ—अनपिये=न पिए हुए, बिना पिए ही।
पाणग्ग—स० पानक, प्रा० पाणग = पीने की कोई वस्तु, विशेषतः मदिरा।
छाक—छकने का भाव, तृप्ति। विशेषतः किसी नशीली वस्तु द्वारा होनेवाली तृप्ति। मस्ती, नशा, मद। छकणो क्रिया सभवतः स० चक् से बनी है। मिलाओ—खरी विषम छवि छाक। (बिहारी)

दूहा ५३५ ऊगट—स० उद्वर्त्त्, प्रा० उवट।
मॉजिणउ—स० मजन, प्रा० मज्जण, मजण।
खिजमति—फा० खिदमत।

दूहा ५३६ गयगयणी—गयगमणी पाठ है।
गति—स० गति, राज० गत्ति, गति।

दूहा ५३७ घम्मघमतइ—(१) घम्म घम्म शब्द करता हुआ; अनुकरणात्मक। (२) घूमना से घूमता घामता; खूब घेरदार। मिलाओ—घूम घुमालो।

घाघरइ—अप० घग्घर। इ—विकारी रूप का चिह्न। करण कारक। घाघरे से, घाघरे के सहित।

दूहा ५३८ उलट्टियउ—उलटणो क्रिया उमडने के अर्थ मे भी आती है।

दूहा ५४० पाल—प्रा० पाल, राज० पायल=पैर का एक गहना, पाजेब।

रायजादी—राय=स० राज, प्रा० राअ, राय+जादी (फारसी शब्द)= पुत्री। मिलाओ—शाहजादी।

छुटे—छुटे हुए, खुले हुए।

पटे—हिं० पट्टे, केशपाश।

छल्लाळ—अप० छिंछोळ=छोटी धारा। (देशी नाममाला ३- ७)

दूहा ५४२ वउळावी—वउळावणो क्रिया का पूर्वकालिक। इसका अर्थ भेजना व बिताना होता है। संभवतः बोलना (=बुलाना) का प्रेरणार्थक है।

दूहा ५४३ एकठि—स० एकस्थ, प्रा० एगट्ठ, हिं० इकट्ठी, एकठी।

दूहा ५४४ चित्त—(१) चित्तपूर्वक, मनोयोग के साथ। (२) हृदय से। (३) मानसिक।

दूहा ५४६ झबकइ—झब झब करना, ज्योति की लपटें उठना। अनुकरणात्मक शब्द।

वेहा—स० विध्, प्रा० वेह=वींधा।

दूहा ५४७ सकाणी—सकणो का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग। मिलाओ—लजाणी (लाजणो), भराणी (भरणो), बिकानी (बिकणो), उडाणी (उडणो), समाणी (समावणो)।

खुणसउ—हिं० खुनस।

दूहा ५४८ डेडरिया—स० दर्दुर, प्रा० डड्डुर+इयो—राजस्थानी अनादरवाचक प्रत्यय।

सरजित्त—सजीवित। मिलाओ—सरजीवन=सजीवन।

दूहा ५४९ पहिली—पहले, क्रियाविशेषण।

दयामणउ—दया+आमणो, हिं० दयावना=दया के योग्य। अप० दयावण (देशी नाममाला ५ ३५, भविस्सयत्तकहा)। मिलाओ—देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ। (तुलसी)

आथमणउ—प्रा० अथ्थमण, राज० आथूँणो=पश्चिम को, अस्त होने की दिशा को।

विमणउ—स० विमना, प्रा० विमण।

दूहा ५५० सोरभियउ—स० सौरभ, प्रा० सोरभ से भूत कृदंत=सुरभित।

दूहा ५५१ कचूवा—स० कंचुक; प्रा० कंचुअ। स्त्रियों के पहनने का काँचळी नामक वस्त्र।

दूहा ५५२ लूँध—स० लुब्ध, प्रा० लुद्ध। मिलाओ—मूँध=मुग्धा।

दूहा ५५३ गड्डिया—मिलाओ—हिंदी गड़ना।

दोहग—स० दौर्भाग्य, प्रा० दोहग्ग।

खिल्लोखिल्ल—खिलणो या खेलणो से = प्रफुल्ल।

दूहा ५५४ पचाइण—स० पंचानन।

पाखरयउ—अर्थ अस्पष्ट है।

मइँगळ—स० मदकल, प्रा० मअगळ।

दूहा ५५५—क्तूहळ—स० कुतूहल। उकार का लोप।

दूहा ५५६ सदियाँ—सदी का बहुवचन।

वाव—स० वायु, प्रा० वाउ, वाय।

ताढउ—(१) हिं० ठाढउ (?)=खड़ा हुआ। (२) स० स्तब्ध, प्रा० ठड्ढ, राज० ठाढो = तेज। (३) ठढे के अर्थ में भी आता है।

ताव—स० ताप।

दूहा ५५८ भए—व्रजभाषा का प्रभाव राज० रूप—भया।

दूहा ५५९ आजे—ए स्वार्थ में प्रत्यय। मिलाओ—काले = कल। यह शब्द ही अव्यय का अर्थ भी देता है तब आगे का अर्थ होगा आज ही।

रळी—आनंद। मिलाओ—

विविध किये व्याहविधि वसुदेव मन उपजी रली। (सूर)

आक कली न रली करै अली, अली, जिय जान। (बिहारी)

गोठ—स० गोष्ठ, प्रा० गोट्ठ।

दूहा ५६० पाल्हव्या, पाल्हविया—पाल्हवाणो धातु का सामान्यभूत, पुँल्लिंग, एकवचन। राजस्थानी में सामान्य भूत में इया और या प्रत्यय लगते हैं। जोधपुरी में इया प्रयुक्त होता है और बीकानेरी आदि में या।

दूहा ५६१ मेल्हणी—व्याकरण की दृष्टि से मेल्हणी या मेल्ही होना चाहिए।

दूहा ५६२ वेळ—सं० वेला । अंत्य आ का लोप । मिलाओ—बाळ=बाला; मूँध = मुग्धा ।

लुबधा इ० —अन्यार्थ—ढोला और मारवणी काम की कुतूहलपूर्ण क्रीडाओं मे लुब्ध हुए । इस अवस्था मे लुबधा लुबधणो क्रिया का सामान्य भूत का रूप होगा ।

दूहा ५६३ भरखमा—भर = भार । खमा—खमने अर्थात् सहनेवाले (सं० क्षम) ।

रचणॉ—रचनेवाले, प्रेम रग में रँगनेवाले । मिलाओ—मेहदी का रचना या राचना ।

मेळि—मिळनो का प्रेरणार्थक । मेलणो का अर्थ भेजना भी होता है ।

चंद्रायणा ५६५ चंद्रायणा—यह छद राजस्थानी साहित्य मे बहुत प्रयुक्त होता है । बोलते समय चौथे चरण के पहले 'परिहाँ' शब्द प्रायः जोड़ दिया जाता है ।

वरख—वर्तमान काल या पूर्वकालिक रूप ।

कु, क—पाद पूर्त्यर्थ निरर्थक अव्यय ।

चंद्रायणा ५६६ वाहुड़इ—लौटते है, यहॉ जाते हैं ।

वि०—दोनों सेज पर बैठे थे इसलिये उनका फिर सेज की ओर जाना कैसे कहा ? इसका उत्तर यही है कि लोक गीतों (Ballads) में प्रायः ऐसा हुआ करता है ।

असप्पति—सं० अश्वपति । राजस्थानी मे यह शब्द राजा के अर्थ में आता है । मिलाओ—

> **असपतियॉ** उतमगसूँ ऊँचा छतर उतार ।
> राणै दीधा रेणुआँ सॉगै जग साधार ॥ (बॉकीदास)

आहुड़इ—आहुड़नो, आभड़णो = भिड़ना ।

जुवॉने—ए कर्ता का चिह्न ।

भेळिया—भेळनो = धावा करके तोड़ना, लूट लेना, चीजों को अस्तव्यस्त कर देना । यह शब्द विशेषतया गढ या किले के साथ आता है ।

मिलाओ—(१) काची गार किलेह, साचा माँही सूरमा ।
भेळ्या केम **भिळेह**, रावाँ कोप्यॉ, राजिया ॥
(२) आ बिड़ली **भिळसी** ज दिन घलसी मो सर घाव ।

दूहा ५६७ गूढा—गूढार्थवाले वाक्य, पहेलियाँ। पहेलियाँ पूछना दाम्पत्य विनोद का एक मुख्य अंग है। आजकल भी जब जमाई ससुराल जाता है तो सालियाँ एवं अन्य सहेलियाँ उससे पहेलियाँ पूछा करती हैं।

का—काइ = कोई।

दूहा ५६८ लियति—(१) लेते हैं अर्थात् बिताते हैं (गुणवान्)। (२) लगन अर्थात् बीतते हैं (गुणवानों के दिन)।

गमन—सं० गम् = बिताना। मिलाओ—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

दूहा ५६९ इन दूहों में जो पहेलियाँ दी गई हैं वे जनसाधारण में प्रचलित पहेलियाँ थीं। इनमें पहेली गाथा छंद में भी है। प्रायः ये सब पहेलियाँ माधवानल-कामकंदला चौपाई में भी ज्यों की त्यों पाई जाती हैं।

दूहा ५७० सलीण—स+लीन।

तिण—इस कारण से।

दूहा ५७१ ग्रही—सं० ग्रह् = पकड़ना।

नकफूली—नाक में पहनने का एक गहना।

दूहा ५७२ तस—नकफूली का।

मुत्ताहळ—मुक्ताफल। मिलाओ—मुगताहळ, मुताहळ = मुक्ताफल।

अछइ—अन्य रूप छइ (= है)।

तेण—तेन कारणेन।

ढुक्कउ—अर्थ 'पास गया' है। यहाँ नकफूली पर गया।

दूहा ५७३ लेण—लेने।

संग्रहिया—ग्रहण किए, (हाथ में) लिए।

तेण—तेन कारणेन।

दूहा ५७४ त्रमळ—सं० निर्मल, राज० त्रिमळ, त्रमळ। देखो दूहा ८८।

गाहा ५७५ तरुणी इ०—संस्कृतच्छाया—

[illegible] पुनरपि [illegible] परिच्छिन्नाम्बरेण, प्रियेण दृष्टम्।
[illegible] च [illegible] दीपकं धूनयति शीर्षम्॥

दूहा ५७६ जाँम—सं० यावत्, राज० जाम = जब, ज्योंही।

गाहा ५७७ गय—सं० गत, प्रा० गय।

लिहइ—सं० लिख्।

सुक्केण—चोंच से, प्रेम्णा से।

दूहा ५७८ हर हार—महादेव का हार अर्थात् नाग।

परठव्यउ—देखो दूहा ४६५।

ज्यूँ—अप० जेंम्व = जिससे, ताकि।

दूहा ५७६ आदिरस—स० आदर्श; प्रा० आदरिस। मात्राओ का व्यत्यय।

दूहा ५८० प्राहुणउ—स० प्राघुण प्रा० पाहुन, हिं० पाहुना। यह शब्द पति के लिये भी प्रयुक्त होता है, क्योंकि उसकी प्रतीक्षा की जाती है।

दूहा ५८१ चटकउ—चटको=शीघ्रता। शीघ्रता प्रदर्शित करने के लिये अँगूठे और अँगुली को बजाकर चटकारी की जाती है।

मिलाओ—चटचट = झटपट।

वैरणि—रात्रि ने शीघ्र बीतकर शत्रुता का कार्य किया, क्योकि अब प्रियतम बिछुड़ जायगा।

दूहा ५८२ दिवला—स० दीप; प्रा० दीव। लो ऊनवाचक प्रत्यय है।

ढूळ—सं० दोल्।

दूहा ५८३ मिळियत—कर्मवाच्य, मिला जाता है = मिलते है।

पाळी—मिलाओ—हिंदी पैदल। अन्य रूप—उपाळी।

पाखरयौ—सन्नद्ध। ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

भड़—सं० भट; प्रा० भड।

दूहा ५८४ नहि—मानो। धण क्या धरती नहीं हो रही है? अर्थात् हो रही है। वैदिक भाषा में 'न' शब्द उपमा के अर्थ मे आता है।

मिलाओ—नाईं, न्यूँ = ज्यों।

दूहा ५८८ छोलइ—अप०—छोल्ल (हेमचंद्र ४-३६५)।

दूहा ५८६ ठव्वै—सं० स्थापय्, प्रा० ठव्व, ठव। वर्तमान काल।

पाखर—स० प्रखर।

दूहा ५६० ऊतर्‍युं—उतरणो का अर्थ यहाँ बीतना है।

साख—साक्षी।

मिलाओ—

> धण धाई, पिव छाकिया, घोड़ा घास चरत।
> पखवाड़ो पूरो हुयो, दिवला साख भरंत॥
>
> (राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५६२ म्हँने—मने, म्हाने = मुझे, हमे।

झूँबिया—हिं० झूमना=घेर लेना।

म्हँनै—नैं गुजराती में कर्म का प्रत्यय अब भी है।

कूँपली – प्रा० कुप + ली ऊनवाचक प्रत्यय। लकड़ी का कुप्पी के आकार का बहुत छोटा पात्र जिसमे स्त्रियाँ काजल-टीकी और सुगंध आदि सुहाग का सामान रखती हैं। राजस्थान मे कन्या के दहेज के साथ ऐसी कूँपलियाँ दी जाती हैं।

ढोळी—मिलाओ—हिं० ढालना=ढरकाना।

दूहा ५६४ भगताँ—मिलाओ—हिं० आवभगत, राज० भावभगत।

दूहा ५६५ मुकळाइणो—मुकळावणो का अर्थ गौना करवाना होता है। यह क्रिया अप० मोकळ से बनी है। मिलाओ—गुज० मोकळवुँ।

हैंवर—स० हयवर। अनुस्वार का आगम।

दूहा ५६६ छोकरी—प्रा० छोयरी। यहाँ साथ रहनेवाली लड़की अर्थात् सहेली अथवा दासी से अभिप्राय है। अन्य रूप—छोहरी, छोरी।

मिलाओ—हिं० छोकड़ा, छोकरा।

दीन्ही—यह शब्द दो बार आया है। पाठ मे अशुद्धि जान पड़ती है, पर सभी प्रतियों मे यही पाठ मिलता है।

दूहा ५६७ हेरा—दूत। हेरा हुवइ—दूतों द्वारा खबर होती है।

झंपणो—स० झप् (?)=जाना।

चोलावा—पहुँचाने के लिये, चोलावणो + आवा (तुमर्थ प्रत्यय)।

मोहड़—स० सुभट, प्रा० सुहड।

दूहा ५६८ रोही—राजस्थानी शब्द जंगल।

ऊजळ—स० उज्ज्वल।

जळथळ—(१) जलाशय। (२) जलवाली भूमि। (३) जल और भूमि।

दूहा ५६६ पउढिया—अप० पवड्ढ=सोना, लेटना।

च्यारे—चारों।

चउकी—चौकी, पहरा।

दूहा ६०० पीवणाउ—पीनेवाला। पीवणा राजस्थान में एक प्रकार का साँप होता है। रात को जब मनुष्य सो जाता है तो यह आकर उसकी साँस पीने लगता है। इससे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। पीवणा साँप एक से दो फुट तक लंबा होता है। उसका रंग मटमैला खाकी होता है। पीठ पर

तीन काली धारियाँ होती हैं। फन सिकुडा हुआ और पेट सफेद होता है। चमड़ी रबड़ की भाँति चिकनी होती है जिससे लाठियो और पत्थरों से इसे मारना बड़ा कठिन होता है। बरसात मे इसके जहर की पोटली फूलती है। इसी ऋतु मे यह प्रायः देखा जाता है और सैकड़ों को पी जाता है। यह विशेषतः रेतीले टीबों मे होता है। यह काटता नहीं। कहते हैं कि 'पीने' के बाद पूँछ की फटकार मे आदमी को सजग करने की चेष्टा करके चला जाता है। दुर्गंध, विशेषतः प्याज खाए हुए मनुष्य के पास नहीं जाता। लोग प्याज खाकर या मुँह पर पट्टी बाँधकर सोते हैं। इसके पीने के बाद बहुत से तो सोते ही रह जाते हैं। परतु यदि ४-५ घटो मे पता लग जाय तो बचना संभव है। दवा के तौर पर ऊँट का मूत्र पिलाया जाता है और यह रामबाण दवा मानी जाती है। इससे कै होती है और जहर निकल जाता है। इसके पिए हुए को फिटकरी और नमक खारा नहीं लगता। लोगो का विश्वास है कि यह साँप साँस को पी जाता है पर वास्तव मे यह सोते समय मुँह मे जहर टपका जाता है। मुँह बद किए हुए या करवट सोए हुए आदमी को यह हानि नहीं पहुँचाता। यह बड़ा होशियार होता है और छिपकर आता जाता है। इसे देखना या पकड़ना बहुत कठिन है।

विळकुळियउ—चंचलता के साथ हिलना। सामान्यभूत।

दूहा ६०१ भुयग्गि—भुजग ने। राजस्थानी मे कभी कभी द्वित्त वर्ण को Single करके पूर्ण वर्ण पर अनुस्वार लगा देते हैं तो कभी इसके विपरीत अनुस्वार को दूर करके आगे के वर्ण को द्वित्त कर देते है।

दूहा ६०२ प्रह—मिलाओ – हिंदी पौ फटना=उषःकाल होना।

पुडरी—स० पाडुर।

थट्ट—अप० थट्ट, हिं० ठाट।

ढढोळियउ—प्रा० ढंढोल्ल्। अकर्मक की तरह प्रयुक्त।

घट्ट—मिलाओ—हिं० घट (घटघटवासी)।

सोरठा ६०३ झाबकि—झबककर, तुरत।

झाळि—स० ज्वाला।

सळसळइ—स० सृ, प्रा० सर। संभवतः अनुकरणात्मक शब्द। मिलाओ—सळसळइ सेस सायर·सळिळ धड़हड़ कप्यउ धवळहर (जटमल कृत गोराबादळरी वात)

धधूणी—स० धू, प्रा० धूण।

सोरठा ६०४ व्हालाँ—सं० वल्लभ ।

दूहा ६०५ कणमणइ—भुनमुनाना, शब्द करना ।

साद—सं० शब्द, प्रा० सद्द ।

दीवाधरी—दीपक रखनेवाली दासी ।

पडसाद—सं० प्रतिशब्द, प्रा० पडिसाद ।

दूहा ६०६ पलाह—(१) सं० पलाय्, (२) सं० प्रलाप, प्रा० पलाव ।

धाह—अप० धाहा, हिं० धाड़ ।

दूहा ६०६ सारड़ी—सं० स्मृ, प्रा० सर, सार । संज्ञा । ड़ी अनादर-वाचक प्रत्यय ।

खोडी खोडी—सं० खड खड=धीरे धीरे ।

दध्ध—सं० दग्ध, प्रा० दद्ध ।

दूहा ६११ कळाइयाँ—प्रा० कल (=कोलाहल) से ।

दूहा ६१३ वडी—मारवणी के बहन होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता । बड़ी बहन तो होना संभव नहीं । छोटी बहन संभव है । कहीं कहीं चौपाई में लहुड़ी बहन लिखा है । लहुड़ी पाठ होता तो ठीक था पर किसी प्रति में मिला नहीं ।

दूहा ६१४ भवि—भाव में=जन्म में ।

अन—सं० अन्न । अन्न पाणी=जीवन ।

दूहा ६१५ परचइ—सं० प्रत्यय (?)=विश्वास करना, मानना, समझना ।

कै—कई ।

कोंही—कहीं ।

कजि—कार्य से ।

दूहा ६१७ ओळखिया—सं० उपलक्ष्, प्रा० ओलक्ख=पहचानना । यह क्रिया गुजराती एवं मराठी में भी आती है ।

दूहा ६१८ सूँ—से, साथ

अहलउ—(१) सं० अफल; प्रा० अहल=व्यर्थ (२) यों ही अर्थात् व्यर्थ ।

दूहा ६२० सीखावउ—सीखणो का प्रेरणार्थक, आज्ञा, बहुवचन । अन्य रूप—सिखावणो, सिखावणो ।

पिण—मिलाओ—गुज० पण = भी । स० पुनर् ।

दूहा ६२१ परचव्यउ—समझाया, प्रार्थना की ।

मन्ने—ए पूर्वकालिक का प्रत्यय है ।

दूहा ६२५ भळाया—आधु० रूप—भोळाया = सौंपा ।

वाँसइ—स० पार्श्वे = पीछे ।

दूहा ६२६ ग्या = गया, गए ।

कहिजइ—कही जाती है ।

दूहा ६२७ कळहळिया—स० कलकल (= कोलाहल) से ।

करि—संबंध का प्रत्यय ।

दूहा ६२६ कूँटियउ—ऊँट का पैर मोड़कर पैर से बाँध देने को कूँटणो कहते हैं ।

मुहरी—मोहरी । आधु० रूप—मोरी । ऊँट की नकेल ।

दूहा ६३० डूँमणी—डूम जाति की स्त्री । यह जाति गाने बजाने का काम करती है । इसे ढोली भी कहते हैं ।

तंत—स० तंत्री; प्रा० तति = ताँत का बाजा । डूम लोग सारंगी पर गाया करते हैं ।

दूहा ६३१ तणक्कइ—तन् तन् शब्द करता है ।

पियइ—(मद्य) पीता है ।

ऊगाळेह—प्रा० उग्गाळ = जुगाली करना ।

वउळाओ—विताओ ।

दूहा ६३२ मथ्थइ—आधुनिक रूप—माथे = पर ।

ऊजासड़उ—उजाड़ भूमि ।

लीजइ—ले ली जाती है । भविष्य के अर्थ मे वर्तमान ।

दूहा ६३३ कामड़उ—काम + ड़उ (ऊनवाचक प्रत्यय)

दूहा ६३४ उताँमळउ—प्रा० उत्तावळ, हिं० उतावला ।

दूहा ६३५ अणावाँ—आणनो का प्रेरणार्थक । संभाव्य भविष्य, उत्तम । पुरुष, बहुवचन ।

मोहि—स्वय ।

दूहा ६३६ याँ—कर्म का प्रत्यय लुप्त ।

भारथ्थ—भारत, युद्ध ।

दूहा ६३७ कूँट—पैर का बंधन ।

दूहा ६३६ लकि—लकी = लकवाली ।

डाके—राजस्थानी डागो = ऊँट ।

डहकि—डहडहाती है ।

दूहा ६४० पवग—स० प्लवग = घोड़ा ।

सुधा—स० शुद्ध । मिलाओ—हिंदी सीधा ।

खयँग—स० खड्ग, राज० खयँग, खग, खग्ग ।

चतुरग—ऊमर के पास उस समय केवल घुड़सवार थे । फिर भी चतु-रंग सेना का चढ़ना कहा गया है । यह केवल परिपाटी का निर्वाह है । लोकगीत (Ballad) की यह एक विशेषता है । आल्हखड मे जहाँ जहाँ युद्ध का वर्णन आया है वहाँ वहाँ वे ही शब्द बारबार पुनरावृत्त हुए हैं चाहे उनमें वर्णित बातों के लिये मौका हो या न हो ।

दूहा ६४१ हळहळ—अप० हल्लोहल्ल=हलचल ।

क्रूर—स० क्रूर = दुष्ट ।

ओकंभिया—स० उत्कप् , प्रा० उक्कंप (?) = चंचल किया, चलाया ।

जइसइ—जैसे । जावणो का सामान्य भविष्य । प्रा० जास्सइ ।

दूहा ६४३ छेती—स० छिद्र । सना = अतर, फासला ।

घाते—प्रा० घत्त । पूर्वकालिक ।

जिहाज—सवारी, यहाँ ऊँट । मिलाओ—Ship of Desert (मरुभूमि का जहाज) ।

दूहा ६४५ कटाड़ी—कटाड़नो काटणो का प्रेरणार्थक है । सामान्यभूत, स्त्रीलिंग ।

तिण—उसने अर्थात् ढोले ने ।

ताप—उसका अर्थात् ऊँट का ।

दूहा ६४६ पह—स० पथ, प्रा० पह ।

दूहा ६४७ वग—वाटी ।

दूहा ६४८ फिर—स० किल । मिलाओ—

आरंभ मे किरो जेणि उपायो गावण गुणनिधि हूँ निगुण ।

फिरि तणीजगनकी निज करि चित्रारे लागी चित्रण ॥

(वेलि २)

प्राणनाथ प्रीतम मिळ्यो फिरि मरि वूठो इन्द्र ।

दूहा ६५० खिलरुड—स० विलक्ष् ; प्रा० विलक्ख ।

दूहा ६५५ कुहक्कड़ा—कुहकना, कू कू आवाज करना, कूकने का शब्द।
व्यङ्ग इ०—मानो मनुष्यों के मरने पर कूक रहे हों।

दूहा ६५७ जई—जहँ। अन्य रूप—जँ।
कूँवेरा—कुवो से (प्राप्त होता है)।
कूँकूँ-वरणा हथ्थड़ा—अर्थात् कुकुमवर्ण हाथोंवाली स्त्रियाँ।
सुं घाढा—ठीक अर्थ = अस्पष्ट है। धाढा = काढा (?)।
जेण—जहाँ से।

दूहा ६५८ देसइ—देना।
मारुवाँ—मारु=मरुस्थलवासी। (विकारी रूप) मिलाओ—

मरुधर पाइ मतीर हू मारू कहत पयोधि। (विहारी)

सूधा—स० शुद्ध=सीधे सादे, गँवार।
थळाँह—थली के। थली=मरुस्थल।

दूहा ६५९ वर—भला, भले ही, चाहे।
कचोळउ—प्रा० कच्चोळक=कटोरा जिससे घड़े मे पानी भरा जाता है।
खीचनी—खीचती हुई या खींचकर ढोती हुई।
य—ही।

दूहा ६६० भाजइ—स० भज्। भाजणो=भागना, जाना, दूर होना
रिड्डु—स० अरिष्ट, रिष्ट।

फाकड—टिड्डियों के बच्चे।
तिड्डु—टिड्डीदल।

दूहा ६६१ पीयणा—देखो दूहा ६००।

दूहा ६६२ पुरिसे—सं० पुरुष। दोनों हाथ फैलाने पर एक की अँगुलियों से दूसरे की अँगुलियों तक की नाप को एक पुरस कहते है। यह लगभग ३ हाथ का होता है।

आपण—स्वय।
उभाँसरा—खडे रहनेवाले, कहीं न टिकनेवाले, भ्रमणशील, जिनका एक जगह निवास न हो (nomad)।

गाडर—अप०।
छाळी—स० छागली, अप० छाली।

दूहा ६६३ वळती—लौटती हुई, प्रत्युत्तर देती हुई।

दूहा ६६४ झूलरउ—समूह। मिलाओ—

सात सहेल्याँरे झूलरे, पणिहारी ए लो।
पाणीड़ेने चालो रे तळाव, वाला जो॥
(प्रसिद्ध पनिहारी का गीत)

लैकार—सं० लयकार=लयपूर्ण शब्द।

दूहा ६६५ फीकरिया—फीका+र (स्वार्थ प्रत्यय)+इया (अनादर-वाचक प्रत्यय)।

दूहा ६६६-६६८ ये दूहे पहले आ चुके हैं। देखो दूहा नं० ४५७, ४८४ ४८५।

निवाँणू—नीची भूमि जहाँ जल भरता है। अतः उपजाऊ।

दूहा ६६९ नीर चढइ—(१) पानी पर चढ़े हुए। (२) पानी के लिये चढ़ती हुई (=जाती हुई)।

दूहा ६७० वखाँण—सं० व्याख्यान। प्रशंसा।

दूहा ६७१ पूरी सख्ख—साख भरना=समर्थन करना।

रळियाइत—रळी+आइत (वाली)। उ के आगम की प्रवृत्ति।

परख्ख—सं० परीक्षा।

दूहा ६७२ विजोड़िया—अप०—निंदा किया।

मारू—मरुदेश, मारवाड़।

सोहागिण—पतिप्रेमवाली। मिलाओ—दुहागिन=पतिप्रेम से वंचित।

दूहा ६७३ नइँ—ने।

दूहा ६७४ ढोल—अन्वार्थ—नरवर में ढोल बजने लगे।

बोल—कथा।

परिशिष्ट (२)

(थ)

[यह प्रति बीकानेर के रॉगड़ी श्वेतांबर जैन उपाश्रय के महिमाभक्ति-भांडार मे है। इसका पाठ जोधपुरीय (च) प्रति से मिलता है। यह प्रति प्राचीन जान पड़ती है। इसमे जेसलमेर निवासी वाचक कुशललाभ द्वारा रची हुई चौपाइयॉ भी सम्मिलित हैं। इसका पाठ अत्यत शुद्ध है।

ढोला मारवणी चोपई

श्रीसारदाय (शारदायै) नमः

दूहा

सकळ सुरासर सामिनी, सुणि, माता सरसत्ति।
विनय करीनइ वीनवुँ, मुझ घउ अविरल मत्ति॥
जोताँ नवरस एणि जुगि सविहूँ धुरि सिणगार।
रागइँ सुर नर रँजियइ, अबळा तसु आधार॥
वचन विलास, विनोद रस, हाव भाव, तिहॉ हास।
प्रेम प्रीति, संयोग सुख, ए सिणगार अवास॥
गाहा-गूढा गीत गुण कउतिग कथा कलोळ।
चतुर तणा चित रंजवण, कहियइ कवि कल्लोळ॥

गाहा

मणहर नवरस मज्झे सुंदरि नारीण सरस संबधा।
निरुवम कव्व निबद्धा सुणउ, सयणा जणा सगुणा॥
नरवर नयर नरिंदो नळराय सुउसु सल्हकुमर वरो।
पिंगळराय स धूआ वनिता मारुवणी वरयेसु॥

कवित्त

पंथ उदड प्रचंड सदा चंगो पुरसाणी।
बीजी निर्मळ वस्त्र पक विणु गगानउ पॉणी॥

पट्टकूल पट्टणी देस भोगी घर दक्खण ।
तुंबर कर्णाटइ विप्र तेरोतणी विचक्खण ॥
जिम चंद वदन, चंपक वरणि, दंत झबुकइ दामिनी ।
मारग नयणि समारि इणि मनोहर मारू कॉमिनी ॥
मरुधर देस मझारि सबळ धन धन्न समिद्धउ ।
नामइ पूगळ नयर पुहवि सगळइ परसिद्धउ ॥
राज करै तिणराइ प्रगट पिंगळ पृथिवीपति ।
प्रतपै जस परताप दानि जळहर जिम दीपति ॥
देवड़ी नाम ऊमा वरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि ।
चौसठि कळा सुदरि कुँमरि चतुर कथा कहिस्युँ सुपरि ॥

चउपई

पूगळ नयरी मरुधर देस, निरुपम पिंगळ नामि नरेस ।
मरुधारी नवकोटी धणी, उत्तर सिंधु भूमि तसु तणी ॥
मोटा नगर लोग सुखि वसइ, चावड कुँवर कुळ छइ चिहुँ दिसइ ।
आठ सहस हयवर तसु मिळइ, पञ्च सहस पायदळ तसु जुडइ ॥
वरस दासमइ वइठउ राजि, अरि भाजइ सभळि आवाजि ।
तिणि वरस माहि निज प्राणि, साधी सुधु मनावी आण ॥
पनर वरस पोटउ राजान, रूपवंत रतिराय समाण ।
पाळइ राज सुपीं आपणउ, तिणि अवसरि हूओ, ते सुणउ ॥
एकणि दिवसि हुँउस आपणी, भूप चढइ अहेडा भणी ।
[illegible] [illegible] सारंगी केडि, वहिया जूजू ऊवड वेडि ॥
सांन ममतइ गष्यउ (? थाकयउ) राय, व्याप्यो तृषा ऊन्हाळइ वाय ।
वटो राजा पडिया वाट, तवतळ वइठउ दीठउ भाट ॥
तासु पासि छागलि जळि भरी, ठाकुर तणी दृष्टि वे ठरी ।
देखि भाट दीयो दीर्घायु, रेवॅत थी ऊतरियो राय ॥
निरमळ सीतळ पायउ नीर, सुधी हूओ नरराय सरीर ।
भट पासि तब पूछइ भूप, कवण काजि, तुझ किसउ सरूप ॥
[illegible] चारण सुण अभिया टाउ, मागउँ राउळ हुंसु पसाउ ।
[illegible] फिरतउ जस [illegible] सुणी, पिंगळ राजा भेटण भणी ॥
मोटा नगर लोग सुखि वसइ, चावड कुँवर कुळ छइ चिहुँ दिसइ ।
आठ सहस हयवर तसु मिळइ, पञ्च सहस पायदळ तसु जुडइ ॥

वरस वारमइ वइठउ राजि, अरि भाजइ सभळि आवाजि ।
पॅचाग तेहनइ कीध पसाउ, भाटइ ओळखियउ नरनाह ॥
कहउ भट्ट, तई कुण कुण ठाम, कुण कुण देस, नगर कुण नाम ।
वस्तु अपूरव दीठि जेह, मुझ आगळि परगासउ तेह ॥
भाट कहइ, सभळि मुझ वात, मइ दीठा मरहठ, मेवात ।
दीठा वंग, गौड, बगाल, कुकण, नइ काबिल, पचाळ ॥
दीठौ सगळउ दक्खण देस, चतुर नारि तनि चचल वेस ।
माळव नैइ काविल, मुकराण, कासमीर, हुरमुज, खुरसॉण ॥
सिंहळ दीप पदमिनी नारि, परम उलॅघि रयणायर पार ।
गुजरात, सोरठ, गाजणउ, जोयउ देस तिहॉ स्त्री तणउ ॥
सिंधु, सवालख, नै सोवीर, पूरब गगा पइलइ तीरि ।
दीठा मई इणि परि बहु देस, आपणि हरखि भाट नै वेसि ॥
पिंगळराय कहइ तिणि वार, कॉई वळी (? वसत) अपूरब सार ।
दीठि हुइ, सा मुझनइ दाखि, गम गोवर मन माहिँ म राखि ॥
उत्तम दीठि वस्त अनंत, ते कहताँ किम आवइ अंत ।
ताहरइ मनि जे अचरिज होइ, कहउ तेह जिम दाखुं सोइ ॥
नेडइ मडळि काई नारि, रूपवत हुय राज-कुंमारि ।
अति अद्भुत सुदर आकार, ते परखेवा हरख अपार ॥
भाट भणइ, सुणि पिंगळराउ, मुझ भुइ जोवा तणउ सुभाउ ।
बरस बीस लगि इणइ वेसि, जोई वनिता देसि विदेसि ॥
रमणी घणी रूपि रतन्नि, निरखी एकाएक असम ।
पण जाळोर नगर पदमनी, दीठि गउषि, जाणि दामिनी ॥

दूहा

सिरि अढार आबू धणी, गढ जाळोर दुरग ।
तिहॉ सामॅतसी देवडउ, अमली आण अभंग ॥

चउपई

सबल सेन, सोवन-गिरि-धणी । पटराणी झाली (सोढी) तसु तणी ॥
तसु पुत्री ऊमा देवडी । नाणि विधाता सइहथि घडी ॥

दूहा

चद वयणि, चपक वरणि, अहर अलत्ता रगि ।
षजर नयणी, खीण कटि, चंदन परिमळ चंग ॥

अति अद्भुत ससार इणि, नारी रूपि रतन्न।
पजर नयणी खीण कटि, कुमरि सु कचन वन्नि॥
जो तुम मारीखउ जुडइ भामिणि तिणि भरतार।
जोडी नही कान्ह ज्यउँ कर मेळै करतार॥

चउपई

भाट वचन राजा साँभली, कउतिग ए हियडइ अटकली।
कहउ भाट, का बुधि विनाणि, जिणि ए कारज चडइ प्रमाणि॥
राजा तणा कटक असवार, ते आवी मिळिया तिणि वारि।
भाट साथि लीवउ करि भाउ, आपण नयर पधारयउ राय॥
राजा पासि भाट ते रहइ, नित नित नवा कणदता लहइ।
राजा मनि ऊमा टेवडी, नवि वीसारइ एक जि घडी॥
तेडि प्रधान मत्रि आपणउ, करइ आळोचन परिणेवा तणउ।
तेह जि भाट मूँक्यउ परधान, देई अनर्गळ वछित दान॥
साथइ तेहळ नाम प्रवास, गयउ मूक्या मन वेसास।
घणी भलामण येहनइ करी, तूँ साचउ मित्र माहरउ सही॥
थाँई बुद्धि कुमति केळवे, जिम तिम ए जोडी मेळवे।
सर्व साजरुँ परवड्या, आवी जाळोरइ ऊतर्या॥
वड छत्रीस राप माँहि वडउ, चायउ सामँतसी टेवडउ।
पिंगळराय तणा परधान, आया सुणी दियउ बहुमान॥
सगाँन करी परधानइ तणी, पूछइ, कहउ (बात) आपणी।
पूगळ हूती पिंगळराय, जिणि कारणि मूँक्या इणि ठाइ॥
एम वीनवी हिव अम्हतणी, सभाँळि तूँ सोवनगिरि धणी।
कुँअरि तुम्हारी अपछर जिसी, पिंगळराय तणइ मनि वसी॥
अम्हे सुणीनउ कुमरी रूप, उछक थयउ आप मनि भूप।
अम्हनइ मोकलिया इणि ठाइ, कुमरि तुम्हारी मागइ राय॥
चाळउ सामँतसी बोलीयउ, कुमरि नातरउ पहिलउ कीयउ।
पदमणी जूनागढनो धणी, माँगी हूँती राजा भणी॥
तेहनइ मइँ तउ ऊतर दियउ, वरसेँ वडउ वींद निरपीयउ।
उदयचंद राजा चावडउ, छइ गिरधवळ कुमर तसु वडउ॥
इण सदन सुन्दर घणी, तिणि प्रधान मूँक्या अम्ह भणी।
कुमरि मँगावी मीनति घणी, दीन्ही ऊमादे कुँअरी॥

झाली अजी न मानी वात, रोगिल देस गंड गुजरात।
निबळ पुरुष नइ नीळज नारि, किम तिहाँ दीजइ राजकुमारि ॥
करते तउ कीधउ नातरउ, पाणि जाणे पडीयउ पाँतरउ।
कहइ बात जेसळ सब कहिउ, तउहिव सीख अम्हानइ दीयउ ॥
एह वात झाली साँभळी, ते प्रधान तेडाया वळी।
एक उपाय बुद्धि तिणि लह्यउ, वळतउ, जेसळनइ इम कह्यउ ॥
कुमरि-वात जोतिष ए कही, वरस एक लगि सूझइ नही।
पाछइ लगन-तणउ दिन नही, एह बुद्धि म्हे करिस्याँ सही ॥
कुमरी लगन परिणवा चार, आगळि एक दीह असवार।
मूँकेस्याँ रिणधवलाँह-भणी, सकिस्यइ नही आवि ते-भणी ॥
लगनि थकी पहिलइ इक मासि, माणस मूँकेस्याँ तुम्हि पासि।
छानी वात विमासी वहू, सभि सहू को आविसी सहू ॥
आबू तणी जात्रनइ मिसइ, लगन तणी वेळा हुइ जिस्यइ।
आवि इहाँ ऊतरियो तुम्हे, कुमरी परणावेस्याँ अम्हे ॥
उदयचद रिणधवळह भणी, कुमरि वीवाह लगनि दिन गिणी।
आगिमि एक दीह असवार, मूँकेस्याँ परिणवा विचार ॥
किम आवेस्यइ इक दिन माहि, लगन दीह वहि आघउ थाइ।
दोस न कोई इम अम्ह-तणउ, साच वचन होस्यइ इम आपणउ ॥
सीष माभि चाल्या परधान, दीधा अरथ गरथ बहुमान।
पूगळ नयरि पहूता आइ, मिळिया हरषइ पिंगळराय ॥
समाचार सविस्तर कह्या, पिंगळराय हीय गहगह्या।
छाना नितु पुहचइ परधान, रळियात थ्या चिति परधान ॥
मास दीह आगळि असवार, आया पूगळि नयरि ति वारि।
करी सजाई जानह तणी, पिंगळ चाल्या परणण भणी ॥
सबळसेन साथइ बहु थट्ट, याचक चारण बाँभण भट्ट।
आप सरीषा राजकुँमार, साथइ एक सहस परिवार।
पहिरण पट्टकूल सवि-तणइ, चडीया आडंबर घणइ।
वाजित्र वाज पच सबद्द, रिण कोळाहळ काहळ सद्द ॥
सबळ सेन साथइ परिवर्‌या, जाइ जाळोर नयरि ऊतर्‌या।
चाचि (ग) दे सगली परि सुणी, परि माडी परिणावा-तणी ॥
लोक सहू पाषतियइ मिळ्या, देषी कटक देस खळभळ्या।
पूछइ प्रजा, कवण ए राय, कवण काजि, जास्यइ किणि ठाइ ॥

वळता अंतर एहवा करइ, रखे कोइ मन माहे डरइ।
पिंगल राणा पुगळ धणी, जास्यइ जात्रा आबू भणी॥
गोधूळिक वेळा जब हूई, जोवा जान पधारी जूई।
तब पिंगळ तेडी सुभ वार, परिणाव्यउ करि मंगलच्यारि॥
निरखइ नरणे पिंगळराय, राजाइ तसु आणंदउ दाय।
रूपवंत नहँ सुंदर देह, मोटी मनि निरषता सनेह॥
ओछइ वरसे परणियउ राउ, अति सुकमाळ असभय काय।
नारइ जनम-तणी टेवडी, लोक कहइ, ए जोडी जुडी॥
एम कहइ; तउ करतार, पाम्यउ तिणि पिंगळ भरतार।
तिणे वीनउ वीवाह सुरंग, विहुँ ना मनि वाधिउ उछरंग॥
भगति जुगति कीजइ अति घणी, सामुहणी सा मोटी तणी।
नरवरा गरथ नगरि जाळोरि, गूँजइँ गिरि वाजित्रह घोर॥
आगिळगाला पाटण सामि, वीसउ नफर गयउ तिणि ठामि।
उदयचंदनय तिणउ जुहार, परणावउ रिणधवळ कुँमार॥
वळतउ पूछइ वात विवेक, लगन विचइँ थायइ दिन एक।
पधर वरनाँ माँडउ पछ्यउ, तिणि कारणि मोडउ आपछ्यउ॥
राजा बाप धरयउ मन माहि, नफर कढाव्यो बाहर साहि।
राजा कहइ न वीनउ कोइ, तउ मुझ मागी परणउ सोइ॥
तणी मनाई परणाय-तणी, चढी जान रिणधवळाँह-तणी।
तणी उतावळि मउ परवरयउ, मोवन गिरि नेडउ संचरयउ॥
वीनइ दिनि चालियउ राइ, वरठउ मन माँहि करइ उपाय।
मा आवइ रिणधवळाँ जान, करिसी झूँझ पिगरावान॥
रळताँ थी ऊपडती खेह, देखी राजा पड्यउ संदेह।
नी एक दिन अवढ सिवान, निगमेल्यइ हिव सगळी वात॥
तब वीजा पिंगळ नरनाथ, सबल एह रिणधवळइ साथ।
मागेसइ झूझ माँडिस्यइ, कुळि कळक माहरइ लागिस्यइ॥
चालियउ मनि पडियो सोच, मोटी माथि करइ आळोच।
तब कहेस्यइ पिंगळ राय, दीठइ वरकि छोडि किम जाय॥
करि मारूँनि नेह मत कहउ, आपाँ बिहुँ नेह नउ रहइ।
ये पहुचउ हिव पुगळ भणी, तउ अविहड होइ प्रीति आपणी॥
ईंद नवरि भरियाँ अकळाइ, तटि इकलागउ कुमरी तणउ।
पीहरि राणी माढू मारि, पिंगळ राय चालयउ तिणि वारि॥

चाल्यउ कटक सहू दळ चडी, पीहरि छइ ऊमा देवडी ।
परणा नइ दळ साथइ करी, पहुता कुसळइँ पूगळ पुरी ॥
तव आवी रिणधवळह जान, मिळियो चाचिगदे राजान ।
मोडा आव्या हिव किणि काज, नफर तणउ दोस महाराज ॥
नगन वेळा लगि जोई वाट, नाया तुम्हे थयउ ऊचाट ।
नेह लगन जउ किमही टळइ, वळतउ वरस पच नवि मिळइ ॥
तिणि वेळा पूगळनउ धणी, जात्रा जातउ आबू तणी ।
अरडइ ते वहतउ आवीयउ, पिंगळ राजा परणावियउ ॥
रीसाणउ रिणधवळ कुमार, वाप भणी मूक्यउ समाचार ॥
एहवउ छळ चाचिगदे कीयउ, पिंगळ राजा परणावियउ ।
उदयादीतइ जाणी वात, चाचिगदे इम पेळी घात ।
करी कोप मन माहे घणउ, तेडाव्यउ कुमर आपणउ ॥
उदयचद चाचिगदे राय, रोस चड्या वे खेलइँ दाव ।
माहोमाहि मॉडाणउ खेध, वधियौ वयर हुदउ वहु वेध ॥
सोवनगिरि हूँती चिहुँ दिसइ, लूसे देस कदे नहु वसइँ ।
पिंगळ राजा ते परि सुणी, मॉड्या सेन सनाई घणी ॥
उमादेस्यउँ अविहड प्रीति, वाळपणा लगि लागी चीति ।
कहवारयउ चाचिगदे भणी, आवॉ भीर अम्हे तुम्ह-तणी ॥
वळतउ चाचिगदे वीनवइ, रखे कटक ले आवउ हिवइ ।
नही सोनगिरि केहनइ पाडि, जास्यइ आपण ही गढ छाडि ॥
हिव ते जेसळ नामि षवास, मनि आपणइ सुबुद्धि विमासि ।
पूगळ माहि बुद्धि केळवइ, गोवळ सहि गोवर मेळवइ ॥
धवळ धेनुवे धवळइ वरणि, सारीषा वाछड़ा सुवर्ण ।
घोणा-तणी वाळि माहि आणि, पाइगहइ वॉध्या तिणि ठाणि ॥
घोडा समउ ग्रास ते लहइ, मापणि वॉधी साथइ रहइ ।
पीयइ दूध मनगमता ग्रास, वेगइ ते हारवइ त्रहास ॥
वेआसणी वहिल अति चंग, कीधो एक अपूरव अंग ।
वेवइ धवळ जोतरिया तेणि, जाणे पषी चाल्या जेणि ॥
जेसळ आप वडइ असवार, कोस वधरइ वारावार ।
जोयण एक घडीमइ जाइ, हारइ नही न थाका थाइ ॥
इम दीहाडी करइ अभ्यास, जॉ लगि हूआ वारह मास ।
जोजन घउद घडी माहि नीम, वळी जाइ आवइ करि सीम ॥

इणि परि घोरी चीपवि दोइ, राजा प्रति वीनवियउ सोइ ।
वरस एक जब पूरण हुवा, तब पिंगळ चिंतातुर थया ॥
इक आपणउ पुरुष पाठवइ, कहउ त आवणउ कीजय हिवइ ।
तउ वांट जाइ राजानइ मिळयउ, मारग सहू सूधउ साँभळयउ ॥
थवला आगण मउइ गउ, तउही वेंधि न वइठइ काइ ।
वणी उमांई थई अउम्हणइ, त्रेवडि छइ ऊमादे तणइ ॥
साथर जउ गादर असवार, आथर ऊठ चलावइ भार ।
सवळ साथ जउ वाटइ वहइ, तउ रिणवळ नहीं सा सहइ ॥
रू (? रू) वी वाट कटक सग्राम, अनरथ थास्यइ जाइसाँम ।
चाचिगद तिणि आगइ वहू, कही वात मारगनीसहू ॥
लउ प्रछन आगइ एकलउ, पहिली आणउ कीधउ भलउ ।
इसणी थरि पुहुचावी पछइ, सगळी वात सोहिली अछइ ॥
ते आव्यउ जेसळ परधान, हरषित मिळयउ पिंगळ राजान ।
मारग-तणी वात सहू कही, तेवउ म्रूफ म करियो सही ॥
एकणि वहिलइ जेसळ साथ, इम त्रेवडि मॉडी नरनाथ ।
हलउ रहिट माइरउ मान, कहियउ चाचगदे राजान ॥

दूहा

जेसलनइ पिंगळ कहइ, करि आणा परिआण ।
दिन एकणि माँहि देवडी, जिम आवइ इणि टामि ॥
साचउ छोम त कही, तूँ सेवक हूँ साँमि ।
आगइ ते परणाविवउ, करि वळि एतउ कॉम ॥
ओसनगिरिहूँ चिहुँ दिमइ, रूवा मारग घाट ।
पथी कोइ पुगळ तणउ, चहै न सकइ वाट ॥
कटकी जउ आपे क्याँ, तउ रीसावइ राय ।
साँभरयाँ लटइ थकइ, वधि न वदसइ काय ॥
वचन सुणी राजा तणउ, जेसळ कीयउ प्रणाँम ।
नइ हूँ छोम नाइरउ, जउ सारूँ ए काँम ॥

चउपई

गद कहइ जेसळ इस वात, मइ कोस लावउ एकणि रात ।
सांग पर चाल्यउ जोयण घटी, आणेस्यउ ऊमा देवडी ॥
सीप माँगि जेसळ वीनवइ, सूणि इलाल करेसुं हिवइ ।
वउ तादरउ छोरू महाराज, सउ सेवावउँ वहिली आज ॥

तेह जि वहिल सज तिणि करी, धवळा ते धोरी जोतरी।
पहिली जे सीषविया हुता, जोयण घडी जाइ आवता ॥
जोजन घडीयइ झाझउ थाय, लोहा भरइ न थाका थाइ।
दीवइ मारगि जेसळ वहइ, वाटघाट सगळी विधि लहइ ॥
सभई भूमइ अवरइ नाम, कहइ अवर मुझ अवरे काम।
साँझ समइ कीधइ रमझोला, जायइ ऊतरीयउ जाळोर ॥
चाचिगदे राजा साँभळिउ, जेसळनइ तव आवी मिळिउ।
सोढी भणी जणावी वात, सहू समारया एकणि राति ॥
बीजइ दिनि ते छानउ रहिउ, कुमरि हलाणउ किणि नवि लहिउ।
एक लाप नउ छइ तु (१ उ) झणउ, ते मडाविउ कुमरी तणउ ॥
ताँ लगि इहाँ करिण राषिउ अछइ, पूगळि कुमरी पहुता पछइ।
मोकळिस्याँ मोटइ मडाण, ताहरइ छइ वहुलउ परिपाण ॥
सहू जडाव माथि तनु दीयउ, साँझ समइ मुकलावउ कीयउ।
चाली ऊमादे कुँअरी, दीधी साथइ दीवाधरी ॥
न लियइ वीसाम उनविरहइ, पवन वेग ते वाटे वहइ।
कहइ उडइ पंषी आगासि, प्रगडइ आया पूगळ पासि ॥
वहिल छोडि ऊतरिया जिसइ, पिंगळराय पधारिउ तिसइ।
साथे कटक मेळि परिवार, करइ भट्ट तिहाँ जयजयकार ॥
चामर ढालइ छत्र सिरि चग, वाजइ तंती नाद मृदग।
पइसारउ तिणि इणि परिकीयउ, पटराणी ले घरि आवीयउ ॥

दूहा

सुणी बात रिणधवळ, सहि काळउ थयउ कुमाँर।
पाटण पहुतउ आपणइ, आरति करइ अपार ॥
पाछ्र सामँतसी सुपरि, मोटउ करि मंडाण।
ऊमादेरउ ऊझणउ, इणि परि चव्यउ प्रमाण ॥
पटराणी पिंगळ तणी अपछरनइ अणुहारि।
आछइ उमा देवडी सुंदरि इणि ससारि ॥
सुंदरि सोळ सिंगार सजि सेज पधारी मंझि।
प्राणनाथ प्रीतम मिल्यउ उर सरि वइठउ संझि ॥
अद्‌भुत रूप असंभ जग जोवइ इणि परि जपइ।
राणी परतखि रंभ कहउ उपम केही कहाँ ॥

सोरठा

प्रीत सुं अविकउ प्रेम, रयणि दिवस रगइ रमइ।
मोरउ मधुकर जेम कुसुम चाँपणि केतकि तणउ॥
माथउ वोई मेटि ऊभी सूरज साँमुही।
नार उपन्नी पेटि मोहणवेली मारुई॥

चउपई

राजा मन मईं घणउ उछरग, पट्टराणी सुं प्रेम प्रसग।
मनह मनोरथ सुं नवमास, हुआ पूरा पूगी आस॥
मात पिता मनि आणँद घणउँ, जनम हूओ मारवणी तणउ।
पीगा नगर मझारि, पुत्र तणी परि मगळचार॥
आनि सुदर सरूप आकार, अपछर रभ तणी अणुहारि।
परिमळ मधुकर पावट रहइ, फिर पदमनी सहु को कहइ॥

दूहा

जनम थयउ वउळा पछै, देव न वूठउ देसि।
पड पापड़ मरि लोग घडि; वसिवा गया विदेसि॥
मारवाडिमा देसमईं, एक न जाईं रहु।
कदे ही होइ अवरसणउ, कह फाकउ कइ तिडु॥
पिंगळि परिचरिण पूछियउ, कीजइ तेवटि काइ।
ठाम सु ठाम सु अटकळी, जेथी वसिजइ जाइ॥
इम पड धारणि थोजिवा, देसउ दउ दखिण ठामि।
पुष्करि पट पाणी प्रबळ, सभाळि पिंगळ राय॥

चउपई

पुष्करि ऊधाळा कीया, घण गोवळ सवि साथइँ लीया।
नगर सकळ लोगि परवरया, आवी पुष्करि ऊतरया॥
पीणा घट नईं नीरमळ नीर, परिमळ अन्न घणा दधि खीर।
[illegible] निरि निरि ठामि, वहु को सुखी थया निणि गामि॥
निज [illegible] ने साड माट, विषमा पथ र वहुला घाट।
नहर घाट पोरसड आपणइ, राजा आदरि तेम्पड बणाइ॥

सगळी वात सविस्तर कही, पिंगळराय तणी परि सही।
भाऊ भणी ग्रइ राजा घणउ, हिव साल्हकुमरनी उतपति सुणउँ ॥
नळराजा नळवरगढ राय, वइरी दड भजइ भड वाइ।
पाइक लाप एक परिवार, सात सहस सेना असवार ॥
पच सहस माता उ मता, षग्ग त्यागि नहु काइ षता।
भरिया रिधि नवनिधि भंडार, परिथळ गाम अंत नहु पार ॥
त्रीस वरग तसु करहा तणा, जावई पथि घणी जोयणा।
ताजी वहुत राय तस तणय, भुपति सबळ सहू को भणइ ॥
नहीं रायनइ पुत्र संतान, तिणि अहनिसि चिंता असमान।
दिनि प्रति पूजय देवी देव, सारइ जती व्रतीनी सेव ॥
ओषध मत्र यंत्र आदरइ, भरणा पुत्र काजि वहु भरइ।
पुत्र काजि मन चिंता घणी पेषइ अथिर रिधि आपणी ॥
इक परदेसी इम ऊचरइ, जउ पुष्कर तणी जात्रपति करइ।
कुटुंब सहित पहुचउ तिणि थानि, तौ सही हुवे पुत्र सतान ॥
मानी वात राइ मनि परी, पुष्कर तणी जात्रपति करी।
अनुक्रमि राणी थ्या आधान, हरष्या नगर लोक राजान ॥
पुत्र जनमि हरष्यउ राजान, मनि आणद्यौ नळ राजान।
घरि घरि उछव मगळ घणा, कीया वधावा पुत्रह तणा ॥
मायताय मनि पूगी हाम, साल्हकुमर तसु दीधउ नाम।
मृतवच्छा माता भय होइ, ढोलउ नाम कहइ सहु कोइ ॥
अति सरूप सुदर आकार, अभिनव कामदेव अवतार।
कुमर हुवउ त्रिहुं वरसांह तणउ, जनम सफल जाणे आपणौ ॥
राजा सुहणउ पाम्यो रात्रि, जाणे जायो पुष्कर जात्र।
तेडि प्रधान मत्रि ऊचरइ, जात्रा तणी सजाइ करे ॥
साथइ सेज वाला पचास, सहस ऊठ, एकसउ व्रहास।
राज भळायो मुहता भणी, राजा चाल्यो जात्रा भणी ॥
भले दिवस कीया परियाण, पच सबद वाजइ नीसाण।
वाटे निरभय सुषीयॉ वहइ, सूरा सगळे आदर लहइ ॥
घणी रिधि साथइ वळ घणउ, सघ चल्यउ ए राजा तणउ।
वाटइ मास एक ते वही, परि सिरि पुहकरि आव्या सही ॥
विधि भेटिया आदि वाराह, अधिकउ कीयो सवळ उछाह।
भगति जुगति पूजा तसु तणी सफळ जात्र हुई राजा तणी ॥

दूहा

इणि अवसरि घण ऊनम्या, प्रगट्यउ पावस मास ।
पामइ पिंगळ रायनउ, किया ऊतारे वास ॥
ऊनमियो ऊत्तर दिसा, गयण गहक्कै घोर ।
दहुं दिसि चमक्कइ दामिनी, मंडइ तंडव मोर ॥
च्यारि मास निश्चळ रह्या, सरवर तणै प्रसंगि ।
पिंगल नेह नळ भूपनौ, मिळिया मनि अति रंगि ॥

चउपई

सूर वीर देखइ सुकमाळ, दीसै दीन्हउ भला भूपाळ ।
रयणि दीहि नगरि ते रमइ, भूपति वे आहेडइ भमइ ॥
एक दिवस आहेडा आळि, नळ राजा चडियो पुहगाळि ।
एक ससउ अगडे नीसर्यो, तिणि पूठै आवउ संचर्यउ ॥
नाठे ससउ पिंगळ आवासि, पामइ राजा चड्यइ उहासि ।
वरि सूता हूइ राणी जहीं, नळ राजा किणि लखियउ नहीं ॥
पोढी हुई कमा देवडी, जाणि विधाता नटहथि घडी ।
अति पाँवी नइ कमउ रह्यो, जोवै जिणि दिसि ससउ गयो ॥
गयो ससउ ऊंडइ खंभा हेठि, दीठा नळ राजा ते हेठि ।
पटराणी पिंगळ तणी, दीठी नळवर गहनइ घणी ॥
पोढी मारवणी पालणइ, सोवन वन्न चीर आढणइ ।
पेखी राजा ग्राहउ वळ्यउ, इसी बुधि मन मांहि अटकली ॥
कुमरि ढाल्हकुमरनइ काजि, नातौ कीजै तौ सुख हुइ आजि ।
ए नातौ जै किणि विधि मिळ, तौ मनह मनोरथ सगळा फळ ॥
तिणि प्रमाणि नळ राजा तिहाँ, आपण आवो पिंगळ जिहाँ ।
मगति अम्हे माँडी तुम्हतणी, तुम्हे पधारो कृपा करि घणी ॥
तिहाँ पधारउ पिंगळ राय, राजा मनि आणंद न माइ ।
अमृत समा सरस आहार, जीमाड्यउ पिंगळ परिवार ॥

दूहा

*सो वग्गा सु महि साव्ह, कोडीवन्न केकाण ।
अम्हे साम्हा आविया, प्रीति चढी परवाणि ॥

---

* पाठांतर (त्र)—सोना वागा सावट्ट=सो वग्गा० । आम्हा साँम्हा आपिका वंढ=चढी । परिवाँण ।

चउपई

करि भोजन बइठा एकठा, आण्या पासा नइ सोगठा।
रंगई रम्या विन्हई राजान, बोल्यो नळराजा परधान॥
प्रीति विहूं भूपाळह तणीं, सगपण हुइ तौ वाधइ घणी।
दस दीहे आपणडइ देसि, वसिस्यइ सहु का गया विदेसि॥
साल्हकुमर सजी सिणगार, करि सरूप ए देष कुमार।
आपण रॅगि रमतउ आवियउ, पिंगळि राजा षाळ लियउ॥
विनय करे नळराय वीनवै, ए सगपण आपाँ जउ हुवइ।
तउ आँपाँ हुइ अगिहउ प्रीति, राजाँनाँ घरि एह जि रीति॥
पिंगळि राजा कियो पसाउ, करि सगपण सतोष्यो राउ।
दी मारवणी डोला भणी, प्रीतै प्रीति जु अधिकी वणी॥
घरे पधारयउ पिंगळ राउ, मारवणी तेडी मनि भाइ।
घणुँ लडावइ आदरि घणै, लै ऊमादे इणि परि भणै॥
मारवणी किणि कारणि आज, घणुँ लडावइ काइ महाराज।
पिंगळ राजा हसि बोलियो, नात्र साल्हकुमरिसुं कियो॥

दूहा

आषै ऊमा देवडी, वालॅभ हिय (यै) विचारि।
मनह सकोडी, मारुवी दीन्ही समुद्रह पारि॥
कता, अणदीठइ कुमरि कीयो नातरउ कॉय।
प्रीय पति पट्टराणी भणै, जिहॉ सिरज्यउ तिहॅ जाइ॥

चउपई

पाणिग्रहण तणउ परियाण, माड्यौ विहु भूपति मडाण।
महोछव तोरण वदरमाळ, वृधि वाधइ वारणइ विसाळ॥
सुभ वेळा सुभ दिनि सुभ घडी, तेवडि लगन तणी तेवडी।
चवरी मॉडइ मंगळचार, जानी मानी मिळ्या ति वारि॥
मायताय विहुं वधी गठि, परण्या पुष्करि तीरथि कंठि।
धवळ मंगळ गीतध्वनि कीया, साल्हकुमर मारू परणिया॥
अरथ गरथ परचीया अपार, बालक वेवइ विन्हय कुमार।
थॉभइ नाम सविस्तर लिख्या, आया गया सहू ओळख्या॥

इणि अवसरि पावस ऊतरयउ, साम्हउ सीतकाळ सचरयउ।
आपापणे देसे मनि धरइ, चालण तणी सनाई करइ॥
नळि कहिराव्यउ प्रोहित साथि, मारुवणी मूँकउ अम्ह साथ।
बोलइ पिंगळ, कुमरी बाळ, न रहइ मात पपय इकताळ॥
पाँचाँ साताँ वरसाँ पछे, ताँ लगि कुमरी इहाँकणि अछइ।
कुमर मूँकियो आणा काजि, कुमरी मूँकेस्याँ, महाराज॥
सीषि मागि मिळि गळि सुपि घणइ, पहुता देसे आपापणइ।
पूगळ नयरी पिंगळ राय, नळवर गढि आव्यउ नळराय॥
अळगी भूमि न को परि लहइ, वाटि घाटि पथी नवि वहइ।
समाचार नहु सोझ न कोइ, अळगे सगपणि ए परि होइ॥
इणि अवसरि नळवरगढ धणी, आळोच्या ग्रेवडि आपणी।
परणी थी मारुवणी तणी, सुधि न कहियो ढोलाभणी॥
मारुवणी परणी जाणिस्यइ, आणा काजि जई आणिस्यइ।
धणी भूमि, मारगि भय घणा, तिणि पाल्या माणस आपणा॥
पाछइ नळराजा परधान, तियाँ तेडि दीया बहु मान।
चिहु दिसि सगपण कालि चालवइ, मूँक्या सरस देस माळवै॥

दूहा

माळव देस महीपतइ भीम नाँम भूपाळ।
माळवणी धू तसु-तणइ, सुंदरि अति सुकमाळ॥
परधानइ नळरायने माँगी घणइ मँडाँणि।
जोताँ जोडावइ जुडइ प्रीति चडी परमाँणि॥
भीमसेनि भगताविया नलरायहँ परधान।
नळनदनरउ नातरउ मिलियो बहु मनि मानि॥

चउपई

कीयो नातरउ ढोला तणउ, विहुँ राजा मनि आणँद घणउ।
थाप्यउ लगन, मूँक्या परधान जुगति पधारी ढोला जान॥
खरच्या अरथ गरथ अति घणा, सतोष्या परीयण आपणा।
माळवणी परणी मनि रगि, अह निसि ढोला मन उछरगि॥
हाथ मल्हावै गज पाँचसइ, नगर पँचास गाम सुषि वसइ।
चारि सहस तेजी तोषार, भरिया रिधि नवनिधि भडार॥

महीपति सबळ सु माळवधणी, तिणि परणावी धू आपणी ।
माळवणी तसु कुमरी नाम, अति सरूप सुदरि अभिराम ॥
ढोला साथइ लागी प्रीति, चतुराईस्युं बधतइ चींति ।
नळवर गढ परणी आवियौ, करि मंडाण पइसारउ कीयौ ॥
परणयउ मारुवणी सघाति, ढोलउ तेह न जाणइ वात ।
पूगळ दिसा न आवइ कोइ, मारुवणीनी नीरति न होइ ॥
पनरह बरस गया जब वही, सउदागर इक आव्यउ सही ।
तिणि साथइ छइ घोडा घणा, ढोलइ मोलविया तसु-तणा ॥
ढोलउ नितु फेरवइ प्रभाति, सउदागर पणि तेडइ साथि ।
भगति जुगति नीमणा तसु-तणी, पूरी हउंस साल्ह तसुतणी ॥
मास पांच सउदागर रह्यउ, लेइ मोल घरांमइ वह्यउ ।
वहतउ रहतउ पूगळि आवियउ, पिंगळि राजा भगतावियउ ॥

दूहा

सांझ समै सउदागरी आप तणै उतारि ।
वइठी गउखै तिणि समइ नयणे निरखी नारि ॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८६, ९० और ६१ नंबरवाले दूहे हैं ।]

चउपई

पिंगळराजा तणउ षवास, बइठउ थउ सउदागर पासि ।
धुरि हूंती मांडीनइ घणी, बात कही मारुवणी तणी ॥
वळतउ सउदागर इम भणइ, साल्हकुमार नळवर गढि रहइ ।
मइ घोडा तिहांकणि वेचिया, ढोला सुं भाइपण किया ॥
तेहनइ घरि माळवणी नारि अपछर तणी जाणि अणुहारि ।
ढोलारइ तिणस्युं बहु प्रीति, चतुराई लगि लागौ चीत ॥
रूपइ रूडउ ते राजान, कुमर न कोई साल्ह समान ।
षरचइ लाष लाष विद्रवे, लाषे कोडे लेषा हुवइ ॥
वसिया पांच मास तिणि ठामि, निसि दिनि हूंता ढोला गामि ।
समाचार सहि ढोला तणा, कहिया सउदागर अति घणा ॥
मारुवणी तव चिति चळवळी, छानी वातां सहि सांभळी ।
साचे मनि सउदागरि (कही), मारुवणी हीयडै गहगही ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६ और १८६ नंबर के दूहे हैं ।]

* बाँहड़ियाँ रूँयाड़िया धणा वंके नयणाँह ।
वाधी चंदन महमहै मारू गोरड़ियाँह ॥

चउपई

सखियर चाली साथइँ करी, मारवणी आवी सचरी ।
पषी हुवइ तौ उडी मिलइ, मारवणी प्रीतम सभरइ ॥

[इसके आगे मूल के ३४, १८, ६० (वडो दूहो), ६२, ६४, ६५, ५३, ६७, और ६८ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

सउदागर पेषी सुख लहइ, मारूनइ सँभलावी कहइ ।
सिरजनहारइ सहइथि घड़ी, ए जोड़ी सारीषी जुड़ी ॥
किहाँ नरवरगढ साल्हकुमार, रूपवंत नइँ सगुण दातार ।
दानि करनि बळि पडव जिसउ, भोग पुरंदर सुंदर जिसउ ॥
मारवणी हुई तसु नारि, तउ सही जनम सफळ दातार ।
जोबन सही सु लहरे जाइ, करउ तेम जिम मेळउ थाइ ॥
सहि वार्ता साँभली प्रवाणि, आव्या पिंगळ राजा पासि ।
वात सहू ढोलानी कही, सउदागर ते तेड्यउ सही ॥
पिंगळराय सहित परिवार, सउदागर पूछइ तिणि वारि ।
वार्ता सगली ढोला तणी, सउदागरे कही नृप भणी ॥
सहि वार्ता पिंगळ साँभली, आपण हिय विमासइ सही ।
दिव कांइ अवडि कीजइ साइ, जिणि ढोलउ आवइ इणि ठाइ ॥
देई सीष सउदागर भणी, ते पहुता धरती आपणी ।
पिंगळरायनइ चिंता घणी, एह वात मारवणी सुणी ॥
सुणि मारवणी आवइ घरे, व्याप्यउ विरह मयण बळ धरे ।
सूती सेज करे वेधास, मोडइ अंग, मूँकइ नीसास ॥
सषियाँ साथि वात नवि करइ, वेदन विरह नयण जळ भरइ :
बीजी सषी गई घरि सही, दीवाधरी इक पासइ रही ॥

---

* पाठांतर (छ)—डोरूकियाँ=रूँयाडिया । सहि अर डोलड़ियाह = धण वंके इ० ।

आडा जडिया विन्हइ किमाड, दीवाघरी वोळावइँ माड।
आज काई वेदन तसु तणइ, रम्यो हउँस नहि कारण किणइ॥
सुणी सुद्धि वालँभ तणी, विरह विथा तिणि छेइ मुझ घणी।
जीवण पषइ जमारउ जाइ, भावइ दुष जै मेळउ थाय॥
सषी नयण तव नीद्रइँ घुळइ, मारूतणी आँषि नवि मिळइ।
मध्यराति वउळी जेतळइ, ऊमादे चिंतइ तेतळइ॥
किणि कारणि मारवणी आज, घरे न आवइ केणइ काजि।
वोलावण करि जे ते तिहाँ, माता आवी मारू जिहाँ॥
माता छानी ऊभी रहइ, सषी प्रतइ मारवणी कहइ।
मुझनइ नींद्र न आवइ आज, विरह वियापी मूँकइ लाज॥
कुझडियाँ मिळि दूहा कहइ, माता साँभळि छाँनी रहइ।
वार वार प्रीतम संभरइ, करि विलाप नै आँसू झरइ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५१, ५५, ५६ और ५४ नंबर के दूहे हैं।]

प्रीतम तणा सँदेसडा मारुवणी कहियाह।
माता मन माहि लागियो विरह वियाप थयाह॥

[इसके आगे मूल के ७६, ८०, ८१, ८२, और ६६ नंबर के दूहे है।]

चउपई

इणि प्रस्तावे साल्हकुमार, माळवणीसुँ प्रीति अपार।
वे पहरे उन्हाळा तणै, पोढ्यउ छे मंदिर छे आपणे॥
सुषसेजइ माळवणि सँघाति, वैठो करि प्रीति सुष वात।
तिसडइ माता चंपावती, अलगाथी दीठी आवती॥
ते देषी लीजियो कुमार, छानी निद्रा करइ ति वार।
माता आवी ऊभी रही, जाण्यो सुत पोढ्यउ छे सही॥
वहू कन्हा जणाणी इक वार, आरीसउ माँग्यउ तिणि वार।
देता लागी अधिकी वार, आण्यो मन माहे अहँकार॥
सासू वहू प्रतइ ऊचरइ, काँई वडाई एवडी करे।
जो मारवणी अळगी रही, तौ तुँ करे वडाई सही॥
पिंगळराय तणी पदमिनी, अळगी रही वहू मुझ तणी।
तउ तूँ न्याय करइ अहँकार, इम कहि माता गई ति वारि॥

वात सहू ढोलइ साँभली, माळवणी हुई आकुली।
कंत कन्हे मागइ बहुदान, कीजइ एक वातनो दान॥
जे पूगळथी आवइ कोइ, ते पथी नितु मो वसि होइ।
ढोलइ तेह लि कियो पसाउ, माळवणी इम माँडियउ दाउ॥
आडा रषवाळा आपणा, भूमि घणी वइसारया घणा।
पूगळथी आवता मारियो, ते पथी ऊठे राषियो॥
ढोला लगे न आवइ कोइ, मारू तणी निरति नवि होइ।
इणि तेवडि मालवणी रहइ, पूगळ पथि न कोइ वहइ॥
पूगळराय ते जाँणी वात, माळवणो इम पेलइ घात।
भीमसेन प्रोहित आपणउ, मन वेसास तेहनउ घणु॥
ते नेडी पिंगळराय कहइ, नळवरि पथि न कोई वहइ।
ढोलउ तेडावी जइ इहाँ, प्रोहित तुम्हे पधारउ तिहाँ॥
सहु सामहणी प्रोहित करइ, पूगळ माँहि वात विस्तरइ।
प्रोहित ढोला तेडण भणी, एह वात मारुवणी सुणी॥
मारुवणी सुनि वात विमासि, राते आवी माता पासि।
माता जाइ आपने कह्यउ, ये इणि वात मरम नवि लहइ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के १०३ और १०४ नम्बर के दूहे हैं।]

तीयाँने आप्या तुरी, दीया गरथ अपार।
सीष लेई पिंगळ कन्हा आया मारू पासि॥

[इसके आगे मूल के १०६, ११२, ११४, १६८, २०३, २०४, १६, ४२२, १४८, १४७, १४६, १५१, १५४, १४५, १५६, ११५, १३६, १४६ और १५७ नम्बर के दूहे हैं।]

पथि (? थि) पसारया जग भमण कह्या सदेसा भट्ट।
तियाँ देसाँराँ माँणसा कदि हूँ जोवुँ वट्ट॥

[इसके आगे मूल का १०८ नम्बर का दूहा है]

चउपई

सगळाई दूहा सीषव्या, सीष मागि मारग सिरि थया।
पथि वहता पूछइ कोइ, देस अनेरा दाषइ सोइ॥
भाट वेसि ते मारगि वहइ, पूगळ नाम प्रगट नवि लियइ।
गढ नळवरनइ आया घाटि, माळवणी तिहाँ वाँधइ वाट॥

तीए झाल्या मारू जाणि, ततषिण बोल्या बीजी वाणि ।
पॉच दिवस ओळगिया तेइ, भॉट जाणीनइ छॉड्या बेउ ॥
रातइ नळवर गढ आविया, ऊतारा कुभारे किया ।
भाऊ भाट तणइ आवाषि, नॉम ठॉम पूछइ जण पासि ॥
छाना मिळिया भाऊ भणी, वात कही पिंगळराय तणी ।
दीधी भेट वह्या सदेस, म्हे छाना आव्या पषी (थी) वेसि ॥
वळतउ भाट तियॉनइ कहइ, ए परि जउ माळवणी लहइ ।
माळवणी थॉनुं माराविस्यइ, सहि त्रेवडि घेरूँ थाइस्यइ ॥
छाना रहउ प्रजापति घरे, एतउ कहियौ माहरउ करे ।
टाणउ हूँ जिणइ दिने लहेसि, साल्हकुमर तुम्ह भेटावेसि ॥
ते कुँभार तणइ घरि रहइ, वेला मिलण तणी नवि लहइ ।
एक दिवसि माळवणी सही, सषी साथि वनि रमिवा गई ॥
गाईं गीय (त) मधुर स्वर सादि, कोकिल कठि अनोपम नादि ।
जाणइ छत्रीसे राग विचार, ते जउ तेडावउ इक वार ॥
भाऊ भाट ने साल्हकुमार, वेउँ तेडाव्या माँगिणहार ।
सॉझ समइ तेडाया तेह, निरष्या ढोलइ ते नयणेहि ॥
ढोलइ सइमुषि तेडाविया, मान महुत अधिका आपिया ।
मारू दूहा सीषाया जेह, सुसरि कठि आलाप्या तेह ॥
दूहा सगळा तीए कह्या, ढोलइ ते हियडइ संग्रह्या ।
ढोलउ पूछइ भाउ कन्हा, ए दूहा कहिया केहना ॥
कुण ढोलउ, कुण मारू नारि, रूपइ रूडी राजकुमारि ।
वळतउ भाउ तेहनइ कहइ, तू परणी तणी सार नवि लहइ ॥
पिंगळराय तणी कुँमरी, अपछर रूप धरी अवतरी ।
ते उपकंठइ पुष्कर तणइ, परणी ते तइ बालापणइ ॥

दूहा

ए माणस तिणि पाठव्या साल्हकुमर तसु काजि ।
मालवणी हूँ बीहता मइ मेळविया आज ॥
[1]ढोलइ नरवर सेरियॉ घण पूगळ गळियॉह ।

---

१ मूल के १८६ और १६० नंबर के दूहे मिलाओ। मूल का १८६ नंबर का दूहा इस (थ) प्रति में ऊपर भी आ चुका है ।

भीनउ लोट महक्कियउ मारू लोवडियाँह ॥
मारुवणी सइमुषि कह्या दूहा मिसि सदेस ।
मन मारू मेळावा करइ पधारउ उणि देसि ॥
सइमुषि ढोलइ पूछिया मारू तणा वृतति ।
ढोलउ नइ भाऊ विन्दइ वेठारी एकति ॥
भाटे मारुवणी तणे वारू वरण वखाण ।
मारू जिणि निरषी नही जनम तियाँ अप्रमाण ॥
भाऊ ढोलानै कहइ कीजइ सीष पसाउ ।
इयाँरी वात (१ ट) उतावळी जोवे 'पिंगळ राउ ॥
जउ ए मोडा जाविस्यइ मुझ्फ पाखइ सदेस ।
तउ मारुवणी मालती पावकि करइ प्रवेस ॥

चउपई

साल्हकुमरनइ करी जुहार, करइ बीनती मागिणिहार ।
विहुँ मॉसनउ अम्हसुँ बोल, करी आवी तुम्ह पासै ढोल ॥
हिव जउ तूँ तिह आपिसि नही, मारू अगनि प्रवेसै सही ।
मया करीनइ थे महाराज, सीष पसाउ करउ हम आज ॥
वीस तुरी आपिया ब्रहास, फदिया दिया सहस पचास ।
वागा वस्त्र अपूरव वळी, संतोषीया, पूगो मन रळी ॥
भाऊ भाट दियउ तिहाँ साथि, आपि अनर्गळि तेहनइ आथि ।
भला ग्रहणा मारू भणी, मोकळिया प्रीतइ अति घणी ॥
भाऊ भाट नै मागिणहार, सीष मागि चाल्या असवार ।
आहेडा मिसि साल्हकुमार, पहुचावी आव्यो तिणि वार ॥

दूहा

सदेसा सहि सविगता कहियाँ तियाँ सँभाळि ।
माळवणी मनि सकतो सीष देइ ततकाळ ॥
भाऊ भाट, सदेसडउ दिसि सयणाँ कहियाह ।
कीयउ मारू अळनउ, वाहाँ दे मिळियाह ॥
विरॉसिया विरुओ कियउ रषे इम म करेसि ।
ढोलाँ तणाँ सँदेसडा अळगाँ थकाँ कहेसु ॥

सोरठा

अह युं भाजइ एम ढोलउ घण ऊमाहियउ ।
पंष विहुणा एम मन सीचाणउ झडपिस्यइ ॥

[इसके आगे मूल का २०१ नंबर का दूहा है ।]

चउपई

कुमरि चलाव्यो भाउ भाट, मारू मिळिवा तणउ उमाह ।
चिंता करतौ आव्यो घरे, चालण तणी सजाई करे ॥
ढोला मनि अति चिंता घणी, प्रीति घणी मारुवणी तणी ।
आवीनइ पौढ्यउ आवासि, माळवणी आवी प्रिय पासि ॥
दीठउ प्रीतम चित्ति उदासि, माळवणी पूछियौ षवासि ।
कुमर कह्यौ किणि कारणि जीये, दीसइ आज उचटियो हीये ॥
जाणउ तुम्ह सुं कारण केइ, माळवणी सतोषइ सोई ।
वळती कही पवासे वात, भाऊ भाटे खेली घात ॥
पिंगळराय कन्हा आविया, साल्हकुमरि ते तेडाविया ।
पूगळ थळ नै प्रिय भुय घणी, कही सुद्धि मारुवणी तणी ॥
भाऊ भाट नै साल्हकुमार, अळगा तेडी मागिणहार ।
समाचार सुणि मारू तणा, ढोलइ हरष किया अति घणा ॥
सीष देई ते पहुचाविया, भाऊ भाट पणि साथइ दिया ।
घणा गरथ दिया तिणभणी, करइ सजाई हालण तणी ॥
कही पवासे सगळी वात, माळवणी आवी प्रिय पासि ।
हासा मिसी पूछइ विरतत, कॉइ सचींता दीसउ कत ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६, २२५, २३०-२२८ (प्रथम पंक्ति २३० का पूर्वार्ध एव द्वितीय पक्ति २२८ का पूर्वार्ध), २२९, २३२, २३३, २३६, २३८; २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५६, २७०, २६१, २५७, २६३, २५२, २५३; २६२, २७३, २७५ और २७७ नवर के दूहे हैं ।]

चउपई

मालवणीसुं प्रेम अपार, ढीलउ रहियउ मास ने चारि ।
सुदरि नेह त्रिलूधउ सही, तोइ मारुवणी वीसारइ नहीं ॥

इणि अवसरि ते मागिणिहार, सरि सउ भाऊ भाट अपार ।
त्रिणि मास ते मारग वही, पूगलि नयरि पधारया सही ॥
साम्हउ आयउ पिंगळराय, भगति घणी मंडइ बहु भाइ ।
मनवछित ऊतारा दीया, भोजन विगति करावता दीया ॥
समाचार सहि ढोला तणा, वित्तरि ईणइ कहिया घणा ।
ढोलै सीष कही मुझ भणी, कहियो सामहणी आणा तणी ॥
जॉहूं आवुं एणइ ठामि, तॉ थे रहियो पूगळ गामि ।
दीया अहगा माल तणा, हरप थया मनि सगळा घणा ॥
इणि प्रस्तावइ साल्हकुमार, चिंता चालण तणी अपार ।
माळवणी मनि भगतावीयो, तेतळइ दसराहउ आवीयउ ॥
ढोलौ माळवणीनइ कहइ, हिव सब कोई वॉटॉ वहइ ।
हिव वइ हसिनइ द्यौ आदेस, तो पहुँचा मारवणी देसि ॥
माळवणी ए परि सॉभळी, आप हुई विरहाकुळी ।
कंता सॉभळि साल्हकुमार, प्रीतम प्रीय जीवन नर नारि ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के २७६, २८१, ३७०, २८३, ३०४, ३०५, ३०७, ३०८, ३११, ३४३, ३१६, ३२२, ३२३-३१७ (प्रथम पंक्ति ३२३ का पूर्वार्ध एव द्वितीय पक्ति ३१७ उत्तरार्ध), ३१८ और ३२० नंबर के दूहे हैं ।]

[1] करहउ रहइ न वारियउ झळफळ लग्गी काइ ।
जन्हॉं डॉंम दिवारिसी डॉभॉथी मरि जाऊँ ॥
करहा माळवणी कहइ समळि बोल्यो सब्ब ।
तातो लोहड ताहरइ त्रळि लागो ना वद्ध ॥

चउपई

इम करहा समझावी नारि, माळवणी आवी घरि बारि ।
ढोलउ करहउ ऑख्यौ जेथ, कूडइ मनि पग रापइ सोइ ॥
साल्हकुमर मनि चिंता वसी, कहे हव त्रेवडि कीजइ किसी ।
तेडी आवया तिणि लोहार, ऑका दिवगवणने काजि ॥
लेइ लोहड ताता कीया, लोहार हाथे झालीयॉ ।
आवी कहइ माळवणी तिसइ, कोई रपे करहा डॉमित्यइ ॥

---

[1] मूल का ३२१ नंबर का दूहा मिलाओ ।

इणि गामे नर सहु अजाण, जाणइ नही करइ सधाण ।
कारी वीजी सहु परिहरउ, एतउ कहियउ मॉहरउ करउ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ३३३ और ३३५ नंबर के दूहे है ।]

[1]रे ढॉढॉ करि छोहड़ी करइ करहॉरी काणि ।
ऊकरडे डोका चुणे सो आप डँभायो आणि ॥

चउपई

करहउ मूँक्यउ वरग मझारि, प्रिय आग (१गे) इम जपइ नारि ।
जउ हालिवा कीयउ मन परउ, तउ एतउ कहियउ माहरउ करउ ॥
जॉ लगि तेह नइ तूँ प्रिय पासि, तॉ लगि प्रीत म चडे ब्रहासि ।
झाझी निद्रा व्यापइ अंगि, तिणि वेळ प्रिय चड्यउ पवगि ॥
प्री पासे इण परि मागती, पनरह दीह रही जागती ।
झाझी नींद्रे व्यापी नारि, तउ करहउ आणे झेम्यउ बारि ॥
सोनइया पाहौरा साथि, सोवन जडित कम्बडी हाथि ।
सोनारा घूघरडा गळें, पषीनी परि मारगि पुळइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ३४५, ३४८, ३४६, ३६३, ३६८, ३६६, ३७६, ३६२, ३८१, ३८६, ३८७, ३८८, ३८६ और ३६० नम्बर के दूहे हैं ।]

थळ मत्थइ ऊजासडउ जाणे उग्यउ तूर ।
चकवा मनि आणंद हुओ किरण पसारयउ सूर ॥

[इसके आगे मूल के ३६१, ३६२, ३६३, ३७५, ३७७, ३६७ और ३६६ नम्बर के दूहे हैं ।]

चउपई

पूगळ पथइ ढोलउ वहइ, सूडानइ माळवणी कहइ ।
जिम तिम करिहि नइ पाछउ वाळि, पषी ए पडिवन्नउ पाळि ॥
तव आकासि सूअउ ऊडियो, पहरि एक चदेरी गयउ ।
ढोलउ सरवरि दॉतणि करइ, सूडो जाए इम ऊचरइ ॥

---

[1]मूल का ३३६ नंबर का दूहा मिलाओ ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ४०२, ४०६ और ४०८ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

सूडौ तिहाँथी पाछउ वळै, आवे माळवणीनइ मिळै ।
ढोला तणी वात सहि कही, माळीवणी अणबोली रही ॥
सरवरथी टोलौ ऊतरे, करह पंपि जिम पगला भरे ।
चंदेरी वहुटे आवीयो, तिसइ वणिक इक बोलावियो ॥
कुण परदेसी जाइसि किहाँ, माहरइ काम अछे इक तिहाँ ।
ढोलउ तउ राष्यउ नवि रहे, विवहारियो ति वारइ कहइ ॥
जो कागळ माहरउ ले जाइ, आपाँ सोना माँगउ दाइ ।
जोयण वीस अछइ ते गाम, मुझ कागळ आयउ तिणि ठामि ॥
ढोलउ तेहनइ कहइ ति वारि, ऊमा रहण तणी नही वार ।
विवहारियउ करे वेसास, तूँ सापुरिस, म मूँकि निरास ॥
ढोलउ कहइ, हो व्यवहारिया, जो कारिज जोवे सारिया ।
ऊठ तणइ पूठइ थिर थापि, कागळ लिखिनइ मुझनइ आपि ॥
ऊभे ऊठि चडे ते साह, कागळ लिखण तणी तसु आहि ।
ढोलउ करह चलावइ सुषइँ, ऊपरि वइठउ कागळ लिखइ ॥
कागळ लिखिनइ पूरा कीया, तिसइ तेह गामइ आविया ।
साह उतारी पूछइ कोइ, एह ज गाम सही ते होइ ॥
विवहारिया असंभम वात, जाँणी तास फिरी तन धात ।
एती वेळा किम आवियो, हियडउ फूटि हस ऊडियौ ॥
ढोलउ पुष्कर सरवर तीरि, ततषिण करहउ पावियो नीर ।
कुण सरवर, नर इक पूछियो, तिणि पुष्कर तीरथ दाषियो ॥
ढोलउ कहइ सरोवर थंभि, आषर लिष्या पुरष दाषति ।
तिये साथि थई देषियो, परण्या ते नामउ वाँचियउ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ४२६, ४२७, ४३२ और ४२८ नंबर के दूहे है ।]

जहाँ चीना कर कुँवळा नीळी लूँव लहक्क ।
ते जो वन लघन करे मरे न चरही अक्क ॥

[इसके आगे मूल का ४२४ नंबर का दूहा है ।]

पिंगळ राजा रूसव्यौ, चारण कोई चाड।
साल्हकुमर तिणि ओलष्यो, तव बोलावियो माड॥

[इसके आगे मूल के ४४२ और ४४४ नंबर के दूहे हैं।]

एक ज चारण पथि सिरि, जोई करहा वट्ट।
ढोलउ चलतउ देषि करि, तिणि मनि थयउ उचट्ट॥

चउपई

साल्हकुमर सुभ वचन जु सुणउ, ए चारण ऊमरराय तणउ।
मारू ते मॉगण आवियो, पिंगळ ते देसा काढियो॥
ऊमर मारवणीनइ काज, घणा दुष देषइ महाराज।
पिंगळराय न करइ नातरउ, मोटॉनइ न पडइ पॉतरउ॥
ढोला तुझ अवाज सु सुणी, कुॅमरी मूॅक्यो हूॅ तुझ भणी।
जउ मारू अवगुण सॉभळौ (?ळै), तौ किम ढोलो पाछउ वळै॥
ढोला सॉभळि माहरी वात, ऊमर षेलेस्यइ घणी घात।
मारवणीसुॅ लागो मोह, तुझसुॅ घणी माडिस्यइ द्रोह॥

[इसके आगे मूल का ४५० नंबर का दूहा है।]

चउपई

तिणि वातइ सभळि गहगह्यो, ढोलउ पूगळि वाटइ वहइ।
बारहट्ट पिंगळराय तणो, गामि एक आव्यउ प्राहुणउ॥
तिणि ढोलउ दीठउ महाराज, माटे आवि कीयो सुभराज।
ऊठ षॉचिनइ ऊभो रह्यो, पिंगळरा सदेसा कहइ॥
समाचार मारवणी तणा, कहिया हरष थया अति घणा।
भाऊभाट ने मॉगिणहार, आवा जउ छइ साल्हकुमार॥

दूहा

जउ तइ दिठी मारुइ, को सहिनाण प्रगट्ट।
गळि षोलाह रूपको, सो भाषो सोवन्न॥

[इसके आगे मूल के ४७३ और ४५९ नंबर के दूहे हैं।]

उर जु गयवर पग घणु, दाडिम दंत सुतेज।
कुभी भावस (?) गोरियॉ, षजन जेहा नेत्र॥
सदा उलक्की नक्कि सळि, भीणी लक मझाह।
दड सुत्ता सप्प जि, षजी कढे साह॥

[इसके आगे मूल के ४७४, ४६८, ४८४, ४८५ और ४७५ नंबर के दूहे हैं।]

[1]डीभू लंक, मराळ गति, पिक सर जेही भक्ख ।
ढोला, एही मारुई, चाही लागे चक्ख ।।

[इसके आगे मूल के ४६०, ४७०, ४८२, ४६५, ४७१ और ४८७ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

जेता दूहा चारण कह्या, सोनईया तेता तिणि लह्या ।
चारण ते तिणि थान कि राह्यउ, ढोलउ पूगळि वाटइ वह्यउ ।।
थाकउ करहउ आळस करइ, भारी भुंइ पग माठा भरइ ।
थळ मोटा तिणि सुसतउ वहइ, ढोला त करहानइ कहइ ।।

दूहा

[इसके आगे मूल के ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६७, ४६८, ५००, ५२१ और ५२२ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

जिणि दिन ढोलउ वाटइ वहइ, तिणि दिन मारू सहिणउ लहइ ।
मिलियो प्रीतम नींद्र मँझारि, माता आगळि कहइ विचार ।।

दूहा

[इसके आगे मूल का ५०६ नंबर का दूहा है ।]

सारति सद्दारेह, भूषउ माँस पत्राखियाँ ।
अडियो अत्रारेह, जाणे ढोलउ आवियौ ।।
[2]सुरहि सुंगधी वाट, जाणे फिर मोती जड्या ।
सूती माझिम रात्रि, जाणे ढोलौ आवियौ ।।

[इसके आगे मूल के ५१२ और ५१३ नबर के दूहे हैं ।]

चउपई

इणि परि सुहिणउ लाधउ राति, मातानइ कहियो परभाति ।
कही विचार सषी ए सही, ढोलउ तेउ पधारइ वही ।।
मारू तिणि दिन हरप अपार, साथइँ सषी तेणि परिवार ।
समी साँझनी वेळा थई, कूआ कठइँ रमिवा गई ।।

---

[1] मूल के ४६० और ४५८ नंबर के दूहे मिलाओ ।

[2] मूल के ५०५ और ५०७ नंबर के दूहे मिलाओ ।

डावउ नेत्र फरूक्यउ तिसइ, सहियर आगइ कहिनइ हसइ।
मनि सतोष चींति उल्हसइ, आज सखी प्रिय मेळउ हुस्यइ॥
तिणि वेळा आणद उल्हासि, आव्यो ढोलउ पूगळ पासि।
मालइ बइठा हाळी रहइ, ढोलउ तिणि थळि पूठइ वहइ॥
थाकउ करह क्रहूका करइ, थळ भारी पग माठा भरइ।
नवउ क्रहूको सुणि गहगहइ, हाळी नारी प्रति इम कहइ॥

दूहा

केहउ करहउ क्रहूकियउ, झाझा मझि वणाइ।
ढोलइ ते कवावियो, ऊमाहियो घणाइ॥

चउपई

कोहरि कोळाहळ वहु सुणी, ढोलउ आयो पाणी भणी।
सगळे तिणि साम्हौ जोईयो, आणि अवाहि करहो ढोइयौ॥
कोउ लखे नही तिणी वार, मारू ऊभी कूपदुवारि।
करहउ कूवइ पीवइ अंब, किणे अजाणे वाही कब॥
लागी कब करह कूदियउ, रयबारी सधीगौ कीयउ।
मारू ढोलइ परणी जेथ, सरही दीकर मेल्हाण तेथ॥
सही ए साल्हकुवर तेहनउ, दीसइ तेज रूप एहनउ।
ढोलउ हूंतउ आवणहार, उभे लोके कियो जुहार॥

दूहा

जिणि काँबे परहो कियौ, तिणि तो करह म मार।
कंब चडका ते सहइ, अवराँ लहइ गमार॥

[इसके आगे मूल का ५२३ नबर का दूहा है।]

ढॉचे पाणी झाडि घर, संबळ सुरहि घणेहि।
साइ सकोडी मारवी, ऊचळि गई वणेहि॥
कामिणि मारू कारणे, नळवर छड्यउ राज।
सुधण सुहावी हूं कहूं, मूंध न मिळिस्यइ आज॥

[इसके आगे मूल के ५२४ और ३२५ नबर के दूहे हैं।]

जिणि कारणि थळ लंघिया, तीयाॅ चित्त न कोइ।
साजण केहा कूव सरि, करहउ त्रिसियउ होइ॥
करहा पाणी षचि पीउ, जउ ढोलाकउ होइ।
जउ म्हे जाणत वालहउ, करह न मारत कोइ॥

चउपई

सहियर ढोलउ हसिनइ कहइ, ढोला मारवणी किम लहइ ।
जउ साचउ वालहउ सुजाण, तउ मारवणी कहि अहिनाण ॥

दूहा

सव्वे लोवडियाळियाँ, न जाणु धण काइ ।
उजल दती मारुवी, लसण सु डावइ पाइ ॥
सव्वे लोवडवाळियाँ, सव्वाँ ही गळि हार ।
एकणि मारू वाहिरा, सव्वाँ साथि जुहार ॥

चउपई

कूवा कठइ सहु परिवार, सगळाँ मनि आणद अपार ।
मारुवणी तिहाँ घूँघट करी, सहियर झूल माहि संचरी ॥
सेवक एक वधावा भणी, मेल्ह्यो पिंगळ नयरी भणी ।
ढोल पधार्‌यउ कूवा कठि, पिंगळ मनि अधिक उतकठ ॥
राजा प्रजा सहू हरपिया, हयवर एक वधाई दिया ।
साम्हो चड्यउ घणइ मडाणि, ढोला मिलण तणइ परियाण ॥
माथइ मेघाडवर छत्र, वाजइ पच सवद वाजित्र ।
कूवा कंठइ राय परिवार, मिलि ढोलानइ कीयो जुहार ॥
समाचार नळराजा तणा, पिंगळ राजा पूछ्या घणा ।
ढोलउ राजा साथइ करी, घरे पधार्‌या आणँद धरी ॥
सुरहा तेल तणा मालिणा, अघोलइ सीतल वीजणा ।
ऊगटि चदन केसर घोळ, किरइयु भोजन रगि तँबोल ॥
हरपित थयो सहु परिवार, साँझइ कीजइ सहू सिणगार ।
सोळ सिंगार सझइ मारुई, जाणे परतषि अपछर हुई ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ५३५ नबर का दूहा है]

[1]ते साजण पावधरिया, जे जोवती वाट ।
ते साजण नयणे देषिया, मनि हूओ उच्छाह ॥
तनि सिंगारइ मारुई, सिंगारयउ सहू साथ ।
अंगइ चदन महमहइ, वीडउ सोहइ हाथि ॥

---

[1] मूल का ५४१ नंबर का दूहा मिलाओ ।

सषी[1] वउळावी घरि गई, प्रिय मिलियो एकंति।
हसताँ ढोलउ चमकियो, वीजुळि षिवइ जु दंत॥

चउपई

मारुवणी ढोलउ मनि रँगि, प्रातइँ सुषि वैठा पल्यंकि।
प्रेमि प्रसगे वार्तां करइ, अवळा प्रति ढोलउ इम कहइ॥
मारवणी तुझ माँगिणहार, आव्या नळवर गढ जिणि वार।
लाधी निरति पछइ तुझ तणी, ऊमाहो हूओ तुझ भणी॥
एह गुनह षमियो माहरउ, मय वियोग कीयो ताहरउ।
निरति पषइ कुण जाणइ लोइ, अणजाण्याँ नर दोस न होइ॥
मावीत्रे पहिलउ वीवाह, वाळपणइ कीधउ उच्छाह।
हूँ परणयउ जाणु ही नही, तेह वात सहु वीसरि गई॥
मइ माळवणी परिणी नारि, तिणिसु वाधी प्रीति अपार।
परण्या पछइ निरति तुझ लही, पाछइ परवसि रहियो सही॥
पहिलइ भवे पाप मइ किया, तउ तुझ विन एता दिन गया।
सयमुषि करता करइ वषाण, जीवित जनम आज परियाण॥
ढोला प्रति मारूवी नवइ, स्वामी, मेळउ सिरज्यउ हुवइ।
तुम्हे परणि पहुता नळवरइँ, पूगळ अम्हे आविया उरइ॥
अतर विचि हूयउ अति घणउ, सदेस्यउ नाव्यौ तुम तणौ।
हूँ आवी जोवन वइ देह, सतावइ मुझ काम ज देह॥
जोई तुम्ह माणसरी वाट, मूँक्या वाँभण पथी भाट।
वळतउ कोई आव नहीं, घड़ी चीत मावीत्रे हुई॥
तिणि वेळा ऊमर सूमरउ, मुझ परणिवा कियउ मन षरउ।
मूक्या पिंगळनइ परधान, आवइ घणा करइ केकाण॥
कहियउ तुम्हे माहरउ करउ, मारू मुझ कीजउ नातरउ।
आपुं तउ हूँ आधौ राज, इणि परि घणा कीया आगाज॥
कूडी वात तुम्हारी घणी, फोकट ऊडावी मुझ भणी।
मात पिता मुझने पूछियो, वळतउ मइँ ऊतर आपियो॥
इणि भवि मुझ ढोलउ भरतार; प्रीतम जीवन-प्राण-अधार।
एह वातनउ निश्चय करूं, वीजउ वीजइ भवि आदरुं॥

---

[1] मूल का ५४२ नंबर का दूहा मिलाओ।

ऊँमर आजी लगी ते पपइ, रयणि दिवसि जोगी ज्यउँ जपइ ।
एह वात मारवणी कही, ढोलउ मनि सतोष्यो सही ॥
भाऊ भाट तणी मनि वात, ढोला तणी वसी मनि घात ।
मागणहारउ दूहउ कहियउ, तिणि ढोलइ दूहइ चिंति रह्यउ ॥
कणयर कत्र जिसी पातळी, प्रिय वियोग पीणी पातळी ।
दीसइ छइ अति सुदर देह, ढोलारइ मनि पड्यउ संदेह ॥

दूहा

'पही भमतउ जो मिलइ, तउ तूँ आपे वत्त ।
घण कणयररी कत्र यु, सूकी तोय सुरत्त' ॥

चउपई

ढोलउ ते दूहउ ऊचरइ, मारुवणी मनि सका करइ ।
प्रीतम तुझ सरिपा मनि वहइ, ढोलउ मारू प्रति इम कहइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५४६, ५४७, ५४८, ५४६ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

ढोला मनि अति आणँद घणा, वचन सुण्या चतुराई तणा ।
मारू बोलती मुष सास, कमल भमर कसतूरी वास ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५५२, ५५७, ५५१, ५५५, ५२८, ५६३ और ५५४ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

भोजन नित नित नवला करइ, अधिकी भगति जुगति आदरइ ।
मारवणी मनि भावई परइ, पनरह दीह रह्यउ सासरइ ॥
भाऊ भाट कन्हइ नितु रहइ, एक दिवस ढोलउ इम कहइ ।
करउ सजाई चालण तणी, जिम पहुचाँ नळवरगढ भणी ॥
भाऊ भाट कहिउ अति घणउ, कीजइ मारुवणी अउझणइ ।
पिंगळ राय सजाई करइ, ऊमादे इण परि ऊचरइ ॥
सोवन रतन जडित सिणगार, पट्टकूळ मुगताफळ हार ।
सोळ सिगार सुंदर सुपवेस, ए सगळा, प्रिय, हूँ आपेसि ॥
अरथ गरथ करह केकाण, पाग पयग सुद्ध खुरसाण ।
ए सगळउ ही पिंगल तणउ, माँड्यउ समहूरति उँझणउ ॥

तिणि वेळा ऊमर-सूमरउ, इणि वेळा जो षळ सूमरउ ।
मारगि सिरि ढोलउ मारेसि, मारवणी घरिवास करेसि ॥
इसउ आळोच करइ सूमरउ, नगर पासि भमइ एकलउ ।
देस पूगळ नगरी भमइ, ढोलउ मारू रगइ रमई ॥
जिणि वेळा ढोलउ नीकळइ, केता वउळावा साथइ करइ ।
सोझ करेवउ इणे वातरउ, पडिस्यइ रषे तुम्हाँ पाँतरउ ॥
तो हूँ ऊमर साचउ राय, इणि वेळा जउ खेलउँ दाउ ।
च्यारि पहुर मारगि लागिस्यइ, साँझ समय नळवर जाइस्यइ ॥
मास एक रह्यउ सासरइ, चालण तणी सजाई करइ ।
सहू अउझवणउ साथइ करी, माँगे सीप हरष मनि धरी ॥
सगा सणीजा एकणि षगि, मारू मोकळिवी मनि रगि ।
प्रस्थानौ समहूरति कियउ, पिंगळ पहुचावा आवियो ॥
साथइ सउ कीया असवार, कीयउ हलाणउ मगळचार ।
सबळ सीरावण सहु करी, मुकळावइ ऊमा देवडी ॥
सपरिवार मिल्या सहु कोइ, करहउ वले पलाणयउ सोइ ।
पूगळ नयरीहूँ चालिया, मात पिता सहु मुकळाविया ॥
जोयण च्यारि इक दिन वह्या, थाकउ साथ, थळ माथइ रह्या ।
असवारे ऊनारा कीया, भोजन परिघळ भुगताविया ॥
साँझ पडी आथमियो सूर, करइ साथरा बिछावणा भूर ।
ढोला पाषिलि चउकी फिरइ, मारू स्रीसु निद्रा करइ ॥
घणी वार जागी धण कत, निद्रा भरि पउढ्या निश्चंत ।
तिणि भुइँ फिरतउ आयो नाग, आयो ढोला तणइ अभागि ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८ और ६१० नम्बर के दूहे हैं ।]

चउपई

वोलावे मन विलषा किया, देवसूत्र एहवा थया ।
वार ढोलउ करइ वेषास, वळि वळि जोवइ मारू-सास ॥
सहि साथी समझावइ घणु, वीनती एक अम्हारी सुणउ ।
पिंगलरायनी राजकुमारि, चंपावती मारू अणुहारि ॥
ढो० मा० दू० ३२ (११००–६२)

मारू त्रिहुं वरसॉं ऑंतरउ, आवो व्यउॅं कीजइ नातरउ ।
आपॉं सगपण उमउ रहइ, वळतउ ढोलउ नॉंह प्रति कहइ ॥
इण भवि मारवणी मुझ नारि, सइहथि दीधी सिरजनहार ।
माइ जो परमेसर सग्रही, मुझ मरणउ इण साथइ सही ॥
पनरह वरस विछोहउ हूयो, धणइ कष्टि मेळावउ थयउ ।
वळ विछोही जउ करतारि, तउ इण भवि मुझ एह ज नारि ॥
वउळाग्रो प्रति ढोलउ कहइ, ए दुख जीवेनइ कुण सहइ ।
एह र वरत्यउ जोडउ हाथि, पइसिसि पावक मारू साथि ॥
वउळावू सगळा विलविलइ, ढोलउ किउढी पाछउ वळइ ।
साथी मारू दाराण मर्णी, घणुं कहइ पणि न रहइ धणी ॥
पपी पर्पा सहि फीका थया, वउळाउ सहि पूगळनइ वळ्या ।
ढोलउ मारू दीआघरी, रहिया छे थळ माथइ करी ॥
सॉंझ थई आथमणी वार, ऊनारथा मारू सिणगार ।
करहउ आगो वइसारियउ, सगळे अहणे सिणगारियउ ॥
हारडोर पूठइ बंधिया, सवळ माग सीवे सधिया ।
करहा, मुझ वात न तूं सुणे, नळवर गढि जाए घर-भणी ॥
सजे समूझे साल्हकुमार, वदठा विह माहे तिण वार ।
अगनि लगाडी दीआवरी, करहा-तणी डोरि सॉंमरी ॥
मत करइउॅं कटाळइ झाडि, चरतो विलगो रहिस्ये डालि ।
ने देर्घा करहउ आरडइ, रंखि जाणि दुपियो नर रडइ ॥
उणि वेळा कोई जोगींद्र, आवउ तिहॉं करतउ आणंद ।
मत्र जत्र जाणइ अति घणा, ओषध नागा पीणा-तणा ॥
तिणि साथइं सुदरि जोगिर्णा, सजोगिणी मारवणी-तणी ।
ते रमता आव्या तिणि थानि, ढोलउ ओळपियो सहिनाणि ॥
जोगी ढोला प्रति इम कहइ, कॉंइ रे काइर फोकट मरइ ।
प्री पूठइॅं अस्त्री परजळइ, पणि नारी पूठि पुरुष नवि वळइ ॥
आ ते मॉंडी अउॅली रीति, वात न वेइसइ ढोला चीति ।
ढोलउ कहइ, आयस, सुणि वात, कीजइ नहीं पराई ताति ॥
जोगिणि जोगी प्रति इम कहइ, आपॉं प्रीति ज अविहड रहे ।
जे तूं जीवाडइ ए नारि, वालॅभ ए वीनती अवधारि ॥
जइ ए त्री जीवाडिसि नही, तउ हुं प्राण तजेस्युं सही ।
पासइ ओषध पीणा तणा, मंत्र जत्र तुझ पासइ घणा ॥

जोगणि इठइ मनावी वात, श्रोषध गोभ्री वाटी सात।
पाणी सरिस वलेपन किया, पाणी विण ऊतरि नवि गया॥
पाणी पयउ गुणनइ मंत्र, वळी अनेरा कीया तंत्र।
मारवणी तिहाँ साजी थई, जोगिणि मनि हरषी गहगही॥
ढोलउ आणंदियउ अपार; जोगिणि दीधउ नवसर हार।
जोगीनई सोवन साँकळा, पहिराया अति ऊतावळा॥
जोगिणि जोगी वहता वाट, ढोला तणउ भागउ उचाट।
मारू मनि विमणो उछरग, साचइ छइ मइ प्रियस्यु रग॥
ढोलइ तेडी दीवाधरी, वात आ ज पूगळ विस्तरी।
सगलाँनइ मनि छइ बहु सोग, ढोला मारू तणउ वियोग॥
तूँ हिव पूगळ भणी पधारि, मारू जीवी मत्र अधारि।
ते आव्या दीठो विरतत, मारवणी धण ढोला कत॥
तिणिसु मुकि दीवाधरी, आवी पूगळि आणँद करी।
पिंगळ राय वयण अवधारि, जीवी मारू राजकुमारि॥
तेड़ाया ते वभण राय, ते बोलइ सुणि पिंगळ राय।
मारवणी प्री ढोलउ नाह, म्हे दीठा अति घणइ उच्छाहि॥
नगर माँहि वाजइ नीसाण, घणा महोछव घणा मँडाण।
तळिया तोरण वदरमाळ, गावइ गीइ मधुर सुर बाळ॥
लोक सहू मनि हरषि थया, दुख दोहग दुरइ टळि गया।
पूगळ माहि वधावा घणा, हिव ऊमर करइ सा परि सुणउ॥
हेरू पूगळ ऊमर तणा, नित छाना रहता अति घणा।
ढोलउ जिणि दिनि हालणहार, साथइ दीठा सो असवार॥
हेरू जाइ ऊमरनइ कहइ, ढोलउ एकणि ऊठइ वहइ।
जावइ छइ लीधइ अउभणइ, प्राण नहीं......आपणौ॥
मारू तणउ मरण साँभळी, वउळाऊ आव्या सहि वळी।
हेरू जाइनै ऊमर कहै, पुणि मारवणी कुण दुष सहइ॥
त्रीजा हेरू आव्या राति, मारवणी जीवी ए वात।
ढोलउ लियै जाइ एकलो, हिव धाडउ कीजइ तउ भलउ॥
मनि हरष्यउ ऊमर सूमरउ, मारू षँति मन कीयो षरउ।
सुभट सहु नै साथइ करी, ऊमर चढियो आणँद धरी॥
तिणि थळि रातइ ढोलउ रह्यउ, ऊमर तिणि थळि पूठइ वह्या।
आगळि जाइ विषमा घाट, ऊमर षेलि सिरि वधी वाट॥

ढोलउ मारगि करहउ चल्यो, आडो एक विषम थळ अव्यो।
कोई एक थल आडो फिरइ, मारू देषी इम ऊचरइ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ६२७ नंबर का दूहा है।]

चउपई

मारगि वहतॉ मॉझी वाग, ऊतरिया दीठा असवार।
ऊमर ढोलउ जाणइ नहीं, ढोलउ आवि मराणउ सही॥
ऊमर मन महे हरषियो, जिम ढोलो नयणे निरषियउ।
अणबोला रहियो सहु कोइ, जिम ढोलउ वेमासै होइ॥
सगळ मनइ विमासी वात, वारू आइ जुडी छइ घात।
ढोलउ तिनरउ आडो वहइ, ऊमर ऊठीनइ इम कहइ॥
कॉइ, ठकुराळा, आडउ वहइ, आवउ इहा जु वइसी रहइ।
म्हे पणि जाल्यॉ आपणि काजि, जायो तुम्हे तुम्हारइ ठामि॥
ऊमर मनि मारवणी मोह, ढोला उपरि मॉड्यउ द्रोह।
कूडइ मनि आदर थइ घणु, करइ उपषी ढोला तणउ॥
आदर दई आडा फिरया, करहउ देषीनइ ऊतरया।
मुहगी झाली मारू हाथि, कूल्यो करह पटोळी साथि॥
सहु को वइठा एकणि पति, आगइ डूंब बजावइ तंति।
गावइ गायण मधुरइ सादि, मारवणी लीणी तिणि नादि॥
साथइ झाझा मद अयराक, मने द्रोहनइ पाई छाक।
ढोलउ अति परिघळ मद पीयइ, बीना आछी छाका व्हइ॥
ऊमर छाक्यउ मुहडइ करइ, ते डूमणी सहू परि लहइ।
ढोला नइ मारवणी तणी, पीहररी साथइ डूँमणी॥
छाक्या सगळा वहकल करइ, मारूँवणी लेवा मनि धरइ।
तिणि वेळॉ गावतॉ डूँमणी, कगी सॉमि मारवणी भणी॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६३०, ६३१ और ६३२ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

दूहउ मारवणी सॉंमळ्यौ, पइठी, फोक चित्त झळपळ्यौ।
आकुळ व्याकुळ चीता करइ, डूमणी वळी ऊचरइ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३३ नंबर का दूहा है ।]

चउपई

मारवणी मनि चिंता घणी, करहा भणी काँब तिणि हणी ।
करहउ ना ?ना) ठउ अळगउ जाइ, ते झालण वीजउ ऊ जाइ ॥
जउ आपण पहुचे घर धणी. इणि करहा झालेवा भणी ।
तउ करहउ आणेस्यइ सही, को वीजउ झालेस्यइ नहीं ॥
सहि ठकुराळा ऊभा रहउ, ढोलानइ ऊमर इम कहइ ।
करहउ झाली आणउ उरहउ, रखे अळगउ जायेस्यइ परहउ ॥
ढोले जाई झाल्यउ हाथ, मारवणी पुणि आई साथि ।
करहउ झेकी ऊभउ रह (इ), मारवणी ढोलानइ कहइ ॥
कंता, ए ऊमर सूमरउ, तुझ मारिवा मन कीयउ षरउ ।
गीत माँहि कहियउ डूंमणी, मद पावे तो मारण भणी ॥
स्वामी, सभळि माहरी वात, पहुर एक वउळी छइ राति ।
चालँभ, हिव तूँ म करि विलंब, करहइ चड्यउ व जोडउ कब ॥
ढोला तणइ वात मनि वसी, करहउ पलाण्यउ कसणउ कसी ।
चड्यउ ढोलउ पागडा समारि, पूठइ चडी मारुई नारि ॥
छोडी नहीं कूटि वीसरी, करह चहूक्यउ काँवे करी ।
ए वन वेगि पषी जिम वहइ, ऊमर देषीनइ इम कहइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६३९ और ६४० नम्बर के दूहे हैं ।]

चउपई

ऊमर अति ऊतावळि करे, पयँग सूधा पाषरइ ।
आपण चढियो ढोला केडि, वहताँ पडिया ऊजड वेडि ॥
ढोलानइ आपडइ जि कोइ, अधराजियो हमारो होई ।
के मारइ, कइ आडउ फिरइ, ते वेटी माहरइ वरइ ॥
ऊमर अति आरहडा षडइ, तउ ढोलउ किम ही नापडइ ।
पषीनी परि ऊड्यउ जाइ, करहउ मिळियो वाउवाइ ॥
आरहडा त्रिहुँ दीहाँ लगइँ, षडिया तोइ न आपडि सकइ ।
तउ ही तुरी पुलाई जाइ, अळगा पथी देषी थाइ ॥

ढोलइ कूँख्यइ करहइ चडिउ, ऊमर तोही नवि आपड्यउ ।
मारवणी मनि चिंता करइ, माहरा पग रपे प्रिय मरइ ॥
ढोलउ पूछइ, काँइ घण रुई, किणि कारणि मनि विलपी थई ।
स्वामी, हयवर ऊमर तणा, ताजी तरळ तुरकी घणा ॥
करहउ मति पथइ थाकिस्यइ, तउ कळक मुझनइ लागिस्यइ ।
कहिस्यइ मारवणीकइ काजि, ऊमरि साल्ह विणास्यउ आज ॥
वळतउ ढोलउ धणनइ कहइ, करह निरति मूँध नवि लहइ ।
मारगि पूगळि आघोफरे, एकणि पुहरे पुहकर परइ ॥
मिलियो मुझ इक व्यवहारियो, मइँ तेहनो एक कारज सारियो ।
जोयण वीस ऊठि चाडियो, लिपियो कागळ ऊतारियो ॥
कागळ लिपतॉ जोई वार, जोयण वीस लॅव्या तिणि वार ।
चिंता म करि मूंध मन माहि, एक दिवस मुझ पहुचण आहि ॥
इणइ अवसरइ विहाणी राति, ऊग्यउ सूर हूवउ परभात ।
चारण इक आयो तिण वार, साम्हउ जोई कियो जुहार ॥
सभळि राउत, चारण कहइ, करहउ कूँटियउ दोहग्उ वहइ ।
केहो अवगुण करहय कियो, ऊपरि भार पाउ कूटियउ ॥
एह वात ढोले साँभळी, विलपउ थयो विमासइ वळी ।
मुझ वराँसउ मोटउ पड्यउ, कुहॅट न छोडी ऊपरि चड्यउ ॥
कट्टारीहूँ काढी करी, वाग्हट्ट ने टीधी छुरी ।
कढिहूँ वाढि पटोळी भणी, तेह ज दीधी चारण भणी ॥
ढोलउ चारण प्रति इम कहइ, आवे कटक पथ इणि वहइ ।
माँझी छइ ऊमर सूमरउ, परे पयाणे पेडइ परउ ॥
तेहनइ छुरी तणउ अहिनाण, पट्टोली कापी सहिनाण ।
एह दिषाड़ीनइ इम कहे, हिवइ रपे ऊतावलि वहइ ॥
दूहउ एक कहे माहरउ, अरडइ मिलइ ऊमर सूमरउ ।
ढोलइ मुइ लघी अति घणी, कही वात छइ उमर भणी ॥

दूहा

गहिरावत वावळा, छुरीं न मारि न मारि ।
जे न मुया घर ग्रंगणइ, ते क्यों मरिस्यइ वारि ॥
कुहॅटे करहे लघिया, जे थळ हुता डुंग ।

* ऊमर आगइ इम कहे, मा मारियो तुरंग ॥
पंथी, एक सँदेसडउ ऊमर कहे सुलभ।
करहा से थल लंघिया, जे थळ हुता दुलभ ॥

[इसके आगे मूल का ६४८ नम्बर का दूहा है]

चउपई

तिहाँ ढोलउ आघौ सचरइ, भागउ मनि आणद धरइ ।
चारण तेणइ मारगि पुळइ, त्रीजइ दिनि ऊमर ते मिळइ ॥
ऊँमर षडइ ऊतावळा, करइ ति हलहल अति आकुळा ।
पूछइ वार्ता मारगतणी, गढवी कहोउ निरति अम्ह-भणी ॥
अम्ह आगळि ऊठी इक वहइ, अम्ह उणि विचि मुइ केती रहइ ।
चारण कहि सुणि ऊमर राय, फोकट हयवर मारउ कॉइ ॥
ऊठी तुम्हि विहुँ दिनि ऑतरउ, लोलै करह जाइ सॉभरो ।
कुँहटे करहे थळ लंघिया, छुरी पटोळी मुझनइ दीया ॥
ते पहुता नळवरगढ भणी, तिणि साथइ नारी पदमिनी ।
हूँ अ(? ओ) लपूँ न मरम नवि लहूँ, दुहो एक सदेसउ कहूँ ॥
ऊमर सुहडउ विलषउ थयो, ते सहिनाण नयण निरषीयो ।
मारगि मूँक्या वीस व्रहास, चारण वयणे थयो निरास ॥
तिणिहिज मारगि पाछउ वळइ, षीजे चिंत्ति, हीयउ कळकळइ।
वळिनइ आव्यो आपणि गामि, ढेस विदेस गमाडी माम ॥
ऊमर आयो पाछउ वळी, वात सहू पूगळि सॉभळी ।
कुसल पेम मारवणी नारि, पहुता नळवरि साल्हकुमार ॥
तीजइ दिनि नळवर गढि गया, वाडी माहि ऊतारा कीया ।
राजा, सुत आव्यउ, सॉभळी, साम्हउ आव्यउ नळवर गळी भणी ॥
पइसारउ सेमूहरति करइ, जय जयकार भट्ट ऊचरइ ।
सिणगाख्या मइगळ मदमत्त, ढोलउ मारवणी सजुत्त ॥
मारवणीसु वाध्यउ नेह, प्रमदा प्रीतम अधिक सनेह ।
पच सवद वाजइ वाजित्र, ढाळइ चामर सिरिवर छत्र ॥
धवळ मॅगळ सूहव धुनि करइ, वारू विप्र वेद ऊचरइ ।
मोटउ घणु करी मंडाण, पइसारउ चढियो परमाण ॥
सात भूमि मदिर उत्तु गि, मारवणी वासी मन रगि ।

---

* मूल का ६४७ नंबर का दूहा मिलाओ ।

दासी तास पचसइ पासि, मारू मनि अति पूगी आस ॥
पणि ससुरानइ कियो प्रणाम, तिहाँ दीया मोटा सउ ग्राम ।
सासू प्रणामी कियो जुहार, दीया सहि सोवन सिणगार ॥
हिव पूगळहूँती ऊमणाउ, भाउ भाट ले आव्यउ वणाउ ।
साथइ वणा करइ केकाण, सेन सुपासण नइ मडाण ॥
पिंगळ राजा साथ थई, सीम लगइ वउळाव्या सही ।
सउ असवार साथइ तिणि दीया, कुशलखेम नळवरि आविया ॥
तिहाँ सगळउ माँडियउ अउमणउ, संतोषियउ परियण आपणउ ।
लाग हुता सहि विवणा दिया, इम सोभाग मारवणी लिया ॥
ढोलइ राइ मारूसउँ प्रीति, चतुरपणइ लागउ प्रिय चित्ति ।
दिनि दिनि अधिका करइ पसाउ, विसतरियउ मारू जस वाय ॥
मारवणी माळवणी विन्हइ, वेवइ वइठी ढोला कन्हइ ।
मन मोहइ अधिकेरो माण, पीहर तणाँ करइ वखाण ॥
मोटउ महियळि माळव देस, सुंदर रमणी, सुंदर वेस ।
वाणू सहस अठारइ लाख, गाम गाम भली अति साख ॥
पगि पगि नदियाँ नीर निवाण, वणा गरथ नइ लोक सुजाण ।
सगळ वरसे होइ सुगाळ, सुपनतरि नवि हुयइ दुकाळ ॥
अधिका केता कहूँ वखाण, देसाँ माँहि मुकुट समान ।
माळवणीनइ ढोलउ कहइ, तूं देसाँ तणी निरति नवि लहइ ॥
ढोलइ जिसि कहिया एतला, बीजा देस अछइ सहि भला ।
मारवाडी धरती अति बुरी, माँसस...छ वेड सुँह परी ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६५६, ६५८, ६५७, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

अति अवगुण मारू-भुइ-तणा, माळवणी कहिया अति घणा ।
ढोलउ वात सुणी गहगहइ, हसिनइ मारवणी प्रति इम कहइ ॥
कहि मारवणी ताहरउ देस, केहवा माणस केहवा वेस ।
वळती मारवणी इम कहइ, प्रीय आपे सगळी परि लहइ ॥
मारवणीसु मनरी प्रीति, ढोलउ दाखे देसाँ रीति ।
सगळा देस भला छइ सही, पणि को मारू उपम नहीं ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६८, ६७० और ६७१ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

मोटा महल अनइ माळीया, छोह पक काचे ढाळिया ।
गउष अपूरव चदण तणा, रतन जडित मोती भूमणा ॥
पॅचय करण पउढ्या पल्यक, मनि गमता सुष सेज मयक ।
सोकि चिन्हे महलि आपणे, कृष्णागर वासित धूपणे ॥
सॉझ समय सोळइ सिंगार, वेवइ रमणी करइ अपार ।
राति दिवस प्रिय साथइ रमइ, सुप्रभाति सासूनइ नमइ ॥
मारवणीनइ वारा दोइ, वारउ एक माळवणी होइ ।
करइ वेस दिन प्रति नवनवा, इद्रलोकि अपछर जेहवा ॥
सुदरि अति माळवणी नारि, तोइ नही मारू अणुहारि ।
रूप देषि भापइ सहु कोइ, परतपि मारू अपछर होइ ॥
एक कहइ तूठउ करतार, पूजी गोरि घणे परकारि ।
तो मारवणी ढोलइ मिली, विहूँ सरीषी जोडी जुडी ॥
मालवणीसु प्रेम अपार, वालपणाइ सतोष अपार ।
तोही मारवणीसुं घणउँ, लागो छइ मन ढोला तणउ ॥
विहुँ तणइ पुत्र संतान, दिन दिन कत अधिक वहु मान ।
मनवछित ते पाम्यउ भोग, सुष सपति सज्जन सजोग ॥

गाह सातसइ एह प्रमाण, दोहा नइ चउपई वषाण ।
जादव रावळ श्रीहरिराज, जोडी तासु कतूहळ काजि ॥
जेणइँ परइँ हुँती सॉभळी, तिणि परि मइ जोड़ी मन रळी ।
दूहा घणा पुराणा अछइ, चउपई वध कियो मइँ पछइ ॥
अधिकउ ओछउ जोड्यउ वहू, सुकवी ते सा सहियउ सहू ।
पडियउ वळी बिहाँ पॉतरउ, तेह विचारि करियो षरउ ॥
सवत सोळह सत्तोत्तरइ, आषा त्रीजि दिवसि मनि षरइ ।
जोडी जेसळमेरि मझारि, वंछया सुष पामइ ससारि ॥
सभळि सगुण चतुर गहगहइ, वाचक कुसळलाभ इम कहइ ।
रिद्धि वृद्धि सुष सपति सदा, सॉभळता पामइ सपदा ॥

इति श्री ढोला मारवणरी चउपई सपूर्ण ।

[यह प्रति बीकानेर राज्य-पुस्तकालय में है। यह सवत् १७२२ के लगभग की लिखी हुई है। इसका पाठ अत्यत शुद्ध है। इसका बीच का एक पत्र, जिसमें दोहा न० २३५ से २५६ एव २५७ का कुछ अश लिखा हुआ था, नष्ट हो गया है।]

ढोला मारवणी दूहा

श्रीगणेशाय नमः

दूहा

सकल सुरासुर सॉमिनी, सुणि, माता सरसत्ति।
विनय करीनै वीनवु', मुझ द्यौ अविरळ मत्ति ॥ १ ॥
जोतॉ नवरस एणि जुगि, सविहुं धुरि सिणगार।
रागैं सुर नर रजीयै, अवळा तसु आधार ॥ २ ॥
वचन विलास, विनोद रस, हाव भाव रति हास।
प्रेम प्रीति, सभोग सुख, ए सिणगार आवास ॥ ३ ॥
गाहा गूढा गीत गुण, उकति कथा उल्लोल।
चतुर तणा चित रजवण, कहीयै कवि कल्लोल ॥ ४ ॥

गाहा

मणहर नवरस मज्झे सुदर नारीण सरस सबधा।
निरुवम कविहि निबद्धा सुणतु सयणा जणा सगुणा ॥ ५ ॥
नळवर नयर नरिंदो नळराय, सूऊय साल्हकुमार वरो।
पिंग (ळ) राय सुधूया वनिता मारवणी सु वर्णविसु ॥ ६ ॥

कवित्त

पाणी पख पवग, षग चंगौ धुरसॉणी।
वीजा निर्मळ वस्त्र निर्म्मळ गगानौ पॉणी ॥
पट्टकूल पट्टणी देस भोगीधर दक्खण।
कुजर कदळी षड विप्र तेरोतरी विचक्खण ॥

तिम चंद वदन चंपक वरण, दंत झलकै दामिनी ।
सारग नयण ससार इणि मनोहर मारू कॉमिनी ॥ ७ ॥
मुरधर देस मझारि सबळ धण धन्न समिद्धौ ।
नामे पूगळ नयर पुहवि सगळै परसिद्धौ ॥
राज करै रिमराह प्रगट पिंगळ प्रिथवीपति ।
प्रतपै जग परताप दॉन जळहर जिम दीपति ॥
देवडी नाम ऊमा घरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि ।
चौसठि कळा सुदरि चतुर, कथा तासु कहिसुं सुपरि ॥ ८ ॥

दूहा

गिर अढार आबू धणी गढ जाळौर दुरग ।
तिहाँ सामॅतसी देवडौ अमली माण अभग ॥ ९ ॥
चद वदनि चपक वरणि अहर अलता रग ।
पंजर नयणी षीण कटि चदन परिमळ चंग ॥ १० ॥
अति अद्भुत ससार इण नारी रूप रतन्न ।
आछै ऊमा देवडी कुमरी कचनवर्ण ॥ ११ ॥
जौ तुझ सारीखौ जुड़ै भामिण तिणि भरतार ।
तौ राही नै कान्ह ज्युं कर मेळै करतार ॥ १२ ॥
जेसळने पिंगळ कहै, करि आणॉ परियॉण ।
दिन एकणमे देवड़ी जिम आवै इण ठॉण ॥ १३ ॥
साचौ छोरू तूॅ सही, तूॅ सेवक हूॅ सामि ।
आगे तै परणावीयौ करि वळि एतौ काम ॥ १४ ॥
सोवनगिरिहूॅ चिहूॅ दिसै रूधा मारग घाट ।
पंथी को पूगळ तणौ वही न सक्कै वाट ॥ १५ ॥
कटकी जौ आपै करॉ तौ मन रूसै राइ ।
सामॅतसी रूठै थकै बंध न बैसै काइ ॥ १६ ॥
वचन सुणी राजा तणौ जेसळ किद्ध प्रणाम ।
तौ हूँ छोरू ताहरौ जौ सारूॅ ए काम ॥ १७ ॥
सुणी बात रिणधवळ सहु कालौ थयौ कुमार ।
पाटण पहुतौ आपणै आरति करै अपार ॥
पाछै सामॅतसी सुपरि मोटै करि मंडाण ।
ऊमादेरौ ओझणौ इण परि चड्यौ प्रमाण ॥ १६ ॥

पटराणी पिंगळ तणी अपछरनै अणुहारि ।
आछै ऊमा देवड़ी सुंदरि इण ससारि ॥ २० ॥
सुदरि सोळ सिंगार मझि सेज पधारी सझि ।
प्राणनाथ प्रीतम मिल्यौ फिर सरि वैठो हझि ॥ २१ ॥

वडा दूहा

अद्भुत रूप असम, जग जोयँ, इण परि जपै ।
कहो उपम केही कहाँ, राणी परतपि रँभ ॥ २० ॥
प्रियसु अधिको प्रेम, रयण दिवस रंग रमैं ।
कुसुम जाणि केतकि तणौ, मोह्यो मधुकर जेम ॥ २३ ॥
माथौ धोए मेटि ऊभी सूरिज साँमुही ।
मोहण वेळी मारुई, ताह उपन्नी पेटि ॥ २४ ॥

दूहा

भूपति (भाऊ) भाटनैं कीयौ कोडि पसाउ ।
चाल्यौ नळवर गढ भणी प्रणमी पिंगळराउ ॥ २५ ॥
वरस दोह चोळ्या लिसै, तिसै देव न वुठो देस ।
पड पाखे अन लोक पडि, वसिवा गया विदेस ॥ २६ ॥
मारुआडिके देस महि, एक न जाओ रुइ ।
कवही होइ अवरसणा, कै फाका कै तिड्डु ॥ २७ ॥
पिंगल परीअण पूछियौ, कीजे अेवडि काइ ।
काई ठाम नु अटकळो, जेथि वसीजै जाइ ॥ २८ ॥
जळ खड कारण सोझिया देसे दुद दुवाइ ।
पुहकर खड पाँणी प्रबळ, समळि पिंगळराउ ॥ २९ ॥
[इसके आगे मूल के १, २, ३ नवर के दूहे हैं ।]

इण अवसरि घण ऊनम्यौ, प्रगट्यौ पावस मास ।
पासै पिंगळराइनैं, कीया उतारे वास ॥ ३३ ॥
ऊनमियौ उत्तर दिसा, गयण गरजै घोर ।
दह दिसि चमकै दामिनी, मडै तडव मोर ॥ ३४ ॥
च्यारि मास निश्चळ रह्या, सरवर तणैं प्रसग ।
पिंगळ नैं नळ भूपती, मिळिया मन नैं रग ॥ ३५ ॥
सँपा वागा सावट्ट, कोडीधज केकाँण ।
आम्हो साँमा आवी (ऽपि) या, प्रीति चढी परमाण ॥ ३६ ॥

[इसके आगे मूल के ४, ५, ६; ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, और ५७ नंबर के दूहे हैं।]

कूँझड़ियाँ कळह कियो टोळइ टोळइ वीस।
मारू पउढै एकली उर सचापे ईस ॥ ६१ ॥*

[इसके आगे मूल के ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७, १०८, ११०, १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १२३, १२४, १२६, १२५, १२२, १२९, १३०, १३३, १२८, १३१, १२७, १३२, १३७, १३५, १८२, १४०, १४४, १८४, (?), (?), १८९, १९१, १४९, १४५,- १४७, १५५, १४६, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७०, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, ३७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, ३०१, २९७, २९३, २९६, २८९, (दुबारा), २९५, २९८, २९९, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४,

[यहाँ एक पत्र नष्ट हो गया है।]

३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२२, ४२०, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२, ४९९, ५००, ४९६, ४३३, ४२८, ४९४, ४३६, ४३७, ४३८, ४४२, ४४५, ४३९, ४४४, ४४७, ४४८, ४५०, ४४९, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५,

* (क) प्रति में ७१ नंबर के दो दूहे हैं।

४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५६, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२, ४६५, ६६६, ४६६, ४६७, ४६८, ४६६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८६, और ४६० नंबर के दूहे हैं।]

गेसू महुर पधारियौ, कहण सँदेसा काज।
अमल सुरगा सल्ह कीये, आयौ चढ़े जिहाज ॥३२८॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१६, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२६, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५३७, और ५४२ नंबर के दूहे हैं।]

मारू अति घॅण पतळी, पॉन फडक्कै खाइ।
नाह धड़क्कै भीड़तॉ, मति मूय कड़क्कै जाइ ॥३५५॥
भिड भिड, नाह, निसक भिड, ॲगतॅ अंग लगाइ।
कळी जु काची केतकी, भमर न भगी जाइ ॥३५६॥

[इसके आगे मूल के ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५६, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६६, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७६, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४६, ५५०, ५८१, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६६, ५६८, ५६६, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ५१७, ६१८, ६१६, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२६, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४६, ६५०, ६५१, और ६५२ नंबर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा संख्या ४३४ है]

॥ इति श्री ढोला मारुवणी दूहा ॥

[यह प्रति बीकानेर-राज्य-पुस्तकालय में वर्तमान है। यह संवत् १७५० के लगभग की लिखी हुई है। लिपि सुन्दर है एव पाठ शुद्ध है।]

ढोला-मारूरा दूहा

[पहले मूल के १, २ और ३ नंबर के दूहे हैं।]

सुणि पिंगल नरवर कहै, वडा वडेरी रीति।
न आढोणौ नातरौ, ना लाषीणी प्रीति ॥ ४ ॥

[इसके आगे मूल के ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ×, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७, १०८, ११०, १११, ११२, ११५, और ११६ नंबर के दूहे हैं।]

ढाढी जे प्रीतम मिळै, इउँ दाषवीया जाय।
मारू पके अष (? ब) ज्यु, फिरे अलगे भाय ॥७२॥

[इसके आगे मूल के ११८, ११९, १८२, १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७० २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १४९, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८९, १९२, ×, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, १९८, २००, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१६, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २५९, २६०, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, ×, २७७, २७८,

× ऐसे चिह्न जहाँ है उन संख्याओं के दूहे प्रतियों में नहीं हैं।

२८०, २८१, २८२, २८६, X, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, ३०१, २९३, १९७, २९५, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१४ ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ६२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७ ३६२, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४११, ४१०, ४१२, ४१३, ४१४, ४१७, ४१६, ४१५, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२, ४९९, ५००, ४९६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४ ४४५, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२, ४६५, ६६९, ४६६, ४६७, ४६८, ४५९, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, और ४९० नम्बर के दूहे हैं।]

वीसू मुहर पधारियों, फहरा सदेमा फाल।
श्रमल मुरगाँ सालह कीय, आयाँ पडे जिहाज ॥२७३॥

इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५९, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५८१, ५९३, ५९४, ५९५, ५९७, ५९६, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ५५८, ३५९, ६६०, ६६३, ६६४, ६६५, ६७२, ६७३ और ६७४ नम्बर के दूहे हैं।]

॥ इति श्री ढोलामारूरा दूहा ॥

[यह प्रति बीकानेर राज्य पुस्तकालय में वर्तमान है। यह संवत् १७५२ में लिखी गई थी। इसका क्रम जोधपुरीय कथानक से मिलता है, यद्यपि उसकी भाँति इसमें प्रस्तावना नहीं है।]

ढोलै-मारूरा दूहा

श्री गणेशाय नमः

[पहले मूल के १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ नंबर के दूहे हैं।]

मा ऊमादे देवड़ी, नानौ सामँतसीह।
पिंगळराय पमाररी, कुमरी मारवणीह ॥१०॥

[इसके आगे मूल के १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २१, ७७, २३, २७, २६, २८, ३०, ३१, ३२, ३३ और ३४ नंबर के दूहे हैं।]

वाबहिया रत पंषीया, मगर ज लाली रेष।
सूती राजिंद संभरयौ, वात न सजन देष ॥३२॥

[इसके आगे मूल के ३५, ५२, ६०, ६२, ६५, ६४, ५३, ५४, ×, ५७, ६७ और ६८ नंबर के दूहे हैं।]

सहि प्रीतम संदेसड़ा, मारवणी कहियाँह।
माता मन महि जाँणियौ, विरह वियाप थयाह ॥४५॥

[इसके आगे मूल के ८१, ८०, ८३ और ८५ नंबर के दूहे हैं।]

इक दिन सोदागर तिहाँ, आप तणै उतार।
बैठा हसै तिण अवसरै, नयणे निरषी नार ॥५०॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८९, ९०, ९१, ९३, ९४, ९५, ९६, × और ८२ नंबर के दूहे हैं।]

पिंगळ मन चिंता हुई, करै मालवणी घात।
प्रोहित भीम राजा तणौ, मान महुत सुभ जात ॥६१॥

पिंगळ कहै प्रोहित सुनौ, जावौ ढोलै देस ।
ढोलो ल्यावो इह किणैं, कहै एम नरेस ॥६२॥

चळतीं मारवणी कहै, वात न भली एह ।
ऊमादेरो वीनती, भाखै यु ससनेह ॥६३॥

वाप ए वात न थे कही, वैण विचार कहेस ।
अणविचार नवि कीजिऐ, विचार नैह कहेस ॥६४॥

[इसके आगे मूल के १०३, १०५, १०६, १०६, १०७, १०८, ११२, ११६, १३६, ११६, ११८, १३५, १८२, १४५, १५५, १५४, १४७, १४६, १६१, २०७, १७२, १७३, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १६२ और २०८ नंबर के दूहे हैं ।]

वागरवाळ तेडावियां, साल्हकुमर तिण वार ।
रात्यो गाया निसह भर, पूछण तास विचार ॥६४॥

[इसके आगे मूल का १६५ नंबर का दूहा है ।]

भाट मारवणी तणौं, वपु वर्णावी वपाण ।
मारवणी निरखी नहीं, जनम तिणाँ अप्रमाण ॥६६॥

[इसके आगे मूल का १६७ नंबर का दूहा है ।]

ए माणस तिण पाठव्या, साल्हकुमर, तो काज ।
मालवणींहूँ वीहतै, मै मेळाया आज ॥६८॥

जो म्हे मोहा जाइस्याँ, तुझ पाये संदेस ।
तो मारवणी मॉननी,प्री (?पा) वक करै प्रवेस ॥६६॥

वागरवाळाँ इस कहै, साल्हकुमर नरेस ।
जो मारू मिळवा करो, तौ पधारो उन देस ॥१००॥

[इसके आगे मूल के १६८, २०३, २०१ और २०६ नंबर के दूहे हैं ।]

सुण ढाढी ढोलौ कहै, सीख करै सुन राज ।
कदीया सहस पचास दे, दीया व्रहास सुसाज ॥१०५॥

मनमे चित ढोलौ कहै, मुह विलपौंणी राउ ।
मन आळोचै आपणौ,तव रॉणी चि···(?)लाउ॥१०६॥

[इसके आगे मूल का २१५ नंबर का दूहा है।]

ढौलौ पूछे मारवणि (? मालवणि), संभळ बात सुजाँण।
आज ज धरा दयामणा, बात सुणौ प्रमाँण ॥१०८॥

[इसके आगे मूल के २१६, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२६, २३४, २३६, २३५, २३८, २३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४६, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५६, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३ २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २६१, २७० २७३, २७४, २७६, २७७ २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २८७, २६२, ३०१, २६७, २६३, २६५, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०६, ३१०, ३१२, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७३, ३५७, ३८०, ३६७, ३६८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०७, ४०६, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४२०, ४१५, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४६१, ४६२, ४६६, ५००, ५६६, ४३३. ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०. ४४६, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ५५६, ४५७, ४८५, ४५६, ४६०, ४६१, ४५८, २६२, ४६३, ४८२, ४६५, ६६६, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८६, और ४६० नंबर के दूहे हैं।]

वीस मुहुर पधारीयौ, कहन सँदेसा काज।
अमल सुरंगा साल्हकीय, आयौ चढे जिहाज ॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१८, ५१६, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२६, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५६, ५५३, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६६, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७६, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४६, ५५०, ५८१, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६६,

५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२७, ६२६, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५८, ६५९, ६६०, ६६३, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, और ६७४ नगर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा संख्या ३९५ है।]

॥ इति श्री ढोले मारूरा दूहा संपूर्णम् ॥

संवत् १७५२ वर्षे कार्तिकमासे शुक्लपक्षे नवम्या तिथौ
पंडित केसौदास लिपत मुकाम श्री सगर मध्ये ।

[यह प्रति बीकानेर राज्य पुस्तकालय में वर्तमान है। यह संवत् ११८८ में लिखी गई थी। इसका पाठ अशुद्ध है।]

ढोलामारवाणी रा दूहा

[इस प्रति में दूहों का क्रम इस प्रकार है—]

[पहले मूल के १, २ (पंक्तियों का क्रम विपरीत है), ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५६, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, ×, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७ और १०८ नंबर के दूहे हैं।]

[इसके आगे नीचे लिखी गद्य पक्ति तथा दूहा है।]

मारू आसीस दीवी

दूहा

अचरावर अंमर हूवौ, वेगौ आवे वीर।
संदेसा सयणॉ तणॉ, पहुचावौ पर तार (तीर ?) ॥

[इसके आगे मूल के १२० (केवल दूसरी पंक्ति), १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १८२, १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७०, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १४९, १७५, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, १९८, २००, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८,

२३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४६, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५६, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २८७, २८६, २८८, २६०, २६१, २६२, ३०१, २६७, २६३, २६५, २६४, ३०४, ३०५-३०४ (पूर्वार्ध ३०५ की प्रथम पंक्ति और उत्तरार्ध ३०४ की द्वितीय पंक्ति), ३०५, ३०६, ३०८, ३०६, ३१०, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७३, ३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३६७, ३६८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०६, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४६१, ४६२, ४६६, ५००, ४६६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०, ४४६, ४५१, ४५२; ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५६, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२, ४६५, ६६६, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८६ और ४६० नंबर के दूहे हैं।]

> वीस मुहर पधारीयौ, कहण सँदेसा काज ।
> अमल सुरगाँ साल्ह कीयौ, आयौ चढे जिहाज ॥२८२॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१८, ५१६, ५२६, ५२७, ५३५, ५२६, ५२८ नंबर के दूहे हैं।]

> सजण आया हे सखी चाँह की हुती चाहि ।
> हियौ हेम भर मीयौ वूझी वलंती माइ ॥

[इसके आगे मूल के ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५६, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६६, × , ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७६, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४६, ५५०, ५८१, ५६३, ५६४,

५६५, ५६७, ५९६, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०९, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२ और ६७४, नंबर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा संख्या ३९९ है।]

[अंत में नीचे लिखी पुष्पिका है।]

इति श्री ढोलामारवणीरा दूहा संपूर्णम्।

संव(त्) १८१८ वर्ष मिती फागुण वदि ३ गुरुवारे।
श्रीरस्तु।

[यह प्रति बीकानेर राज्य पुस्तकालय में है। इसमें बीच बीच में गद्य है और नए दोहे भी बहुत से हैं। इसका पाठ (ज) प्रति से अधिकतर मिलता है। इसके आरंभ के कई पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। यह प्रति पुरानी नहीं जान पडती।]

ढोलामारूरी वात।

....

.........(ढा) लोजी पुगळरै नजीक आया।

दूहा

करहो पवनां रूप कीय, पथी छडि इक पाय।
एकण आप फरूकडे, पुगळ पोहोतो आय ॥५६॥
करहो पेडे मन समो, आयो ढोलो एह।
एती धरा उलवतां, पगां न लागी पेह ॥५७॥

मीमा भाटण वायक

मारवणी ढोलो आवीयो, करहो कहकै एह।
सही तें तुठा साइयाँ, दूधे बूठा मेह ॥५८॥

वारता

इम करता गुदहळक वेळा हुई। तारै कोहर उपर पधारीया। पछे करहाने पाणी पावण लागा। तद करहो पाँणी पीवै नहीं। तारै ढोलोजी कहै।

दूहा

करहा चरे करेळीयाँ, पान चितार म रोव।
सरवर लाभ सरिजीयौ, पाहेजीया मुह धोय ॥५६॥

वारता

मारवणी सहेलीयाँ समेत ढोलैजीरो रूप जोवण लागी। तिण समें मारवणी बोलीया।

दूहा

ढीचा पाणी ढंचर, सरवर सुहयणाह।
मानस चीती मारुई, वहते गह वनाह ॥६०॥

ढोला वायक

[इसके आगे मूल का ५२४ नंबर का दूहा है।]

सहेली वायक

[इसके आगे मूल का ५२५ नंबर का दूहा है।]

वारता

तिण समै सहेली करहानें कॉब्र वाही। तारै करहो चमकनें षेळी डाकनें पैलो कांनी जाय ऊभो रह्यौ। तारै ढोलो कहै।

दूहा

षळ गुळ एक पटतरै, एकण अग म मार।
काब्र चटका जे सहै, दूजा करहा गिमार ॥६३॥

मिमा भाटण वायक

ज्या कारण थळ लघीया, त्यारे चित न काय।
साजन बैठा कोप सिर, करहो तिसायो जाय ॥६४॥

मारवणी वायक

रहि रहि मिमा माठ करि, करहो काब्र म मार।
कोइ वटाउ पथसिर, ढोलारै उणिहार ॥६५॥

मीमा वायक

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है।]

करहा वायक

ढोला मारू मारू ये करो, मारू ढेढणीयाइ।
पॉणी पीतो करहलो, मार्‍यो काब्रडीयाइ ॥६७॥

मारवणी वायक

करहा, पांणी खंच पीय, जो ढोलारो होय।
भोळै वाही काब्रड़ी, वळे न वाहै कोय ॥६८॥
भेकी करहो बैसीयौ, जो तुं ढोलो होय।
जे म्हे जाणत वलहा तौ करहौ न मारत कोय ॥६९॥

वारता

मारवणी जाणीयौ ओ तो और पथी छै। मीमा मोसुं रामत करै छै। नें बीजी सहेलीया जाणीयो सही ढोलोजी छै। ढोलैजी पिण जाणीयो ए तो मारवणी नें सहेलीया छैः। युं जाणनें ढोलोनी कहै।

दूहा

सवे लोवळवाळीया, न जाणु धण काय ।
ऊजळदती मारवण, पदम जडावे पाय ॥७०॥
सवे लोवड़वाळीया, सवहीके गळि हार ।
एकण मारू बाहिरी, बीजी सगळीनें जुंहार ॥७१॥
खजन नेत्र विसाल गति, नासिका दीपक लोय ।
ढोलो रळियायत हुवौ, जे धण दीठो जोय ॥७२॥

वारता

इतरी वात हुई नें मारवणी जाणियो श्रै तो सही ढोलोजी छः । तिवारै लाज करनें सटकेंसुं सहेलीयामें श्राइ । पिण साथ्यात चद्रमा सोभै तिम सपीया मैं सोभै छै। इम श्रोलै होयनें रथमें बैसनें घरे पधारीया । पछै । ढोलोजी पिण कोहरवू असवार हुवा । सो रावळै बागमें जाय डेरा कीया । नें करहानें वनमाळी कनासु बधायो । पछै ढोलीजी भात भातरा श्रमल करण लागा । पान कपूर मुखवास श्ररोगीया तितरै पुगळ माहै पिण राजलोक षब्रर हुई । जो ढोलोजी पधारीया । मगर ढाढो कहै ।

दूहा

राजाजी ढाढी कहै, वात सुणी नरपत ।
ढोलोकुमर पधारीया, भगत करो बहु भत ॥७३॥

वारता

राजाजी इतरो साभळनें कुवरारो साथ ढोलाजी साम्हा मेलीया सो गया । जद ढोलाजी सर्व साथनें राजी होयनें मिलीया । घणी मनवारा करी नें श्रमल कपूर पान बीड़ा श्रारोगीया । सुधा श्रतर लगाया । पछै कुमरारो साथ सहित ढोलोजी सहिरमें पधारीया । तारै राजाजी पिण ढोलैजीसु मिलिया । साम्हा श्राया । राजाजी कह्यो ढोळाजीरा साथनें डेरो दिरावो । तद राजा कहै ।

दूहा

नळवर हुता पोह समा, करहो पडै तळेक ।
हलकारा कर श्रावीया, कुवरजी एकाएक ॥७४॥

वारता

तारै राजाजी कह्यौ ढोलाजी एकाएक भलाई पधारीया । इतरो कहिनें राजाजी दरीषानें जाय वैठा । पछै ढोलैजी राजलोक माहै जुहार कहाड़ी ।

तांहरै राणीया पिण आसीस कहायनें नाळेर पांन बीड़ा मेल्हीया। पछै सहेलीयां गीत ग्यांन करिनें मोतीयारै आपै वंदाया। पछै ढोलोजी महिला पधारीया। पछै माल (?र)वणीजी पिण सिनान मंजन तिलक वणाव करिनें भात भातरा आभूषण पैहरीया छै। जितरै मारवणीजीनें वेळा लागी जाणी। तारै मीमा भाटणीनु कह्यौ। जावो वाली वाईनें लेने ढोलैजीसु रामत करावो। तारा सहेलीया मेळी होयनें ढोलैजी कने रमावणनें ले गया। पाछै ढोलौजी कहै।

दूहा

वाल्हा कावे दतड़ा, हीरा हारा वृत्र।
जो थे मारू परण घर, तो थे आभो पत्र ॥७५॥

वारता

वितरा माहे मारवणीजी विलब करता पान बीड़ा आरोगता सहेलीया संघातै आवण लागी।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५३७ और ५४० नंबर के दूहे हैं।]

वारता

मारवणीजी ढोलाजा कनें आयनें मुजरो कीयो। तारै ढोलैजी पिण आदर सनमान दे मेलीया। मारवणीजी पुष्य(ा) ल होयनें कह्यौ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५३१ और ५४२ नबर के दूहे हैं।]

आज भला दिन उगीयो, ग्रहपति गयो मुझ गेह।
सुपने मिलती स.ल पिव, सो दीठा नयणेह ॥८०॥

[इसके आगे मूल का ५२६ नबर का दूहा है।]

सजन मिलीया हे सषी, दीहाड वळीयाह।
संजोगी बस सजना विजोगी टळियाह ॥८२॥

[इसके आगे मूल के ५०४ और ५४१ नबर के दूहे हैं।]

सजन मिलीया हे सषी, कासुं भगत करेस।
अहिरां कहिरां पयोहरा, रमता आड न देस ॥८५॥
धन आजूणो दीहड़ो, धन आजूणी रात।
कुंवर रिव ज्युं सुरकळा, अविचल राजै अति ॥८६॥
ढोलो रूप अनगमें, मारू रित अवतार।
मिलीया वेहु रंग महल, कुमरी राजकुमार ॥८७॥

वारता

तद सहेलीयां मारवणीमें रमावणनुं आई हुती। त्यां कह्यो रावनाईरो मुष जोवाड़ो। तारै ढोलोनो घुंघटो ऊंचो करनें कह्यो देषो ओ मुष छै। पछै ढोलोजी पिण देषण लागा तद मारवणी मुळक्या। पिण ढोलेजीसुं भर निजर साम्हो जोवणो न आयो। तद ढोलोजी कहै।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५४६ और ५४८ नंबर के दूहे हैं।]

वाता दुहा विलवीया, आछो विरहो न षमाय।
कुसळ पछै ही पुछना, टुक एक प्रेम चषाय ॥६०॥

[इसके आगे मूल का ५५१ नंबर का दूहा है।]

[नोट—यहाँ इस प्रति का १३४वाँ पत्र नष्ट हो गया है।]

वारता

तारै ढोलोजी बोलीया, म्हाने तो भो कोई नहीं। नें करहो पिण इसो छै तिको पोहचवा देवै नहीं। तारै पिंगळ राजा कह्यो। भला एक मजल तो म्हारो साथ ले जावो। तारै ढोलेजी कह्यो, प्रमाण। तद पिंगळ राव मुकळावारो सायरी तयारी करण लागो। घणा हाथी घणा घोडा रथ पालषी दीधा। ढोलाजीनें पिण कड़ा मोती जनेऊ किलगी अमोलष वसता दीधी। मारवणीनें सात बीसी सहेलियाँ, एक एकसुं चढती रूप कळामें इसड़ी ही, सो दीधी। कुंमराँरो साथ पोहोचावणने विदा कीयो। मारवणीजी रथ माहे बैठा छै। सहेलियां पिण साथ छै इण तरेसूं ढोलोजी सीष करने असवार हुवा। पछै, एक मजल तो साथ समेत पड़ाव जाय कीयो। पछै, कुमरानु (सीष) दीधी। कुमरा पिण ढोलैजीसू, मुजरो करने सीष कीधी। पछै आप आप आधा घडीय छो पुगळथी कोस बीस अपरै आया। पछै एक थळ माथै पाणी देखनें उतरीया। तंबू डेरा षडा कीया। पापती सिरदारांरो साथ उतरीयो छै। पछै ढोलोजी ने मारवणी ढोलीयें पोढाया छै। तिण समें मारवणीजीरे वासना कस्तूरी सरीषी वास रही छै। विहुं जणा सुषमें पोढीया छै।

दूहा

[इसके आगे मूल के ६०८ और ६०० नंबर के दूहे हैं।]

वारता

तितरै परभात हुवो नें ढोलोजी जागीया नें मारवणनें बतळाया। तारा बोली नहीं। जद मरण जाणनें ढोलोजी चमकीया नें कहै।

सोरठा

[इसके आगे मूल का ६०८ और ६०० नंबर का दूहा है।]

वारता

पछै सहेलीया नें ढोलैजी साद कीधो। सषीया दोड़नें तुरत आई। देषै तो मारवणीजी मुवा निजर आया। सहेलीयाँ कहै छै।

[इसके आगे मूल का ६०६ नंबर का दूहा है।]

ढोला वायक

[इसके आगे मूल का ६१० नबर का दूहा है।]

घण धूण वाता करी, वार विचारै सद।
तिण वेळा तिण छोकरी, सरळो कीधो सद ॥१६॥

[इसके आगे मूल का ६११ नबर का दूहा है।]

वारता

तारै ढोलैजी कह्यो, थे तो गरे पधारो। म्हे तो मारवणी लारे जीवत काठ लेसॉ। तद ढोलैजी काठ भेळो करनें आरोगी चिणाई। पछै लापो देणरो हुकम कियो। तिण समें श्री महादेवजी पारबतीजी आय नींकळया। तारै श्रीमहादेवजी कह्यौ, औ तो ढोलो मारवणी दिसै छै। पिण मारवणी मुई छै। तारै ढोलोकुवर सत करै छै। तारै पारबती बोली। महाराज आप तो तें पधारीया छो। तो मारवणी मरण न पावै। इतरी अरज पारबतीजी महादेवजीसुँ कीधी। तारै महादेवजी ढोलैनूँ कहण लागा। जो तु उलटी रीत मताँ कर। अस्त्री लारै पुरुष कदेई बळ नहीं। आरोगी माहेसुं परो उठ। तारै ढोलोजी महादेवजीनें कहै।

दूहा

ते हुंता ढोलो तवै, कुडी गल्ल म कथ।
हुवै तो जिवणो एकठो मरणो मारू सथ ॥

वारता

पछै महादेवजी इमृतरो छाटो नाखीयो। सचेत कीवी। पछै महादेव पारबतीजी अलोप हूवा। पछै मारवणी सचेत होय नें बैठा छै। पछै सीरदारानें सहेलीयांनें ढोलैजी सीष दींधी। ढोलोजी नें मारवणी करहै चढनें हालीया। पछै उमर सुमरांरो साथ आडावळारो घाट रोकनें बैठा छै। ढोलोजी पिण उणहीज मारग षडै छै। पिण मारवणीजी बोलीया। कुँवरजी राज, औ तो मारग माहा झुठा निजर आवै छै जिणसू बीजो मारग लो तो

भलो छै। पछै ऊमर सूमरारै साथ ढोलाजीने आवता दीठा। पछै उमर-सूमरा विछायत कराई। मुँहड़ा आगै डुंबड़ा गावै छै। तारै ढोलोजी साथ वैठो देपनें मारगसुं टळीया। तारै उमर पाँच सै असवारासुं आडो आयने फिरीयो, ने कह्यो, कुमरजी, अळगा काय नीसरो! आवो वड़ी एक तो अमल पाणी करने मेळा वैसा। पछै थारे मारग जावो ने म्हें म्हारै मारग जासां, युँ कहिनें ऊँमर ढोलोजीरो करहो वागडोर झालनें जैकीयो। ऊँठरी म्होरी मारवणीनूं झलाई। ढोलोजी उमररि पाथरी जाजम ऊपरै जाय वैठा। तारै उमर जाणीयो, ढोलोजी हिवै माहरै सारू छै। पछै उमर आपरा सिरदारानें सेंन करने समझावण लागा। जे ढोलेजीने अमल पाणीसूं छिकावनें मागे। उमर कह्यो, ढोलाजी, दारू पीवीजै। ढोलैजीरै नाकारो करणारी आपड़ी छै। पछै ढोलोजी दारू अमल पीवण लागा। तद मोसर देखने मागणहार कहै।

दूहा

पीहर हुंदी डुंबणी, राग अलापै तेण।
ढोलो मारू ऊगरें, कहि समझावै वेण॥१६॥

[इसके आगे मूल का ६३१ नंबर का दूहा है।]

वारता

वीजो तो साथ सगळोई छीकीयो। ढालोजी पिण छिकड़ लागा। मागण-हारदी वउ मागणहार लारै गावती थकी कहण लागी।

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३२ नंबर का दूहा है।]

वारता

साथ सारो ही छिकीयी हुतो तिणसूं कोई समज्यो नहीं नें मारवणी चिंता करण लागी। वळ मागणहारी वोली।

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३५ नंबर का दूहा है।]

करहो कस्तूरी लदीयो, ऊपर झीणी लोय।
साथ सदीता सुमरां, जो निरवाहु होय॥

वारता

पछै मारवणीजी करहानें कात्र वाही नें करहो चमकनें भागो। तारे उमर जांणीयो, करहो जाण पावै नहीं। पछै रजपूतारो साथ करहो झालणनें उठीयो। ठाकुरे करहो थारे हाथ न आवै। औ तो कंवरजीरो

ई ज वेसास करै छै। तद उमर बोलीयो, ढोलाजी करहो झालो। तद ढोलाजी उठनें करहानें पकड़न लागा। तद उमर बोलीयो। ऊंठारै नेडा रहिजो। तिण समें मारवणीजी पिण ढोलाजीरै लाहरैं ई ज हुवा। ढोलैजी जायनें करहो झालीयो। तारै मारवणीजी जाणीयो नें कह्यौ, भोळा सिरदार दुसमणारा चित्या क्यु करो छो, अठासु चढने षडो तो भला छै, नहीं तारा क माथै चूक छै। तारै ढोलैजी नें मारवणी करहानें पकड़नें असवार हुवा।

दूहा

मारू चढती मारीया, दोय नैणाकै बाण।
साथ ईति राय सुमरो, पडीयो जाण पठाण ॥२४॥

[इसके आगे मूल का ६३६ का दूहा है।]

वारता

तारै लारांसु उमर-सुमरे 'जाय जाय' करनै लारै हुवा। कह्यौ, जो ढोलो जावण पावै नहीं।

दूहा

करहो कथ कुवेरीया, सुगणी मारू संग।
वासै उमर सुमरौ, ताता षडै तुरग ॥

वारता

तारै उमर वोलीयौ। ठाकुरे जिकोई ढोलैनैं पकडै जिणनुं आधो राजपाट देऊँ। नें वेटी परणाऊँ। तीसरै ढोलैजीरै नें उमर-सूमरैरै कोस चाळीसरो आतरो पड़ गयो। तिसरै मारग माहै ढोलैजीने चारण मिलीयो। कह्यो जे ठाकुरा, उठ षोडावै नें वेऊं जणा ऊपर चढीया। सो इसो करहामें कासूं षून छै। तारै ढोलैजी छुरी कमर माहा काढनें दीनी। तारै चारण उंठरै पग माहा वाढलो काटीयो। उंठ च्यारूँ पगा हूवौ। उ वाडलो चारणनें दीयो। जो थाने उंमर मिलै तो वाडलो देषाळजो। ढोलैजी चारणनें पचास मोहर दीनी। कहो।

दूहा

ढोला जे थल लघीया, दोहरा नें दुरंग।
कहजे उंबर सुम्रनुं मच्च मारजे तुरग ॥

वारता

चारणनें सीष देनें आघा षड़ीया। चारणनुं उंमर बीजै दीन मिलीयो। तारै चारण वाडलौ देषाळीयो। सगला ही सहिनाण बताया।

चारण वायक

[इसके आगे मूल के ६४८ और ६५० नंबर के दूहे हैं।]

वारता

उमर तो चारणरे करै पाछा वळीया। मुँहडो मुडो करने आपरै टिकाणे गया। तितरै साझ हुई, ढोलोजी घरे आया। राजाजीरै पाए लागा। राजाजी मारगरा समाचार पुछीया तारै ढोलैजी सारा ही कह्या। नितरा माहै रात पोहोर गई। तारै कह्यौ, ढालाजी थे थारै म्हेल जाय पोहढो। तितरै ढोलाजीनें माहै वधारनें लोधा, नें कुलदेवीरी पूजा कीधी। मातारै पाए लागी (? गा) मारवणी पिण सासूरै पावा लागी। सारा ही साथसु पावा लागा। घणा उछाह हरष हुवण लागा। मारगरा समाचार पुछ्या। कहो। नावो सोय रहो, रात घणी गई छै। तारै ढोलोजी माहि पधारीया, सहेलीयाँ हथियार षोलाया। फुलेल कुमकुमारा पाणीसु मजण सिनान कराया। मालवणीयें मारवणी हजूर तेडीया। तारै माहिलो राजलोक भाषवा लागो। माहिलो राजलोक समाचार सुणै छै। माळवणी समाचार पुछे छै। ढोलोजी कहै। एक वाणीयो मिलीयो। एक एवाळ मिलीयो। फेर लुणपाळ में डु (म) मिलीयो। पीवणो साप पावी। तारै महादेव पारवती मारवणीनु जीवाडी। तिके समाचार सारा ही कहीया। माळवणी सामळीया। राजलोक साग सी साभळीया। तितता माहै माळवणी मारवाडनें निंदण लागी।

दूहा

ढोला, मारू देशमें, पाणी नीठ कढाय।
भलो श्रमीणो देसड़ो, सेवज, जळ पीवाय ॥ १ ॥

[इसके आगे मूल के ६५६, ६५५, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं।]

वारता

श्रीतरी वात माळवणी कही। हमै ढोलोजी उतर देवै छः।

[इसके आगे मूल का ६६६ नंबर का दूहा है।]

दूहा

माळवणी ढोलो कहै, सुण मन दाषां सच।
मारू मिलीयां प्रित हुई, उर सगळा जग साच ॥

मारवाणी वायक

दूहा

बाबा म देई माळवै, जिहां छे पुरुष कुरूप ।
ऊघड़ पेट घणा षऊ रोगीला कुमीठ ॥
बाबा म देई माळवै, जिणरा पुरुष मजुर ।
घर बैठा हुकम करै, मॉणस नहीं ते मूढ ॥
बाबा म देई माळवै, जिण देसे कुरुष ।
जव मकीरो षावणो, माणस नहीं ते मूढ ॥

ढोला वायक

[इसके आगे मूल के ६७०, ६७१, और ५५४ नम्बर के दूहे हैं ।]

इति श्री ढोला मारूरी वात संपूर्ण ।

श्रीरस्तु । श्रेयं सुषकारी पुत्रपौत्रकारी वाचै सुणै सो कलपवृक्ष ज्यों फळै । श्री ।

[यह प्रति जोधपुर की सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी में वर्तमान है। इसका लिपिकाल संवत् १६६६ है। इसका पाठ अत्यंत शुद्ध है। इसमें बीच का एक पत्र नहीं है जिससे कुछ दोहे नष्ट हो गए हैं। इसमें कुशललाभ की चौपाइयाँ भी हैं। आगे जहाँ पर × × × ऐसा चिह्न है वहाँ इस प्रति में कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं जिनका पाठ (य) प्रति से बहुत कुछ मिलता है। टिप्पणी में (झ), (न) तथा कहीं कहीं (छ) प्रति के पाठांतर दिए गए हैं।]

ढोला मारुई चउपई।

श्रीसारदाई नमः

सकळ सुरासुर सॉमिनी, सुणि माता सरसत्ति।
विनय करीनइ वीनवुँ, मुझ दिउ अविरळ मत्ति ॥ १ ॥

जोतौं नवरस एणि युगि, सविहूँ धुरि सिणगार।
रागइ सुरनर रंजीयइ, अबळा तसु आधार ॥ २ ॥

वचन विलास विनोदरस, हावभाव रति हास।
प्रेम प्रीति संभोग रस, ए सिणगार अवास ॥ ३ ॥

गाहा गूढा गीत गुण, कवित कथा किल्लोल।
चतुर तणा चित रंजवण, कहइ कवि किल्लोल ॥ ४ ॥

१—सरसत माव पसाव कर, दे मो अविरळ मत्ति।
मोगी भमर सुवाळ जे, गुण गाऊँ तसु कत्ति ॥ (झ)

२—नरवर इण जुगइ (झ)=नवरस...युगि। सव (झ)। धुर (झ) रंजीये (झ)।

३—रति (झ)=हति। कै (झ)=ए। आवास (झ)।

४—रस (झ) = गुण। कल्लोल (झ)। मन रींझवैः (झ)=चित रंजवण। कहीया (झ) कल्लोल (झ)।

गाहा

मणहर नवरस मझे, सुंदरि नारीण सरस संबधा।
निरुवम कविह ति (? नि) वद्धा, सुण तुं सयणा जणा सुगुणा ॥ ५ ॥
नळवर नयर निरिंदो, नळराय सुउ सल्लकुमर वरो।
पिंगळराय सुधूया, वनिता मा (र) वणि वर्णविसु ॥ ६ ॥

कवित्त

षाणी पंथउ पवँग खंग्ग चंगउ खुरसाणी।
विज्ञानगरी वस्त्र, एक विण सुर सिरखाणी ॥
पट्टकूळ पट्टणी, देस भोगी घर दक्षण।
कुंजर कदळी खंडि, विप्र तिरुहती विचक्षण ॥
तिम चंद्रवदन चंपकवरण, दंत झबक्कइ दामिनी।
सारंगनयण संसार इणि, मणहर मारू कामिनी ॥ ७ ॥
मुरधर देस मझारि, सयळ धण-धन्न-समिद्धउ।
नामइ पूगळ नयर, पुहवि सगळइ परसिद्धउ ॥
राज करइ रमिराइ प्रगट पिंगळ पृथवीपति।
प्रतपइ जसु परताप दाँन जळहर जिमि दीपति ॥
देवडी नामि उमा घरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि।
चउसठि कळा सुंदरि चतुर, कथा तास कहिसुं सुपरि ॥ ८ ॥

× × × ×

दूहा

गिरि अढार आबू धणी, गढ जाळोर दुरंग।
तिहाँ सामँतसी देवडउ, अमली माण अभंग ॥

× × × ×

चंदवदणि चंपकवरणि, अहर उळत्ता रंगि।
खिजरनयणी खीणकटि, चंदन परमळि अंगि ॥२१॥

५—निरुपम कहे निबंधा (क)=निरुवस'''वद्धा। सुणत।

७—पंथ तुरंग (क)=पंथउ पवँग। खग (क)। बीजानगर सहुसव निरमळ गंगानो पाणी (क)=विज्ञानगरी'''खाणी। धुर दक्षिण (क)। विपरीति नीति (क)=विप्र तिरुहती।

८—थान (क)। रिणिराह (क)। तपंतौ (क)=पृथवीपति। दीपंतौ (क)=जिमि दीपति। मरुवणि (क)।

२१—प्रीण (क)=खीण। कोमल नेत्र कुरंग (क)=चंदन...अंगि।

अति अद्भुत ससार यण, नारी रूप रतन्न।
अछइ ऊमा देवडी, कुमरी कचनवन्न ॥३२॥
जउ तुझ सारीखउ जुडइ, भामणि तुझ भरतार।
तउ जोडी जुडि चान्द ज्यु, जउ मेळइ करतार ॥३३॥

× × × ×

जेसळनइ पिंगळ कहइ, करि आपणु परियाँण।
एकणि दिन माहि देवडी, जिम आवइ इण वाणि ॥१०३॥
साचउ छोरू तउ सही, तुं सेवक, हूँ स्वामि।
आगइ ते परणावियउ, करि हिव एतउ काँमि ॥१०४॥
सोवनगिरिहूँ त्रिहुँ दिसइ, रुधा मारग घाट।
पंथी कोइ पूगळ तणउ, वहे न सकइ वाट ॥१०५॥
कटकी जउ आपे करॉ, सउ रीसावइ राय।
साँमतसी रूठइ थकइ, वधि न वइसइ वाय ॥१०६॥
वचन सुणी राजा तणउ, जेसळउ कीयउ प्रणाँम।
तउ हूँ छोरू तापरउ, जउ ए सारूँ काँम ॥१०७॥

× × × ×

सुणी वात रिणधवळ सहि, फाळउ थयउ कुमार।
पाटिण पहुतउ आँपणइ, आरति करइ अपार ॥१२०॥
पाछइ साँमतसी सुपरि, मोटउ करि मंडाण।
उमादेरउ ऊमणउ, इण परि चढचउ प्रमाँणि ॥१२१॥

३२—सारखी (क)। जोडी राही (क)=तउ जोडी जुडि।

१०४—वइ (क)=ते। वळि (क)=हिव।

१०५—देरा कीया (क)=हूँ...दिसइ। रूध्या (क)। को (क)=कोइ। वही (क)।

१०६—आपाँ (क)। तउ मति रूसइ (क)=सउ रीसावइ। चाचकदे (क)=साँमतसी। काय (क)=वाय।

१०७—जेसळि कीध (क)। हुं (क)। जइ (क)। सारउ (क)।

१२१—पाछिइ। चाचिगदे=साँमँतसी। मोटइ। मंडाणि। इणि। चढिउ। प्रमाण। (क)।

पटराणी पिंगळ तणी, अपछरनइ अणुहारि।
अछइ उमा देवडी, सुंदर इणि ससारि ॥१२२॥
सुंदरि सोळ सिंगार सजि, सेज पधारी साँझि।
प्राणनाथ प्रीतम मिलउ, उ सरि बइठउ हस ॥१२३॥
अद्भुत रूप असंभ, जगि जोगी इणि परि कहइ।
राणी पति······भा, कहीयउ एम कवी सरइ ॥१२४॥

सोरठा

प्रीयसुँ अधिकउ प्रेम, रयणि दिवस रगय रगइ।
मोह्य(उ) मधूकर जेम, कुसम जाणि कतक तणाय ॥१२५॥
माथउ धोइ मेटि, उभू सूरिज साँमुही।
तउ ऊपन्नी पेटि, मोहणवेळी मारुई ॥१२६॥

दूहा

भूपति भाऊ भाटनइ, कीधउ कोडि पसाउ।
चाल्यउ नळवरगढ भणी, प्रणमी पिंगळराय ॥१२७॥

× × × ×

वरस दउढ वउळ्या जिसइ, तिसइ देवन बुठउ देसि।
खड पाखइ सवि लोक खडि, वसिवा गया विदेसि ॥१३१॥
मारू कोइ देस माहि, एक न लाइ रिड्डु।
कदही होइ अवरसणउ, कइ फाकउ कइ तिड्डु ॥१३२॥
पिंगळ परियण पूछीयउ, कीजइ त्रेवड काय।
काई सु ठाम ज अटकळउ, जेथि वसीजइ जाइ ॥१३३॥

१२२—ऊमा (क)।

१२३—सेजि। संझि। मिल्यउ। उरसरि। वयठउ। (क)।

१२४—अदभुत। जोई=जोगी। जपइ=कहइ। परतषि=पति···। कहियौ ए अदभुत कथन। (क)।

१२५—प्रय। रयणी। रसि=दिवस। रंगइ। (क)।

१२६—धोयउ। तिहाँ=तउ। चंपावरणी=मोहण वेळी। (क)।

१२७—कीया=कीधउ। राउ=राय। (क)।

१३१—द्यउढ वउळा पछे=दउढ···जिसइ (क)।

१३२—मारिवाडिके देसमैं=मारू·· माहि। पीड=रिड्डु। कबही मेह वरसै नहीं का फाका कै तीड। (क)।

१३३—कीजै। तेवड=त्रेवड। जु ठाम। अटकळी। (क)।

जळखड कारणि खोजीया, देसे दोऊ दरवाँन।
पहुकर खड पाणी प्रबळ, पिंगळ सुणि रानोंन ॥१२४॥

× × × ×

इणि अवसर घण उन्हयउ, प्रगट पावस मास।
पासइ पिंगळरायनइ, कीयउ उतारे तास ॥१५४॥

उनमीयउ उतर दिसइ, गयण गरजइ घोर।
दह दसि चमकइ दामिनी, मंडइ तांडव मोर ॥१५५॥

च्यारि मास निश्चळ रह्या, सरवर तणइ प्रवगि।
पिंगळनइ नळ भूपती, मिळीयउ मानइ रगि ॥१५६॥

× × × ×

जदिकी जाई मारुवणि, तबका बोल्या बोल।
पिंगलरायरी मारुई, नळगवारउ ढोल ॥२०४॥

आपइ उमा देवडी, वार्लेम, हीयइ विचारि।
मनइ सिकोडी मारुवणि, दीन्ही समुदाँ पारि ॥२०५॥

कंता, अणदीठइ कुँवरि, कीयउ नातरउ काँ।
पटरॉणीनइ पिंड कहइ, जीहाँ खिरिज्यो तिहँ जाइ ॥२०६॥

× × × ×

माळवदेस महीपती, भीमसेन भूपाळ।
मालवणी धूम्र तसु तणी, सुंदरि अति सुकमाळ ॥१८६॥

परधाने नळवर तणे, मागी वणइ मँडाणि।
जोतौं जोडाव्यउ जड्यउ प्रीति चढी परिमाँण ॥२६०॥

१२४—सोभीया। देस प्रदेसे जाय=देसे॰॰ दरवाँन। साँभळ पिंगळराय=सुणि॰॰॰रानोंन। (क)।

१५४—ऊमह्यौ। प्रगट्यौ। कीयो राय तिहाँ वास। (क)।

१५५—मडै तडव गिर मोर। (क)।

१५६—नळराइ=नइ नळ। मिळीया मन मैं रँग। (क)।

२०५—वात समंदा पार (क)=दीन्ही॰।

२०६—पाड पटराणीनु कहइ (क)।

भीमसेन परणावीया (?), नळराजा परधान।
नळ नंदनसुं नातरउ, मिलीयउ मनि बहु मांनि ॥२६१॥

× × × ×

सॉझ समइ सउदागिरी, आप तणइ उतारि।
वइठी गउखइ तिणि समइ, नयणे निरखी नारि ॥३०१॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८६, ६० और ६१ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६, १८६ और १६० नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के १८, ३४, ४६, ४५, ६०, ६२, ६४, ६५, ६६, ६६, ७०, ७१, ७२, ५३ और ६७ नंबर के दूहे हैं।]

कउआ म चुणि कठंजरइ, उडे नरवरि जाउ।
लेउ हमारी पॉसुळी, लोभी देख च (?त) खाउ ॥३३२॥

[इसके आगे मूल के ७५ और १६७ नबर के दूहे हैं।]

नाही नयण समारीया, उरि आरी सु लेइ।
द्रठि लगेसी मारुई, क्युं क्युं जितन करेइ ॥३३५॥
नाहे घोप नख रँगे, नयण करे निम वाँण।
जिणि दिणि सजण प्राहुणा, तिणि दिनि तें परियाँण ॥३३६॥

[इसके आगे मूल के ७३, ७४ और ६८ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ५१, ५५, ५६ और ५४ नंबर के दूहे हैं।]

कुंझडीयाँ कळिअळ कीयउ, सुणी उपंखइ वाइ।
ज्याँकी जोडी वीछुडी, त्याँ निसि नींद न आइ ॥३५६॥

[इसके आगे मूल का ५६ नंबर का दूहा है।]

सहु प्रीतम सदेसड़ा, मारुवणी कहियाँह।
माता मन महि जाणीयउ, विरह वियापि थियाँह ॥३६१॥

[इसके आगे मूल के ७६, ८०, ८१, ८२ और ६६ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

३३६—(छ) पाठांतर—नव रंगे।
३६१—(ज २४८) मारवणी। विलाप।

(इसके आगे मूल के १०३ और १०४ नंबर के दूहे हैं।)

तीयाँनइ वागा वितलइ, वारू दीवइ आस।
सीख लेई पिंगळ कन्हा, आव्यउ मारू पासि ॥३८३॥

(इसके आगे मूल के १०६, ११३, ११४, १६८, २०२, २०३, २०४, २०५ और १६ नंबर के दूहे हैं।)

नामि सुकोमल कमळ मुख, ढोल सु सीतळ गत्त।
तिणि कादमि पुच (ढ?) विर्गही, मन मयगळ मयमत्त ॥३६२॥

(इसके आगे मूल के १३५, ४२२, १५५, १४८, १४७, १४६, १५०, १५१, १५३, १४४, १४५, १५६, ११६, ११५, १२०, ११७, १३५ (दुबारा) ११८, १२१, १२२, १७७, १३६, २०६, १४६, १३८, १३६, १४२, १४१ और १५७, नंबर के दूहे हैं।)

ढोला तो मारू विज्जळी, खाजो कालु साप।
योवन थामु रूठि चल्या, ढोला रह्या चित लाइ ॥४२१॥

(इसके आगे मूल का १४४ नंबर का दूहा है)

सदेसउ वन पठवइ, याँही त्योंही साथि।
एकरसउ मिलि साइ नईं, कपटीयाँरइ साथि ॥४२३॥

(इसके आगे मूल के १४३, १११, १६६, ४८६ और १८२ नंबर के दूहे हैं।)

पंख पसारया जग भमया, कह्या सँदेसा भट्ट।
तीयाँ संदेसाँ तीयाँ माणसाँ कदि हुँ जोवुँ वट्ट ॥४२६॥
ढोलउ चलुं करइ, पलाणीया केकाँण।
कइ वाणइ कुण चालिसी, पहिला प्रीयु कि प्राँण ॥४३०॥

(इसके आगे मूल का १०८ नंबर का दूहा है।)

× × ×

ए माणस तिणि पाठव्या, साल्हकुमर तुझ कानि।
मालवणीयी वीहता, मई मेळवीया आज ॥४४७॥
मारुवणी सइमुखि कह्या, दूहा मिसि संदेसि।
वउ मारू मिळिवा करइ, तउ पधार उणि देसि ॥४४८॥

३८३—(ज २७०) वियां। वेतिजे। दीया अहास।
४२६—(ज २६८) भाट। सदेसां तिण माणसां=तीयाँ'''। वाट।
४४७—(ज ३१५) तिण। काज। मुं=थी। बीहतां।
४४८—(ज ३१६) संमुख। मिस। सदेस। करो। उण।

सइमुषि ढोलइ पूछीयउ, मारू-तणउ वृतंत।
ढोलउ त (? न) इ भाऊ बिन्हइ, वइसारी एकांति॥४४६॥
भाटे मारुवणी तणे, वारू कह्या वर्षांण।
मारू जिण निरखी नहीं, जनम तीयँ अप्रमाँण॥४५०॥
भाऊ ढोलानइ कहइ, कीवइ सीख पसाउ।
इयाँरी वाट उतावळी, जोवइ पिंगळ राउ॥४५१॥
जउ ए मोड़ा जाइस्यइ, तुझ पाखइ संदेसि।
तउ मारुवणी कुँअरी, पावक करइ प्रवेसि॥४५२॥
× × ×
सदेसा सहि सविगता, कहीया तिहाँ सँभाळि।
मालवणीहूँ संकतउ, सीख दीयइ ततकाळ॥४५८॥
भाऊ भाट संदेसड़ेउ, दिसि सयणा कहीयाँह।
ढोलउ मारू अळजयउ, साईं दे मिळियाँह॥४५६॥
वीरासीयाँ विरूओ कीयउ, रखे एम म करेज।
ढोला तणा सँदेसड़ा, अळगा थका कहेज॥४६०॥
अहनउ भाँजउ एम, ढाल घणा ऊमाहीयउ।
पंछ विहूणउ प्रेम, मन सीचाणउ झडपसी॥४६१॥
[इसके आगे मूल के २१३, २१४ और २०१ नंबर के दूहे हैं।]
× × × ×

४४६—(ज ३१७) सँमुखि। पूछीया। तणा। वृतांत। नें=तइ। वेसाख्या।

४५०—(ज ३१८) भाटैं। मारवणी। तणा। वयु वर्ण्या=वारू कह्या। तिहाँ=तीय।

४५१—(ज ३१६) पसाव। राव।

४५२—(ज ३२०) जाइसी। संदेस। सही मारू माननी=मारुवणी कुँवरी। करिस्यै। प्रवेस।

४५८—(ज ३२६) सुं=हूँ। संकतै। दीधी।

४५६—(ज ३२७) दिस। उळज्यो=अळजयउ।

४६०—(ज ३२८) वीरास्यां। विरो। राखे। एम=एम म। तणो। संदेसडो। अळगां थकां।

४६१—(ज ३२६) अलजउ। भाजे। ढोलो। भरि करि मूठि उडाय=पंछ···प्रेम। सीचाणा। जेम तूं=झडपसी।

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६ (पंक्तियों का क्रम उलटा है), २२७, २२४, २२५, २३०, २३१, २२८, २२६, २३२, २३३, २३६, २३८, २३६, २४०, २३७, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५६, २७०, २६१, २६२, २५७, २६३, २५२, ४७, ४८, २५३, २७३, २७५ और २७७ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २७६, २८१, २७०, २८०, २८३, ३०४, ३०५ और ३०७ नंबर के दूहे हैं।]

प्यारी प्रीतम पहिलकी, सकइ तउ मन मौंहि आणि।
आधी रातइ रे पिसुण, किसी पल्लाणि पल्लाणि ॥५२७॥

[इसके आगे मूल के ३०८, ३११, ३१२, ३१३, ३४२, ३१६, ३२२, ३२३, ३१७, ३१८, ३२०, और ३२१ नंबर के दूहे हैं।]

करहा मालवणी कहइ, सभळि बोल्य सच्च।
तातउ लोहउ ताहरइ, वयण न लागो जच्च ॥५४०॥

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३३३, ३३५, और ३३६ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

इसके आगे मूल के ३४५, ३४८, ३४६, ३५३, ३६३, ३६८, ३६६, ३७८, ३७६, ३६२, ३८४, ३८५, ३८१ और ३८६ नंबर के दूहे हैं।]

ऊ सरवर हू पदमिनी, हू लउ करहउ जाइ।
पूगळ जाइ प्रगटीयउ, करइ मारवणी दाइ ॥५६३॥

[इसके आगे मूल के ३८७, ३८८, ३८६, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३७५, ३७७, ३६७ और ३६६ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ४०२, ४०५, ४०६ और ४०७ नंबर के दूहे हैं।]

[इसके आगे मूल के ४२६, ४२७, ४२८, ४३२, ४३०, ४३३, ४३४ और ४३१ नंबर के दूहे हैं।]

५२७—(ज ३८२) प्रीत=प्रीतम। पिसुँण।

५४०—(ज ४०७) सांभळ बोलां। लोह। तणावसी=ताहरइ। वपि लागे तो वच्च। (छ) बोले। लोहद। सच्च=वच्च।

जे ही चीना करहला, नीळी लूंब लहक्क ।
ते पणि जो लंघन करइ, मरइ न चरही अक्क ॥६०१॥

[इसके आगे मूल का ४२४ नंबर का दूहा है ।]

पिंगळ राजा रूसिवित, चारण काई चाढ ।
साल्हकुअर वव उलष्यउ, तव वोलायउ माढि ॥६०२॥

[इसके आगे मूल के ४४२, ४४४ और ४४५ नंबर के दूहे हैं ।]

इक संघाती पंथ सिरि, जोअइ करहा वाट ।
ढोला चलवउ देषि करि, तिणि मनि थयउ उचाट ॥६०६॥

× × × ×

[इसके आगे मूल का ४५० नंबर का दूहा है ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ४४६ नंबर का दूहा है ।]

जो ये देषी मारुइ, तउ अहिनाण उगट्टि ।
चंदा जेहइ मुखकमळि, केहरि जेहइ कट्टि ॥६१६॥
मारू आवी चउहट्टइ, गंधी केरइ हट्टि ।
हट्ट लूसायउ वाणीयइ, वळद गमाया सट्टि ॥६१८॥

[इसके आगे मूल के ४६४, ४७३, ४५६ और ४५७ नंबर के दूहे हैं ।]

सदा उळंकी नाक सळ, भीणी लंक म जाइ ।
दंडी सुता सप ज्युं, खंजी कटे सहाइ ॥६२१॥
दंडी सुता सप्प ज्युं, षंजी षघइ साइ ।
तिणि धण अंदोहउ कीयउ, वीष न वळणो पाइ ॥६२२॥

६०१—(ज ४७२) चीनी । लुंब लहिक । जो घणा=ते पणि । लंघण । अंत चरेवो = मरइ न चरही ।

६०२—(ज० ४७५) रीसयो । कोई एक = काइ चाड । नें = वव ओलष्यो । बोलीयो । वीवेक=माढि ।

६०६—(छ) एकरसों तो पंथसिर । वळतउ=चलवउ ।

६२१—(ज ४६२) उळकी । लंव मजीह । कटे । सीह ।

६२२—(ज ४६४) सूत्ता दडी । खधै खंजी । साहि । हिंदो । उं कीयो । वीष चल्यो जाहि ।

[इसके आगे मूल का ४७४ नंबर का दूहा है ।]

इट्टम पट्टम वाणीयउ, उथि न जम्पउ जाइ ।
मारू सदा सुवास छइ, अंगइ तणइ सुमाइ ॥६२४॥

[इसके आगे मूल के ४८४, ४८५, ४७५, ४६०, ४६० (पाटांतर) ४७०, ४८२, ४६५, ४७१ और ४८७ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६७, ४६८ और ५०० नंबर के दूहे हैं ।]

पगरउ फटेकरउ, ढोली मेल्हे वग्ग ।
दीवा वेळा सचरु, तउ वाढे चारे पग्ग ॥६४६॥

[इसके आगे मूल के ५२१ और ५२२ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ५०६ नंबर का दूहा है ।]

सारत संदारेइ, मोगो मास उ पत्राखीयउ ।
अटीयउ अचारेइ, जाणु ढोलउ आईयउ ॥६५१॥

[इसके आगे मूल के ५०५, ५१२ और ५१३ नंबर के दूहे हैं ।]

[इसके पश्चात् कुछ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं ।]

× × ×

.............................न ।
मारू ढोलउ ऊगरइ, कहि समझीया वन्न ॥७६७॥

[इसके आगे मूल के ६३१ और ६३२ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६३३ नंबर का दूहा है ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६३६ और ६४० नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६४८ नंबर का दूहा है ।]

× × × ×

६२४—(ज ४६६) ओथि न । चंपो । जाय । सुसाय ।
६४६—(छ) पाठांतर—पगरौ काढे कक्करौ । न तो=तउ ।
६५१—(ज ५२०) सारस । भूगो । पत्रीसियो ।

इसके आगे मूल के ६५६, ६५८, ६५५, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६८, ६७० और ६७१ नंबर के दूहे हैं।

चौपाई

यादव रावल श्री हरिराज, जोड़ी तास कतूहल काज।
....||

दूहा घणा पुराणा अछइ, चोपाई बंध कीयउ मइ पछइ।
....||

सवत सोळइ सचोतरइ, आपा त्रीज दिवस मन खरइ।
जोड़ी जेसळनयर मझारि, वाच्या सुष पामइ संसारि ||
संभळिसगुण चतुर गहगहइ, वाचक कुशळलाभ इम कहइ।
....

इति श्री ढोला मारुई चउपई संपूर्ण

१६६६ वर्षे काती सुदि ८ हि (? दि) न नागउर मध्ये श्री उपकेस-गच्छे भट्टारक श्रीसिद्धिसूर स्वराणे शष्य (सूरिणः शिष्य) मेहा लिषतं वाचनार्थं।

कल्याणमस्तु। शुभं भवतु। श्रीरस्तु। श्री।

[यह प्रति जोधपुर के श्री सरदार म्यूजियम में वर्तमान है। इसमें वाचक कुशललाभ की चौपाइयाँ भी हैं। इसका पाठ बहुत अशुद्ध और विकृत है। इसलिये मूल में इसके पाठांतर, और परिशिष्ट में इसका मूल देना उचित नहीं समझा गया।]

[इसका आरंभ इस प्रकार होता है—।

श्री हरिः

अथ वारता ढोला नें मारवणीरी लिख्यते

प्रथम दोहा

सकळ सुरासुर सामिणी, सुण माता सरसत्त।
विनय करेनै वीनवूं, मूझ दौ अवरळ मत्त ॥ १ ॥

[अंत इस प्रकार है—]

गाहा सात सयँ ए परिमाँण, दोहानैं चौपई वखाँण।
जादव रावळ श्रीहरराज, जोड़ी तास कुतूहल काज ॥
जेयण पर कवि मुख साँभळी, तिण पर में जोड़ी मन रली।
दोहा घणा पुराणा अछै, चौपाई बंध कियौ में पछै ॥

....

संवत सोळसे सत्तोत्तरे (१६०७), अखातीज दिवस मन पखरै।
जोड़ी जेसळनयर मझार, वाचैं सुख पों (? पाँ)में संसार ॥
संभळ सगुण चुतर गहगहै, वाचक कुशळलाभ इम कहै।
ऋद्धि वृद्धि सुख संपति सदा, संभळता पामें संपदा ॥

इति

आ परत जिणमें वात कुशळचंद जती बनायोड़ी छै। पैहला ढोला-मारवणरी वात छै तिणमें वारता नें दोहा छै। इण कवी जती संवत् १६०७ में जेसळमेर रावळजी हररानजारै विनोदार्थ दोहा और वारता तिके चौपाई बंध आपरी उक्तीसूं कीया है। तिणरौ स्पष्ट लिख दियौ है कै म्हें रावळजी साहबारै विनोदार्थ पुराणा दोहा वे चौपाई बंध किया है। पहली ढोला-मारवणीरी पुंराणी वातरौ उलथौ कुशळचंद कियौ छै।

(ज)

[यह प्रति पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी, जोधपुर, में वर्तमान है। यह (च) प्रति का अनुसरण करती है, पर इसमें नए दोहे भी अनेक हैं। इसके प्रथम ६ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। इसका लिपिकाल संवत् १७८१ है।]

ढोला-मारू-चउपई

दूहा

[आरंभ के १६८ दूहे-चौपाई नष्ट हो गए हैं।]

सांझ समें सौदागरें, आप तणइ उतारि।
बैठा हसै तिण अवसरै, नयणे निरखै नारि ॥१६६॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८६, ६० और ६१ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६ और १८६ नंबर के दूहे हैं।]

वॉहडीयाँ रतनालियाँ, सहीयर ढोलनीयाँह।
वासी चंदन महमहै, मारू लोवडीयाँह ॥२१२॥

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के २७, ३६, ३१, ३० (दूहा) २६, २८ और ३४ नंबर के दूहे हैं।]

बाबहिया वाली भणों, डुंगर कड़खे म रोय।
घों(?) आवण मुज सासरै, कोड न घ (?) जो कोय ॥२२०

[इसके आगे के मूल के १८, ६०, ६२ और ६३ नंबर के दूहे हैं।]

[यहाँ पृष्ठ ११ नष्ट हो गया है।]

नोट—जहाँ × चिह्न है वहाँ चौपाइयाँ हैं।

[इसके आगे मूल के ८८, ६०, ६२ और ६३ नंबर के दूहे हैं।]

[यहाँ पृष्ठ १० नष्ट हो गया है।]

[इसके आगे (च) का ३६१ नंबर का तथा मूल के ७६, ८०, ८२ और ८३ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के १०३, १०४, (३८३ च)*, १०६, ११३, ११४, १६८, २०३, २०४, १६, १८२, १३७, १३५, ४२२, १५५, १४८, १४७, १४६, १५३, १५४, १४५, १५६, ११६, ११५, १३६, १४६, १५७, १५८, २२४, १७२, (४२६ च) और १०८ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे (च) प्रति के ४४७, ४४८, ४४६, ४५०, ४५१ और ४५२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे (च) प्रति के ४५८, ४५६, ४६०, ४६१ और के २०१ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६ (पंक्तियों का क्रम उलटा है), २२७, २२४, २२५; २३०, २३१, २२८, २२६, २३२, २३३, २३६, २३८, २३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५३, २७०, २६१, २६२, २५७, २६७, २६०, २६८, २६३, २५२, २५३, २७३ और २७४ नंबर के दूहे हैं।]

कागळ लिपि कुंकुं अखर, पाठवीयाः सैणोह।
ऊभी रहने वांचीयो टपकंटै नयणोह ॥ ३६५

[इसके आगे मूल का २७७ नंबर का दूहा है।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २७६, २८१, ३७०, २८३, २८४, २८५, ३००, ३०४, ३०५, ३०७, (५२७ च), ३४४, ३०८, ३११, ३१२,

---

* जहाँ कोष्ठक में नंबर देकर (च) लिखा गया है वहाँ समझना चाहिये कि वह दूहा (च) प्रति का है और मूल में नहीं लिया गया है। उस दूहे को परिशिष्ट में (च) प्रति में

३१३, ३४३, ३१६, ३२२, ३२३, ३१७, ३२६, ३२८ और ३१८ नंबर के दूहे हैं।)

टूंटो हुंतो डामिजुं, वाधो भूख मरूंह।
जावुं ढोलाजीरै सासरै, तो नागरवेळि चराह ॥४०४॥

[इसके आगे मूल के ३२०, ३२१ और (५४० च) नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३३३, ३३५, ३३६, ३४५ और ३४७ नंबर के दूहे हैं।]

सोरठा

रण करहो ने रात वदो पुंन्य आगलो।
खडीए एकण राति ढोलो घण उमाहियो ॥

[इसके आगे मूल के ३६४ और ३६५ नं० के दूहे हैं।]

दूहा

चिंता डायण मनि वसी, घण जिम तूटे खाय।
कबहेक तो कटारिया कबहेक जीव ले जाय ॥

× × × ×

मार सरीखो वलहो, पहिली रचण काज।
विरतौ पछै वलहो, चितथी हाली आज ॥

[इसके आगे मल का ३८२ नंबर का दूहा है।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३४८, ३४६, ३६३, ३६८, ३६६, ३५७, ३८०, ३८१, ३७६, ३६२, ३८६, ३८७, और ३८८, नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

सारस के मिस पातरी, जाणुं करहो थाय।
देखे थल उपर चढी, जाण पंखेरू जाय ॥ ४३० (?)

[इसके आगे मूल के ३८६, ३६०, ३६१, ३६२, ४१४, ४१५, ४१६, ३५५, ३६३, ३७५, ३७७, ३६७, ३६८, ४०१, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४११, ४१२, ४१३, ४१७, ४१८, ४२३, ३६६, ×, ×, ४०२, ४०६, ४०७, ×, ×, ×, ४२६, ४२७, ४३२, ४२८, ४३०, ४३३, (६०१ च) ४२४, (६०३ च) ४४२, ४४४ और ४४५ नंबर के दूहे हैं।]

ढो० मा० दू० ३९ (११००-६२)

एक रैवारण पंथ सिरि, जोवै करहा वग्ग ।
ढोलो फिरतो देखनें, तिण ढालो कियो अढिग्ग ॥४७८॥
× × × ×
[इसके आगे मूल का ४५० नंबर का दूहा है ।]
× × × ×
[इसके आगे मूल के ४४६, ४६३, ४७३, ४५६, ४५७, (६२१ च), ×, ×, (६२२ च), ४७४, (६२४ च), ४८४, ४८५, ४७५, ४६०, ४६० पाठांतर, ४७०, ४८२, ४६५, ४७१, और ४८७ नंबर के दूहे हैं ।]
मारू हदा नयण ढोउ, जेहा अर्जन बाण ।
जहि दिस देखे निजर भर, त्या दिस पडै चंगाण ॥५०६॥
[इसके आगे मूल के ४८६, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६७, ४६८, ५००, ५२१, ५२२, ५१८, ५०६, (६५१ च), ५०५, ५१२ और ५१३ नंबर के दूहे हैं ।]
करहा कांइ कहुकियो, भाभी माहि वणाह ।
ढोलो तौ ए कंवाईयो, उमाहियो वणाह ॥५२६॥
× × × ×
जिण कचै खरह कियो, तिण तू करह म मारि ।
कब चटका ले सहे, अवर . लहै गिमार ॥५३४॥
[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है ।]
ढोवे पाणी भाडि घरि, संबळ सूरह थणेहि ।
साइ सफोडो मारुई, ऊचलि गई वणेह ॥
कामण हदे कारणे नळवर छंड्यो राव ।
सयण मुंहा वेहुँ कहां, मो घंण मिलस्यै आज ॥
[इसके आगे मूल के ५२४ और ५२५ नंबर के दूहे हैं ।]
जिण कारण थळ लंबीया, तिया चिंतन काइ ।
ते साजन वैठा खुह सिर, करहो त्रिसीयो खाइ ॥५४०॥
करहा पाणी ढूक पीव, जे ढोलाको होय ।
ज्या वरि ए जुग मोहियो, रागि न छीतो कोय ॥५४१॥
भोलै वाहा कोखडी, फेर ण वाहै कोय ।
वैसै कोस कीकर छांहडी, जेतू ढोलोको होय ॥
जो म्हे जाणत वालहो, तौ करह न मारत कोय ॥५४२॥
× × × ×

सव्वे लोवडवालियां, न जांणुं घण काइ।
उघळदंती मारूई, लखण छोडावै पाय ॥५४४॥
सवे लोवड वाळियां, सब्बाई गळि हार।
एकणि मारू वाहिरो, बीजा सहू जुहार ॥५४५॥

× × × ×

[इसके आगे मूल के ५३५ और ५४१ नंबर के दूहे हैं।]

तन श्रृंगार्‌यो मारूवी, सिणगारणो सहू साथ।
अंगै चंदन महमहै, बीडौ सोहै हाथ ॥५५५॥

[इसके आगे मूल का ५४२ नंबर का दूहा है।]

उजळ दंत कपूर करि, मारू मुहडै दंत।
कैरै इणा हर लोडीया, कै लीया हाट विकत ॥५५७॥
ना र यणा यर लोडिया, ना लिया हाट विकत।
वेह दिया साईं, लिख्या, मारू मुंहडै दंत ॥५५८॥

× × × ×

[इसके आगे के मूल के १२४, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५२, ५५७, ५५९, ५५१, ५५३ और ५२८ नंबर के दूहे हैं।]

जिम अरहट आरमें, जळ सूकी गरि थाह।
सापरि आहै सजना, असा अरि सयणाह ॥५८७॥

[इसके आगे मूल के ५५५, ५६३, ५५४, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८ और ५८९ नंबर के दूहे हैं।]

करि सा कति सेझैं चढी, भिडेक भाजै नाह।

[इसके आगे मूल के ५९०, ५९१ और ५९२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६०० और ६०१ नंबर के दूहे हैं।]

मारवणी मुख सास में, कस्तूरी महिकाय।
पीधी पनग पीयणे, सास तणे सभाय ॥६२१॥

[इसके आगे मूल के ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०९ और ६१० नंबर के दूहे हैं।]

धुंगा धधूणी वितागरी, वार वेचार सबद।
तिण वेळा तिण छोकरी, सरळा कीधा सद ॥६२९॥

[इसके आगे मूल के ६११, ६०७ और ६०८ नबर के दूहे हैं।]

जिण धरा मझि पीवणा, भणावै भीव भवग।

....||६३३||

× × × ×

पीहर हंदी डुंबणी, घाले नवले घत्त।
मारू ढोलो उगरै, कहि समझावा वत्त ||६८२||
पीहर हंदी डुंबणी, फांघी नवली पेन।
मारू ढोलो उगरै, कहि समझावा वैण ||६८३||

[इसके आगे मूल के ६३१ और ६३२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६३३ नबर का दूहा है।]

करहा कस्तूरी कस्तुरी, उपरि भी (?) णी लोय।
साथ सुरंगो छाकियो, जौ निरवाहु होय ||६८८||

× × × ×

मारू चढती मारीया, दोय नेणाके बाण।
साथ सहै ते सुमरो, पडीयो जाड पछा (ठा ?)ण ||६६६||

[इसके आगे मूल के ६३६ और ६४० नबर के दूहे हैं।]

× × × ×

करहो कत कवेरियो, सुगणी मारू संस।
वो सै उमर सुमरो, ताता खडै तुरंग ||७०३||

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६४८ नबर का दूहा है।]

ऊंचा पंथ विषम थल, करहै लघा एह।
सो पिण त्रिणं पावा, थला,मति घोडा मारेह ||

× × × ×

ढोला मारू देस में, पाणी नीठ कढाइ।
भलो अम्हीणों देसडो, सेंवज जल पीवाइ ||

[इसके आगे मूल के ६५७, ६५६, ६५५, ६५६, ६६१, ६६२ और ६५८ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६६ और ६६८ नंबर के दूहे हैं ।]

मालवणी ढोलो कहै, सुनमणि देखां साच ।
मारू मिलिया धृत हुई, उर सकल जग काच ॥

[इसके आगे मूल का ६७० नंबर का दूहा है।]

झगडो भागो नारिया, ढोलइ पूरी साख ।
मारू खंड अमोल त्रिय, वीवी गलु म दाख ॥ ७६१ ॥०

[इसके आगे मूल के ६७१ और ५५४ नंबर के दूहे हैं ।]

ढोलो मारू परणीया, जदिका ए सहिनाण ।
घण भटियाँणी मारवणि, प्रीव ढोलो चहुवाण ॥७६४॥

× × × ×

यादव रावळ श्री हरिराज । चोडी तासु कुतूहल काज ।

....

दूहा घणा पुराणा अछै । चौपई बध मैं कीधो पछै ।
इधिको ओछो जे जोड्यो बहु । सो कवियण सॉसहि ज्यो सूर ।
पडियो छै गिइा वळी पातरो । तेह विचारी करिज्यो खरो ।
संवत सोलह सतरौतरै । आखात्रीज दिवस मनि खरै ।
जौडी जैसळमेर मझारि । वाच्या सुख पामै संसार ।
साभळ सँण चतुरि गह गहे । वाचक कुसळलाभ इम कहै ।

....

इति श्री ढोला मारू चउपई समाप्ता ।

सं० १७८१ रा पोषमासे शुक्ल पक्षे पंचम्या तिथौ बुधवासरे
लि० पं० श्री किसनदासेन ग्राम शिवपुरी मध्यै ।

[यह प्रति बीकानेर निवासी बाबू जयपालसिंह द्वारा प्राप्त हुई थी एवं उन्हीं के पिता के निजी पुस्तकालय में है। इसमें पूरी प्रस्तावना दूहों में है जो किसी अन्य प्रति में नहीं पाई जाती पर वहाँ का एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से कई दोहे अप्राप्य हो गए हैं। इसका क्रम बीकानेरीय कथानक के अनुसार है। इसमें जो दोहे मूल से अधिक हैं वे ही नीचे दिए गए हैं। इसका पाठ शुद्ध है।]

९० ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीरामजी ॥

मारवणीरी उतपति हुई। ढोलैजीरी कथा

दूहा

* सरसत मात पसाव कर दे मो अविरळ मत्ति।
भोगी भमर भुआळ जे गुण गाऊँ तसु भत्ति ॥ १ ॥

* बोताँ नरवर इणि जुगै सबहुं धुर सिणगार।
राणै सुरनर रंजीयै अबला तसु आधार ॥ २ ॥

* वचन विलास विनोद रस हाव भाव रति हास।
प्रेम प्रीति संभोग रस कै सिणगार आवास ॥ ३ ॥

* गाहा गूढा गीत रस कवित कथा कल्लोल।
चतुर-तणा मन रींझवै कहिया कवि कल्लोल ॥ ४ ॥

गाहा

* मणहर नवरस मझ्झे सुंदरि नारीण सरस संबंधा।
निरुपम कहै निबंधा सुणंत सैणा जाण सुगणा ॥ ५ ॥

दूहा

देसाँ माँहे दीपतो परगट पूगळ देस।
तिहाँ नरनारी नीपजै निरुपम नीके वेस ॥ ६ ॥

---

* इस चिह्न से अंकित पद्यों के अतिरिक्त कोई पद्य किसी अन्य प्रति में नहीं मिलता।

कवित्त

मुरधर देस मझार सयळ धण धान समिद्धौ।
नामै पूगळ नयर पुहुवि सगळै परसिद्धौ॥
राज करै रिखिराइ प्रगट पिंगळ तपंतो।
प्रतपै जगत प्रताप दान जळहर दीपंतो॥
देवडी नाम ऊमा घरिणि, मारवणी तस धू कुँवर।
चौसठि कळा सुंदर चतुर, कथा तास कहिसु सपरि॥ ७॥

दूहा

ऊँचा मंदिर चौपणा ऊचा घणुँ आवास।
अजब झरोखाँ जाळीयाँ छीस्यॉं सूँघावास॥ ८॥
राज करै राजा तिहाँ पू (पिं)गळ जाण प्रवीण।
सींभळियाँ भीमो रहै निसि वि(?दि) न नेहै लीण॥ ९॥
अतारॉं अमल करै सबळ सुहड़ अति रंग।
कोटडीयाँ कळहळ हुवे राग छतीसे रग॥१०॥
भला सुहड़ ब्रहास भल भली राजरी रीत।
राज लोक राणी सहू पाळ अहिनिसि प्रीत॥११॥
मन सुधि जेसळ मानिजै षरो साणि षवास।
इक दिन चढी रामतै सुहड़ सुहले पास॥१२॥
चढीयो मनरी चूँपसूँ खडीयो साथ खवास।
राजा म्रिग देखी करी वासै दीयौ व्रहास॥१३॥
राजा तिहॉं किणि आवीयो पड़ीयो अटवी माहि।
त्रिषा बहुत लागी तरै व्रिष नीचै वहि जाहि॥१४॥
व्रिष नीचै बैठो तिहॉं माणस छागळ साथ।
ब्रहम आउ दीधौ तिणै भाट ऊँचो करि हाथ॥१५॥
अति शीतल अम्रित जिसो पायो परघळ नीर।
राजानुं आणंद भयो सुख पामीयो सरीर॥१६॥
तिणनुं राजा पूछीयो, कुण तु, जाइस केथ।
भाट कह्यौ राजा भणी, मॉंगण आयौ एथ॥१७॥
राजा तूठा तिणि भणी, कीयो पँचाँग पसाव।
बेऊँ बैठा एकठा, पूछै तिणनु राव॥१८॥

अहो भाट, दीठी किती धरती रामति काय ?
कहौ काई नवली वारता, जिण मो अचरिज थाय ॥१६॥
कही (? है) भाट, राजा सुणो, दीठा बोहळा देस ।
रामत ख्याल विनोद रस नारी निरुपम वेस ॥२०॥
काई अनोपम कामिनी दीठी किणही ठाई ।
जिण दीठै मन रीझियै, मोनूँ साच बताय ॥२१॥

कवित्त

* पाणीपथ तुरग, पंग चंगो पुरसाणी ।
बीया नगर सहु सत, निरमळ गंगानो पाणी ॥
पटकूळ पट्टणी, देस भोगी धुर दक्खिण ।
कुंजर कदळी खड, विपरीति नीति विचक्खिण ॥
तिम चंदवदन चंपकवरण दंत झबकै दामिनी ।
सारंगनैण संसार इण मनहर मारू कामिनी ॥२२–२४॥

दूहा

* गिरि अढार आबू धणी गढ जाळोर दुरग ।
तिहाँ सामँतसी देवड़ो अमळी माण अभंग ॥२५॥
सबळ सेन तेहनै घणी मोटो घस सुभाव ।
दुसमण डर मानै घणो देखी तिणरो दाव ॥२६॥
पटराणी अपछर जिसी रंभाकै अणुहार ।
तसु धी ऊमा देवड़ी अवर नहीं संसार ॥२७॥
* चंदवदन चंपक वरण अहर अलता रंग ।
पत्तरनैणी प्री (? खी) ण कटि कोमळ नेत्र कुरंग ॥२८॥
* अति अद्भुत संसार इणि नारी रूप रतन ।
आछै ऊमा देवड़ी कुमरी कंचन - वन ॥२६॥
जो तुझ सारीषी जुड़ै भामिणि तिण भरतार ।
जोड़ी राही कान्ह ज्युं सो मेळै करतार ॥३०॥
राजा सामळ रींझीयो जाग्यौ अधिक सनेह ।
प्रापति हुवै तो पामीयै सैणा मिळण सनेह ॥३१॥
साथ सवे आयो वही राजा ऊठ्यौ धाम ।
भाट भणी साथे लीयो आवयो पूगळ ठाम ॥३२॥

ऊतारो तिणनै दीयो कीयो पँचाँग-पसाव।
वळि पूछै तिणि भाटनै, कहि कोई दाव-ऊपाव ॥३३॥
राजा मन खटकै घणूँ ऊमा अहनिसि जेह।
भूप गई तिस वीसरी नवि दीठाँरौ नेह ॥३४॥

इक अणदीठाँ मिट्ठडा इक दीठाँ ही मिट्ठ।
इक अळगाँ हो मिट्ठडाँ ते मैं विरळा दिट्ठ ॥३५॥
राजा परधाना-भणी कह्यौ ज लेइ नाम।
वळि पइखण वेळा नही कीयो चाणज्यौ काम ॥३६॥

तेहि ज भाट परूचीयौ जेसळ साथ षवास।
साथै सबळौ साथ ले आयो जाळोरै पास ॥३७॥
वंस छतीसाँमै वडौ सामतसी महाराय।
आए मिळीयो चूपसूँ आणँद अंग न माय ॥३८॥

आदर मान दीयो घणो, कीधी भगति तपण।
आया भुँइ अळगी घणी, कहो स, कारण केण ॥३९॥
सुगण माँणस कहै तिके, कारन एहो जाँण।
पिगळराजा कुवरी माँगी घणौ मँडाण ॥४०॥
तब सामँतसी बोलीयौ, आया ते परिमाण।
कुँवरी-इंदो नातरो पहिली कीधो, जाण ॥४१॥

सातसै गुज्जर-धणी उदैचंद तसू राइ।
कुवरी रिणधवळाँ भणी पहिली दीधी जाइ ॥४२॥
वळतो जेसळ बोलीयो, कीजै तो हिव सीख।
जिम म्हे जावाँ आपणै देस ऊतर दीख ॥४३॥
जितरै झाली साभळयो, पूगळरा परधान।
आया ऊमा मागवा जावै पाछौ जाण ॥४४॥

राजानै राणी कहै वात विमासी जोइ।
कुमरी पिंगळ दीजीयै तो जोड़ी सम होइ ॥४५॥
गाँडा लोक गुज्जर-तणा रोगे देही पूर।
कँहाँ किम ऊमा दीजीयै देस भूमि अति दूर ॥४६॥
वात नवीनी पाइकै लगन न नैडौ थाप।
तियनुं माणस मूँझस्याँ आइ न सकसी आप ॥४७॥

लगन दिनै पूगळ-धणी जो इहाँ किणी आवाइ।
तो कुमरी परणाविस्याँ एहवो कीयो उपाई ॥४८॥
जेसळ मिळायो राइनै पिंगलनै कहि वात।
आपै गढ पूगळ-धणी जाइ करेस्याँ जान ॥४९॥
जान सहू सझि करी सुभट घणा ले साथ।
चाल्यो राजा चूँपसूँ अनरगळ लेई आथ ॥५०॥
गोधूळक वेळा हूई जोवता नाई जान।
पिंगळ आयो जाणनै दीजै आदर मान ॥५१॥
राजा राणी परि सहू निरखे पिंगळराइ।
... ... ॥५२॥

[५२ से ७६ तक के दूहे, पन्ना खो जाने से, अप्राप्य हो गए हैं।]

मवड़ वाधी मारवी आई अवतरी पेट।
पूरे मासे पदमणी जनमी रतन ज पेट ॥७७॥
उछव कीया अति घणा, हरख्यो साजण लोक।
राणी मन हरिखित हुई, जिम रवि दरसण कोक ॥७८॥
* सुंदर रूप सुहामणो, अपछररै अणुहार।
पदमिण एह सहू कहै भ्रमर करै गुंजार ॥७९॥
* वरस पाँच वोलया पछी, तिसड़ै मेह न वुठ।
खड़ पाखै सहू एकठा, हुआ माणस मन मठ ॥८०॥
* पिंगळ ऊचाळो कीयो, आयो पुहकर तीर।
खड पाणी परवरळ तिहाँ, सुख पामीयो सरीर ॥८१॥

इतरी तौ मारवणीरी उतपति कही। हिव ढोलारी उतपति कहै छै।

हिंव किम ढोलो नीपजै, देव-तणै परमाण।
लेख मिलै अणलाणीया, भावै जाण म जाण ॥८४॥
नळ राजा नरवर रहै, आछै रिद्ध अपार।
भली अनोपम भामिणी, सुख माणै ससार ॥८५॥
इक चिंता मनमें घणूँ, नहीं ज पुत्र रतन।
तिण पाखे लागै इसो, जाण अलूणो अन ॥८६॥
डाहा माणस पूछीयो, तिण कह्यौ एह उपाय।
पुत्रा सही थास्यै भलौ, पुहकर देव मनाय ॥८७॥
जात्रा वोली राइ तिण, हूवो पुत्र रतन।
उछव कीया अति घणा, सह को कहै धन धन ॥८८॥

राजा मनमै चिंतवै, साए करिवी गात।
रासि सूंपि परधाननै, 'राय चढीयो परभात ॥८६॥
साथे रिधि लेइ घणी, आयो पुहकर तीर।
जत्र करे मन हरखीयो, निरमळ सरोवर नीर ॥६०॥
तिहाँ किण पूगळ आवीयो, नेड़ी वसती दिट्ठ।
जाइ मिळीयो राजा तिहाँ, मन सहेजै मिट्ठ ॥६१
* इणि अवसर घण उमस्यो, प्रगस्यो पावस मास।
पासइ पिंगळराइनै, कीयो राय तिहाँ वास ॥६२॥
* ऊनमीयो उतर दिसा, गैण गरज्यो घोर।
चिहुँ दिसि चमकी त्रिजली, मडे तंडव गिर मोर ॥६३॥
* च्यार मास निश्चळ रह्या, सरवर तणै प्रसंगि।
पिंगळ नळराइ भूपती, मिळिया मनमै रग ॥६४॥
इक दिन नळ राजा तिहाँ चल्यो सिकार प्रभात।
रमताँ सिसळो नीसर्‌यौ दीयो घोड़ो दे लात ॥६५॥
जातो पिंगळराइनै गयो अतैउर माँहि।
सूती ऊमा देवडी कढि नीचै वहि जाय ॥६६॥
देखी ऊमा देवड़ी राजा थभी वाग।
जे मार्णै इणि नारिसुं तिणरो मोटो भाग ॥६७॥
तुरत राय पाछो वळ्यो आयो सगळो साथ।
पिंगळ आडो आवीयो मिळीयो भरनै वाथ ॥६८॥
राजा ऊतरयौ करि मया पीयो पछाडी पैण।
कह्यो अतर क्युं राषीयै जे ससनेही सैण ॥६६॥
साथ सहू तिहाँ ऊतरयो नळ राजा ससनेह।
कीधी भगति भली परै पिंगळ राजा तेह ॥१००॥
आए बैठा एकठा करण कुतूहळ केळ।
सारी पासा सोकठा राजारै मन मेळ ॥१०१॥
* सुप्या वागा सावटु कोड़ीधज केकाण।
आम्हो साम्हो आपीया प्रीत चढै परिमाण ॥१०२॥
कुमर अनोपम माहरो दीजै देव कुमार।
तिणनै मारू दीजीयै सम जोड़ी संसार ॥१०३॥
तव राजा पिंगळ कहै वात एह प्रमाण।
सही करेस्या नातरो पूछीनै परमाण ॥१०४॥

राजा ऊठी आपरौ डेरे आयो धाम।
पिंगळ राणीनुं कहै कुमरी देवाँ आम ॥१०५॥
आखइ ऊमा देवडी वालँभ हीयइ विचार।
मन सकोडी मारवी वात समंदा पार ॥१०६॥
कंता अणदीठो कुमर कीयो नातरो कांइ।
पीउ पटराणीनुं कहइ जिहां सिरजो तिहाँ जाइ ॥१०७॥
अति मोटे आडंबरै कीयो वीवाह तएण।
अरथ गरथ वहु खरीचिया नरवर राय जिएण ॥१०८॥
इति धुर-सबंध छै।

[मारू रूप-वर्णन]

मारू कुच युग कठिन अति कंचण-कळश शृंगार।
रूपावळि विचमै वर्णा विसन देत आधार॥

गाहा

विरळा जणंति गुणा विरळा जाणंति निरधणा मेहा (? नेहा)।
विरळा परकज्ज करा पर दुपे दुषीया (? दुषीया) विरळा॥

(मारवणी का सदेश)

जइ सरै नुरह वह्नो, वसंत मास च कोइला मरए।
विभ सरै गइंदो, तह अम्ह मणां तुमं सरई ॥९०॥
सहरै सीयरायो सू पणि कन्हौ इन लोइद वदंती।
गोरी सरै ति नयणो तइ अम्ह मणां तुम्हं सरई ॥९१॥
पर्डार जेम भरीय मह हीयं सजणा ण गुणवाए।
अवगुण एक न पुज्जै पढमं चिय न यितं ठाणं ॥९२॥
जेण विणा नइयाय वडिय वडिया अ अद्ध अद्ध च।
तेण विणा गय काळ हा हीया वज्ज वडिओ सि ॥९३॥
तुम्ह नाम उयर वरीय तुह गुण गुणेण गुथिया माळा।
तुम नाम कयं मंतं जपतो वासरं गमई ॥९४॥
चित्तं तुह सथ तुह गुण तुह गुणेण अवण संतोसो।
जीहा नाम गहणे एग दिट्ठी तडफडए ॥९५॥
मा जाणसि मित्र तुम्हं निसिवासर वीसरेण।
खिणमंतं जइ व कंमयाण सूरं चंदं जहा चकोरेण ॥९६॥

नेहो कहै वि न कजै अह किजै किल रंग सारिखो ।
जेतळाह मझि दिनो तह विन रंगं व (? न) छुडंति ॥९७॥
नेहो कहि वि न किजै अह किजै रन्न कंव सारिखो ।
सजण गुणाण संगो नहु विडै जाव जीवति ॥९८॥
सजन वसति दूरे चिति नेहेण हुति आसंगो ।
गजंति गयण मेहा मोरा नाचति भूवळए ॥९९॥
मम आणिस वीछरीयं तुम्ह मुह कमळ विदेस गमणसि ।
सूनो भमै करंको जथ तुम्ह जीवीयं तं तथ ॥१००॥

दूहा

सजण हम तुम एक हैं अवर मिल्या ए लेख ।
मुझ तुझ हीयड़ो एक है भावै काढी देख ॥
प्रीतम प्राण अधार तूं मनमोहन भरतार ।
प्रीतम सभळि प्रेम भरि संदेसा सुविचार ॥

गाहा

मुंडे मुडे मतिर्भिन्ना कुंडे कुडे नव पयः ।
देशे देशे नवाचाराः नवा वाणी मुखे मुखे ॥

दूहा

हंसानुं सरवर घणा कुसुम घणा भमरॉह ।
सुगुणां सज्जन घणा देस विदेस गयाह ॥

[ढोला-मारवणी-मिलन]

मारवणीका विषै सुख ढोलौ विलसै जेह ।
ते सुख जाणे ईसवर कै वळ जाणै तेह ॥
मनमोहन इक कामनी वळे सुरंगा मेह ।
रंग लुबध राचा रह्या जिम मइणा नै मेह ॥

(कुल दूहा संख्या ४६२)

इति श्री ढोलामारूरा दूहा संपूर्ण ॥

[यह प्रति जोधपुर राज्य की पुस्तक प्रकाश लाइब्रेरी में वर्तमान है। पाठ अशुद्ध है। नए दोहे बहुत से हैं। लिपि काल सवत् १८१२ है। परिशिष्ट में केवल नए दोहे दिए गए हैं।]

श्री ढोलामारूजीरी वार्त्ता

× × × ×

खड खळ कागिए सोभीया देसे दंव दुकाळ।
नरवर देस सोहामणो नरवर देस सोकाळ ॥

× × × ×

धन वड कुल आप वड जे वड चोरू होय।
तिहुँ परकारे सरता कंथ करीजे सोय ॥

× × × ×

सोरठा

मार्भी अवली माग पुंगळरे घरे पधारीया।
सवई मिली सुजाण वरणो ढोलारि कीड ॥

× × × ×

दूहा

मारू सिर महेलीया, ढोलो सिर कुंअरा।
कडुआ बोल न बोलही, मीठा बोलहीया ॥

× × × ×

गळि (?) नेमे मढही, तोरण रंभा मोल।
गांम वधेरे परणीया मारवणी ने ढोल ॥

× × × ×

सोरठा

राजा भीम नरंद, तणारी धु माळवणी।
सुंदर सिर मकरंद, ढोलो मारू परणिया ॥

× × × ×

दूहा

× × × × अण गळ दीन अहथ ।
ढोलो अत सुख भोगवे मालवणीरे सथ ॥
× × × ×

सौदागर वाक्य

सो जोजने मेळीया ढोलो कुंअर तंमेह ।
कहुँ गुण केही• परहरी वध दापवुं अमेह ॥
देस घणाई जोवीया रूडो पाटण पीठ ।
नरवर ढोलो रंजीयो मारू पुंगळ दीठ ।

सखी

सजण अण सजण हुआ ओह अळथा भार ।
विरह महासिर उलटे फंत न कीधी सार ॥
× × × ×
सखी सहिजां माणसा सपनंतर मिळियाह ।
फट रे नयण पापीया जागे निगमीयाह ॥
× × × ×

चंद्रायणा

सुती थी सुख सेज सुपना पाईया ।
जब जागुं झटकाय कबु नही पाईया ॥
विधना लखत जंजाळ कि धंधा लाईया ।
....× ॥
× × × ×
साझे सुपना पाईया धण जोवण मिमंत ।
जाणु ढोलो जागवी केसर भीने फंत ॥
सो पीउं छुंदि हथडे सरस पत्रीभत ।
जाणुं ढोलो जागवी गळती मझम रत ॥
× × × ×
आडा डुंगर व्रखवन ढोलो हिअडा माहि ।
स अमलं जां वीछडे × × × सुणाइ ॥
कागंळ गळीया मिस ढुळी सरफन आहुवद दघ ।
ढोले मन वीसारिया फेवाटं आया वग ॥

ढोलो ढाली इट मझ दीठा घरो नरोइ ।
लाल सुरगे कपडे सावर घन अंगोइ ॥
वरइ मारी वो करे सकि न ऊमी होय ।
टई वह मारी जीवकु हाहा करे न कोय ॥
×　　×　　×　　×
आधा होश्रे न पीउ...न पख वाउ लहत ।
दीठा विण ढोलो कुंअर मारू किम जीवत ॥
×　　×　　×　　×
मागण माहिल सदेसडा पुहचाया श्री लग ।
कावळ तिलक निलाट को मो उमा हीं भग ॥
कागळ गळीया आसुए तिलक किसी गुण तंग ।
पड पड पणग पहावरि श्रु छुटि छुटि लग ॥
×　　×　　×　　×
उतर खंढ उमंडीयो आलुवंन सहति ।
सुंदर हेवि म्हा सीखदे मनवे रूळीया अति ॥
×　　×　　×　　×
छरति बारे मास गणि फिर आवीयो वसत ।
सो रित मुझ बताइदे त्रीय न सुआवे कंत ॥
×　　×　　×　　×

ढोला—

ढोलो कहे म साहणी वाली अंतळ आस ।
सौंझे पुंगळ पुगवे कोइ एहडो वरहास ।

मसाहणी कहे—

ढोलो हेकण दीहाडे तुरी न पुंहचे कोय ।
एतो पुजे करहलो मन उमाहो होय ॥
×　　×　　×　　×
सूश्रे आण सुणावीया ढोला कहीया जेह ।
यइ मरछागति माळवणी सखीयां चापे देह ॥
×　　×　　×　　×

ढोलोनी चालता थका ततरा मादे ववेरारे ताळव आयां नीसरीया ढोलेनीं तोरण थमो दीठो हेकण माणसने पूंछीयो, ए थंभ तोरण छे सो कुंण परणीया छै, तद उणि आदमी दूहो कहीयो ।

ऐ थे ज चोक पूरावीया परणी पढे पुराण ।
घन भटीयाणी मारवणी ढोलो कूरम राण ॥
पुगळ वाजा वाजीया नरवर हुआ उछाह ।
ढोलो मारू परणीया वधेरे बीवाह ॥
पोहकर पींगळ आवीया तोरण थंभा तेथ ।
नव अखर लखीया खरा ढोलो परणीया जेथ ॥

× × × ×

अेत न चंदण बावनो नागर वेल न थाय ।
भुरट थळ मझि फोक वह करहो कासुं खाय ॥
करहा को पंजर वडो ओछी बुध सरीर ।
चाखत लोही नीसरे मुख घातीयो करीर ॥
करहा पींपळ पान चर आगे मरषि भूख ।
जासा उणहीज देसडे वे फळ वहीज रूख ॥

× × × ×

ढोलोजी ऐवाळने मारग पूछण लागा । ऐवाळे कहीयो पूगळ थाहरे कासु काम छै, ढोलैजी कहीयो म्हारे सासरो छै ।

× × × ×

जण गांम ऐवाळ रँहतो हुतो अण गाम ऐक लुगाईरो नाम मारूणी हुंती । ऐवाळजाणीयो वा मारू । ऐवाळ कहण लागो मारू तो माहरा साथ मांह छै । काले म्हारी छाळ चारती हुंती ।

× × × ×

ढोला

थळ माथे जळ बाहिरी कोयल रूप करूर ।
मीठा बोला घण सहा वे सजण रहीया दूर ॥

× × × ×

ऊमर सूंमर सारंग भाट मेलीयो—.........

× × × ×

ढोला

पूगळ हूँ पाछो गयो ऐतो गढ दसाय ।
मारग देक पंथी मले ढोलो पूछे ताय ॥

ढो० मा० दू० ३६ (११००–६२)

पिंगळरायरी पदमणी तो मारवणी दीठ ।
इसी न्है बात करी सा करहंतो मीठ ॥

× × × ×

देक रेबारण पंथ सर चोवे करहा बाट ।
ढोलो वळतो देखकर मन(?)बण थयो उचाट ॥

रेबारण

दुरजण केरा बोलड़ा मत पंतरज्यो कोय ।
श्रण हुंती हुंती कहे सगळो साच न होय ॥

× × × ×

ये ढोला तीन बरसरा वन बारे छ मास ।
सारु किम दुंती नई सो ये लीन वलास ॥

रेबारण इयुं कहे ठरे आवा गवड़ीया । माता थर्मा करहानें फंद नाहीं । कहो कहुंबीयो । वाद । च्यार चढ़ेळा समवा नीकळो थी । तदे दूले कवके । चढ़ेरो बरस बारमें छै । के पण बरस बारमें छै । तके चढ़ेळा करहारो कहुंको सामळीने दूहो कहे छे ।

देथ भंगु कहुंबीयो (दूजो कहे) सम थवांद ।
(तीजो कहे) नदीट कंमंट यो (चोथी कहे) डमाहियो वराह ॥

× × × ×

……चारण……ढोलाने सामो मिळयो……

ढोला

पथ मलंता मांग्हा गढवी दीठो सात ।
हमवे ढोलो पूछीयो कदो कांइ मारु बात ॥

× × × ×

वाणी श्रवळ सुव वचण गुणसागर बडगात ।
ढोलो पुलक आवता पंथ मळे कवि पात ॥
गढवी ढोलाने कहे तु मारो नरपति ।
म्हांसूं माचो अखजे मारु केही गात ॥

गढवी चारण

ढोला दीठी मारवई खरी गुढ़ाडे हट ।
हाट गुढाई वाणिये वळद गमाया चट ॥

अरक दं (? चं) दण निस केवडो कसतुरी कडि कटि ।
ढोला दीठी मारुई खरी लद्राडे हट ॥

× × ×

अहर पयोहर नख नयण मारू ? एह ? मुख्ख ।
ढोला दीठी मारुई आर थोक चख्ख ॥

× × ×

नख जेहा चंपा-कुळी, नयण छतीसेइ वाण ।
मारू मीर ववा जम तागे हगे जयाण ॥

× × ×

संध कळाई नयण सर गुण पापेणि तागेह ।
मारू मीर च वाव ज्युं, नह चुके बागेह ॥
वदन तसु ससिहर धुंह (? भुह) भमर उरि गम र गेहज ।
मारू पारे अहर जम, आँखी राता मझ ॥
ओढण आसी अंबरी, हाथे कऋण कछ ।
मे घर दीठी मारुई, हीम वरणो वंछ ॥

× × ×

मारू पुगळ उपनी, हीरा दत सुसेत ।
गंगा जेही गोरडी, खंजन जेहा नेत ॥
उर झीणी कटि पतळी भ्रुह वक ब्रवंक ।
चाढे मेली कबाण कळ मारिसुं धन संक ॥
मारू इंदा दोय नयण, जाणे सार कबाण ।
जन दिस देखे नयण भरि तिण दिस पडे भगाण ॥

× × ×

म्हेतो मारू नथीये, म्हे मारू की दास ।
जो खाडी तोहो पतळी, दुध न पूजे बास ॥
खंजन नेत्र मुणाल गति, नासा दीपक लोय ।
ढोलो रूळीयायत हुयो, जब धन दीठी जोय ॥

× × ×

महादेव पारवती आया—

तो हुंता ढोलो कहे, कूडी गल मा कत्थ ।
हवे तो जीवण एकठा, मरतो मारू सथ ॥

× × ×

तात भरणके प्रिव पिवे, करह उगाळे वेल।
ढोलो चकीयो डारुयो, मारू करहो मेल ॥
सयण पल मझ मंढीया, एहा रंग सुरंग।
घण लीजे श्री मारजे, छाड विटोलो संग ॥

× × ×

करहो कावे भेंगीयो, सुगणो मारू सग।
वाझे उमर सुमरो, ताता खडे तुरंग ॥

× × ×

मे (? उमर) दीटी मारुई, चीता जेही लफ।
वानर श्रावा डाळव्युं, श्रापे चडे डरफ ॥
प्रीयु ढोलो श्रीय मारुई, करहो कुंकुं व्रन।
उमर दीठा एकठा, वडा म तीन रतन ॥

इति श्री ढोलो मारुणीरी वात लंष्येते ॥ सं० १८१२ वर्षे शाक १६७७ प्रवर्तमाने श्री ५ श्री पदमाजी मनराषी भाँणषी लषत जेषीजी पर्पनाथ मगर पोष वद २ दने श्री ५ श्री जोरावरसंघजी सच से जी ॥

(ठ)

[यह प्रति जोधपुर राज्य की पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी में वर्तमान है। पन्ने आपस में चिपक गए हैं जिससे पढ़ने में नहीं आती। इसके कुछ नए दोहे नीचे दिए जाते हैं।]

॥ दूहा ढोला-मारू छै ॥

कान कडी पग नेउरी हाथे कंकण कछ।
म्हे घर दीठो मारुआँ हेम वर नु वछ॥
कंथा अणदीठी कुँअरि करि न सनमंध कोइ।
अन विषि या दीकरि हासुं करसी लोइ॥
धन वड कुळ वड आप वड जे वड चोरू होय।
तिहुँ परकारे सरतॉ कंथ करीजै कोइ॥
नळवर-राजा-तणो ढोलो कुँअर अनूप।
राणी पिंगळ रावरी रीझी देषे रूप॥
मारू सिर महेलीयॉ ढोलो सिर कुअराँ।
कडूआ बोल न बोलही मीठा बोलहीयॉ॥
कूभडीयॉ कळीयर कीयौ टोलैं टोलैं वीस।
मारू पडढे एकली उर सुं चपे ईस॥

[यह प्रति बीकानेर के राज्य-पुस्तकालय में वर्तमान है। इसका पाठ प्राचीन नहीं है पर शुद्ध है।]

अथ ढोले मारूरी वात।

[इसके आगे मूल के १, २ (पक्तियों का क्रम विपरीत है), ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५६, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०८, ११०, १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १८२, १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, २१४, ११७, १७२, १७३, १७४, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, १९८, २००, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, ३०१, २९७, २९३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७२, ३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२,

[४६६, ५००, ४६६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०, ४४६, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५६, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८६ और ४६० नंबर के दूहे हैं।]

वीछू मोहर पधारीयो कहण सॅदेसा काज।
अमल सुरगा सालह कर, आयो चढे निहाज ॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१६, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२६, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५६, ५५३, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६६, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७६, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४६, ५५०, ५८१, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६६, ५६८, ५६६, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१६, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२६, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४६, ६५०, ६५१, और ६५२ नंबर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा संख्या ३६१]

इति श्री ढोलेमारूरी वात संपूर्ण।

[यह प्रति बीकानेर के राँगड़ी जैन उपाश्रय के अभयसिंह भंडार में है। यह प्राचीन नहीं है। नये दूहे बहुत से हैं। इसमें चौपाइयाँ भी हैं। यहाँ केवल नये दोहे लिए गए हैं]

श्री सारदाय नमः।

ढोला मारुरी चोपई लष्यते।

× × ×

दोश्र पचासै त्राविया, कोन को कोटार।
वाथा मर मर काढता, कुणही न पायो पार ॥ ३ ॥

× × ×

दूहा

दाने जग कीरत होश्रै। वेरी पण वस थाय।
दीवें नव निध संपजै। दीधैं माने राय ॥३६॥

× × ×

वर परणेवा संचरयो, कीधा सोळ सणगार।
मसतक मुकुट सोहामणो, उर श्रेकावळ हार ॥६५॥
पहरी वस्त्र विसेपथी, पटकूळ नव रंग।
पग लाखीणी मोजडी, चढीया दुळ चत्तुरंग ॥६६॥
काने कुंडळ रयण मै, बाजुबंध श्रमुल।
रतन जडित वर मुंदडी, वीरवळी बहु मुल ॥६७॥

× × ×

लाडे कोडे लाटयो, लाडी परणयो जेह।
विसमय पाम्यो श्रति घणो, देखी कुंमरी तेह ॥७४॥

× × ×

वण दीपक मंदिर कशो, वण पूतां परिवार।
कशी महेली कंत विण, घृत वण श्रळप श्रहार ॥१५५॥

सींगाळो अर खेलणो, जस कुळ एक न थाय ।
तास पुराणी वाड ज्युं, दिन दिन माथे पाय ॥१५६॥

× × ×

चौपई

मायताय मन पुगी हाम, साळ कुमर तस दीधो नाम ।
मरतवंछा माता पै होय, ढोलोनांम कहै सहु कोय ॥१६१॥

× × ×

दूहा

खाणा पीछा खरचणा, जग रेखी गलाह ।
सा पुरसा का जीवणा, थोडा ही भलाह ॥१६३॥

× × ×

जन्न नळ आते अटकळयो, परतख जात पुआार ।
लक्ष वळै दोइ तीसरो, ससलो पुछ समार ॥१७७॥

× × ×

माळवदेस महीपती, भीमसेन भूपाळ ।
कनका कुमरी तस तणौ, सुंदर अति सुकमाळ ॥२१२॥
परधाने नळ रायने, मांगी वडे मडाण ।
जोता जोडावो मिल्यो, प्रीत वधी परमाण ॥२१३॥
भीमसेन भगताविया, नळराजा वरधान ।
नलनंदनसुं नातरो, मेल्यो बहु मान ॥२१४॥

× × ×

कर मोचन दे कुमरिनै, मणी मांणकनी कोड ।
हय गय रथ पायक दिया, कनक कुडळना कोड ॥२१८॥
वागा वेस सोहामणा, भुखण मोती माळ ।
कनक कचोळा जडावरा, सुदर सोवन थाळ ॥२१९॥
पंचरंग दीधा ढोलिया, पुतळी पागे जाण ।
सेझ सुंहाळी अति भली, रेसम वणीयो वांण ॥२२०॥
सोवन चोकी सोवटा, पासावळि नवि रंग ।
दीवा झारी गाल मसुरी, उभउ सीसा अति चंग ॥२२१॥

× × ×

चौपई

कनकावती तसु कुमरी नाम, अति सरूप अपछर अभिराम ॥२२३॥

दूहा

× × ×

मिसरी मीठी सहु कहै, तिणथी मीठो दुध।
मीठी वात सयणा तणी, आदि कहै कुल सुध ॥२४०॥

× × ×

वीजळीया झलमलै, आभै आभै दोय।
कदी मिलू उण साहिबा, कस कंचुकी खोय ॥२४९॥
वीजळीया झलमलै, आभै, आभै तीन।
कदी मिलू उण साहिबा, सावण पहली तीज ॥२५०॥
वीजळीया झलमलै, आभै आभै च्यार।
कदी मिलूं उण साहिबा, लाम्बी बाह पसार ॥२५१॥
वीजळीया झलमलै, आभै आभै पच।
जण दिन वाला लागसी, सोडउ सीसे मच ॥२५२॥
वीजळीयां चहला वहल, आभै आभै षट।
कदी मिलूं उण साहिबा, करी उघाड़ा गत्त ॥२५३॥
वीजळीया चहला वहल, आभै आभै सात।
कदी मिलू उण साहिबा, करी उघाड़ा गात ॥२५४॥

× × ×

वीजळिया गळ वालला, मेहा माथे छत्र।
कदी मिलूँ उण सजणा, करी उघाड़ा गत्र ॥२५८॥

+ × ×

करभढि हाथ सदेसडा, नवि दीजे अजाण।
पंख गळै नैं मसि गळै पढी संदेसै हाण ॥२६१॥
सायर डडा जळ घणा, पर घर पेट नराह।
मागी तागी पंखड़ी, केती वार लहाह ॥२६२॥

× × ×

कुरभढि साम्रे माळवे, कहै अमीणा कंत।
ढोला आगळ यूं कहै, तो विण किसो वरतंत ॥६४॥

× × ×

बाबा कुरझड़ी मरावहो, के सरवरियो फोड़ाव ।
जब म्हे सूता नींद भर, तब बोली मंझम रात ॥२६६॥

× × ×

सदेसा ही बीज पडो, नै कागद आवी तोट ।
सही सलुंणा सजना, का मनमाही खोट ॥२६८॥

× × ×

सेउ सब जग मीत कर, वेर न कर इक ठांम ।
घर घर मीत न करि सकै,(तो) एक मीत एक गाम ॥३०६॥

× × ×

जब जागै तब सॉभळै, तंत तणो झुणकार ।
जीवो धनको वालहो, म मरो मागणहार ॥३१६॥
नाभि सकोमळ मुख कमळ, डील सु सीतळ गात ।
तिण का दव खुध्या रहै, मन मयगळ मयमंत ॥३१७॥

× × ×

सोरठा

फिट काकादवराह, अण पाणी अळगा थया ।
फट काजल काळाह, सजन विण साजो रहै ॥३२६॥

दूहा

चितारिश्रा चीपट पडै, विसारिश्रा चित झाळ ।
तो ढोळो किम वीसरै, दीधो छाती साल ॥३३०॥
ऊभी थी घर आगणे, सजन साभरीयाह ।
चारे पोहरे चुंनडी, रोइ रोइ भीजवियाह ॥३३१॥

× × ×

वडतो साखा पसरियो, थण कंचुश्रो न माय ।
ढाढी हाथ संदेसडो, लग ढोला पोहचाय ॥३३४॥
वाडी फूली वहुत है, मे चाहुं सो नाह ।
वलहारी उस फूलकी, वास रही मन माह ॥३३५॥

× × ×

जोवन पाको श्रंब जु, सुवटो रह्यो लुभाय ।
पंख पसारै उडणकुं, रसभर रह्यो न जाय ॥३४२॥

× × ×

दव उड्या सारे डुंगरे, वळे मुक्त घरॉह।
विण अवगुण घण परहरी, मोटी खोड नँराँह ॥३४४॥

× × ×

ढोला वेगा आवजो, मन मुझो वेसास।
दही विलोयो वी लियो, पाछै रही त छास ॥३५०॥

× × ×

कागद फाटो मसि ढळी, लेखण पडो दुकाळ।
वीज पडो उण सदेसडे, रही निहाल निहाळ ॥३५६॥

× × ×

दूहा कहिया मारवण, पिडबी तेडन काज।
ढाढा हाथ सदेसडो,(थे) वीनवज्यों म्हाँ काज ॥३६३॥

× × ×

कुच फाटै कर कुंअळै, अवर लाल थअे।
मारू वड तेरे पुरष, केते जतन कीअे ॥३८७॥

× × ×

सो कोसे सजन वसै, सो होयै हीयडा मांह।
जाण क मिळीया उटकर, देस वणा सुभाय ॥४०२॥
मन उहा पनर हहा, किमकरि मिलणो थाय।
दैव न दीधी पाखडी, ते सजन मीलाय ॥४०३॥

× × ×

सोरटा

पहली प्रीत करेह, ढंडो पैसि आळोच्यो नहीं।
मिलडीआ भवेह, मीठा बोला माणसा ॥४०५॥
अेक टुकडा जेवे गळा, ज्यो चित उछाह।
ज्यो वसता चिहु आँगळा, लायण कनन दीठ ॥४०६॥

काव्यं

गिरौ कलापी गगने च मेघा
लक्षांतरे भानु जले च पद्मम्।
द्विलक्ष सोमो कुमदीवानानां
यो जस्य चित्ते न कदापि दूरे ॥४०७॥

× × ×

दूहा

भीग पटोळी जळ थळी, धुंदत आया गार ।
ओळंगणारा सेल ज्यु उभा भीगा बार ॥४५४॥

× × ×

उतर आज स उजमी, सकै तो पडसी सीय ।
कै विस्वानर सेवीयै, कै साभूरी घीय ॥४७३॥

× × ×

उतर आज स उजमी, पाळा पडे विहाण ।
भाजै गात्र कुमारीआ, देखे मुगल पठाण ? ॥४७५॥

× × ×

थे सिधावो सिध करो, वेगेरा वळज्योह ।
पगळ देसरी मारवण, लेने घर वळज्योह ॥५११॥
थे सिधावो सिध करो, सातायी मळ ज्योह ।
रमज्यो सेझे रगसुं, मनवछित फळ ज्योह ॥५१२॥
साळा सळखु इम कहे, वैरा मले वजोग ।
तो नै कुअर जांणे रावळो, मालण भोंणै भोग ॥५१३॥

× × ×

सोरठा

जातां समो न जोय, जोइ सी तोही जायसी ।
भर भर नयण म रोय, कर कायर काठो हियो ॥५१६॥

दूहा

अध तिलारो अध तिल, तिण अधारो अध ।
अवगुणी ओ सजन तणो, म्हे एतोही न लध ॥५१७॥
सजन दीठां सुख होवै, प्रगटै प्रेम अपार ।
जिण दिन सजन घर नहीं, सुनो जांणि संसार ॥५१८॥

सोरठा

अगर तणै अणुहार, पीडातां परमळ करै ।
ते सजन संसार, जोया पण जुडिया नहीं ॥५१९॥

दूहा

विछुड मिलतां बहुत गुण, जो मन उणी भाव ।
प्रेम पळटै हे सखी, विछुडे मिलत कहाव ॥५२०॥

× × ×

सजन चाल्या हे सखी, करह पलाणी जाय।
अे कामण ओळुं घणी, अेका (अयो) आव्यड दाय ॥५२४॥

× × ×

ढोलो ढीले इठ (? र) डे, दीठो घणे जणेह।
लाल सुरंगे कपडे, सादरते नयणेह ॥५२७॥

× × ×

घणी वधावो हे सखी, मोत्यां थाळ भरेह।
जोवन पूर अथग जळ, उतरीया कुसळेह ॥५७६॥

× × ×

रैवारण

साहवियां सतवादिया, धीरां एक मनाह।
दैव करेसी चंतडी, अरड फवेसी ताह ॥५६८॥
दंटी तुचा सापणुं, खडा खयो सीढ।
तिण वण अणढोर्डायो, त्रखा न चाले पीड ॥५६६॥

× × ×

मारू ऊभी गोख तळ, सर मोकळाणा केस।
जाणक राजा छत्रपति, मारण चढियो देस ॥६०२॥

× × ×

त्रण सहानें तुपीयो, नैनन वाके बाण।
मारू कुरभ बचाइ जुं, ताण हणै कवाण ॥६१०॥

× × ×

च्यार चउपद च्यार थ (प) प, पोहप च्यार फळच्यार।
पुरवदत तो पाइयें, अेहवी मारू नार ॥६१४॥
मोनु नु साज विप कमळ, मारग लोयण उणहार।
गत गयवर कट सीहकी, अे चउपद लच्छण च्यार ॥६१५॥

× × ×

भुं भुहरा सुर कोकला, कंठ कपोत ठार।
पवन चपळा हनह पर, अे पंपी लच्छण च्यार ॥६१७॥
दाडम दंत तुपक फळ, कुच नारंग उणहार।
उर श्रीफळ कुप सुपात्रा नीपजै, अे फळ कहिअै च्यार ॥६१८॥

× × ×

सुपनामै सजन मिल्या, मैं भर घाली बाथ।
जागुं तब देखु' नहीं, हय हय रह गया हाथ ॥६४०॥
हियडा डोल म वायजु, ते सजन वेहीज।
सो करतार मञ्चा करै, तो तै दरसण दीज ॥६४१॥

+ × ×

ढोचे पाणी भाड घर, संवळ सुहष थयोह।
सही संकोडी मारवण, उचळ गई वयोह ॥६५५॥
देस परायो परमडळ, किण ही न कीजै आळ।
किणहीकी दोय लाकडी, किणहीकी दस गाल ॥६५६॥
पाजै (?) पाणी न थाहरै, थरहर कंपै देह।
हाथ सुहाळी मारवण, विरहण पाडे वेह ॥६५७॥

× × ×

सुना केरा तुम्बडा, सरही केरी तंत।
कुमारीरी कड वसै, तिण जोवारी खंत ॥६५९॥
भटकै भाजो तुंबड़ा, तटकै तोड़ु तंत।
कुंमारीरी कड वसै, तिण कीसा जोवारी षत ॥६६०॥
मेतो जोगी सारखा, जोगी मारे लाग।
कोइक जोगण परणस्या, अमा सरीखी आज ॥६६१॥
मारवणी तुझ कारणै, तजीया देस विदेस।
पहेला हुंता कापडी, हवै जोगीरेवेस ॥६६२॥

× × ×

करहा पाणी खच पी, जो ढोलारो होय।
आखड़िया जग मोहियो, राग न भीनो कोय ॥६६७॥

× × ×

उजळ दती मारवण, ते कव साया दंत।
हे वस म्हारो विहांगडो उड्यो केळ करंत ॥६७१॥

× × ×

वळी विसेखे तेहनै, पंगळ ते राजान।
आपै उलट मन धरी, सोवन रस नादान ॥६७५॥

वाधा वाव्या इरपना, गुज्या गुहिर निसाण ।
जामाता आगम सुणीं, माड्या बहु मंडाण ॥६७६॥
रोम रोम तनु उलस्या, नवा विरह विजोग ।
नयण कमळ विगस्या घणु, मिल्या सयळ सयोग ॥६७७॥

× × ×

जाचकनै सतोखीआ, आपीं अविचळ दान ।
सजन जननै तिम वळी, दै आदर सनमान ॥६८१॥
नगर लोग आणदिया, बाध्या तोरण बार ।
घर घर गुडी ऊछळी, सपै जयजयकार ॥६८२॥
इम ओछव अधिको करी, आव्या निज आवास ।
पुगी सजनी मन रळी, सफळ फळी मन आस ॥६८३॥

× × ×

तेज प्रतापै दीपतो, कांत कळा सु प्रकास ।
देखी अविरज उपनो, साचो सुख विलास ॥६८८॥
माठा दिन मिटिया हवै, सेवक थया सनाथ ।
सफळी सेवा चाकरी, आज थई श्रम नाथ ॥६८९॥

× × ×

सीह सवोग सापुरत कअण, केळ फळै अेक वार ।
सती पहोवर विप्रघन, चढसी हाथ मुआह ॥७०५॥

× × ×

अस्त्री पीहर नर सासरै, संजमीया सहवास ।
अेता होअै अलखामणा, जो माडै घर वास ॥७२६॥
ते माटे उतावळा, राज पधारो अेथ ।
निजर दोलत निज सामनी, पामीजै कहो केथ ॥७२७॥
राज्य भोज्य सज्या वळी, अस्त्री वाहण नै पान ।
सुना मेल्या नहि भला, मन धरज्यो अे ध्यांन ॥७२८॥
अेहवो चीत माहै चीतवी, पंगळराय पासै जाय ।
अनुमति मागी चालवा, ढोलैजी चित लाय ॥७२९॥
दे अनुमति अवसर लही, आपै बहुळा आथ.।
हाथी घोडा अति घणा, सुंप्या बेटी साथ ॥७३०॥

× × ×

सुसरो सासु सवि मिळी, ढोलानै बहु प्रेम ।
निज पुत्रीनो अति घणी, दै भलामण अेम ॥७४०॥
तुंकारो दीधो नथी, बाळपणा थी सार ।
किसी भलामण दातनै, जोभतणी सुविचार ॥७४१॥
इम मारवणी कुमरी प्रतै, समझावी सुभ वाण ।
होली मीली हित हेवसुं, कीधी सुख सुंजाण ॥७४२॥
मया करीने मुकज्यो, कुसळ-षेमना लेख ।
लीला पति लखजो वळी, समाचार सु विसेख ॥७४३॥
अतर को राखो रखे, अे छै तुमचो ठाम ।
देज्यो देव मया करी, सेवक सरीखो काम ॥७४४॥
कारज समय सभारज्यो, चतुर तमे निस चित्त ।
मनथी मत विसारज्यो, थे मोटा महिपत्त ॥७४५॥
मात पिता बंधव सहु, सयण सकळ परिवार ।
बोळावी पाछा वळ्या, जुगतै करी जुहार ॥७४६॥
साथै सैन्य सबळ कटक, सुभट-तणा वळि थाट ।
वंदीजन बिरुदावळी, बोलै भोजग भाट ॥७४७॥

× × ×

थे ठाकुर थे छत्रपति, थानै तिहा बहु 'थोक ।
पाणी नखमै पातळी, छास कहै सहु लोक ॥७४६॥
राणी इम रूडी परै, धरती अवीहड प्रीत ।
आलै सीख भली परै, राखी रूड़ी रीत ॥७५०॥
राज सिधाओ सिध करो, वळि वहला मिलज्योह ।
डुगरजीवी जीवज्यो, डंबर ज्यु फळज्योह ॥७५१॥

— — —

मेहा मोटी खोड, माणसनैं मरवातणी ।
बीजी छै लख कोड, अे समॉणी अेको नहीं ॥७५६॥

— — —

मारवणी मन मोहियो, ' मनह न मेलो न जाय ।
जिम जिम हियडै सांभरै, तिम तिम नयण झुराय ॥७६३॥

मारवणी मन वालही, मनकी पुरी आस।
जनथी विसहर डंकियो, हुंती लील विलास ॥७६४॥

× × ×

[यह प्रति बीकानेर के रागड़ी-जैन-उपाश्रय के अभयसिंह भंडार में है। यह भी प्राचीन नहीं है। यहाँ केवल नये दूहे लिये गये हैं।]

दूहा

'वरस डोढ वोळयो जिसइ अद्भुत सूंदर वेस।
षड पाषइ सहु देसना, छोडो गया विदेस ॥१३०॥

× × ×

पींगळ रायनी मारुई, नळ राजानो ढोल।
जबथै वेहु जनमीश्रा, तबथी बोल्या बोल ॥१६६॥
मारू ढोलो जनमीश्रा, तिहारा ए सहनाण।
धन भटिश्राणी मारुई प्रोय ढोलो चहुश्राण ॥१६८॥

× × ×

तन तुरग असवार मन, नयन पयादे सथ।
सुंदर चली षिकारकुं, विरह वाज करि हथ ॥२०७॥
मारू ऊभी सामुही, जिम तुरका हाथ कबाण।
जिण दिस नाषे भालड़ा, तिण दिस पडे भगाण ॥२०८॥

× × ×

विजळी श्रागले वाउला, मोरा माथे छत्र।
कदहि मिलुंगी सजना, करी उघाड़ा गात्र ॥२२७॥

× × ×

सजन सोंपीनइ आवज्यो, मो गळ घली सोय।
नरपति नयण न षोलिश्रो, जाणे विछोही होय ॥४५१॥

× × ×

उनहीश्रो वरसे नही, करे बपीहा संतोस।
ते सजन श्रणदीठा भला, मिळतें लेत न सोस ॥२८३॥

वासर ना रयणी सुख, घरे सुख नावंत ।
वालिम वीछुड़िश्रा तणो, मरम स लागो मन ॥२८४॥

× × ×

ऊंचे चित्रसाळी माळिश्रा, या हुं चतुरा नार ।
साहिब चतुर सुजाण रस, नित विलसो भरतार ॥२८८॥

× × ×

परम सनेही परम प्रीय, अवधारो अरदास ।
महलें श्रावो मोहना, साहिब पूरण आस ॥२६२॥
सुगुण सनेही नाहला, वाला वेग पधार ।
अलबेला अलजो घणो, देखण पीत्र दीदार ॥२६३॥
जुं मंछी जळ बिन मरे, जळ मन जाणे नाह ।
तुं पिउको जिय अति कठिण हुं चाहुं पीय छाह ॥२६४॥
प्रीतम परम सुजाण हो, जाणत हो सब रीत ।
समयो एहि विचारीइ, जुं ए न घटे प्रीत ॥२६५॥
में तो अविहड आदरो, जिहा लगें जीवन देह ।
मनु तनु वयणो जीवसुं, पीउसुं कीनो नेह ॥२६६॥

× × ×

सोरठा

रूपा ? टपटपीआइ, विण वादळे विछुटीश्रा ।
आखे आम ययाइ, नेह तुम्हारे साहिबा ॥२६६॥
साहिब नवलो नेह, जिण तिणसुं कीजे नहीं ।
वळे सुरंगी देह, विपे न धुंश्रो उठसी ॥३००॥

× × ×

आज धराऊ उंनमो, आयो घट घण पूर ।
हू सबहीकुं वलही, मो वलहा सो दूर ॥३०३॥

× × ×

चिंतारया चीवट पडे, संभरया न समाय ।
सज्जन तुरी पटाट जुं, हिइ विळगा जाय ॥३०७॥

× × ×

सोरठा

पहळी प्रीत करेह, उंडो आळोच्यो नहीं।
भुलाळिश्रो भवेह, मीठाबोले माणसे ॥३११॥

दूहा

पहली प्रीत लगाय कर, पछे चौरायो चित्त।
राही केरा रूप ज्युं, त्यों माँहें घोड़ा चित्त ॥३१२॥

× × ×

सोरठा

कटका कादव नाह, नीर विजोगे जे हुआ।
फिट काळजा काळा, सजन विन साजा रह्या ॥३१४॥

दूहा

साहिब सख समुद्रको, मैं सुणीओ वाजंत।
नीर मितके कारणें, घर घर थाह दियंत ॥३१५॥
नयण तपत तुम दरिसकुं, स्रवण तपे तुम वेंण।
कर माळा प्रभु नाम की, गये जपत दिन रेंण ॥३१६॥
मन चाहतु है मित्तकुं, जाणु मिलिइ ईस।
पिण ओतो अळगो घणो, कहा करूँ जगदीस ॥३१७॥

× × ×

ढोला ढिली घर कीआ, दिठो घणे जणेह।
लाल सुरंगी पघडी,............रते नयणेह ॥३२१॥
इक उपरइकुं आवटे, इक नाणे मन मांह।
वाली इताकी प्रीतडी, देषत उठे दाह ॥३२२॥
आरति अभूय (ष)ओ(न), तामरो सोस्या लोहा गास।
वाला तुझ विण ज्युं हुई, पाको पान पलास ॥३२३॥
कहिओ लागे कारसु, लिषिइ केहो लाह।
अंतरगत जो पीड छे, ते जाणे जगनाह ॥३२४॥

× × ×

फागुण मास वसंत रित, नव तरुणी नव नेह।
कहो सखी कैसें सहु, ज्यार अगन इक देह ॥३२८॥

× × ×

आवि विदेसी वालहा, नवि वीसारूँ हीयाइ ।
नयणा दाडिम फूल ज्यूं, रोइ रोइ लाल कीयाइ ॥३३०॥
भावे सजन इहां रहो, भावे रहो विदेस ।
प्रीत पुराणी होइ नहि, जे वंधी लघु वेस ॥३३१॥
लागो होइ तो छोडीइं, हाथ हाथसुं लाय ।
मनको कहा छोडाइये, जाके हाथ न पाव ॥३३२॥
मन वारंतो नवि रहे, सो घण ढोलण सथ ।
मो मन चकरी डोर ज्युं, गह्यो डोरो तव हथ ॥३३३॥
जो हु एसी जाणती, प्रीत कया दुख होय ।
देस दुहाइ फेरती, प्रीत करो मत कोय ॥३३४॥

× × ×

के काई कांमण करयुं, रे रढिआळा मित्त ।
तिणकी सुध भूली गई, चोरी लीधो चित्त ॥३३५॥
निस दिन मो मन पिय वसे, पिय विन पल न सुहाय ।
पिय विन दीठइ सुख नहीं, घड़ी जमारो थाय ॥३३८॥
जाणु चई ऊडी मिलु, सुग्रड़ा आपि न पख ।
दरिसण मिटा साहिबा, जेहवि आवा संख ॥३३९॥
हुं रति अनेकसुं, पंथी पीउ कहेस ।
रही न सकुं तास विन, ए अपराध खमेस ॥३४०॥

× × ×

मागण चाल्या नळवरइं, करी बाईरी सीख ।
जो जीवा तो फिर मिला, वेग आवा लेई सीख ॥३४३॥

× × ×

मारू रते लोयणे, उर तीखे विच खीण ।
मारू बोले माळिइ (जाणे), पड़दे वाजी वीण ॥३६५॥
उर लकी सासा कमळ, नीळ निभ छुळ पेट ।
एक न दीटी मारुई, आवा पाको जेट ॥३६६॥
उजळ दंति कपूर कर, मारू लख गुणेह ।
एकज अवगुण हे सखी, वाली घणे नणेह ॥३६७॥
हेमवरण सीतल ललित, गति गवरीरी जोय ।
मुख परिमळनो पदमणी, मारू सरीखि न कोय ॥३६८॥

पन्न सु पतळ कुच कठिण, भिणी लंक मृग चख ।
सो सुंदर किम वीसरइं, ढोला एक सीभ गुण लख ॥३६६॥
कुच कठिही अर कर कमळ, अहर अलचा रंग ।
मारू किरतारे घड़ी, दोते किए जतन्न ॥३७०॥

× × ×

खंजन नेत्र विसाल गति, चहिओ न लग्यो चष ।
एको मारू वारणो, माळवणीको लख ॥३७२॥
मारू उभी गोंख तळ, हाथे लाल कवाण ।
भर भर वाहे भालड़ा, तिण दिस पडे भगाण ॥३७३॥
मारू केश दोय नयण, मोती महले लाल ।
आणजाणयाको पेखणो, सुजाणाने साल ॥३७४॥
भाउ ढोलाने वीनवे कीजे सीख पसाय ।
उहाँ वाट उतावळी जोए पिंगळ राय ॥३७५॥
वही बघेरा देव गाम तोरण मंड्या अवंग ।
ढोला मारू परणीया चिंता जेहा लंक ॥३७६॥
वही बघेरा परणीयो, अहनिस वजो, वज ।
चिंता करी रे ढोलणां, इण हथलेवा कज ॥३७७॥
जो म्हे मोडा जायसा विण पाखइ सदेस ।
तो मारवणी कामणी पावक करे प्रवेस ॥३७८॥

× × ×

दूहा

संदेसा सविगता कहिया तसु संभाळ ।
माळवणी थी वीहता सीख दीधी ततकाळ ॥३८४॥
भाउ भाट संदेसड़ा दिसि सजन कहिआइ ।
माता मन माहे जाणयो वीरहें पीड थयाइ ॥३८५॥

× × ×

जिण दिठे मन ऊलसे, वीछड़ीया वेराग ।
ते सजन किम राखीइ, जिम वाभण गलत्राग ॥३८६॥
जब सुध आवत सिच्चकी, विरह उठत तन जाग ।
ज्युं चूनेकी कंकरी, जब छिरकुं तब आग ॥३९०॥

चाहत पण देखत नहीं, वत न मीठे तार ।
दोउ लनालु माणसां, मेलो दे किरतार ॥३६१॥

सोरठा

मारू ताहरी आँख, हिइ माहरे वसाही ।
तांणी तीर म नाख, जो मीली न सके मुझनें ॥३६२॥

× × ×

सलोक

चितातुराणां न सुखं न निद्रा कामातुराणा न भयं न लज्जा ।
अरथातुराणा न भयं न वध्या त्तुधातराणा न भयं न तेजाः ॥३६७॥

× × ×

माळवणी वायक

सजन दुरजनके कहइ लागी प्रीत म तोड ।
जु रग लगो चोळिआँ त्युं चीत लगो तोड ॥४२७॥
मांका आगळ नींकळ्यो भरि गयो लाँबी मीख ।
सहो विरतो वलहो सुणी पकराई सीख ॥४२८॥
ढोलो हुँतो ते नहीं उतरी ओतो लेय ।
साकर हुतो विस थयो दुरजणरे वयणेह ॥४२९॥

× × ×

तुम मत जाणो प्रीत गई दूर वसेथें वास ।
नयन विछोहों पर गयो प्राण तुम्हारे पास ॥४४७॥
इक वेगळा ते ढूकड़ा पासें वसें ते रान ।
च्यार अंगुळनें आतरे नयण न देखे कॉन ॥४४८॥

× × ×

आठ दिसा नव खिवा दिन पनरहकी झड ।
चोमासा पाखें दिसा मुंध निहाळे 'वट ॥४६०॥

× × ×

वाकी छो राती खुरा चिरमी राती माय ।
ओलाळी पवने मिल्यो घडिया जोयण साय ॥४६३॥

× × ×

रहो अली मठ करि करहो नीगमीआइ ।
काची दाख न चारीओ, गुणे न रीझवी आइ ॥४८६॥

× × ×

ढोला थे चाई आवजो, आसा सहु फळजो।
माको कहीउ जो करो, तो मारवणी मरजो ॥४९९॥

× × ×

ढोलो चाल्यो हे सखी, वडरी डाहल मोड।
हिउ फळेवो काळजो, तिनुं ले गयो तोड ॥५००॥
ढोलो चाल्यो हे सखी, डूंगर पहली पाज।
नगरीथी नव ते रही, ऊजड होइ गइ आज ॥५०१॥
ढोलो चाल्यो हे सखी, आवा केरी झोल।
हिउ हेम जळ होइ रह्यो, नयणे मंडी कोल ॥५०२॥
ढोलो वोळाव्यो हे सखी, जिहाँरी थी हुं दास।
दही विलोया घी लिया, मोनें करि गयो छास ॥५०३॥
ढोलो वोळाव्यो हे सखी, पाळें चढियो दिठ।
लागो झटको काळिजे, घरे ले गई नीठ ॥५०४॥

× × ×

ढोलो वोलाव्यो हे सखी, ऊपर वढि जोय।
चुले छाणो घालकर, धुआड़ा मिस रोय ॥५०७॥
ढोलो गयो तो दुख दे, धुरि चहोडी लड।
ऊभी मेली पंथ सिर, जुं धुर तुटी गड ॥५०८॥

सोरठा

तुं चाणे कीरतार, वालिम, जो मुझ वीसरइ।
दिहडा माहें दस वार, सासा पहली सांभरइ ॥५०९॥

दूहा

मेरे अचग लघु आटळ, संसि खडो निकळंक।
सायर खारो रवि तपे, कुंण विण तोलु कंत ॥५१०॥
माछि तुं मत तडफडइ, वनसी लागो दंत।
वीछडियां मेळो नहीं, तो सरवर मा कत ॥५११॥

× × ×

मेर सरीखो वलहो, पहली पाछण काळ।
विरता पाछे वलहो, चितथी मेली टाळ ॥५१३॥
जाणयो थे वड वृष्य थो, सेविस काळो काळ।
फूल झड्यो फळ नीगम्यो, नीवढि गयो पलास ॥५१४॥

जाएयो थो वड वृष्य थों, एको विपो विनाण ।
छापर हुंदी लीहड़ी, हळा तुटी नाण ॥५१५॥
जाएयो थो वड समुद्र थों, पड़ि गयो नगर तळाव ।
फाठे कुते विटोळिउ, हस न देवे पाव ॥५१६॥

× × ×

संदेसे जे गम करे, गम करि घर समरंत ।
ते वंध्या केकाण ज्यु छूटे मास मरत ॥५२०॥
सजन किमही न वीसरे जासुं घणो सनेह ।
अह निस मन माहे संभरइ, जिम बापैयो मेह ॥५२१॥
तिण सयणारा विग जनम, जिणमें ठिक न ठोर ।
चित ओरा हित ओरसु, मुख भाखे कछु ओर ॥५२२॥

× × ×

नयणे डुगर अतरइ, मन अतरो न कोय ।
अम्हहि तुम मिलावड़ो, जो दैव करे तो होय ॥५२४॥

× × ×

सजन चाल्या हे सखी, फरहो पलाणयो जाय ।
एका मन ओळूं घणी, एका आवइ दाय ॥५२८॥

× × ×

ढोला हुं तुझ वाहरी, झीलण गई तळाव ।
पंखड़िया पचो सही विरह पहुंतो आय ॥५३५॥

× × ×

ढोलो कहे संदेसड़ा सो सुग्रड़ा कहेस ।
मुरछाणी हुई माळवण वेठी हाथ घसेस ॥५५३॥
आस करती तास कर निगुणी नेह निवार ।
सालकुमरने करहलो वळे न थारे वार ॥५५४॥
हाथळहिओ हे सखी खोटो अथिर सनेह ।
एक पलो कर नेहलो काप चळावे देह ॥५५५॥

× × ×

दूहा

एक वागहट उंमर तणो जोवे वाट न ढोल ।
तिण देखी कुटो चल्यो तिण ही कह्यो कुबोल ॥५७७॥

× × ×

उजळपणो सबही भलो एक न भलो केस।
आहेडी हरणां रमे तो तरुण तन वेस ॥५७६॥

× × ×

मारहट्ट वाक्य

ओर गईबिन्नो पग पदम दामिनी दंत सुस्वेत।
कुच बीजोरी रंग जुं षजन जेहा नेत ॥५६२॥

+ × ×

कडि सुपत्तल कडि घनप लंबी वेण लहक।
मारू मारे पंथ जुं कटिथी काढी भल ॥६००॥

× × ×

हेम वरण सीतल ललित गति गवरीरी जोय।
परिमळ पुहप पग पदम मारू समहि न कोय ॥६०८॥

× × ×

सज सुपनें आवीओ अम गळ घली बथ।
जागी अनुरागी भई हो हो रही गई हथ ॥६२५॥

× × ×

सके हे तो ढोलो आवीयो तिको तेहको तोड़।
अंगे आळस रळि गयो मारूरे मन कोड ॥६२७॥
मारू निस भर निस सुई वेगें थाय विहाण।
सके हे तो ढोलो आवीओ चिषल चहु चढिआंह ॥६२८॥

× × ×

करहा काय कहुकियो झाझा मांह थळाह।
ढोलो मारू उमाहियो आयो घणा दिनाह ॥६३४॥
आष फरके कड, लवे पुले त पटडिआह।
मो सगुणीको वलहो सके तो वटडीआह ॥६३५॥

× × ×

डाबो पाणी जळ घरो सबळो सुह थणेह।
मन संकोडी मारुई उजळ गई वणेह ॥६४४॥

× × ×

करहा पाणी हूक पीय जो ढोलाको होय ।
आखड़ीया जग मोहीओ राग न भेल्यो कोय ॥६४८॥
देस पीआरो परमडळ करहा न कीजे आळ ।
किणहीरी दोय लकड़ी किणहीरी दस गाळ ॥६४६॥

× × ×

मारू वाक्य सखी प्रति

मीठो फळ महेलिया तुरिया मीठो राव ।
मेलो मीठो सजना आगम मीठो व्याव ॥६६५॥

× × ×

अगर चंदनरो ढोलिओ सूकड़ीओ आवास ।
घण जीव्यो ढोला तणो मारूसुं घरवास ॥६६७॥

× × ×

सोरठा

कहता नावे काय, सजन मिल्या जे सुख होवइ ।
ज्वाळाशी बुझि जाय, सींच्यो अमृत सजना ॥६६०॥

× × ×

दूहा

जैम अरहट आरणमें, सजन सोहणां मांह ।
सापुरिस हंदा सजनां, आसा मुझ फळियांह ॥७०१॥

× × +

करहो कस्तुरी लदिओ ऊपर झीणी लोय ।
साथइलो सुरंगड़ो जो (ढोला) निरवाहु होय ॥७१८॥
प्रथम मेलाणो आविया ढोलो मारू सोय ।
डेरा बहु तंबु दिया पोढ्या छे सहु कोय ॥७१६॥

× × ×

सोरठा

सालकुंवररो साद, किओ नहीं सो कुणकुणे ।
सो वागी वरो साद, दासी तास दीवाघरी ॥७२६॥

× × ×

दूहा

इहां छे गुणवेलड़ी, उहा छे रसवेल।
जम रॉणा साटो करां, वानेंई लेश्रो भेल ॥७३०॥

× × ×

दूहा घणा पुराणा अछै, चोपई बंध कीश्रो में पछै।
संवत सोळह सतरोतरे श्राखात्रीज दिवस मन खरे॥

× × × ×

———

[यह प्रति नागोर-मारवाड़ के श्वेतांबर-जैन-उपाश्रय में वर्तमान है। इसका लिपिकाल सं० १७७१ है। पाठ प्राचीन ज्ञात नहीं होता।]

ढोला-मारवणीरा दूहा

सरसति मात पसाव करी, दे मो अविरळ मत्ति।
भोगी चतुर भुवाळ जे, गुण गावुं तस भत्ति॥
देसाँ माहे दीपतो, परगळे पूंगळ देस।
जिहाँ नर नारो नीपजै, निरुपम नीकै वेस॥
उंचा मंदिर चौषणा, ऊँचा घणुं आवास।
अजब झरोखा जाळीयाँ, सीस्याँ सुंघावास॥
राख करै राजा तिहाँ, पिंगळ जाण प्रवीण।
भामनीयाँ भीनो रहै, निस दिन नेहै लीण॥
अतारों अहनिस करै, अमल सुहड अति रंग।
कोटडीयाँ फळियळ हवै, राग छतीसे रंग॥
भला सुहड ब्राह्मण भला, भली राजरी रीत।
राजलोक रॉणी भली, पाळै अहनिस प्रीत॥
गिर अढार आबू घणी, गढ़ जाळोर दुरंग।
तिहाँ सामंतसी देवड़ो, अमली माण अभंग॥
तस धी ऊमा देवडी, अवर नहीं संसार।
छट्टी-हंदे अषरे, परणी राइ ति वार॥
पटरॉणी पिंगळ तणी अपछरकै अणुहार।
अछै ऊमा देवडी सुंदर इण संसार॥
सुदर सोळ श्रृंगार सझि, सेझ पधारि साँझ।
प्राँणनाथ आए मिळी, सर सिर चढ़ठी हंझ॥
रानि दिवस रंगइ रमै, प्रीउसुं इयको प्रेम।
कुसम चॉपा केतक वनै, मोह्यो मधुकर जेम॥

मवड बधी मारवी, आइ अवतरी पेट।
पूरे मासे पदमणी, जनमी रतन ज नेट॥
सुंदर रूप सुहामणी, अपछरकै अनुहार।
सहु को आषै पदमणी, भमर करइ गुजार॥
वरस पाँच वउळ्या जिसै, इसै देव न वुठ्ठ।
षड पाषै सहु एकटा, माणस हुवा मनमठ्ठ॥
मारवाड़कै देसमै, एक न आवै पीड।
कवही हुवै अवरसणो, कवही फाका तीड॥
पींगळ परीयण पूछियो, कीजै त्रेवड काइ।
कोई गाम न अटकळी, जेथ वसीजै जाइ॥
जळ षड़ कारण षोजीया, देसे दुं दुं षाँव।
पुहकर षड पाणी प्रघळ, साँभळ पुंगळ राव॥
पिंगळ ऊचालो कीयो, आयो पुहकर तीर।
षड पाणी प्रघळ तिहाँ, हुवो सुख सरीर॥
हिवै किम ढोलौ नीपजै, देव तणो परिमाण।
लेख मिलै अणचींतव्यौ, भावै जाण म जाण॥
नळ राजा नळवर रहै, आछै रिद्ध अपार।
भली अनोपम भामणी, सुख माणै संसार॥
एक चिंता मनमै घणी, नही पुत्र रतन्न।
तिण पाखै लागै इसो, जाणी अलूणो अन्न॥
डाहा माणस पूछीया, तिण कह्यो एह उपाय।
पुत्र सही थाइं भलो, पुहकर देव मनाय॥
जात्रा बोली राइ विण, हुवौ पुत्र रतन्न।
उछव हुआ अति घणा, लोक कहै धन धन॥
राजा मन मैं चींतवै, जाए करवी जात।
राजा भळायो आपणो, परधानां परभात॥
साथे रिद्ध लेई घणी, आयो पुहकर तीर।
जात्र करी मन हरषीयो निरमळ सरवर नीर॥
इण अवसर घन ऊमट्यो, प्रगट्यो, पावस मास।
पिंगळ राजा पिण तिहाँ, मिळीया मन उलास॥
ऊनमीयो उत्तर दिसा, गयणे गरज्यो घोर।
चिहुँ दिस चमकी वीजली, मंडे तंडव मोर॥

च्यार मास निहचल रह्या, सरवर (त) णै प्रसंग।
रांमति ख्याल विनोद रस, रहै मन उछरंग॥
एक दिन नरवर राजवी, चल्यौ सिकार प्रभात।
सिसलो दीठो नासतो, दीयो घोडो दे ठाल॥
जांतो पिंगळ रायनै गयो ज गाढा मांहि।
सूती ऊमा देवडी, कहि नीचै वहि जाहि॥
दीठी राजा देवडी राणी दीठो राय।
मन माहे अचिरिज भयो, अई यो रूप अथाह॥
देषी ऊमा देवडी, राजा थमी वाग।
जो माणुं इण नारिनै, तिणका मोटा भाग॥
तुरत राय पाछो वळ्यो, आयौ सगळो साथ।
पिंगळ आडो आवीयो, मीळीया भरनै वथ॥
राज ऊतरो करि माया, पीयो पछारी पैण।
कहि अंतर किम राखीयै, जे ससनेहा सयण॥
साथ सहु तिहां ऊतरयो, नळ राजा ससनेह।
कीधी भगति भळि परै, पिंगळ राजा तेह॥
आए बैठा एकठा, करण कतूहळ केळ।
सारी पासा सोगटा, राजा यै मन मेल॥
सूंपी वागा सावटू, कोढी घन्न केकांण।
आंम्हो सांम्हा आपीया, प्रीत चढा परमांण॥
सगपण हुवै तो सौगुणी, वधइ प्रीत असमान।
नरवर राजा पिंगळै, वकीया एहवी वाण॥
तिसडै मारू नीसरै, जाणे वीय मयंक।
ऊ भांखो आ निरखली, कोई नहीं कळक॥
कुंवर अनोपम माहरै, दीसै देव कुमार।
तिणहुं मारू दीजियै, समजोडी संसार॥
तब ते राजा पिंगळ कहै, वात एह परवाण।
सहि करेस्या नातरो, पूछीनै परीयाण॥
राजा ऊठी आपणै, डेरै आयो जाम।
पिंगळ पूछे देवडी कहो त करां ए कांम॥
आपै ऊमा देवडी वालंभ हीयै विचार।
मनह सकोडी मारवी, दोघ समुद्रा पार॥

के(?कं) ताअरण दीठै कुँमर, नातरो कीयो स कोय ।
प्रीऊ पटराँणीनु कहै, जिहाँ सिरजी तिहा जाय ॥
अति मोटै आडवरै, कीयो विवाह तिएण ।
अरथ गरथ बहुषरचीया, पिंगळ नरवर जेएण ॥
[इसके आगे मूल का ११ नबर का दूहा है ।]
नळ राना हिवै आँपणै आयो नरवर देस ।
ठॉम ठॉमरा ळोक सहु, ते ळ आया पेस ॥
साल्हकुमर आयौ हिवै, यौवनमै भरपूर ।
तब राजा मंन जाणीयो, पुंगळ हुई ज दूर ॥
मत कोई जणाइजो, मारवणी विरतात ।
भुँइ अळगीमै भुँच नर, भवनइ भुरट अनत ॥
माळव देस सुहामणो, जिहाँ सुषीया सहु लोक ।
परणावीजै साळनु, देसी सगळा थोक ॥
माळव देस सुहॉमणो, भीमसेन भूपाळ ।
माळवणी घी तसु तणी, सुदर नै सुकमाळ ॥
साल्हकुमरनो ना तरो, कीयो मन आणद ।
सोहै जान्याँमैं कुमर, जिम तारामैं चद ॥
परच्या अरथ गरथ सहू, परणया अधिकी प्रीत ।
सारीषी दा (?) बिना चिहटै नहीं ज चीत ॥
हाथ मुकावण हाथीया, दीन्हा तीन सै पच ।
नगर पचास दीपावळी, अइराकी सै पंच ॥
चतुरपणै लागी हिवै, ढोला सेती प्रीत ।
लागो रं (ग) मजीठ ज्यु, चतुरपणै बहु चीत ॥
आया नरवर गढ हिवै, पैसारो संघात ।
आया मन अति रगसुं, सुष माहे दिन जात ॥
ढोलौ मालवणी हिवै, करै कतूहळ केळ ।
ढोलै मन मानि घणुं, मालवणी मन मेळ ॥
सोळा वरसा माळवी, कतो वरसा वीस ।
इसडी जोडी जौ मिलै, जो तूसै जगदीस ॥
हसै विहसै माळवी, अरु गळि लग्गी कंत ।
ढोलो मोह्यो अति घणु, दाडिम जेहा दत ॥
ढो० मा० दू० ३८ (११००–६२)

माळवणी जाणै पणु, मारू मर्थे साल ।
पिता ढोलो जाणै नहीं, वीछडीया वय वाळ ॥
वयण न लोपे माळवी, नयण न पडे जेह ।
प्रीत वधारण सुख करण, वळि मीठे वयणेह ॥
नित नवली मोज करै, नित नित नवळी सेझ ।
ढोलो माळवणि एकठा, अधिकै अधिकै हेत ॥
ढोलो मोह्यो माळवी, जिम मधुकर व···ह ।
बिहु मन लागो इसु, एक जीव दोय देह ॥
ढोलो मोह्यो माळवी, राति दिवस मन रंग ।
नेह नवल नै नवल धण, सही न छोडै संग ॥

[इसके आगे मूल का १२ नंबर का दूहा है ।]

बाळापण तो वहि गयो, जिहा मन लाव न साव ।
आयो जोबन उमगतुं, सहु सुख माणण राव ॥

[इसके आगे मूल के १३, १४ और ७६ नंबर के दूहे हैं ।]

सुपनंतर सजन मिल्या, मैं भर घाती बत्थ ।
नींद गई प्रीउ वीछुडे, जागत पटकत हाथ ॥
सुपनै सजन पाईया, हुं सूती गळ लाय ।
मारु न पोलुं अपणा मत स्यजन फिर जाय ॥

[इसके आगे मूल का २६ नंबर का दूहा है ।]

मारवणी सहीया कहै, मो परणाई केथ ।
प्रीउ कठे जाणु नही, हुँ एकलटी एथ ॥

[इसके आगे मूल के २४ और २५ नंबर के दूहे हैं ।]

सूती सेझै मारवी, विरहण करै विलाप ।
कुरझा सुणे कुरूकडा, लागा विरहा ताप ॥

[इसके आगे मूल के ५३ और ५५ नंबर के दूहे हैं ।]

झाझर्डीयों कळियळ कीयो ढोलै ढोलै वीस ।
मारू ढोलो संभरै, उरसु भागी ईस ॥

[इसके आगे मूल का ५६ नंबर का दूहा है ।]

कुरझडीयां कळयळ कीयउ सारी माझिम राति ।
मारू पजरै बूही, करवत आवत जात ॥
कुरझा काई करकीयां, थाकुं केहो दूख ।
कूण मारू विरह दघीया, ऊपर लायो लूण ॥

कुरझा तणा करूकडा, सामळ सोवै सोय।
सेझ अंगीठी तन दहै, कहिवा लागी जोय॥

[इसके आगे मूल के ६२ और ६५ नम्बर के दूहे हैं।]

राणी ऊभी साभळया, मारू तणा ज वैण।
ऊमा मनमै जाणीयो, मारू मेळो सयण॥

[इसके आगे मूल के ७७, १०१, १०३, १०४, १०७, ११०, ११५, १२६, ११६, ११३, १२२, १२३, १३०, १३३, १२७, १३१, और १३५, नंबर के दूहे हैं।]

केता सदेसा कहुं, केता वयण कहेस।
ढाढी प्रीतम आणियो, तो उपगार वहेस॥

[इसके आगे मूल का १८४ नबर का दूहा है।]

तिहाँ मालवणी राखीया, पीहर पहराइत।
पंथी कौ पूंगळ तणौ, सो मारै वो नित॥

[इसके आगे मूल का १८२ नंबर का दूहा है।]

कूड कपट मन केळवी, आया नरवर देस।
नरवर राजा भेटीयो, मनमै चींत अजेस॥
राजा घणो आदर दीयो, पूछी कुसला षेम।
नरवर मन पिंगळ तणो, प्रगट्यो रसको प्रेम॥

[इसके आगे मूल का १८७ नबर का दूहा है।]

आय जाइनै ऊळगो, साल्ह कुमर सुजाण।
ढाढी मन हरषित हुओ, वदी राइ ए वाण॥

[इसके आगे मूल के १८८, १८६ और १६१ नबर के दूहे हैं।]

संघ परा सो जोयणा, बीजा षिवै विदेस।
घण पुंगळ मैं एकली, नाह तो नरवर देस॥

[इसके आगे मूल का ४७ नंबर का दूहा है।]

बीजळिआ झबूकीया जब देपीजै नयण।
वाह पकव्या वालपिण जाइ मिलीजै सयण॥

[इसके आगे मूल के १४७, १४६, १४५ और १६२ नंबर के दूहे हैं।]

प्रह फाटी रवि ऊगीयो, आयो पूछण वत्त।
कहो ज तिणकी वारता, जिणकी गाई रत्त॥

तेही दाषवज्यो तुम्हे, जेही आया नोय ।
पर मन रञ्जन कारणै, भरम म दाषवि कोय ॥
एकण जीह किम कहां, मारू रूप अपार ।
कै हरि तूठै पाइयें, कै तुठै करतार ॥
ढाढी ले कागळ दीयो, लिषीयो मारू जेह ।
ढोलै लेई मोडीयो, सयणा तणै सनेह ॥
कागळ अषर गहि लीया, कामस वणो नयाण ।
कै भीना पंथ आवतै, कै लिषणहार अजाण ॥

[इसके आगे मूल के १८२, १६८, २०३ और २०४ नंबर के दूहे हैं ।]

सुता सूपनतर मिले, इक सासै सौ वार ।
मन राष्यो ही नवि रहइ, कर मेलो किरतार ॥

[इसके आगे मूल का १५७ नंबर का दूहा है ।]

प्रीतम सो आयो नही, थोडा दिना स माहि ।
तो थे आया लाभस्यौ, मारू मंगळ माहि ॥
प्रीतम जो आयो नही, माणस इयां मिळियां ।
आयां वण आतुर हुसी, पाछां इया पहियां ॥
कै कहीयै कै अपियै, सयणांसु' वयणांह ।
वयर विलूधो वल्लहा, नींद अनै नयणा ॥
सोवत आप्ना थकीया, सोवत नाहीं सुष ।
प्रीतम अणमिलीया इसो, दाभै देही दुष ॥
ढोलै कागळ वांचीयो, जाग्यो नवल सनेह ।
मिळवा हीयडो ऊलस्यौ, जिम बाबहीयैं मेह ॥
क्षागळ मूंकै नें कहै, थे भलै मिळीया आज ।
सयणा तणा सदेसडा माणस हंदा साज ॥
सीष समर्पी ढाढीया, देई लाषपसाव ।
ढोलो मन वणु' हरषीयो, हरख्यो नरवर राव ॥
श्रवण सँदेसा सांभळी, प्रीतम तणा ज वयण ।
मारू ढोलो मोहीयो, सहु भूलेगा सयण ॥
मन्ह चमकी माळवी, सुणि ढाढी हदा वयण ।
कोडि गुणा अवगुण हुवै, सो हुवै दूजो सयण ॥

तां लगि प्रीत अखंडीया, जा लगि एको मित्त ।
जब मन राखै अवरसुं, चतुर विरच्चै चित्त ॥
पिण मुंहडैरी प्रीतड़ी, अरु अगळि नयरा ।
आहच्चै इम किम छाडही, ससनेहा सयरा ॥
मन चिंता मिळवो सयरा, मंडाणो आळोच ।
माळवणी मन जाणियो, सही ज कोई सोच ॥

[इसके आगे मूल के २१८ और २२१ नंबर के दूहे हैं ।]

जिके ज बाभरा वाणिया, तिकों दिसावर जाय ॥
राजकुंवर राजा तणा, तोइ दिसावर काय ।

[इसके आगे मूल के २२३, २२६, २२७, २२८ और २२९ नंबर के दूहे हैं ।

चपावरणी कामणी, सोहै तुज्भ सरीर ।
हरणाखी हसनै कहै, तो आँणा दख्खणी चीर ॥

[इसके आगे मूल के २२३, २२४, २२५, २३०, और २३१ नंबर के दूहे हैं ।]

सुणि सुंदर ढोलो कहै, काई चाकरी कराइ ।
काई माई वेटका, घर बैठा रहाइ ॥
फत म जाए चाकरी, किए ही कुठाकुर साथ ।
दत्त थोड़ो सेवा घणी, पहरो देणो राति ॥
सुणि सुदर ढोलो कहै, रीता राजवीयाइ ।
घर बैठा टामक हुवै, बाहिर सोह समाइ ॥
ऊचळ चित्ता ऊभाखरा, पग न भैलै ठाय ।
सजन उनहारै इसा, तिरा नो मन डोलाय ॥

[इसके आगे मूल के २३६, २३८ और २३९ नंबर के दूहे हैं ।]

वल्लभ सजरा वीछडण, वळी सवक्का साल ।
कर जोडी कामिरा कहै, सुणि कंता सुकमाळ ॥

[इसके आगे मूल का २४१ नंबर का दूहा है ।]

नेह बंधन बधीयो, वळि रहिया दुइ मास ।
ससनेही क्यु वीसरै, मन मारवणी पास ॥
चहुं दिस चमकी वीजळी, याडो बादल छाइ ।
पावस आयो पदमणी, कहो व पुंगळ जाइ ॥

[इसके आगे मूल के २४६, २४८, २५१, २४४, २५३, २४९, २५० २७३ और २४५ नंबर के दूहे हैं ।]

जिण रित सी आगम करै, टापुर तुरी सुहाय ।
तिण दिन कामिण मुंकिनै, कवण दिसावर जाय ॥
जिण रितिमै कोरड कुडै, हिरणी गाभ धराय ।
तिण दिहाणी गोरडी, दिन दिन लाय लहाय ॥

[इसके आगे मूल के २८२, ३०१ और २९४ नंबर के दूहे हैं ।]

उत्तर आनस उतरो, सही पडेसी सीह ।
कढीयौ दूध कटोरीया पावै, साष्ट हुंदी घी ॥

[इसके आगे मूल के २८७, २९०, २८६, २९५ और २९८ नंबर के दूहे हैं ।]

उत्तर पाळो पवन वण, कहो किम कीजै ।
हरिणाखी जे तूं कहै, तौ साम्हो सी लीजै ॥

इसके आगे मूल के ४१२ और ३०५ नंबर के दूहे हैं ।]

रैबारी टोलो कहै, करहो कोइ दिखाय ।
पलाणीयो पवने मिलै, घडीयै जोवन जाय ॥
टोळा माहे टालिमो, विगताळो वीपइ ।
रुडो रैबारी आणीयो, ढालो सो निरपइ ॥

[इसके आगे मूल के ३०६ (पङ्क्तियों का क्रम उलटा है), ३१२ और ३१३ नंबर के दूहे हैं ।]

झाटि झूटिक करहलो, आँणे वॉध्यो वार ।
विरह दावनळ वीहती, कहे मालवणी नार ॥

[इसके आगे मूल के ३१७, ३१८, ३२० और ३२१ नंबर के दूहे हैं ।]

छहियो कीयौ करहलौ, पोडो हुवौ ति वार ।
दीचण लागा दामडा, कहै माळवणी नारि ॥

[इसके आगे मूल का ३२२ नंबर का दूहा है ।]

करहा नुणि ढोलो कहै, रहीयो पोडो होइ ।
मुझ मिळावे मारविण, इसो सयण न कोइ ॥

[इसके आगे मूल के ३०४, ३६३, ३६७ और ३५८ नंबर के दूहे हैं ।]

वीछडता ही सज्जना, नीसाणा घ मूक ।
के मरीया के वाळीया, के दावा के सूक ॥

[इसके आगे मूल के ३४६, ३६६, ३७६, ४१६, और ३८१ नंबर के दूहे हैं।]

षडीयो ढोलौ करहलो, मिळीयो वावोवाय।
वासै मूकै माळविण, सूवेनुं समझाय॥

[इसके आगे मूल के ४००, ४०१ और ४०४ नंबर के दूहे हैं।]

ससनेही को विछड्यौ, मूंओ न सुणीयो कोइ।
तंबोली केरा पान ज्युं, झूरि झूरि पंजर होइ॥

सूआ एक सदेसडो, माळवणी बाळेह।
सौ मण सूकड नै मण अगर, म्हाकी हुंती देह॥

सूओ पाछौ आवीयौ, ढोलो गयौ अलज्ज।
कहीया ही वळीयो नहीं, तोसुं केहो कज्ज॥

ढोलै तणा सदेसडा, सूवे कहीया आइ।
मुरछागति हुई माळवी, ऊभी हाथ मळाइ॥

[इसके आगे मूल के ४२५ और ४२६ नंबर के दूहे हैं।]

चढीयो ढोलो करहलै, मिळीयो, वावोवाय।
ढोलो मन ऊमाहीयो, घडीयै जोजन जाय॥

जंगळ देस अजग थळ, कोहरे ऊंडा नीर।
ढोलो षडै उतावळो, सयणां तणै सहीर॥

[इसके आगे मूल का ५२२ नंबर का दूहा है।]

आगळि जाता एकलो, ऊभो सड गिवार।
वहतो देषी वाटलै, लागो कहण ति वार॥

[इसके आगे मूल के ४३६ और ४३७ नंबर के दूहे हैं।]

उवा मारू पिंगल तणी, छाळीयाँ छागा सत्थ।
रमता वाथळ कुंडीयै वहुली वाती वत्थ॥

[इसके आगे मूल के ४३६ और ४४५- नंबर के दूहे हैं।]

पग आघा पाछा पडै, मन पाछौ मे जाइ।
सयण वयण साभल्या, वधइ प्रीत घट जाइ॥

इतरै आघा चालता, मिळीयो मागणहार।
साम्है हुइ सुभराज कीयो, ढोलै कीध जुहार॥

पूछ्यो तिण मागण भणी, कठा आवीयो कहेह।
पूंगळ रावा ओळगे लाष पसाव लहेह॥

तिणानु ढोलै पूछीयौ, मारवणी [illegible] ।
बोलै चारट मैं सुणी, [illegible] ॥
जे तैं दीठी मारवी ता [illegible] ।
चढा [illegible] गुणधमळ, [illegible] ॥

[इसके आगे मूल के ४७?, ४?? ([illegible]), ४६३, ४५६, ४६०, ४६२, ?३, ४८?, ४?? और ४८? नंबर के दूहे हैं ।]

तिण ढोलेनु [illegible], [illegible] ।
[illegible] ॥

[इसके आगे मूल का ४९९ नंबर का दूहा है ।]

ढोलो चाहै [illegible], [illegible] ।
तिण गाँमै सुजन वसै, [illegible] ॥
पोढी [illegible] पारठी, ढोलो [illegible] ।
दीवै वेळा न [illegible], तो [illegible] ॥

[इसके आगे मूल का ४९७ नंबर का दूहा है ।]

फरहै [illegible] सामळी, [illegible] ।
माझिम राते मारवी, [illegible] ॥

[इसके आगे मूल का ५४३ नंबर का दूहा है ।]

ढोलो घरे पधारीयो, हरख्या सगळो गाम ।
पूगळ राजा आवीयो, हरखे कीधो प्रणाम ॥
कीधे ऊगट माजणी, कीजे सगत मडेह्न ।
सेझ पधारी मारवी, सुंदर सुगण सनेह्न ॥

[इसके आगे मूल का ५४१ नंबर का दूहा है ।]

तन सिणगारयो मारवी, सिणगारयो सह हरथ ।
अगै चंदन महमहै, मोदै बीडो हरथ ॥
मारू हसी सुळफनै, बीजळी पिवेइ फ दंत ।
प्यारे दिस सुवस वसी, हस गळ लग्गी कंत ॥
ढोलै दीठी मारवी, अदभुत रूप अाचम ।
हसकरि पूछै वत्तडी, कहि तू केण आचम ।

[इसके आगे मूल के ५४६, ५४८ और ५४९ नंबर के दूहे हैं ।]

आपा मेळो हिवै हूओ, गया वरस साळेह ।
हुं तुझ पूछूं मारवी, पहिली मोंणी केण ॥

अधर तबोलै मॉणीया, कै दीण्यणी चीरेण।
थणहर कंचू मॉणीया, नयण न जाणुं केण ॥

[इसके आगे मूल के ५५७, ५५१, ५५३, और ५२८, नंबर के दूहे हैं।]

मुंई हूंती रे वल्लहा, तूं भलै मिळीयो आय।
कुसल पछे ही पूछस्यां, पहिली प्रेम च्पाय ॥

[इसके आगे मूल के ५५५, ५६३, ५६१ और ५५४ नंबर के दूहे हैं]

ढोलो निरखे चोईयो, अपछरकै अनुहार।
हूई न होस्ये एण युग, मारू सरषी नार ॥
वालंभ जे विरचै नहीं, जे दूहवीया होय।
अधर अमृत-रस घूटता, कबही त्रिपति न होय ॥
घणां दिनाहुँ प्रीउ मिळ्यो, मनमानीतो कंत।
अंगो अंग भीडै घणुं, मिळै हसत हसंत ॥
पुंगळ ढोलो प्राहुणो, रहीयो सासरवाडि।
पनर दिहाडा पदमणी, माणी मनहरु हाडि ॥
सगळो साथ संतोषीयो, पूजी सगळी आस।
मारू नो तिणहीज गुणेइ, दीन्हा लाख पचास ॥
ऊमर राजा सांभळ्यो, जे रावाचो राय।
मारू चाली सासरै, ढोलो लीयै जाय ॥
पंच सहज पवंगे मिल्या, रहीया वनह मझारि।
माटी तो मारू लीया, मारग ढोलो मारि ॥
ढोलै मरम न जाणियो, चढीयो करह पलाण।
साथे सो असवार हूआ, इक पहिलडै पर्याण ॥
पिंगळ राजा मारवी, पहुचाई हरषेण।
मनह सकोडी मारवी, सुषवंत सोहागेण ॥
पुंगळ-हुंती मारवी, चाली ढोलै सत्थ।
चंपावरणो वल्लहो, घणुं सकोमळ हत्थ ॥
पहिलो वासो थळ रह्या, माहे करणुं माग।
निस भर सूती मारवी, पीवी पैणै नाग ॥
प्रह फाटी सहु जागीया, मारू सूनी काय।
ढोलो कहै हिव तागरी, मारवणी सगाय ॥

जीवो मारू कोडि जुग, तूं ना पटो निरास ।
ढोलै करहो पिलाणियो, चलो नरवर वाट ॥
धूणि धधूणिवि तागी, वार नि क्याग सुपद ।
तिण वेला तिण ढोलनी, सरढा पीधा गर ॥
देव ज धणु विनाणी रो, दीधो ज पाप आधार ।
मारू तन निवाणियो, का रयो निरधार ॥

[इसके आगे मूल का ६०८ नम्बर का दूहा है ।]

विहु नयणे आसू भर, वळि वळि करे विलाप ।
हा हा देव किसु कीयो, मारू पाखी ताप ॥
पिण रोवै पिण विलखलें, मारू पाछ चवट्ठ ।
वर धण ढोलो नाह विण, धण विण नाह म दिट्ठ ॥
वळतो ढोला इम कहै, कळि अर्थायात केरह ।
मारवणी पैसे हसी, हु कव हर साथि दहेर ॥
विळविळीया विलपा हुआ, गया ज पिंगळ पास ।
मारवणी पड़णी डसी, ढोलो साथे जाय ॥
पिंगळ राय कहावीयो, ढोला वाह्लो आव ।
मारू लहुडी वहिनडी, तोहि-मणो परणाव ॥
वळतो ढालो इम कहै, एहना वचन म भाख ।
मारुसुं तन कळपीयो, ग्रहा विरत्त सवि साथ ॥
वन मोडे काठ आणीयो, सगळ कियो सुहार ।
मारूसु ढोलो वळे, हुवो ज हाहाकार ॥
मारवणी ढालो ग्रहै, ढोलो वैठो माहि ।
दीवाधरी रै करहलो, इसपी करै अपाहि ॥
करहानै चवीसने, पहिराया सिणगार ।
नरवर जाए नै कहै, ढोला-तणा जुहार ॥
आरड भीरड करहलो, मिळीया तर सभार ।
ईसर तेथ पधारीया, साथे उमया नारि ॥
उमया बोलै ईसरा, किसो अचभो एह ।
धण केडै कतो वळै, आवो देपा एह ॥
संकरनै गवरी कहै, प्रीतम ली किण पाहि ।
जौ सामी कहीयो करो, तौ मारू जीवाहि ॥

संकर गवरीनुं कहै, आपा फिरां विदेस।
मूंआ अनता देषस्यॉ, कहि केता जीवाडेह ॥
गवरी थळ फछै छिपी, सकर बहुत विललाय।
इम लाखे पारबती, अगळि ऊभी आय ॥
देखी दीन दयामणा, दया करै मन माहि।
अमृत आणी छाटीयो, संकर सै हथ साहि ॥
विस विसहर पासै गयो, ततषिण हूई सचेत।
ढोलो मनमा हरषीयो, कै सा पुर संकेत ॥
ईसर ले उपावीयो, का कीजे अरगाध।
गवरी इन पुत्रिका, तेइ न दोषो आध ॥
मारू पूछै-कंत सुणि, किण कारण चिह ठाण।
तुझ मरंता मारवी, मइ कळपीया प्राण ॥
हिरणा ही फूटै हीया, टोळासु टळियाह।
कहि केडै रहिवौ किसु, सयणा वीछडीयाह ॥
ढोलो मारु एकठा, हस वैठा वन माहि।
तिहां तेडी दीवाधरी, कीधो लाष पसाव ॥
पुंगळ जा दीवाधरी, सहु वाता करि आज।
धन जीवी प्रीऊ हरषायो, सरीया सगळा काज ॥
पिंगळ राव पधारीयो, कीधो लाख पसाव।
घरि घरि हूआ वधामणा, घरि घरि अधिक उछाह ॥
ढोलो चाल्यो करहे चढि, मारवणी सयुत्त।
ऊमर मारग रोकीयो, ततषिण आइ पहुत्त ॥

[इसके आगे मूल का ६२७ नंबर का दूहा है।]

ऊमर दीठा करहलो, दीठा मारू ढोल।
आदर दे मद पावीयो, बोले मीठा बोल ॥

[इसके आगे मूल का ६२८ नंबर का दूहा है और पंक्तियो का क्रम उलटा है।]

गीत गावंती डूंमणी, षेली नवली घात।
एकरस्युं ढोलो ऊवरै, कहि सयझावै तात ॥

[इसके आगे मूल के ६३१, ६३३ और ६३२ नंबर के दूहे हैं।]

कंव चटक्कै करहलो, गयो दुरंत ऊठ।
मारवणी जे मारीयो, डोलै झाली मूंठ ॥

ततपिण मारवणी कहै, साभळ कंत सुजाण ।
आ पाचूको ऊमरो, किम राखि स अपाण ॥
झबके करहो झेकीयो, कूंट न बोडी मूळ ।
धण ढालो मारग वहै, ऊमर भागी सूळ ॥
मारू चढती मारियो, त्रिहु नयणांचे बाण ।
साथ म हितलु ऊँमरो, पडीयो तिणयै ठाण ॥
हलो हलो ऊमर कहै, पवगे पढै पलाण ।
सो झले तनु लाघ घुं करहैनुं केकाण ॥
ऊमर आरहडा पडे, पहुँच न सक्कै कोइ ।
उवे कीम पहुचे बप्पडा, करहो पंथी सोय ॥
भाऊ भाट पधारीयो, ढोलै साम्हो सोय ।
पोडो करहो किम खडो, हँसि करि पूछै सोय ॥
माहरै वासै ऊँमरो चढीयो आवै राय ।
तिण कारण ऊतावळा, मारवणी ले साथ ॥
ढोलै भाउनुं छुरी, दीधी वाढै कुंट ।
पंथ विषम सही लघीया त्रिहुं चलणामैऊट ॥
पथी ऊमरनुं कहै, म मारिजे तुरंग ।
पोडै करहै लंघीया, जे थळ हुता अजग ॥
भाऊ ऊमरनै मिल्यो, जब जन बोल्या सात ।
ऊमर तब पाछो वळ्यो, साभळ ढोला वात ॥
ढोलो घरे पधारीयो, पूगी सगळी आस ।
मनवछित सुख भोगवै, मारवणी आवास ॥

[इसके आगे मूल के ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५८, ६६३, ६६५, ६७२ ६७३ और ६७४ नंबर के दूहे हैं ।]

इति श्री ढोलामारूरा दूहा संपूर्णम् ।

संवत् १७७१ वर्षे मति श्रावणमासे शुक्लपक्षे तृतीया-
तिथौ सोमवारे लिपतं आणंदविजए गुंद वच
नगरे । श्रीश्रीशुभ भवतु कल्याणम् ।

———

(म)

[आनंद काव्य महोदधि, मौक्तिक ७, मु में प्रकाशित। सं० १८०१ आसु सुदि १० वार शुक्र को लिखित। इसमें कुशललाभ की चौपाइयाँ तथा गद्य वार्ता भी सम्मिलित है। यहाँ केवल वही दूहे लिए गए हैं जो मूल में या अन्य किसी प्रति में नहीं आए हैं।]

ढोला-मारवणीरी चौपई वात

मठ माहे तापस वसै, बिचै दीजै जीकार।
हम तुम ऐसा रग है, जाणत है करतार ॥
गोहुं पैहला नीपजै, सिर पोतर वर तास।
पहिलै चोथी मातरा, हमचो है तुम्ह पास ॥
पीउ कारण पीली हुई, लोक जाणै पिंड रोग।
छाना लाघण म्हे करा, वालम-तणै विजोग ॥
फौज घटा घट दामनी, धनुष बुंद सिर लेह।
अेक तोही न विण साहिबा,(मुज)मारण लागो मेह ॥
धण सूती मेले गयो, कत गलती राति।
वळीयै दिन वळीयो नहीं, वुठै तो वरसात ॥
केता भीड सभीड करि, कडि पतळी म देषि।
काठी लाल कवाण ज्युं, वळती करो विसेष ॥
सब ही लोवडआळीया, न जाणू धण काय।
नीले चरणे मारवी, पदम जडावै पाय ॥
मारू लंक नै अगली, पान ज पतल षाय।
नाह न भीडै डरपतो, मुंघ कड़के जाय ॥
करहै जे थळ लंघीया, दोहरा नै दुरग।
तुं उंमर-सुंमरनै कहै, म मारजे तुरग ॥

सोरठा

ढोला मारू वात, सांभळता सुख उपजै ।
कैहज्यो सखरा पात, भांत भांतसुं वर्णवै ॥
चतुराइ कवि चोप, जे पिणमै जैसी होयै ।
मरदा देज्यो मोज, लाहो धन जोवन लीयौ ॥

इति श्री ढोला-मारवणीरी चौपई वात संपूर्णः ।

सकल पंडित शिरोमणि पंडित श्री ५ श्री दर्शनविजय गणि शिष्यः पं० दीपविजयगणि लिखित संवत् १८०१ वर्षे आसु सुदि १० वार शुक्रे लिपिकृतं श्री फलला आगे । सिंघल राव श्री कल्याणसिंघजीराज्ये चतुर्मासिक कृता । श्री शुभं भवतुः श्री ॥

शब्दकोष

शब्द कोष

अ

अखि=आँख ५१
अंखी=आँख ४७४
अगणइ=आँगन में ४३, ५४०
अंगणि=आँगन मे २००
अंगळ=अंगुल, नाप विशेष ४३३
अगारेह=अगारे में-० से २०६
अंगुलाँ=अंगुलों (की), अंगुल एक नाप है ४६१
अतर०-रि-रे=अंदर, भीतर, हृदय में २३, २१८, २३६ दूरी, फासला, ६१। बीच में ४६४
अधारी=अँधेरी ६२२
अंब-०बा=आम ८, ४७१, ४७२
अँवळउ=व्यथित, टेढा ३५१।
अइ=ये, ऐसे २, ४३०
अइहइ=ऐसे ४६६
अउ (पुं)=यह ६, १०
अउभकइ=अचानक ८६
अउथि=वहाँ २२४
अउलगउँ=यात्रा या प्रवास करूँ २२४
अउळगण=यात्रा या प्रवास करने को २२५
अकयथ्थ=अकारथ, व्यर्थ १६६
अक्क=आक २८६
अगलूँणी=पहिलेवाली, पूर्व ५०१
अगास-०सि=आकाश, ०में २०१, २६०, ५२२
अगणि=आँगन में ३६६
अगार=आगार, महल ३१४
अगालि=अकाल में, असमय में ३६१
अग्गि=अग्नि १८१, ५१२
अचती=अचिंत्य, आकस्मिक ६२७
अच्छ=स्वच्छ, अच्छा, सुंदर ४५२
अच्छियउ=स्वच्छ, अच्छा ४७१
अछइ=है ११४, ५७२
अजइ=अभी, अभी तक १५३,३२२
अजाँण=बिना जाने हुए, छिपे हुए १८५। अनजान, अज्ञान, भोला भाला ३३२, ४३६
अजे=अभी, अभी तक, आज तक ११, ४१०
अज=आज १०७, २१६, ३१२ ३६३, ५००, ५२०
अणंद=आनद १०१
अण=अन, अ (उपसर्ग) २०, २३, ४४६, ५३४
अण=इस ४७८
अणदिट्ठा=नहीं देखे हुए २०, २३
अणपीयइ=नहीं पीए हुए, पिए बिना ५३४
अणहुती=अनहोनी, असंभव ४४६

अणावाँ=मँगवाते हैं ६३५
अणुराव=अनुरव, शब्द का अनुकरण ५२
अदिटा-०दीठा=नहीं देखे हुए १, ५२३
अध्ध=अर्ध, आधा ५७७
अन=अन्न २६४, ६१४
अनइ=और ४५६
अपछर=अप्सरा १६७, ५६५
अपस = कुत्सित या दीन पशु ३३६
अपूठा=वापिस, पीछे ४०४
अप्पाण=आत्मान, अपने आप को २३४
अभितरेण=अभ्यतरेण, अदर से, बीच में से ५७५
अभोखण=आभूषण, गहना ४७१, ४७२
अम्भ=अभ्र, आकाश ४८७
अमल=अफीम, जलपान व विश्राम ६२८
अमले=अविकार अमल १२
अम्हाँ=हमारे २०
अम्हाणइ=हमारे ४०१
अम्हीणी=हमारी १३५, ५५६
अर=और १६८
अलता=अलक्तक, महावर ८७
अलाणी=बधाई ५६६
अळगा=दूर, प्रवास ४२०, ६२८
अळगा=दूर २०७
अवसरणउ=अवर्षा, पानी न बरसना ६६०
अवराँह=औरों को, अन्य ८
अवसि=अवश्य, परवशता के कारण २००
अवाड़=विपरीत ७१
अविंध=अविद्ध, बिना बिंधा हुआ… २३०
असन्न=आसीन, बैठा हुआ, ३३६ आसन्न, पास मे ४४१
असाधि=असाध्य २६८
अस्स=अश्व ५६६
असप्पति=अश्वपति, राजा ५६६
अहंचो=अचंभा (क ६३४)
अहर=अधर ८७, ४७०, ४७२, ५१६, ५१७, ५१८, ५६६, ५७२
अहलउ=व्यर्थ, योंही ६१८
अहिनाँण=अभिज्ञान, चिह्न ५१६

आ

आँख्याँ-०खियाँ=आँखें ११६, ५१६, ५३१
आँगळड़ी = अगुली १४४
आँण=लाकर ५१५
आँणि-०णी=ला ३४ लाकर ३३६, ३४४, ५८८
आँणी=लाई गई ५४४
आँण्या=लाया ५७३
आँबउ=आम ११७
आँमली=विमल ३०३
आँसुआँ=आँसुओं से १२७

आभय=आकाश में ४६
आमण - दूमणउ = उदास, उद्विग्न २१८, २३७
आय = आकर १२४। आ १३४
आया=आए १०६, ५२८, ६४४
आरखइ=अवस्था, दशा १४
आरति=लालसा २०८
आलिग=अलग, प्रवास में ५२२
आळिगण=आलिगन ५४४
आवतइ=आगामी ३६५
आवि=आ, आओ १७७, २६८, ४१८। आकर २०७, ५५०
आविज्यउ=आना ३६८
आवियउ = आया ११, ३०, ३२, १५१, २५७, ४०१, ४०६, ४२२, ४४७, ५०१, ५२६, ५७३, ५७६, ६५१
आविया=आए, आ गए १०४, २७६, २६५, २६६, ५२६, ५,२, ५३३, ५३१
आविस्यइ=आवेगा २२७, ५१६
आविसि=आता है १५७
आविस्यां=आवेंगे १०८
आवी=आई २७४, ३०३, ३१६, ५६२। आकर ६०
आवेस=आना, आवेगा १४४।
आव्यउ=आया हुआ ४४४, आया, ६१३
आसगे=श्रंगार करना ३१४
आसालूध=आशालुब्ध ५५२
आस्यां=आवेंगे ३४७
आही = यही २७०, ३७५, ३८२
आहुड़इ=जुट रहे हो ५६६

इ

इँणि=इस ३७७
इ=ही २५३
इण=इस २४६, ४३०, ४५३, ४८८, ५०८, ६२३
इणहि=इसी ६२०
इणि = इसमें ५१, २५३। इस ७६, ७६ १८३, ४२३, ६१४, ६४६।
इस (के) ६१४
इद्राँ=इद्र का ५८०
इवड़उ=ऐसा २१८
इसइ=ऐसे १४

ई

ई=यह १६३। भी ही ७१, २००, ३६६
ईडर=देश विशेष २२४, २२५

उ

उआँ=उन (से) ७४
उक्कची = उत्कचा, गरदन ऊपर उठाए हुए १६
उगहंताँह = उदय होते हुए ४७८
उघट=उझल २३१
उचाट=उद्विग्नता ६१६
उचळ चित्ता=चंचल चित्तवाले ४८७
उजळी=उज्ज्वल, गौरवर्ण ४६४
उठ्यउ = उठा ६३४
उडदउ=उड़ता हुआ ३८०
उडियर=उड़कर ४०६

उण=उस ४४, १४१, ४५०, ६४५
ठणि = उस १०८, ६०५
उणिहिं, उडहिन=उसी ६५०
उणिहार=अनुहार, समान ५८० ६१३
उतॉमळउ = जल्दी से ६३४
उतॉमळा = तेजी से ः ३८, ६४२
उतॉर = उतारा ५७६, ५८० । उतार-कर ६२३
उत्तर=उत्तर, उत्तरी पवन २८६, २९६, ३०१
उत्तरइ=उतरता है, चलता है १६८, २९६ । उतरकर २३०
उत्तरउ=उतरा, उतर आया २८६, २८७, २८९-२९५
उत्तिम = उत्तम १०३, १८७
उथापियो=हटा दिया (ज ४४४)
उदधियाँ=समुद्रों ४१५
उदियइ=उदय होने पर (भाग्य) ४८८
उपड़इ=उमड़ता है २९९
उपराठउ = पीठ किए हुए, विमुख ३५०, ३६३
उपराठियाँ=पीठ की ओर किए हुए ६४
उपन्नियाँ=उत्पन्न हुए हुए, उत्पन्न हुई हुई ४५७, ४८४, ६६६, ६६७
उपाड़ियउ = उठाया, उचाट किया ११८, ३२४
उपाड़ी = उठाई
उभॉखरा = भ्रमणशील ६६२
उमाहउ = उमग, उल्लास ५१८
उमाहियउ = उमंगयुक्त हुआ ३०२
उरळउ = हलका ३८६
उलहियउ = उमड़ा ५३८
उलाथियउ = उतरा ५३१
उलाळनो=उलटा करना, नाश करना २०६
उल्हवण=उल्लसित करनेवाला १६१
उल्हास = उल्लास ४०७
उवॉ = वहाँ ३६२
उवा = वह २७१, ४०८ । उस ४११
उवै = वह ५१ । वे ५२
उसारिस्यॉ=निकालेंगे, खींचेगे ५२५
उहॉ = वहॉ २, १३

ऊ

ऊँचइरी=ऊँची २८, २९
ऊँट-कटाळउ = (ए० व०) = ऊँट-कटारा नामक घास ३०६, ४२७
ऊँडा = गहरे ५२३, ५२४
ऊँमर, ऊँमर सूमरउ = ऊमर सूमरा, एक राजा का नाम ६२६, ६२९, ६३०, ६३५, ६३६, ६३८ ६४३, ६४५ ६४७, ६४९, ६५०
ऊ=वह ७४, ३९३
ऊकटियइ=निकलता है २९७
ऊकटिया=सुखा दिया २९५
ऊकरड़ी=घूरा ३३६
ऊगन्तइ=उगते, उगते हुए १९४, ६४६
ऊगइ=उग, उदय हो-०होना १२९ १३० । उगने पर ५४६
ऊगउ=उगा, उदय हुआ १५८
ऊगट = उबटन ५३५

ए

एराकी=इराक देश का प्रख्यात घोड़ा ४५८, ६४१

एवड़=भेड़ों का झुंड ४३६

एवाळ=गड़रिया ४३५, ४४०

एवाळाँह=गडरियो (को) ६५८

एह=यह, इसमें, इसके २४, १००, ३०६ ३११, ४४१, ६३७

एहवां=ऐसे ३३६

एहवी=ऐसी ४८३

एही=ऐसी, जैसी ४५६, ४६०, ४६५, ४७०, ४७३, ६२६, ६२७

ओ

ओ=यह ६

ओखभिया=छोडे ६४१

ओछइ=ओछे, छिलछिले, कम १६२

ओछउ=ओछा, कम १६२

ओछाँ=ओछे, क्षुद्रहृदय ३३८

ओढण=ओढने ६६२

ओलइ=ओट में, आड़ में ५६

ओले=ओट में २८७

ओळबा=उपालभ, उलहने २७१

ओलखिया=पहचाना ६१७

ओलग=अलग, दूर ११४

ओळग्या=चले, प्रवास किया१८५

ओहि=वह, होता है १६२

क

कचवउ, कचुवौ, कचूकी, कंचूवा= कचुकी, केंचुली ४६, ३५७, ५५१, ५५२, ५८५

कंटाळउ=ऊँट-कटारा, एक घास विशेष ४२८७ ६६१

कठळि=कठुला, कठा (एक आभरण, कठुले के आकार के मेघ ४३, २६७ ५२१, ५२२,

कंठा=कंठ से, गले में २१४, ५१३

कठाग्रहण=आलिंगन २१४,

कॅणयर=कनेर, कर्णिकार १३५

कध=गर्दन २०१।

कधि=कधे पर ६५८

कब=छड़ी, डाली १३५, ४९३, ६३४

कबड़ी = छड़ी ४६२, ४६४

कबळा = कम्मल ६६२

कंबाइयउ = छडी से मारा ५२२

कॅमळणी=कुम्हलाई १२६, १३०

कँवारियाँ,=कुमारियाँ, अविवाहित कन्याएँ २८६

क=या, अथवा १४०, १४१, ५४२, ६६०। पादपूरक अव्यय ३८१, ४०१, ४६४, ४७३, ५६१, ५६५, ५६६

कइ=की, के, कर, करके ७१, १४५ १८६, २०१, २०२, २७३, ३३३, ३७१, ३७२, ४१७, ४४१, ५२३। या, अथवा, या तो १४१, २६४ ३६१, ४७७, ६६०। क्या, या २००, २१७, ३६१

कइकाँण=घोड़े ६२७

कइरॉ=करीलो का ४३०, ४३१

कई=क्या, या १४६

कउ=का ३६, ८०, २३८, २६१, २२३, ३३३, ५३१। कौन

करही=ऊँटनी ३२३
करौँ=करें ४४५
करॉह=हाथों का ४१५। करें ६२८
काड्ड्आ=लंबी गर्दनवाला, बलवालेनेवाला ४३३
करावइ=किए हुए (?) १५४
करि=कर, करो, करके, करता है ३४, ६८, १५८, १७४, २५४, २७८, ३४७, ४३०, ४८६, ४६७, ५३३, ५५१, ५७४, ६१३ हाथ में ३४६, ४७३। का ६२७। से ३३५, ५३८
करिजउ=करियो, करना १७६
करिया=करना १८२
करिस्यइ=करेगा ६३६
करी=करके ३३७
करीजइ=करना चाहिए ६२४
करीरॉ=करीलों के झाड़ ४३२
करूर=दुष्ट, क्रूर ६४१
करे=करके, करे ८४, १०६, २५७, ४०५
करेस=करे, करेगा २६४, ४४३
करेसि=करूँ ५१३
करेह=करे, करके, करना, करता है, करो २७३, ३१७, ४४४, ४६०, ६५०
करेहि=करता है २८४
कळहळिया=शब्द किया ६२७
काळप=विलाप ३२३
कळाइयॉ=विलाप किया ६११
कळि=कलियुग ६७४
कळिअळ=कलरव ५८, ५६
कळिजइ=पहचानता है २३४
कळियळ=कलरव, करुण रव २८३
कळियेह=कलियों से ५६१
कळी=कली १२०, दाने, बीज ४८०
कळजउ=कलेजा ७५
कवड़ी=कौड़ी ३७०
कवण=कौन १६५, ३१२, ५७१, ५७५, ५७७
कस=बंधन, ४६
कसण=कसने, बंधन, जीन को बाँधने का रस्सियाँ ३४६
कसर्ई=कसवी, कसी हुई २४३
कह=कहता है ६७
कहण=कहने को ३८१
कहवा मणी=कहने को ७६
कहय=कहता है ३६७
कहाँ=कहें ६७०
कहिए=कहने से २४२
कहिजइ=कहा जाता है ४०३, ६२६
कहिज्यउ=कहियो, कहना १३६, ६४५
कहियउ=कहा हुआ, कहा है १००, २४१, ३२३, ४४८
कहिया=कहना ६४, ११०, ११२। कहे, कहा ४८६
कहिलाइ=कहलाया जाता है ६६
कहिस्यॉ=कहेंगे ४४५
कही=किसी (ने) ३४४
कहीजइ=कहा जाय ३४०

कह्याँ=कहने से ३५

काँइ=क्या, क्यों, कैसे १६, १०७, १२२, १७७, २१७, ३३४, ३८६, ३६०, ४१४, ४१५, ४१६, ६०३। कोई, कुछ ५१। या ६२७

काँब=छड़ी ४१०

काँबड़ी=छड़ी ४१४

काँबे=छड़ी से ६३३

काँमण=कामिनी ४८५

काँमिण=कामिनी २२२, २३५, २६७, ३३३, ६५२

काँहीं=कहीं ३५१। किसी ६१५

का=या ३४, १०७, २३५, २७८, २६४, ५६७, ६३०, ६२७। का, के, की १४३, १५६, १७२, १८५, २६२, ६६५। कोई २१७। क्या २३६

काइ=क्यों ११८, ३८६। कोई २७७, ३२१, ४०३, ४५१। वा, या तो ३४। किसी ६१५

काइक=कोई एक ३५

कागळ=कागज १८०, २४१

काछी=कच्छ देश का (ऊँट) २२८ ४६६, ४६६

काछलिया=कजली त्योहार १५०

काझा=फँसे हुए ४१५

काठी=कसकर, मजबूती से (?) ४१६

काढिस्यइ=निकालेगा ५३४

कादम=कादा, कीचड़ २५६

काने=कानों में ४८०

काप=काट, कटाव १८०

कामड़उ=काम ६३३

कामणगारियाँ=जादू करनेवाली २४८

काय=या तो २६६

कारणइ-०णि=कारण से, के वास्ते, लिये ६१, १६०, ३४४, ४३६, ४६७, ५२३, ६५६

कालर=कीचड़ ४६५

काल्हइ=कल २१६, ४३४

काळउ=काला ३७१

काळ=काला ३६३, ६०८

काळिया=काला (ऊँट) ४६६, ४६६

काळी=काले रंग की, श्याम, काली (ऊँटनी) ३१, ४३, २६७, २७१ ४६१, ५२१

काळेजा=कलेजा १८०

कासी=खूब (?) ४१६

काहूँ=कैसे, किस कारण, क्या १७८, ४४५

काहळियाँह=कातर १८७

किगाइ=बोलता है (य ३८८)

किनार=करार (जलाशय का) ४६

किउँ=क्यों, कैसे, क्योंकर २०, २२, ७१, १५०, ५५६, ६२८

कि=क्या ४३६

किअइ=किए हुए, करते हुए १२

किण=किस ६२, ३६५, ६४४

किणहूँ=किसी से १५६

किणहिं=किसी को ६३

किणहिं=किसी ने २२०

किणही=किसी २। कौन से ५७

किणि=किस (के) ३१२

किनाँ=क्या, या ४०१
कियइ = करके ४३७ । किया ६४३
कियउ=किया १, ५४, ५५, ५८, ५६ २४३, ४४७, ५८१
किया, ० याइ=किया, किए हुए १३८ १५४, १८४, २३५, ३४५, ३६६, ५१६, ५६८, ६०७, ६७२
किर = मानो ६४८
किरणाँह = किरणों ४६६
किव = किस ५१८
किसइ=कौन से १३८, १४०
किसउ = कौन सा २१८, २२२, २२३, २५२
किसा=कैसे, कौन से १७७, ४८८
किह=कहाँ ८६
किहि = किसी ३५०
किहीं=कुछ ४०१ । किन्हीं को ६२५
कीजइ=किया जाय, कीजिए ६
कीध=किया ६, १८५, १८७, ५५४
कीधउ=किया ३८
कीधी=की ५२, ५६४
कीन्हीं=की १६७
कीयाइ = कर दिए ५३०
कीयो = किया ३५७
कुँअरी=कुमारी ६०
कुँअळ=कमल ४७३
कुंझड़िया=कुंज पत्ती, कुरझ ५८
कुँझड़ियाँह=कुरझों का २४५
कुंझड़ी=कुरझ ६७
कुंझाँ=हे कुरझों ६२
कुण=कौन १६५
कुँमळाइ=कुम्हला जाती है ४७१
कुँमलाणी=कुम्हलाई ७७, १६३
कुँवेण=कुए में ६५०
कु = पादपूरक अव्यय ५६५
कुआरउ=अविवाहित, कुमार, कुँवारा ३२२
कुइला=कोयला ११२
कुड़ियाँ = फटने पर १४६
कुण=कौन ८६, २३७, २८४
कुमकुमई=गुलाबजल से २४०
कुरंगउ = हरिण ३६४
कुरझड़ियाँह=पत्ती विशेष, कुंझ, क्रौंच २८३
कुरझाँ=कुरझें, हे कुरझो ६३, ६४
कुरझी=कुरझ पत्ती २०२
कुरळइ=कलरव करती है ३८६
कुरळाइ = कलरव करती है २६१
कुरळाइयाँ = कलरव किया ५६
कुरळिया=कलरव किया ५३
कुरळी=बोली, कलरव किया ५१, ५७
कुळ सुद्ध=शुद्ध कुलवाली १७४
कुहक्कड़ा=पुकारने के शब्द ६५५
कुहड़ि=कुहड़ (कुँए की) ३६७
कुहाड़उ=कुल्हाड़ा ६५८
कू=को ६७, ५३६
कूँआरि=कुमारी ६५६
कूँकूँ=कुंकुम ४६६, ६३८, ६५७
कूँझ, कूँझाँ, कूँझड़ियाँ, कूँझड़ियाँह, कूँझड़ी = कुंज पत्ती ५४, ५५, ५६, ५७, ५६, ६५, १६८, ४५७

ख

खंच=खींचकर, छककर, तृप्त होकर ४२६

खंचिया=खींच लिया, रोक लिया ४६६

खजर=खंजन, पक्षी विशेष १३, ४५७ ४५८, ६६६

खडियउ=खडित किया ३६५

खंडी=खडित किया ३६५

खति=अभिलाषा २३८

खग=खग २५५

खड़ंति=हाँक रहा है ४२३

खड़ड़=चलाता है ५१६, ६४२

खड़हड़=धड़ाम से २३६

खड़हड़िया=खटके ३८०

खड़ाॅ = हाॅके, चल दें ६२४

खड़ाॅह=चले ६२८

खड़ि = चलाकर ४६०

खड़िस्याँ=हाँक देंगे (सवारी को), चल देंगे २७८

खध्ध = खाया ३८१

खमणी=क्षमाशीला ४५२, ४५६

खयॅग=तलवार ६४०

खरउ=पूरा पूरा, निश्चय ही ३०२

खळकइ=शब्द करता हुआ बहता है २६५

खवास = नाई, राजमहल का एक भृत्य (जो प्रायः नाई जाति का होता है) ८०

खाॅणा=खानेवाला ३०६

खाअउ=खाओ, खाते हो ११७

खाइ=खाता है १४, ८२, २०१, २१६, २५४, २७१, ३६३, ४२७, ५८८

खाहि=खाता है १६० । सह रहा है ४३६

खिवी=चमकी ५४२

खिजमति = सेवा ५३५

खिरा = गिरे २६४

खिल्लोखिल्ल=गड्डमड्ड (मिल गए)५३

खिवताॅ=चमकते हुए १५०

खिवइ=चमकती है १६१,२६०,५२१

खिवियाॅ=चमकी १८६, १६०

खिवी=चमकी ८६

खिस=खिसकर ३४६

खिसइ=क्षीण होता है, उतरता है १७७

खिस्या=शिथिल हो गए ४४२

खीज=खीझकर, झुँझलाकर १४६

खील्यौरी=गडरिया ४३८

खुणसउ=खुनस ५४६

खुरसाॅणा=तलवार ३८०

खुरसाणी=खुरासानी ६४०

खूँटइ=खूँटे पर ३७४

खूदइ=खोदता है २३७

खेत्रि=खेत १४६

खेलाड़इ=खेलाता है ३३४

खेह=खेह, धूल ३६०

खोजे=खोजता है, ढूँढता है ३६१

खोटइ=खोटे ६२६

खोटाॅ=भाग्यहीन, अभागे २३६

खोड़उ=लँगड़ा ३१७, ३१८, ३१६, ३२८, ३३३, ३३५

खोड़ी=धीमी ६०६

खोरड़ी=वृद्धा ४४३

ग

गइ=चली गई, बीत गई ४४३, ४६६

गइय=गई ३६२

गउख = गोखा, गवाक्ष २८

गउखे=झरोखे में २८३, ३६२, ३७३

गजि=गरजकर ५०

गड्वड्यउ=उन्मत्त हो गया है (प ८१५)

गड्डिया = गड़ गए ५५३

गमति=बिताता है ५६८

गमाया=गँवाए, बिताए १६५

गय=गति, चाल ४१०, ४५८, ४६०, ४७४। गज २३१, ५६५। गया ५७७

गयाँह=जाने से १६२। गए हुए १५२

गरथ=द्रव्य १६६

गरग = भींगी भाग ४७६

गलंत=गलित होती हुई ३८०

गलेहि=गले से ५५२

गलि गयाँ=गल गई १४४

गलिजेह = गलने से (तपस्या करते हुए) ४७७ गलियों में १८६

गलियाइ=गल गए ५६०

गलिहार=गले का हार १५६

गह=ग्रह, ना ८८६

गहगहिया=उल्लसित हुए ३६

गहगहइ=प्रसन्न होता है २५१

गहियं=ग्रहण किया हुआ ५७५

गहिलउ=पागल ५८६

गहिलाइ=बह जावे ६६

गाँमडइ=गाँवड़े में ४२६

गाडर = भेड़ ६६२

गादह=गधा ३३३, ३३५

गाभ=गर्भ २८२

गार-०रि=कीचड़ २६६, २७०

गालि=त्याग १६६

गाहा=गाथा, एक छंद का नाम ५६७, ५६८

गिँमार=गँवार ६३३

गिणत=गिनता है २०८

गिरह=पर्वत का ४७

गिलतइ=ग्रास करते हुए ४६६

गोरी=गौरवर्ण ४५२

गुंजाहळ=गुंजाफल ५७२, ५७४

गुञ्जिदे=गूँज उठे ५३

गुजर=गुजरात देश २३२

गुण=सद्गुण १६४, ३७४, ४८७ बात २८। डोरी, रस्सी १५५। प्रत्यञ्चा २४६। गुणोक्ति ५६७। कारण से ५६६। बल, सूता ६४४

गुणिय=गुणी ४०

गुणे=गुणों में ३०६, ४६८

गुणेह=गुण से ४८२

गुणेहि=गुण से, सूत से ४६१

गुफ्फागुफ्फ=दृढ़ आलिंगनपूर्वक ५८३

गुहिर = गहरा, गहन १८
गुहिरइ=गंभीर १८८
गूँथूँ=गूँथती हूँ ३६६
गूढा=गूढार्थ ५६७
गोठ=गोष्ठी ५५६
गोठणी=साथिन ४३८
गोरंगियाँ–गौर अंगवाली ४५७, ६६६
गोरड़ी=गौर, सुदर स्त्री २२३, २८०, २८२
गोरियाँ=सुंदरियाँ ६६५, ६७१
ग्या=गए ६२६
ग्रह=पकड़कर ५४४
ग्रहवास=घर मे निवास करना ४०६
ग्रहि = पकड़कर ३४६

घ

घटा = घनघटा २५५ । घाटियाँ (पर्वत की) ३८५
घट्ट=शरीर (में), शरीर २६०, ६०२ । घाटी ४२४
घड़=परत पर परत, घटा १७१
घड़ाऊँ=बनवाऊँ २२४
घड़िए, घड़ियउ=घड़ी में २२८, ३०८
घड़, घणउ, घणा, घणे = बहुत १७, २७, ४८, ६६, ८३, ६५, १३६, २१२, २६०, २६८, ३६५, ३६०, ४२३, ४२६, ५१८, ६०८
घणाह=बादलों, १५४ । बहुत २६६
घणीं–०णीह=बहुत ७२, ६४, ६४३
घराँह=घर के ५१६
घरेह=घर के २७२
घँघळ=कष्ट, बखेड़े १७
घाउ=घाव २६७
घाघरइ=घाघरे से ५३७
घाट=गठन (शरीर का) ४६६ । बनावट, ढग ४६६ । मार्ग, रास्ते ६१६
घाढा=निकाला (?) ६५७
घातउ=डालो १२४
घाति=डालकर ३४३
घातूं = डालूँ (ख ३१२)
घालउ=डालो ३१३
घालो=डाली ३४५
घालूँ=डालूँ, बाँधूँ ३१२
घूघरा = घुँघरू ३१२, ३४३, ५३६
घोट=युवक २६६
घोटड़ा=हे युवक ४३६

च

चग=पतंग ४६५
चगा=अच्छे २८६
चंगी = अच्छी, सुदरी २८८
चंदउ=चद्रमा २०१, ४३७, ५३८
चंदेरी=एक स्थान का नाम ४००
चंपउ=चंपक, चपा ४६८
चपेल=चमेली का तेल ३२०
च (सं० प्रा०) = और २३४
चइ = के २
चउ = का १०
चउकी=चौकी, पहरा ५६६
चक्ख = (चक्षु), नजर ४५८
चटकउ = शीघ्रता ५८१

चियारि=चार ६५
चिहुँ=चारों २१४, ३६६, ४६७, ५८१
चींत्यउ=सोचा हुआ (१६८ थ)
ची=की १०
चीकणी=चिकनी, कीचड़वाली २७७
चीतारती=याद करती हुई २०३, २०५
चीतारेह=याद करता है १६८
चीति=चित्त में २३७
चुगइ=चरता है, चुगता है २०२, ३३६
चुगतियाँ=चरती या चुगती हुई २०३
चुगि=चुगकर, चुनकर २०२
चुज्जेण=चोज से ५७७
चुट्टइ=चुनता है, तोडता है १२०
चुड़=चूड़ा ४८१
चुणइ=चुगता है ३८६
चुणवा=चुने हुए (थ)
चूँन=चूर्ण ३७७
चूके=चूकना ४४०
चूड़इ=चूडा ४७५
चूड़ी=चूड़ी, वलय ३४६
चूरि=चूरकर ५६२
चेत=सावधान हो ६३३
चेत्रि=चैत्र मास में १४६
चोपड़िसूँ=चुपड़ूँगी, मलूँगी ३२०
चोल, चोली=मजीठ १३६, ४०३
चोवड़ा=चौगुने (देह में) ३०६
चोवा=अरगजा का लेपन ५६२

च्यार-०रि=चार ४२, १८८, ३३१, ५४३
च्यारइ-०रे=चारो २६०, ५२८, ५६६

छ

छछाळ=फव्वारा ५३६, ५४०
छंडइ=छोड़कर, छोडता है १६६, ४८६, ६५६
छडियइ=छोड़िए १६६। छोड़ा-जाय २८६
छंडिया=छोडे १८६
छइ=है ६४, ११३, २३७, ३३३, ४०८, ६३७
छठेँ=छठे ५८७
छवडउ=वृक्ष की छाल ४३६
छाँ=हैं ६५
छाँटी=छींटे दिए २४०
छाँडि=छोड़ ३६, ६३२
छाइयउ=छा गया, छाया २४५, २६०
छाक=नशा ५३४
छाजइ=छज्जे पर ५०६
छाडियइ=छोड़ा जाय, छोड़ा जाता है २८५
छानी=छिपी ६७
छाला=छाले १५६
छाळी=बकरी ६६२
छीलरियउ=छीलर गढैया, छिछला ताल ४२६
छुटे=खुले हुए ५४०
छुटो=छूटा है, चला है ५३६
छेक=छेद ५१४

जा=जा (आज्ञा) ४०६ । जिस २६२

जाइ=जाकर ६८, १०१, ११२, १८३, २११, ३६८ । जाता है, जावे १२, ७६, ८२, २२८, २३१, २४६, २६१, ३८७, ५४६, ५४८, ५५८ । जा १२०-१२२, २६६, ४५६ । उत्पन्न होता है, जनमता है ४६८

जाइयइ = जाइए २२६, ३००

जाइसि=जावेगा २२६

जाउँ=जाऊँ ३१६

जाए=जावे, जाता है २८३ । जाकर ३०७, ४४३

जागंती=जागती हुई ४१८, ४१६

जागइ = जगती है, जग रही है । ३५

जागती=जगती हुई ३४२

जागवइ=जगाता है ७६

जागवी=जगाई ५०५, ५०७

जागियउ=जगा १२३

जागी=जगकर ३७८ । जगी ३४५

जागूँ=जगूँ, जगती हूँ ७६, ५११, ५१४

जाण=जाने २२५

जाणइ=जानता है १७, २२१, ४१३ जाने का ६१, जाने १११ । मानो ३८८

जाणइला=जानेंगे २१३

जाणउ = जानो, समझो ६

जाणही=जानता है ४८४

जाणिजइ=जाना जाता है २३४

जाणी=जानी ७६

जाणूँ=मानो, मुझे ऐसा भान होता है ५०५, ५०७, ५१६

जाणी=जानी ७६

जाणे=मानों १६२, १६६, २३६, ४७०, ६७०

जात=जाता है ३७३ । जाओ तो ४६०

जातउँ=जाता हुआ ४४१

जाताँ = जाते हुओं की ३७८

जामोपत्ति=संतान का जन्म ५७

जाय=जाता है ४७३

जायइ=जाता है १३४

जाया=उत्पन्न हुआ ४६१

जारी=जलाकर १८१

जाळ = जाल, वृक्ष विशेष, कदंब (?) ३६१, ४१०

जाळि=जाल, वृक्ष विशेष ४३२

जाळि=जलाकर २८६

जाळउ = जाला, जाल, समूह १५१

जावइ=जाता है २६, ७८

जावउ=जाओ १०५, ११०, ५२५

जावता=जाते हुए ६४१

जास=जिसका, ०को १६५

जास्याँ=जावेंगे ६२८

जाह=जाता है २८४ । जाओ ३४०, ४६८ । जाकर ४४५

जाहि=जाता है २८१, ४३६, ५३८ । जावे १८१

जि=जो ६६, पादपूरक व अवधारण सूचक अव्यय ४५६

जोएइ = देख, देखना ४०६
जोती=देखती ५४१
जोवन-०ण=यौवन ३८, ११५, ११७ ११६, १२०, १२२, १२४, १३४
जोयइ=देखकर ३७८
जोयण=योवन ५१२, ५१५
जोयणाँ = योवनों पर १८६
जोवइ = देखता है ६०६
जोवण-०न=यौवन १३१, १७७,४५०
जौहारि=जुहार, प्रणाम ५८६
ज्यउँ=ज्यों, जैसे ७३, १३५, १६२, १६३, १६८, २०४, २६७, ३६८, ३८७, ४१८, ४८४, ४६५, ६५५, ६६७
ज्यउ=ज्यों, त्यों १११
ज्यउ=जो २०१
ज्यऊँ = ज्यो, जैसे
ज्याँ=जिन ४२, ५८, २१६, ४११
ज्याँह = जिनको, जिनका ७१
ज्याँही=जिस, जिसी २०१
ज्यूँ=ज्यो ६, ७३, १११, ३६४, ३६७, ३८०, ३८२, ४१२, ४५२, ४७२, ४७४, ४६८, ५१३, ५२८, ५३४, ५४५, ५५३, ५६४, ५७८, ६१२

झ

झँखइ=झलकता है ४६३
झंखरा = झखाड़ ४६८
झपावेषि = कूद पड़ूँगी १४५
झंम=दीपको की झमझमाहट ४६८
झटक = तुरंत ३३८
झबकइ=झलकता है ५४६
झबझब = झबक झबककर ३०४
झबुकड़ा=चमक, जगमगाहट १५२
झबूकड़इ=चमक से १४६
झबूकड़ा=चमक, जगमगाहट, चमचमाहट २६८
झरइ=झरता है, झड़ी लगाकर गिरता है, टपकता है २४७, २६१, २६२, २६६, ४७२
झळनो=लौ का जलना; झलना ११३
झळ रहियाइ = झल रहे हैं ११३
झाँखउ=झाँकी, झलक ४६४
झाँझर = पैरों का एक गहना ४८१
झाझी = गहरी, अत्यत २५६
झाड़ि = झाड़ी ४३२
झाबकि = सहसा ६०३, ६०४
झाबूकइ=झबककर, चमककर, चमक के साथ ३६८
झालइ = पकड़ता है थामता है २८२
झालियाउ=पकड़ा ६३५, ६३६
झालिया=पकडे, थामे, लिए ५७३
झाली=पकड़ी ६२६ । झाला नामक राजपूत वश की स्त्री (य)
झाळि=ज्वाला ६०३, ६०४
झिँगोरया = कूके, वोले २५३
झीणा = झीने महीन, चीण, ४६३
झीणी=झीनी, सुकुमार ३६०, ४७३, ४७७
झीणे=झीने, आधे बुझे २०६ । हलके ५३७
झीलण = स्नान करने ३६३
झीलोलण = झकोरना (द)

डूमणी=ढोलिन, गाने बजानेवाली एक जाति की स्त्री ६३०
डूल=झूलता है ५८२
डेडरिया=मेंढक ५४८
डेरउ, डेरा=डेरा, निवासस्थान १८७, ५६८
डोका=डंठल (घास आदि के) ३३६
डोहीजइ=पार किया जाय २११

ढ

ढकियउ=ढका हुआ ४७२
ढँढोळियउ=टटोला, झकझोरा ६०२
ढँढोळिसि=ढूँढेगा ११२
ढळइ=गिरता है ३७७
ढळि=मुरझाकर ४१५
ढाँढा=पशुओं (थ ३३६)
ढाढी=याचक - जाति - विशेष १०५, ११२, ११३, ११५, ११६, १२२, १७३, १८२, १८४, १८८, १९२,
ढाण=ऊँट की एक चाल ४४०
ढाळ=ढालू जमीन ४४०
ढूकउ=ठहरा, जमा, लगा ५७२
ढूकड़ा=पास १८७
ढूकिसि=ठहरता, पास पहुँचने की इच्छा करता है ४२६
ढोल=ढोला २४३, ३६०, ६७४। ढोल बाजा ३५३
ढोलइ=ढोले, ० को, ० का, ० से, ० ने, ० के, ढोला ९०, ९४, ९५, ९६, १०५, ११०, १२०-२२, १२५-३४, २०८, २०९, २१०, ३०६, ३६१, ४२५, ४३५, ४३९, ४४४, ५०७, ५२२, ५४३, ६२२, ६२४, ६३५, ६३६, ६४३, ६४४, ६७१, ६७३
ढोलउ=काव्य का नायक, ढोला ४, १०, ४१, ७६, १०२, १२३, १८१, १९५, २४३, २७६, २८१, ३०४, ३०८, ३४३, ३५३, ४१०, ४२३, ४४१, ४४७, ४४८, ४८६, ५०१, ५४२, ५४४, ५५०, ५६२, ५९६, ५९९, ६१५, ६१७, ६१९, ६२६, ६३८, ६४६, ६५१, ६५३
ढोलणा=ढोला ४२७
ढोला=हे ढोला ४३, ६४, ८१, ११७, १३८, १३९, १४६, १५०, १५१, १५४, १५७, २३७, २७३, ३१९, ४३१, ४३८, ४४०, ४४३, ४५९, ४६०, ४६५, ४७०, ४७३, ४७७, ४८३, ४९४, ५६०
ढोळी=उँडेल दी ५९२
ढोलूँ=ढोला ५०५
ढोलो=ढोला, ५१२, ५९०

ण

ण=न, नहीं २२५, ६०५

त

तंत=तंत्री, बाजा ६३०, ६३१
तंती=तन्त्री, वाद्य २२३
तंबोळ=तांबूल २२३, ३५३ त=तो,

तीनइ=तीन ही २५३
तीने=तीनों ३५३
तुँ=तो, पादपूरक अव्यय २०४
तुँ ही=तू ही १७५
तु=तो, अवधारण पा० पू० अव्यय २२४
तुखार=घोड़ा २८६
तुभ=तेरे ११४, ५५५, ३६३
तुभ्भ=तेरा, तेरे, तुझे, तुमसे २४, ७५, २३२, २३६, २७६, ३२७, ३६८, ४१३
तुम्ह=तुम ५२५
तुम्हारउ=तुम्हारा १६५
तुरि, तुरी=घोड़ा २२३, २७६
तुरियाँइ=घोड़ों पर २८०
तुहारइ=तुम्हारे २३७
तूँ, तू=तू ३० इ०, तुमको ४०१
तेंण=उसमें ३५६, उससे
ते=वे ४२, २२०, ४३४ । उनसे ६६ उस (के)
तिके=वे २४६
तिड्ड=टिड्डी ६६०
तिण, तिणि=उस ३७ इत्यादि । इसीलिये ५००, ५७०
तिणका=उनका ५३
तिणहि=उसी ६१३
तिणहीँ, तिणही=उसी १०५
तिणा=उन्हें १०३
तिणि=तैसे, वैसे, त्यों १२, ६८, ५१३ ६०३
तियउ=वह ६६
तियाँ=उनसे ७२ । उन्हें १०६ । उन २८०
तिल=तिल जितना स्थान, रोम ७६
तिलकस्यइ=फिसलेगा २५६
तिलाइ=तिलों (तिल की फलियों) का २८३
तिल्ली=तिल (की फली) २८२
तिसाइयउ=प्यासा ४२५
तिहाँ=वहाँ ८६, २२६, ६६६
ती=से १६०, २३७
तेड़णो=बुलाना ८१, ८४, १००, १०१, १०४, १०६, १०७, ३३१
तेण=उससे २३४ । उसमें ३७६ । इसलिये ५७२
तेणि=उसको ११
तेता=उतने १७१, ४८७
तेह=वह ३३६, ५४६ । उसने ५७४
तेहा, तेही=वैसे २१६, ४६७
तेहातेह=तह पर तह, खूब गहरे ५८४
तो=तेरा, तेरे १६६, १७३, ४६३ । तुमको, तुझे ३२५, ५१२ । तो ६८ ३६५, ४२१
तोइ=तो भी २३, ५१५, ६०५ । तेरी १३५
तोड़सइ=तोड़ेगा १२४
तोड़स्यइ=तोड़ेगा १३३
तोनूँ=तुमको ६१६
तोरइ=तेरे १६०
तोहि=तुम्हारी ३४१ । तुमसे ३७३ । तुझे, तुम्हें ५१४, ६३५

त्याँ=उनको ५८, ० से २१६
त्याँह=उनको, उनका ७१, २२३; ० में, ० से ४२२
त्याँही=उसी २०१
त्यूँ=त्यों, वैसे ६, ७३
त्रासा=प्यास ४२६
त्रिड्इ=फटती है २८२, २८३
त्रिया=स्त्री ३१३
त्रिसूळउ=त्रिशूल, बल २१६
त्रिहुँ=तीन ६१, ४५०, ६१३
त्रीजइ=तीसरे ४२४
त्रीजै=तीसरे ५८४
त्रीयाँ=तीनों ४७५
त्रूटि=टूटकर १४३

थ

थई=हुई २०४, ५२२, ६७२
थकइ=रहते हुए २३६, ४६०
थकाँ=से २०२, २१४
थकी=थक गई ३०६ । से ४०८
थकियाँ=थकी, थक गई १६७
थके=थक गए ३८५
थट्ट=ठाठ, अधिकता २६० । समूह ६०२
थयउ=हुआ ११, १६२, २३० ४४७
थयाइ=हुए ४२२
थयाए=हो गया ५५३
थळ=स्थान, भूमि ४६, २४१, २४८, २६४, २८८, ३६०, ३६१, ४६८, ६४८ । ऊँचा स्थान ३८८ । मरु-स्थली ६३२
थळाँह=स्थल ४१४, ६६८ । मरु-स्थलों के ६५८
थळे=कँकरीले ऊँचे स्थानों पर ५२३
थाँ=तुम, आपके, आपसे, आपने ५२, ११३, २३५, ३०६
थाँकइ=आपके, तुम्हारे १६६, ६६०
थाँकउ=तुम्हारा ६२
थाँकी=तुम्हारी ४०७, ४०८, ४५६
थाँकै=तुम्हारे ३२८
थाँमा=खंभे ५४१
था=थे २१६, ५३३, ५६०
थाइ=होता है १४१, १७१, २१६, ४०३, ५४६, ६३४
थाकउ=थक गया है ४१७
थाकिस्यइ=थक जाओगे ५२४
था (? छा) जइ=छज्जे पर, जो थे २७२
थाढा=ठढे २८५
थाय = होगा ३८८
थारा=तेरे ४२८
थारी = तेरी ३०
थाह=गहराई १५, १७
थाहग्इ=ठहरता है, तेरे ६६
थियाइ = हो गए, ४६५
थियुँ = हुआ २
थी=थी २३६, ५१२, ६१० । १३६, ४६२ । से ।
थे=आप, तुम, तुमने ६, १०७, २४०, ३११, ५११, ६१६, ६३२, ६४४

थोडो=थोड़ा-सा ४७८
थोबड़=बड़ा मुँह ४२८

द

दंती=दाँत, हाथीदाँत ४७५; दाँतोंवाली ६११
दइ=देकर ३३ । दी ४०६
दइव = दैव, विधाता ४७, ४८
दई=दैव, विधाता २०८, २७३, ५६३, ६३१
दईय=दैव के १
दउढ=डेढ़ ६१, ४५०
दखणी=दक्षिण का २३२
दखिण=दक्षिण ४८५
दखिणाध=दक्षिण दिशा ३०१
दख्ख=दाख, द्राक्षा ४७०
दख्खिण=दक्षिण (का पवन) १३६
दग्ग=दाग ३३०, ३३१
दणयर = दिनकर, सूर्य ४७८
दध्ध=जली ६०६
दमॉज=ढोल ३५०
दयामणउ=दयनीय, दयनीय दशा को प्राप्त ५४१
दरक=दरकता है, फटता है २८६
दळ=नशा, मद १६६ । सेना ६४०
दळिद=दरिद्र, दारिद्र्य २०६
दस=दिशा २७१, २७२
दसराहा=दशहरा २७३, २७४
दसिए=दस, दसदस ४६४
दह=दस १६३
दहइ=जलता है, जलाता है ६३
दहण=दाहक, जलानेवाला ३६
दहियउ=जलावे ५१२
दहिसी=जलेगा, जलावेगा २८८-२८६, २६१
दहेसइ=जलेगा, जलावेगा २६६
दाँतण=दाँतुन ४००
दाँवणि=दामन, ऊँटकी लगाम ३४८
दा=का ४३८
दाइ=उपाय, औचित्य ८० । प्रसन्नता, पसंद आनेवाली बात ३८७
दाखउँ=कहूँ ४८७
दागे=जलाना ४०५
दाझइ=जलाता है २८४
दाझण=जलना १६०
दाझोला=जलोगे २४१
दाधा=जला, जलाया १५४
दाधि=जलाता है २६८
दाधी=जली ३८८
दाध्यउ = जलाया ३३५
दाय=पसंद ४०८
दाहवी=जलाई, जलाई गई ५१२
दिउँली=दूँगी ७५
दिऊँ=दूँ ७५
दिखणि=दक्षिण देश में ६६८
दिखाई=दिखलाई, देखकर ५७६
दिट्ठ=देखा ५७५
दिट्ठं=देखा, दृष्टि १६०, ४२०, ४५५, ५२३, ५३१, ५७६
दिट्ठियाँ=देखी ६०
दिणियर=दिनकर, सूर्य ७२
दियइ = देना (आज्ञा) १२७ । दे (विधि) ४८५, ४८८



दूहड़ा=दोहे ४८६
दूहवियाह=नाराज किया, ० हुए २३५
दे=दे, देना, दो १६७, २७८, ४१६। देकर २०६, ३७१, ३७७, ५४४, ६११, ६४५
देइ=दे, देना, ६५८
देइस=देना ६५६
देख=देखकर १५०। देखता है १५२
देखइ=देखता है ४४५, ६४५
देखण=देखने (को, से) ३००, ३०२
देखती = देखती (थी) ५५८
देखि=देखकर २१५, ४४१, ५६६, ५६८। देख २७३
देखी=देखकर ६३, ८६। देखी ४७८
देखूँ = देखूँ ५१०
देखे = देखा ४३५। देखकर ४
देख्यॉ=देखे, देखने से ३८२
देज्यो = दीजिएगा, देना ४०६
देवड़ी=देवड़ा वश की स्त्री ७८, ८०
देसंतर=देशातर, अन्य देश ४२१ देस, ० सि=देगा ६२, ६३, १४४, २२५
देसड़इ = देश में ६६०
देसड़उ=देश ३८५, ६५०, ६५५, ६५६, ६६०, ६६४, ६६५
देसी=देगी २७१
देसे=देश में ११, ७४, १८४, ६०८
देस्यइ = देगा ४०२
देह=दे ३१, ३०४, ३०५, ४६०। देवे, देगा ३५, ६३१। देता है १४७, १८२, ३०४। शरीर १६१, ४६२
दोड़ेह = दौड़ता है ३५५
दोनूँ = दोनों ६३७
दोवड़ = दुगुना, दूना (मोटा) ३०६
दोहग=दुर्भाग्य ५५३
दोहागिण = दुहागिन, पति से त्यक्त स्त्री २६०, २६१
द्यउ = दो (देना) ८, ६२,
द्याँ=दें ७
द्रग = दुर्ग २२६, ३००, ३५१
द्रंगि = दुर्ग में, ० पर ५५
द्रव = तरल वस्तु, प्रवाह ६१२
द्रह=ह्रद, हौज ५४
द्राख=दाख, द्राक्षा ४२६, ५८८

ध

धॅण=धन्या, प्रेयसी १२६, १३०
धघाळू=धधेवाली १७८
धधूणी=हिलाया, डुलाया ६०३
धड़ि = धरा ने १४८
धण=नायिका, प्रेयसी, प्रिया, प्रियतमा, पत्नी ८, ३६, ११२, १३५, १३७ इत्यादि
धणि=धन्या, प्रेयसी १११
धणियॉ=स्वामियो को, पतियो को ३६
धन=प्रिया ५८४। धन्य है ५३१
धन्न=धन्य ५
धनि=धन्य है ५६७



धरइ=धारण करता है २६५, ६३४
धरण=पृथ्वी २५८
धाइ धाइ=दौड़ी दौड़ी ३८८
धापंत=तृप्त होता ४८६
धार=धारा ५८७
धारइ = धारा (रूप) में २१
धाह = क्रंदन ६०६
धाहड़ी = धाह, क्रंदन ३८६
धीरवइ=धैर्य धरते हैं २१६
धुकनी=धुखती हुई, सुलगती हुई १६३
धू=दुहिता, कन्या ६४, १६६, १६७
धूआ=धुँआ १८१
धूहि = धूल से ३६१
धूणइ = धुनता है ५७६
धूणए = धुनता है ५७५

न

नइँ=कर १४३, ४१८। के ३६८। और ३६४, ५५४
नइ=और २७, २२६, २४३, ४२८, ४७४, ५५४, ५६२, ६५३, ६७३। न ६२। को ६४, ११४, २२६, ५१२। करके २७१, २३१, कर २२६, के २६६, ३८२
नइण=नयन ४१
नकफूली = आभूषण विशेष, नाक में पहनने का जेवर ५७१
नगरइ=नगर २५४
नइ = पर्वतीय झरने ४८६
नदी निवाणउ=समुद्र २१०
नमणा=नमनशील ५६३
नमणी=विनयशीला ४५२, ४५६
नयरे=नगर में १
नरवर=प्रांत विशेष, नलवाड़ा, ढोला का देश २, ४, १०, ६०, १०५, ११०, १८६, २२२, ३३२, ४४१, ६२४, ६४१, ६५१, ६७४
नरवरइ=नरवर को ६२८
नरवरे=नरवर में १
नरॉं=मनुष्यों को २१६। ० से २६६
नळ=राजा नल, ढोला का पिता १, २, ३, ४
नव=नवीन, नया ३०२, ४६५, ५६३ ५६४। नौ की संख्या ३५४, ३६६
नवला=नये ८१, १५८, ५५६
नवली = नई २१७, ५६७
नवि=नहीं ३८, १५७, ४६१
नवी=नवीन ४७६
नस=निशा २४५
नॉंखी नॉंख = गिरा गिराकर ३३७
नॉंखिया=डाले, गिराए ३६६
नॉंख्यउ=डाला २०६
नॉंख्या=डाल दिया ५७३, ५७४
नागरवेलड़ी, नागरवेलि=नागरवेल ३०६, ३११, ४२८, ४३०, ५५५
नातरउ=विवाह, संबंध ६
नाळा=नाले २५६
नावत=नहीं आता ६१२
नावियउ = नहीं आया १४७, १४८, १५०, १५१, १५८

नाविया=(न+आविया) नहीं आए १४०
नि=नहीं २७३
निकसी=निकली १२५
निकस्यउ=निकला ३७३
निकस्यू=निकला ३७३
निघट्टियाँ=निकले, निकलने से १७२
निचत=निश्चित १८६, ३४२, ६५०
निचती, निचिंती=निश्चित ३०६, ६०८
निचोइ=निचोड़कर, निचोड़ते हुए १५६
निचोवण=निचोड़ने ३५७
निजरि=दृष्टि (से) ५९६
निजळ=निर्जल, जलहीन ६६६
निट्ठ=कठिनता से ५१३
निपाइ=बनाकर १०६
निमाँणी=फड़कती हुई ५२०
निरति=खबर ६६
निरध्धणाँ=पत्नीरहित, विरही २८८
निरेस=चरने को डालूँगा ३२६
निल=नीला २१
निळज=निर्लज्ज ३७३, ५२०
निलाट=ललाट ४६६, ४६६
निवाज=बनाकर, प्रसन्न होकर १८८
निवाँणि=जलाशय ४६०
निवाँणू=नीची (उपजाऊ) भूमिवाला ६६८
निवारि=रोको, बंद रखो २७०
निसद्द=शब्द १७४
निसह=रात्रि, ० में १०८, १५६, १८८, १६२, ५०४
निसाण=नगारे ३४६, ३५२
निसासउ=निःश्वास १४
निहल्ल=अत्यंत, बहुत १६१, ५२१
निहाळइ=खोजता है १५, १७। देखता है १६
नी=की
नीगमताह=जाते हुए १५४
नीगमियाह=गई १५३
नीगुळ=गुल-रहित ५०६
नीझरण=झरने २५६
नीझरणेहि=झरने (से) ४६१
नीठ=कठिनता से १५३, ३६२
नीद्र=निद्रा ५०६
नीमाणी=बोलती रह, चुप रह ४११
नीपजइ=उत्पन्न होता है, निपजता है २८१
नीरती = चरने को देती ४२६
नीरूँ=चरने को दूँ २२६, ३२०, ४२८
नीलाणियाँ=हरी हुई (न २५०)
नीली=हरी ३६१, २५१
नीले=नीलायमान हुए ४६१
नीळजियाँ = निर्लज्जाएँ ५०
नीसरइ = निकलता है २८४
नीसरियाँह = निकल पड़ी ४८३
नीसाँसाँ=निःश्वास १६६
नीहाळंती = देखती हुई २०५
नूँ=को ७, ६, १६, २४, २५, ८४, ८८, १०१, १०२, ११०, ५२६, ५६६, ६१४, ६२३, ६३०, ६३५, ६४४, ६५२
नेड़ी=पास, निकट ६८

नेडेह=निकट ६४६
नेत=नेत्र ४५७, ४५८, ६६६
नेत्रि=नेत्रवाली ८७
नेहवी=प्रेममयी ४३६
नेहाळदी=देखती हुई, प्रतीक्षा करती हुई २०४
नेही=स्नेह करनेवाली ४६५
नृमळ = निर्मल ५७४

प

पंखइ=पख की (?) ५८
पंखड़ियाँह=पाखों (पर) ६५
पखड़ी=पाँख, पक्ष ६२, ६६, ७१
पंखि=पक्षी, पँखेरू ५१
पंखिया=पाँखोंवाले ३१-३४
पंखी=पक्षी ५२, ३६७
पखुड़ी = पाँख, पक्ष ७०
पँचमै=पाँचवें ५८६
पंचाइण=पंचानन, सिंह ५५४
पंछी=पक्षी ४०६
पंजर=पिंजरा, अस्थि पंजर (अतः शरीर) [illegible]३, १७१, २१३, ३८२
पंजरै=पंजर में, शरीर में ५२६
पंडर=श्वेत, पाण्डुर वर्ण ४४२
पंडुरियाँह=पण्डुर, पक्षी विशेष (?) ४६५
प[illegible]=पै, पास ८३
पइठी=पैठा, डटी ६०३, ६०४
पइट्ठ=पैठा, प्रवेश किया ४२०
पइलइ=परले, उस ओर के ५६
पइसि=पैठ कर, प्रवेश कर १५८
पउढिया=पौढे, सोए ५६६
पखालण=धोनेवाला ४७
पगइ=पैर में—० से २६६, २७०
पगि पगि=पगपग पर २४४
पग्ग=पैर २०५, ३३०
पग्गे=पैर में—० से ३८८
पछइ=पीछे ६१, १६७, ४०३, ५६८, ६७०
पज=पान, पाल (?) ३५४
पटे=पट्टे, केशपाश ५४०
पट्टन=शहर ४६८ (च, छ, थ)
पट्टोला=पट्टकूल, रेशमी वस्त्र २३०
पड़ती=पड़ती ५६८
पड़=पड़ता है २८०
पड़इ=पड़ता है, गिरता है, पड़े २७७, २७६, २८०, २८३, ४३१, ४७८
पड़गन=भाईचारा, प्रतिज्ञा ३६७
पड़तउ=गिरता हुआ २८२
पड़ताळिया=चलाया ३६१
पड़साद=प्रतिशब्द ६०५
पड़सी=पड़ेगा, गिरेगा २८७
पड़हउ=पटह, दुंदुभी ३५१
पड़िनई=पढ़कर १४३
पड़ियाँह=पड़े, पढ़ने पर ५३
पड़ियउ=पड़ा, गिरा ४३७
पड़िया=पड़े, गिरे,—० हुए
पड़ी=गिर पड़ी, पड़ी हुई २३६, ३४६, ३७८
पड़ेसी=पड़ेगा २८६, २८८
पड़पड़=पड़ा ६१

पणिहारी=पनिहारी ६६४
पति=पत, विश्वास, प्रतीति ४१३
पत्तीजूँ=पतियाऊँ, भरोसा करूँ १७२
पधारउ=पधारते हो, चलते हो २६३
पधारियाँ=पधारे हुए ५४८
पध्धरियाँह=सीधे ४८३, ४८४, ६६७
पध्धारियउ=पधारा, आया ५२७
पनरह=पद्रह (१५) ३४२, ४६४
पन्न=पर्ण, पत्ता ४३३
पयट्ठ=प्रविष्ट हुआ, पैठा ५३१, ५७६
परइ=परे, उस पार २२, १८६, १६०, १६१
परख्ख=परीक्षा ६७१
परचइ=समझता है ६१५
परचव्यउ=समझाया ६२१
परजळती=उजाला होने पर ३८०
परजा=प्रजा ४०
परठवो=भेजो (न ६५)
परठ्यउ=लिखा ५७८
परठिया=बने, बनाए ३६६
परणिया=विवाहित हुए १०
परणी=विवाहित हुई ६०, १६७
परणयाँ=विवाहित हुए, व्याहे जाने (के) ६१
परतख=प्रत्यक्ष ५१३
परदेसाँ=परदेशो (में, से, को) १७२, २८४, ५७३
परदेसी=प्रवासी ३४
परदेह=परदेश ४३
परभौ=पराभव, दुख, कष्ट ७० (थ)
परहर=छोड़ १८०
परहरियाह=छोड़ दिया ४१७, ४१८
परहरे=छोड़कर ३६५
पराया=पराए, दूसरे के २५४
परायौ=पराया, दूसरा, दूसरे का ५१८
परि=भाँति, समान ७६, ७६, ३७७, ४५३। पर, ऊपर ५६५
परिघळ=बहुत, वस्त्र (?) २३३
परिठव्यउ=बनाया, बना ३६६
परिठिउ=पहना ४६५
परिणाविस्याँ=विवाहेंगे ६१३
परियाँण=प्रमाण, अनुसार ३४३
परिवाँण=प्रमाण, सच्चा १७५
परिहरइ=छोड़ता है २६५
परि हाँ=पर हाँ, निरर्थक अव्यय ५६५, ५६६
परीयच्चय=आँचल (?) ५७५
परेरउ=पराया, दूसरों का २२६
पलटेहि, पलट्टइ=बदलता है १८२
पलाँण=जीन (ऊँट का) ३२६, ३४३
पलाँणि, पलाँणि='जीन कसो, जीन कसो' का शब्द, चलने की तैयारी ३४४
पलाँणिया=जीन कस करके चलाए ३६३
पल्लाणियउ=जीन कस करके चलाया हुआ ३०८

पल्लाणियाँ=ज़ीन कसी, चलाए ६४० । चलते हुए, चलते समय चलनेवाले ३५०
पल्लाणेह = प्रयाण करना २०५
पलहवइ = पल्लवित होता है १५८
पळइ = पलते हैं २०३
पळास=राक्षस, दुष्ट १६८
पळाट=पलायन ६०६
पवंग=प्लवग, घोड़ा ६४०
पवन=हवा २८५
पसरंति=प्रसरित होता-०होता है २१४
पसरइ=प्रसरित होता है २१४
पसरियउ=प्रसरित हुआ, व्यापा २३६
पसाउ=प्रसाद, 'पसाव' (एक प्रकार का दान) ४८६
पसारइ=फैलाता है २६६
पसारि=फैलाकर ४१
पसाव=प्रसाद, दानविशेष ७४
पह=पौ ६४६
पहणिउ=पहना ४६४
पहलइ=पहले, प्रथम १४७
पहियड़ा=पथिक ४७१
पहियाह = हे पथिक २१०, २४१
पहिरइ=पहने, पहनता है ४७१
पहिरण=पहनने को ६६२
पहिरणह=पहनने से ८६३
पहिरी=पहनी ३६८, ४१२
पहिरूँ=पहनूँ ३६६
पहिरेसि=पहनूँगा ३३३
पहिलइ=पहले ५८२
पहिली=पहली १४६ । पहले, प्रथम ५४६, ४१७
पहीं=पथिक १२४, १२५
पहुच=पहुँचा ७६, १७६
पहुर=प्रहर ५४७
पाँखड़ियाँ=पाँखें, पंख ७१
पाँखड़ी=पाँखें, पंख ३६६
पाँखाँ=पाँखें, पंख ३६४
पाँखें = पंख पर ६६
पाँगुरियाँह=हरे हुए, अंकुरित हुए २४८
पाणि=पानी, जल ४२५
पाँणी=पानी, जल २४०, २४८, ३१० ६१४, ६२१, ६५५, ६५७, ६६४
पाँतरउ = पागलपन करो, पागल बनो ८
पाँतरयउ=धोखा खाओ, पागल बनो ४४६
पाँमियइ=पाइए, पाई जाय ४८८
पाँमी=पाई ६७१
पाँमळियाँह=पँमुलियाँ ४७७
पाइ=पाँव, पैर २४६, २५७
पाइयउ=पिलाया ४२५, ६२१
पाकउ=पक गया १२१
पाखर=कवच, बख्तर ४१२
पाखर करइ = लगाता है ५८६
पाखरयउ=कवचयुक्त मदय को साया हुआ (?), सवार (?) ५५४, ५८२
पागइ=रिकाब पर, रिकाब से ३०८, ४११

पाछइ = पीछे १०४, ४१७
पाछउ = पीछा, वापिस ३६७, ४०६, ४४४, ६०५, ६०६
पाछिले = पिछले, पीछे की ओर के ५४, ५५
पाछी = पीछी, वापिस १५३, २७४
पाछे = पीछे ३५४
पाज = तालाब की पार २६
पाठवइ = भेजता है, भिजवाता है ८१, ६६, १३८। भेजना १४३
पाठविसु = भेजेगी ६५
पाडा = मुहल्ले ३५४
पाणी = पानी, जल ६६, १७३, २३१, ३११, ४२६, ५२३, ५२४, ५५३, ६५६
पान = पत्ता, तांबूल ५८६
पानही = पागरखी, जूती १७६
पामियउ = पावा ५१३
पामेसि=पाऊँ,पाऊँगी, पावेगी ५१३
पाम्या = पाए ४२७
पाय = पैर २५८
पाय = पाए ३८०
पारणउ = कलेवा ४३०
पारेवा = कबूतर १४३
पारेवाह = कबूतर ४७४
पारोकियाँ = परकीयाएँ १५३
पाळंखी = पालखी ३५२
पाल्हवियां=पल्लवित हुए ५३३, ५६०
पाल्हव्या=पल्लवित हुए ५३३, ५६०
पाळ=सरोवर की पार, पाज १६६, ३८३, ३६४, ५३६,। पायल, पैरों का एक गहना ५४०
पाळउ=पाला, सरदी, ठंड २७६, २८०, २८३, २६१, २६६
पाळि=पाल, निभा ३६७
पाळी=पैदल ५८३
पाळीजइ=पालिए, पालना चाहिए १६८
पाळेइ = पालता है, पालना २०२
पासइ = ओर, पास में ७७, ११४, २६०, ६००
पिंगळ = पिंगल, पूगल देश के राजा का नाम १, २, ४, ५, ११, ७६, ८०, ८१, ८४, ८५, ६०, १०६, १६६, १६७, ५२६, ५६५-५६७
पिवइ = पीता है ६२१
पीउ = प्रिय, प्रियतम, पति ३७, ४३, २५५, २६०, ५७५, ६३१। पी ('पीना' का आज्ञा) ४२६
पिउपिउ = पी पी, पपीहे का शब्द २५२
पिछताइ = पछताता है १५६
पिण = भी ६२०, ६२८
पिय = पी करके ४१८
पियइ = पीता है ६३१,
पिया = पिए हुए ५६५
पिसुणाँ=पिशुनों, दुर्जनों, १६८ (य)
पीउ = प्रिय ३७
पीणइ = पीने साँप ने ६१०
पीध = पिया ५५४
पीधी = पी ली, डस ली ६०१

पीयणा = पीने, पीनेवाले साँप, साँपों का प्रकार विशेष ६६१
पीळी = पीली, पीतवर्णा ३५४, ४०३
पीवइ = पीता है ३१०, ३११
पीवणउ = पीना साँप ६००
पीवी = पी लो, काट खाई ६१०
पुंडरी = श्वेतवर्ण हुई २५१, ६०२
पुकारियउ = पुकारा ३६
पुणग = लौ (दीपक की) ५०६
पुणिंद = फणींद्र, साँप ४५५
पुणो = पुनः, फिर ५७५
पुरिसे=पुरुष पर (पुरुष एक नाप है) ६६२
पुळइ = चलता है १७१
पुळि = चलकर ३८५
पुळिया = चले ६१५
पुह = पथ, मार्ग १८५
पुह करइ = चलता है १८५
पुहकर = पुष्कर, तीर्थ विशेष ६०, ४२५
पुहरा = पहरा, चौकी २३१
पुहरि = प्रहर में ४२४
पुहवीए = पृथ्वी पर २३४
पुहँचौ = पहुँचे ६२६
पूगळ=एक देश और उसकी राजधानी का नाम २, १०, ११, ८३, ६६ इत्यादि
पूगळइ=पूगळ में ८२
पूगळि=पूगळ में १
पूछंद=पूछता है ४८३
पूछण=पूछने को १६४
पूछी करी=पूछकर ३१६
पूजउ=पूरी हो ४०७, ४०८
पूजियाँ=पूजने से ४७७
पूठ=पृष्ठ, पीठ, पीछे, पीठ पीछे, पीठ पर ३६१, ४१६
पूनिम = पूर्णिमा ३६५, ५२८, ५४५, ६२२
पूर=धारापात, धारा प्रवाह १४७, २५६
पूरइ=पूर्ण करता है ३६५
पूरउ=पूरा ३६५
पूरि=भरकर, साथ ४६४। पूरा कर, तय कर ४६७
पूरी=भरी ६७१
पूहतउ=पहुँचा ४००
पेट=उदर, गर्भ ३१५
पेम=प्रेम २०, ४१२, ५००, ५५४, ५६५
पैहचाइ=पहुँचा (आज्ञा) १२३, १२५-१२६, १२६
पैहच्याइ=पहुँचा (आ०) १२७, १२८, १३०-१३३
पैहच्याय=पहुँचा (आ०) १३४
पोइणिए=पद्मिनियों ने, कमलिनियों ने,—०से २४५
पोयणी=पद्मिनी, कमलिनी
पोहरे=प्रहर में ५८२, ५८३
प्रगटियउँ=प्रकट हुआ २५८
प्रगट्यउ=प्रकटा, प्रकट हुआ २४२, २४४, ६२२

प्रगङउ=प्रभात ३८७
प्रयाँण = प्रस्थान १८४, १८५
प्रवाँण = सच्चा, सार्थक, वास्तविक ६७०
प्रवाळी = प्रवाल, मूँगा ३७७
प्रह = पौ ६०२
प्रॉण = प्राण जीव २११, ४०२, ६२७
प्राँणियउ = प्राणी, जीव, आत्मा ११२
प्राहुणउ = पाहुना, अतिथि ११३, १३४, २७३, २८३, ५८०
प्रिउ = प्रिय, प्यारा, पति, प्रेमी १८, ३३-३६, ६५, १६२, ५८८, ५६१, ६३६, ६३८
प्रियाव = (प्रिय + आव), हे प्रिय, आ २७
प्रियु = प्रिय, पति २१७
प्रिव = प्रिय, प्यारा, पति २१७, ३६५, ४१५, ५५८, ५८२, ५६०, ६०४
प्री = प्रिय, प्यारा, प्रेमी, पति २६, ३०, ६२, १२४, १५२ इ०
प्रीउ = प्रिय, प्यारा, प्रेमी, पति ३३, ३५
प्रीतम = प्रियतम, प्यारा, प्रेमी, पति ७५, ११२, ११८, १४४ इत्यादि
प्रीतमा = हे-प्रियतम २३३
प्रीति = प्रेम ४१३
प्रीय = प्रिय, प्रेमी, पति ५०४, ६७१
प्रेमइ = प्रेम से, प्रेम में २५, २७५
प्रोहित = पुरोहित १०१, १०३, १०४

फ

फट्टि = फटी १२१
फर गया=लौट गया, फिर गया ५१०
फरूकइ = फड़कता है ५१६
फळाँ=फलों (के) १७२
फळियाँह = फलने पर ३६८। प्रफुल्लित हुई ५२८
फळियाइ = फल गए ५३३, ५६०
फाकउ = टिड्डियों के बच्चे ६६०
फाग = फाग, होली का खेल ३०२
फागण = फागुन ३०२
फाटइ = फटता है १८०
फाटही = फटेगा ३३०
फाड़ताँ=चीरते हुए ४००
फिरइ = फिरता है ५६६
फीकरिया=नीरस, फीके ६६५
फुरंत=फड़कता है ५१७
फुर=फड़ककर ५१७
फुरइ=फड़कता है ५१७
फुरकइ=फड़कता है ५१७, ५१८
फूटणहार=फूटनेवाला ६११
फूटि = फूटकर, फटकर १४३
फूटी=फूटकर, फटकर १६३। फटी ६०२
फूलड़ा = पुष्प ६३६
फूलाँ = पुष्पो ५८६ फूलों के १७२
फोग=मरुस्थल की एक पत्रविहीन झाड़ी ४२८
फोगे = फोग में ६६१

ब

बंके=बाँके ४८२
बंग=घाटी ६४७

बंधउ = बाँधते हो १२२
बँधॉडा=बँधावें ६८
बंध्यउ = बँधा हुआ २२०, २७५
बइठा = बैठे हुए ६६, २२५, २२७, २३३, २४१, २४३
बइठी = बैठी ३७१
बइसउ=बैठो, बैठते ११८
बइसासगाइ = विश्वास से १२३
बइसि = बैठकर ५६
बगड = दुष्ट, निर्जन जंगल ८२
बगसइ=दान करता है ६३

बचाँ, बचाँह, बचाह, बचाहि = बचों १६८, २०४, २०५, ४५७

बची=बचे ६६६
बच्चिवउ=बसा, चला २८८
बज्या = बजे २५३
बटाऊ=पथिक ३८४
बड=बड़ा, ज्येष्ठ ५१८, ६४७
बडा=बड़े १४१
बडरी = बड़ पेड़ की ३२०
बडी=बड़े ५०६, ६१३
बतलावसूं = पुकारूँगी, बुलाऊँगी ३२६
बत्तीसे=सौंदर्य के बत्तीस लक्षण (से) ४६६
बद=बात १३५, ५४८
बदळ=बादल १८१
बदळी = बदली ४१
बधॉमणाँ=बधाइयाँ, उत्सव ३५१
बध्ध=बाँधा, दमन किया २२०
बप्पड़ा=बेचारे २५७, ३२२
बरन्ने=वर्ण के १३६
बरसंतइ=बरसते हुए २४८
बरसइ=बरसता है २७, ४१
बरसउ=बरसो, बरसाओ ११६, १३२
बरसे=बरस ६१३
बल्लहा = प्यारे २४६
बळि=बालकर, सलाकर, जलकर ११२, २८६
बहइ=बहता है ६८। दौड़ता है ३६४
बहतॉ=चलते हुए ५६८
बहरखा=बाहुओं का एक आभूषण ४८१
बहळ = बहुतेरा २६४
बहि=व्यतीत हो गया, चला गया ४५०
बहि गयउ=गया था ३६२
बहुत्त=बहुत १७६
बहुगुणी=अनेक गुणोंवाली ४५२, ४५३
बहोड़्या = लौटे, लौटाए ३६२
बाँखि = बाणी, बोली ३४
बाँधइ = बाँधे, धारे २६५
बाँधउँ = बाँधूँगा ३२०
बाँधियउ = बाँधा ३१६
बाँधिस्यो=बाँधेंगे, जीन कसेंगे १४६

बाँधि = बाँध लो ५००
बाँध्यउ = बँधा हुआ ३१८
बाँवळि = बबूल का वृक्ष ४१४
बाँहड़ियाँ = भुलाएँ, बाँहें १६७, ४८२
बाजरियाँ = बाजरी के २५०
बाजारण = बाजारू, नीच ३३४
बाट = मार्ग, पथ ५४१
बाड़ी = वाटिका, बाग ३११
बाढ़ंत = काटता है, काटते, घाव लगाता है ३३, ४१४
बाधइ = बढता है १६१
बादळियाँइ = बदलियाँ २४८
बाबहियउ = पपीहा २६, २७, २४७, २५२
बाबहिया = पपीहे २८-३६
बाबा = हे बाबा, हे पिता ३८६, ६५५ ६५६, ६५८, ६५९, ६६४, ६६५
बाबीहउ = पपीहा २६१
बापड़ा = बेचारे २५८
बालम = वल्लभ, प्यारे २८५
बाळ = बालिका ११। मुग्धा, बाला ६०३, ६०४
बाळउँ = जला दूँ ६५६
बाळपणइ = बचपन में ९१, १९७
बाळा = बाला नायिका ५७७, ५७८
बाळापण = बालपन ४४३
बाळि = बाल ५८५
बाळियउ = जलाया १२६
बाळूँ = जला दूँ ३८५, ६५७, ६६४, ६६५
बावड़ी = बावली, वापो ३८३
बाहि = चला, प्रहार कर ४९२, ४९४
बाहिरी = बाहर, बिना, अलग ३७०, ३९० । बाहिर ३९१, ३९३
बाहुड़इ = लौटे, लौटता है, चले २० २९, ४१०, ५६६
बाहुड़े = लौटे १५३
बाहे = बाहुओं में ४८१
बिकाइ = बिकते हैं १४१
बिचाहू = बीच में ही ८२
बिची = ,, ,, ४००
बिछोहउ = वियोग ५०२
बिज्जुळियाँ = बिजलियाँ ५०
बिणजारा = बनजारा १६३
बिथूंभिया = दो थुई वाले (ऊँट) २२८
बिन्हे = दोनों ६४४
बिबीह = दो दो ४५९
बिलबिलइ = विलाप करते हैं ६०७
बिवणउ = दूना १६२
बिहुँ = दोनों ३१८, ४९२
बिहु = दो ३६९
बिहूँ = दोनों
बीझ = विंध्य, घना २१३
बीछड़ताँ = बिछुड़ते हुए ३८१
बीज = बिजली १५०, १५२
बीजइ = दूसरे ५९८, ५४६
बीजउ = दूसरा १४२
बीजळड़ी = बिजली ४८
बीजळ = बिजली १४९
बीजा = दूसरे १९९, ५३०, ६६३
बीजी = दूसरी ४४०

बीजुळियाँ = बिजलियाँ १५३
बुझाई = बुझ जाय ५७८
बुझावइ = बुझावे १८१
बुझावउ = बुझाओ १२३
बुझ्झ = समझ, ख्याल २४
बुहारि = बुहारी ५८६
बूँदी = नगर विशेष ४००
बूठइ = बरसता है ५४८
बूठउ = बरसा १८, २५०, २६१, २६२
बूठाँ = बरसने पर २६४
बूठैनो = बरसते ही ३६, ४०
बूढी = विगतयौवना, वृद्धा स्त्री २७६, ४४८
बूर = एक प्रकार का घास ३६०
बे = दो, दोनों १६७, ४३३
बेलड़ियाँ = बेलें, लताएँ २६६
बेलाँ = बेलों में २५०
बेलो बेलाँ = दो दो को, जोड़ी को, युग्म को, दंपति को २९५
बेळ = दो, युग्म ५११
बेसासड़उ = विश्वास ४६३
बैठा = बैठे ५६५
बैरिणि = बैरिन ५८१
बोलंत = बोलता है २४७
बोल = वचन, वार्त्ता, कथन, बोली २४३ ४८४, ६७४
बोलइ = बोलता है ३४, ६०३
बोलड़इ = बोल, वचन (से) ३५६
बोलड़ा = ,, ,, ४८६
बोलण = बोलना ३८
बोलणियाँह=बोलनेवाली ४८४, ६६७
बोलही = बोलता है ४८२, ६६७
बोल्यउ=बोला ४६१
बोला=बोलनेवाला ३६०
बोलाविया=बुलवाए १०५
बोल्या=बोले ५२
बोलि=बोल ४०४
बोलिया=बोले २१८
बोळावा=भेजने के, पहुँचाने को ५६७

भ

भंत=भाँति १८६
भइ = भय ३०१
भक्ख=कह ११४
भख=भक्षण ५८०
भगताँ = खातिरें, भक्तियाँ ५६४
भगताविया=कहे, भुगताए १०६
भड=भट, योद्धा ५८३
भड़ाँ=भटों ६३
भड़िक=एकाएक १६६
भणकेइ=मँडराता है ५५०
भणक्यो=झनक उठी ४६२
भणी=को, से, लिये ७६, ९०
भत्ति=भाँति ६१
भमतउ=घूमता हुआ १२५
भमता=भ्रमण करते हुए १२४
भमर=भ्रमर ७३, ११६, ४१५, ४७४ ५५०, ५६१
भमुहाँ=भौंहों ४६५
भरइ=भरता है, (संदेशा) कहता है १८२

भरखमा = सहनशील ५६३
भरण = भरनेवाला ४७
भरम = भ्रमपूर्ण बात ४६७
भरिस्यॉ = भरेंगे ५२२
भरेइ = भरता है १३७, ३३७, ५६०
भरेसी = भरेगा ३६१
भर्यउ = भरा हुआ २००
भल = भलेही ६३१
भलमाणस = भलामानस ११४
भला = भले, अच्छे २५७, २५८, ५८३
६६३
भली = ठीक ६२७
भलेरउ = भला, भले (ऊँट) का
(छाया) ३१२
भलहलइ = झिलमिलाता है ४८०
भलाया = सौंपा ६२५
भॉजइ = टूटे, दूर हो २३८। मिटती
है ६६१
भॉजण = दूर करने, तोड़ने ६१६
भॉणी = भावती ७७
भागइ = भॉज दिया, खिन्न कर दिया
४३६
भागउ = खीझ गया ४४१ मिटा ६७१
भाजइ = दूर होता है ६६०
भाद्रवउ = भादवा २५०
भाय = भाई, भाव १२४। भाड़, भट्ठी
१६३
भारथ्थ = लड़ाई ६३६
भावई = चाहे १७५
भी = फिर १८२, २०२, ५६५
भीगा = भीगता हूँ २७२
भीजइ = भीगता है ४३, २४४
भीजूँ = भीगती हूँ ४३
भीति = भीत २३७
भीनी = भीगी हुई १६०
भीभळ = विह्वळ २२६
भीसुर = दीप्तिमान् ४७१
भुँइ, भुईं = भूमि, फासला ४८५, ४९६
४९७ इ०।
भुयंग = भुजंग ५०४, ६०८
भुयगि = भुजग (ने) २३६
भुयंगो = सर्प ५७७
भुयग्गि = भुजंग ६०१।
भूरा = भूरे रंग का ४६८
भूलउ = भूला हुआ २२६
भेलिया = भेजा ६१६
भेदंती = भेदती हुई १९१-५२१
भेदक = भेद जाननेवाला १०४
भेळा = एकत्र ३३७, ६०७
भेळिया = धावा किया ५६६
भोग = भोग ५९३। भाग १२१
भोगवूँ = भोगता हूँ १७०
भोळे = भ्रम ४७८
भ्रंति = भ्राति २३६

म

मं = मत ६४८
मंगता = याचक १०३
मंगळ = मंगल गीत ६५१
मॅगावियउ = मॅगवाया ३२६

मरेसि=मरूँगा ६५६
मरेसी=मरेगा १४६, १५०
मरेहि=मरता है ३८४
मल्हपंत=जाता है, चलता है ६७
मल्हपंति=चलती है ५३६
मल्हपइ=चलता है ४६१
मल्हाया=गाया १६५
मल्हार=मलार राग १८८
मळेहि=मलता है ३७८, ३७६
मस=मसी, स्याही १४०
मसकत=महकता हुआ उड़ता है ४७६
मसांण=श्मशान ३५२
मसि=मसी, स्याही, कोयला, १४१ १८०, ५७२
महकाइ=महकता है ६००
महकी=सुगंधित हो उठी ४६८
महक्क=महक ४०६
महक्कियाँ=महके १६०
महमहइ=महकता है ६०० (ज)
महल=महिला, स्त्री ४४०
महलाँ=महलो
महाघण=प्रलयकालीन मेघ १५
महाजनि=गुरुजन (ने) १५६
महारस=नशा ३००
महिराँण=समुद्र २११
महिलाँ=महिलाओं ४५१
महीँ=में ८८
माँ=में ४१६, ६७४
माँह=में, भीतर ४१३

माँगण=माँगनेवाले, याचक १८६
माँगणहारा=याचक १०२
माँगणहार=याचक, जाति विशेष१०२ १०४, १८६, १६४
माँगणहाराँ=याचकों (को) २०६, २१०
माँगणाँ=याचकों (को) ६३
माँगळोर=स्थान विशेष ३११
माँगीतांगी=माँगी हुई ७०
माँजिणउ=मज्जन, स्नान ५३५
माँझ=मध्य, में २७२, ४६१
माँझिम=मध्य ५७, २७८, ५०५, ५२५
माँडि=बनाकर, सजाकर ३२६
माँण ने=उपभोग करो न ४४७
माँनसर=मानस सरोवर ६७३ (भ)
माँनसराह=मानस सरोवर में ५५२
मा=मत ८
माइ=समाता है २६, २६६, ५०६, ५२६
माई=हे माँ २६३
मागरवाळ=याचक १८४
मागि=मार्ग १६
माठ=मष्ट, चुप ३२१, ४११
माठि=मष्ट, चुप ३४
माणस=मनुष्य ६५, २२०, २८१
माणसाँ=मनुष्यों १८५, ४०७, ४४५ ६५५
मात=माता ३३४

माथउ=माथा, सिर २८३, ५३१

माथि=माथे या सिर में २१६

माय = माई, हे माँ ३८८

मार = (तू) मार ६३३

मारइ = मारता है ९६। मारज करता है ४७१

मारवण = मारवणी, काव्य की नायिका का नाम ३००

मारवणी=मारवणी, काव्य की नायिका का नाम १२, ६०, ९७, २४३, ४४८, ४६३, ५२३, ५३६, ५६७, ६१७, ६२२, ६५२, ६५३, ६६३, ६७०, ६७२

मारवी = मारवणी ४७, ४८, ४८९, ४३८, ५५१, ६२२, ६४७

मारि=मार ६४७

मारिजइ=मारा जाता है ६३२

मारिवा = मारने ५२१

मारुई=मारवणी ८०, ४५१, ४५९, ४७०, ४७३, ४९२, ५५४, ६०१, ६३८, ६३९

मारुवणी = मारवणी ५, १८, ९०, ९९, १०९, १९७, २१०, ४६४, ५९१

मारुवाँ=मारू या मारवाड़ देश के निवासियों (का) ६३८, ६४९

मारू=मारवणी १८, ९१, २९५, ४३८, ४६५, ४६७, ४८९, ५५४, ५६२, ६२०

मारू=माँढ़ नामक रागिनी १०६

मारू=मारवणी १०, ११, १७, १६, २४, २७, ७६-७६, ८२ ८६, १०१, १०६, १०७, ११०, १५७, २०६, २०८, २१०, २३८, ३०७, ३१७, ४११, ४१४, ४३७, ४४०, ४४२, ४५४, ४५५, ४६१, ४६६, ४७१, ४७२, ४७४, ४७५, ४७६, ४७८, ४८२, ४८६-४८६, ४६३, ५०१, ५२७, ५३५, ५३७-५३६, ५४३, ५४५, ५५०, ५६७, ५६६, ६११-६१४, ६१७, ६२३, ६२६, ६३४, ६३६, ६४२, ६४६, ६५४, ६६०, ६६३, ६७१, ६७२

मारू=मारवाड़, मरुस्थल देश २५०, २५१, ४५७, ४८३, ४८५, ६६६-६६८, ६७०

मारेइ = मारता है, पीड़ा करता है २६५

मारेद = मार ६४६

मारेहि=मार ६४८

माल = संपत्ति, धन २५४

मालव=मालवा ८४, ६६३, ६७२

मालवणि=मालवणी, काव्य की उपनायिका २१७, २६२

मालवणी=मालवणी, काव्य की उपनायिका ६६, ६७, १८५, २१४, २२१, २२६, २३६, २४०, २७४-२७५, २९८, ३१६, ३१७, ४२३, ६५२, ६५४

माळवणीइ=मालवणी ६४
माळविण=मालवणी २६६
माळवी=मालवणी २२२, २४०
माल्हवणी=मालवणी २२४
मावइ=समाता है ३५८
माह=माघ महीना ३६०
मित्त=मित्र ६६, १७५
मिलउँली=मिलूँगी ४५
मिलण=मिलने के लिये ५३५। मिलना ५६४
मिलावइ=मिलावे, मिलवाता है ३१२, ५१५
मिलियत=मिलता है ५८३
मिलियाँ=मिले ६७०
मिलिया=मिले ५३२, ५३४, ५५३, ५५७, ५८४
मिलिसि=(तू) मिलता है, मिलेगा १५७, २७३
मिलूँली=मिलूँगी ४६
मिलेस=मिलना (आज्ञा) २०७
मिलेसी=मिलेगा १६१
मिल्यउ, ०ळ्यउ=मिला १४, २४, ८४, ८५, ६४६
मिल्याँ=मिलीं, मिली हुई १५१
मिल्या=मिले १८५, ५०२, ५०३, ५३०, ५६०, ५८१
मिळइ=मिले, मिलता है, मिलेगा ११३, ११५, ११६, ११८, ११६, १२४, १३५
मिळई=मिलेगा ४६३
मिळउँ=मिलूँ ६२
मिळस्याँ=हम मिलेंगे ३४७
मिळि=मिलकर ६२
मिळियाँ=मिले, मिलने पर १७२
मिळियाँह=मिले, मिलने पर-० से ३६८
मिळिवा=मिलने के लिये २३८
मिळीजइ=मिला जाय, मिलिए ७२, २११, २१२
मिळेवउ=मिलन ४२२
मिस=बहाना १४५
मिसि=बहाने (से) १८३, ५४
मिहर=मेहर, कृपा ३२५
मीठउ=मीठा ३५६
मीठा=मीठे ३६०, ४७०, ४८४, ६६७
मीठाबोला=मीठे बोलनेवाले ४८५, ६६८
मुँघ=मुग्धा, प्रिया ४३६
मुँघा=मुग्धा २७२
मुइय=मरी २०६
मुई=मरी, मरी हुई, मर गई ३६८, ४०३, ६०६
मुकळाइ=गौना करवाकर ५६५
मुक्कइ=छोड़ता है, रखता है २५७, २६२
मुझ=मेरा ४६, १३६, १८१, ५४७, ६४७, ६४८। मुझे ५०३, ५०३
मुझसूँ=मुझसे २१८
मुभ्झ=मुझे, मेरा ७५, २३६, ३२८, ३६८

मुग्ध=मुग्धा १५-१७, १७४, ५३३
मुया=मर गए १०८
मुलताणी=मुलतान की २२६
मुळकत=मुसकुराते ५४२
मुळक्यउ = मुसकुराया ३६४
मुवाँह=मरने पर ६५५
मूहगा = महँगे २२५
मुहर=मोहर, सिक्काविशेष ४८६
मुहरी = ऊँट की वाग ६२६
मुहा = मुँहवाले २२७
मूँ=मेरा ४३२
मूँकती=छोड़ती १६६
मूँक्या=छोड़े ३६, १३८
मूँछाँ=मूँछें ५८५
मूँठ=मुट्ठी २१२
मूँदही = बंद करता है ५५८
मूँध=मुग्धा १४६, २८७, ३१२, ३१५, ५००
मूई=मर गई ४०४
मूकउँ=छोड़ूँ, मारूँ ३८६
मूक्यउ = छोड़ा ६०
मूक्या=छोड़े ३६०
मूटड़ियाँह=मुट्ठियाँ ३६६
मूठि = मुट्ठी ३६१, ४१६
मूरताँ=मूर्तों ३३२
मूरिग=मूर्ग ५६८
मृगरथ = चंद्रमा का मृगों का रथ ५७०
मृगपति=चंद्रमा ४६६
मृगमद = कस्तूरी ४६६
मृगरिपु = सिंह ४६६
मृगलोयणी=मृगलोचनी ४७६
मेड़ी = अटारी ४२
मेरा=मेरे ३३
मेलउ=मिलो, मिलन ४०७
मेलाँह=मेलों २२४
मेलि=छोड़कर ६१०
मेली=छोड़ी ३२३
मेलूँ = मिलाऊँ ३१५
मेल्ह=छोड़, भेज १६३
मेल्हंत=छोड़ता है २४७
मेल्हइ = छोड़ता है, रखता है २४६, २५८, २६७, ६०६। भेजता है ३३१
मेल्हउ=भेजो १०२
मेल्हणी = छोड़ी ५६१
मेल्हियउ=भेजा ४०१
मेल्हि = छोड़कर २०२। भेजकर १०६
मेल्हियइ=रखिए, छोड़िए, भेजिए, भूलिए ७२
मेल्ही=रखी, टी ५६६, ५७०, ५८५
मेल्हे=छोड़कर, छोड़ता है, छोड़ा, छोड़, रखकर २०३, २६६, ३४१, ४३४, ५००
मेल्या=भेजे १६६, ६२५
मेळइ = मिलावे ७१
मेळउँ=मिलाऊँ ५००
मेळउ=मिलन ७१
मेळि=मिला (आज्ञा) ५६३

मेळिया = मिलाया ५६६
मेळी=लगी, बंद की ५१
मोइ=मुझे ३१४, ४६७, ५०८। मेरा ५३२
मोकळउ=भेजो १४४
मोकळा=खूब, बहुत ३६५
मोकळि=भेज १०३
मोकळे=भेजना (आज्ञा) १४२
मोजड़ी=जूती ३७५
मोचाँ=जूतियाँ ? ३६६
मोडेह=मोडता है ३५५
मोड़ो=देर से ४४३
मोतियाँ=मोती ४७५
मोतीहरि=मुक्ताफल, मोती, मुक्तासरि २३०
मोराँ=मोर २६३
मोलइ=मोल पर १४१
मोहण=मोहन, मुग्धकर ५५४, ६०१
मोहि=मुझे ३७३। स्वयं ६३५
म्हाँ=हमने ६, २३५। हमको २७६, २७८
म्हाँकउ=हमारा २४१, ३४८, ४०५
म्हाँका=हमारे ३३२
म्हाँकी=हमारी ६१४
म्हाँली=हमारी ४३८
म्हाँनूँ=हमें ५६२
म्हाँने = हमें ५६१
म्हाँरी=हमारी ५२५
म्हाकउ = हमारा ३२५
म्हेंने=हमें ५६१, ५६२
म्हें=हम ६३, ६५, १०८, १४६, २७८, ३०६, ४०६, ६२८

य

य = पादपूरक अव्यय
यतन्न=यत्न, चेष्टा ३३५
यहु=यह १८१
याई=आकर ५१०
यूँ=यों, ऐसे ११३, ११५, ११६, ११८, ११६, ४३०
यूँही=योंही ३३०
ये=जो १
यो=यह ४१

र

रंग, रँग=प्रेम, क्रीड़ा ८४, ५६५, ५७२, ६५३। रंग ढंग ६३२। लाली ४७२। रंगवाली ४६५। सुरंग (विशेषण) ३५६
रंगइ=रंग मे, आनद में ५६३
रंगि = प्रेम में, प्रेममग्न ६०। रंगवाली ८७
रंजन=प्रसन्न करनेवाला, प्रसन्नता १६१, ४६७
रइ=के १६७, २६०, ३१६, ६१३
रइणि=रात्रि ५७८
रइबारी=ऊँटों का रखवाला, एक जाति जिसका काम ऊँट चराना होता है ३०६, ३०८, ३३१
रउ=का ४२४, ४५०
रक्ख=रख ११४
रखियउ=रचा ४३७
रचणाँ=रंग रचानेवाले ५६३

रच्यउ=रचा, सजाया ५३५
रड़ी=रोई ३७६
रड़ोहि=रोती है ३७८
रत=लाल ३४, रात्रि ५७, ऋतु ३०३
रतन्न=रत्न ५६६, ६३८। नेत्र ३६६
रत्तउ=लाल ४७२
रत्तड़ा= ,, ४५६
रत्ता= ,, रक्तवर्ण ४७४, ५७४
रमतां=रमण करते हुए ५६१
रयबारी=ऊँटों का रखवाला ३१०
रलि मिलयउ=हिल मिल जाओ ३१८
रळी=आनंद, मौज ३५१, ५५६
रवंद=तेज, जोरों का २८४
रसवेलि=रस की लता ६१०
रहत=रहती ४१५
रहति=रहती ७३
रहइ=रहता है ७०, १७३, २५४। रुकता है २७१
रहउँ=रहूँ २६३
रहउ=रहो, रहते हो, रहे २२५, २५४
रहतउ=रहता ६५
रहां=हम रुक जाती हैं ६३
रहाइ=रहे, रहा जाय २७६
रहि=रह ४११
रहियउ=रहा ६५, २४३, २५६, ५६४। रुक गया, रह गया २७१
रहिया=रहे, रह गए, रुक गए, थक गए, हार गए २७६, ६१५, ६७४
रहियाह=रहे ११३, २४१
रहिस्सि=रहता है २७३
रहु रहु=रहो रहो, बस बस २२१
रहेस=रह जा ३२७
रहेसि=रहूँ, रह जाऊँ ६५६
रहेह=रह जा ३१७
रह्यउ=रहा २७४, ३७३
रह्याँ=रहने से २५२
रह्या=रहे १६५
राँगाँ=रानों से ४६२
राँणी=रानी ४, ६, ७, ६, ७७, ७८, १००, १०२, ५२७
रा=का, के ४२, १०३, २३६, ४४२, ५८५
राइ=राजा ८०
राउ= ,, ४
राऊ= ,, १
राखइ=रखता है ५५७। रखे, रोके ३४८
राखउ=बचाओ २३२
राखण=रखना, रोकना ८०, ३२७
राखतां=रखती ४१६
राखिजइ=रखी जानी चाहिए २८७, ४५३। रोक लीजिए १०२,
राखियउ=रखा, रोका १०४, २११
राखिया=रोके हुए २३५
राखी=रखी ११
राखीयउ=रखा ३३६
राखै=रखता है ३३०
राणाँ=मोद, रानों में ६२७
राज=आप ८, ११८, ६४४। राज्य १७६
राजदुआरि=राजद्वार में ३४५

राजदुवारइ = राजद्वार में ८४
राजदुवारि=राजमहल में ६५
राजवियाँ=राजाओ, राजवशियों में ३
राजाँन = राजा लोग ८५
राजिद=स्वामी, राजा, पति ३५०
राज्ञि = आप ४०४
राज्यँद=राजन्, प्रियतम ११५, २५४
रात=रात्रि ३६४, ४६०, ५०१, ५२५
रातइ=रात को २७७
राता=रक्त वर्ण, लाल ३६६
रात्यूँ = रातोरात १८६
रायगण = राजागण, राजमहल का आँगन ८६
राय=राजा ६०, १००
रायजादी=राजकुमारी ५४०
रालि = बाँग ५८५
राव=राजा ५२
रावळा = राजमहल के अन्तःपुर ३
राह=राहु ४६६
रिउ=का ४५०
रिठ = शीत २५७
रिड्डु=दुख,कष्ट ६६०
रिति=ऋतु में २५३, २६६, २७६, २८१
रितु=ऋतु ४१
रिमझिम=छमाछम आवाज ५८६
री = की ६१, १३५, १५०, २७४, २८०, २६१, ३३४, ४१८, ४५०, ५३६
रीझवइ = रिझाता है १०२
रीझी=प्रसन्न हुई ४
रीठ = कड़ा, अत्यत तीक्ष्ण २६१
रीस = रोष, क्रोध २१८, ५६२
रुत = ऋतु १४५
रुति=ऋतु २४६, २४७, २४६, २५२, २५६, २६०, २७४, ५६५
रुत्ति=ऋतु २७७
रुळियाइत = आनंदित ६७१
रूँआळियाँ=रूपमयी ४८२
रूँख=पेड़ १५८, ४३७, ६६१
रूँन-०नी=रोई १५६, ३७७
रूअड़उ=अच्छा ३२२
रूखडउ=वृक्ष ५५५
रूडा = भले ११४
रूनी=रोई ३७६
रूपकउ=चाँदी (का गहना) ४६४
रे = अरे ४६, ३३२, ३३४
रेस=लिये २६४
रेह=रेखा ३१, ५७४
रै=के ५८६, ५६१
रोइ=रोकर ५०२, ५१०
रोकियउ=रुक गया=३८१
रोवहियाँइ=रोते हैं, रोए २०३
रोही=उजाड़, जंगल ५६८, ६३२ (क, ख)
रौ=का ५८२

ल

लक = लचकीली, बाँकी ४५४। कमर ४६०, ४६१
लकी=कटिवाली ८७
लक्कि = कमर ६३६

लंघण=लंघन, उपवास ४३१
लंघियउ=लाँघ गया, लाँघा ६४७
लंघिया=लाँघ दिया ६४८
लंघी=उलाँघकर ६२
लंछण=दोष, लाञ्छन ४०२
लंबउ=लंबा ३८४
लखावइ=दूत करता है (?) ४१०
लइ=लेकर ३६, ११५, ४३७ । ले ८८, १२०, १२१, १२२
लकड़ियेह=छड़ी से ५६१
लक्ख=लाख ४५८
लख=देख, समझ १११
लखण=लक्षण ४६६
लग=तक १२३, १२५-१३४, २७३, २७४, ४२०, ५६४
लगइ=लगता है २५५ । लगातार, निरंतर ३६४ । तक ४२०
लगाइ=लगाता है ६३४
लगाई=लगाकर ५६६
लगाड़ियाँ=लगाया ३६६
लगि=तक १२०, १२१, १२२
लगे=लगकर ७४
लग्गइ=लगता है ६८ । लगते ही ४७१
लग्गी=लगा, चुभा ७४
लग्गा=लगा २० । लगे २००
लग्गि=लगकर ५१२
लग्गी=लगी ३२१
लग्गै=लगते ही ४७२
लगाइ=लगाकर [illegible]२
लगावणु=लांछित करने २७२

लगम=लगाम (नकेल) ३१२, ५००
लज्जि=लज्जित हो ५०
लड़ंग=घोड़ा २२७
लड़ाइ=लाड़ प्यार करके ४१७
लध्ध=ली, पाया १६, ३८१, ६०६
लथबथती=डगमगाकर ५०४
लबूकी=डहडही ३६०
लल्लउ='ल'कार, 'ल'वर्ण १४२
लवइ=बोलता है ५२०
लवंतउ=बोलता हुआ ३४
लहत=लेता है ८३
लहि=ले ३५
लहइ=लेता है, ले १११ । पावेगा ४२८
लहकी=लहलहाई ३६० (ज. थ.).
लहकि=झपटकर ३७२
लहर=तरंग, लहर २६८, ६१२
लहरी=लहरें ५५६
लहाँ=हम पावें ३२३
लहाँइ=पाता है, लेता है २८० । पाती, लेती २७०
लहि=लेकर, देखकर ५०१
लहिरी=लहरें ३
लहिस=पाओगे ६२६
लहुड़ी=छोटी ६१३ (न)
लहेस=लूँगा ७० । पावेगा १७८
लहेसि=पाओगे ४२६
लांबा=लंबे २०५
लाँबी=लंबी ४५, २७१, ३८४, ४१०
लाइ=लगाती है ५०४ । लाकर ५८१

लाख पसाव=दानविशेष जिसमें लाख का दान किया जाता है ७४ (देखो-टिप्पणी)
लाखाँ=लाखो ६३
लाखीणा=बहुमूल्य ४३३
लाखे=लाखों २२७, २३३, ३७०
लागंत=लगता है २६७, २६८
लागइ=लगती है ४१२, ४५८
लागउ=लगा (झपटा) २६७। लगा हुआ ६४२
लागा=लगा ३८। लगे हैं ६४८
लागि=लगी ४१५
लागी=लगकर १५२। लगी ३७४, ५४१। लग गई ५०२, ५०३
लागे=लगता है २४५, ३६६
लागो=लगा ३००, ३५६
लाज=लज्जा ३२५, ३८४। लगाम ३४६, ३४८, ४४७
लाड=लाड़ प्यार ४१७
लापसी=लपसी ५८७
लाभे=प्राप्त हो सकती है ४७७
लाय=लाता है ४७२
लिखताँ=लिखते हुए १४१
लिखि दे=लिख दे ६५
लियंति=जिताता है ५३८
लियइ=लिये, कारण २४६। लेकर, लेती है २६८
लियउ=लो १२१
लियाँ=लिये हुए
लिहइ=लिखती है ५७७
लीजइ=छीन ली जाती है ६३२
लीध=लिया १८७
लीधी=ली ५७१
लीय=लेता है १५२
लीया=ले लिया ५७१
लीहटी=रेखा १३७
लुडंदउ=लुटता हुआ, शीघ्र ३८७ (च)
लुघ्घ, लुघ्घी=लुब्ध १५, १७, २०६
लुबधा=प्रेमलुब्ध ५६२
लुभाइ=लुभाकर २५४
लूँगे=लवग की ५६१
लेखणहार=लिखनेवाला १४०
लेखि=लेख २७३
लेटियउ=लेटा ५००
लेसि=लेता है, ग्रहण करता है १५७
लेगा, पावेगा १७७। लूँगा २२५
लेस्याँ=लेंगे हम २२७
लैकार=लयपूर्ण ध्वनि ६६४
लोइ=लोग, लोक ७, १५६, २१३, ४०२, ४८५, ६६८
लोद्र=देशविशेष, जैसलमेर १६०
लोपाँ=हम उल्लंघन करें ३२३
लोर=टेर, शब्द ३०, ३१, ३२
ल्याव=ला १०१
ल्यावइ=लावें १०२

व

वखाँण=वर्णन ६७२
वंन्न=वर्ण ४६४
वइठी=बैठी ५४५
वइराग=वैराग्य, विरक्ति, विकलता १७१

वइरी=वैरी ३८५
वइसइ=बैठता, बैठे ११६
वउळाइ=भेज ३७१
वउळावी=भेजकर, पहुँचा कर ५४२
वउळावा=बिताओ ६३१
वउळिया=पार किया, लाँघा ३८५
वग=बाग, लगाम ३२४ । शाला, वर्ग, झुंड, टोला ३०७, ३३३
वचन=वचन ३३५
वचार=विचार ४८१
वचाळइ=बीच में ४३५
वडउ=बड़ो, बड़ा ७८
वडि[illegible]=[illegible] कहने लगा २६७
वडु=[illegible] ४२४, ४४६
वड[illegible]=[illegible] हृदयवाला, महामना २८१
वन=वन २६५
वणा=[illegible] ६६१
वणराइ=वनराजि, वनपंक्ति ४६८
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ४२८
[illegible] २१७
[illegible], [illegible] २६८
[illegible] १८८
[illegible] ७५
[illegible] ३३२, ५५७, ५५६
[illegible] ४८३

वनखँड=वनराजि, जंगल का भाग २८४, ४१६
वनि=वन में १२८
वयठउ=बैठा ५६१
वयण=वचन २५, १६८, ४११, ४१२
वयणाँ=वचनों ६२१
वयणे=कहने से २७५
वयरी=वैरी २६१
वर=पति २८ । सुन्दर ४६१ । भले ही ६५६
वरख=बरस कर ५६५
वरखा=वर्षा २७४, २७६, ५६५
वरग=(ऊँटों की) शाला ३१६
वरखइ=वर्षा ५६४
वरणा=वर्णवाले ६५७
वरदत=धूमधाम से, श्रेष्ठ कुल १०
वरन=वर्ण रंग ४७५
वरस=वर्ष ६१, ४५०
वरसइ=बरसा १२५
वरसाँ=वर्षों ६१, ४५०
वरसाळइ=वर्षा ऋतु में २७७
वरसि=बरसकर १८१, २६७
वर्ण=रंग ८३
व[illegible]=[illegible] २६४
वळावणा=[illegible]ाने ६३१
वळणहार=चलनेवाले ३७४
वल्लहा=प्रियतम, प्यारे, प्राणवल्लभ २२, १५५, २८७, २५५, २५६, २६१, २६२, २८८, ३०६, ४१८
वलने=चलने पर ३७८

वळंतइ = जलते समय, बलते समय ४६८, ४६६
वळइ=लौट चले (विधि) ४४४
वळउ = जाओ ६१४
वळती=लौटते, उत्तर में ६६३
वळाव्यउ=भेज दिया, चला दिया ३६०
वळि=फिर १५३, २३६, ३६७, ४८६ ५१०, ५५६, ६४२ । बलिहार होना ५३०
वळियाँह=लौट आईं १५३
वळिहारी=बलिहार होना १७६
वळी=लौटी २७४
वळे=फिर ३४७, ४२२
वळयउ=लौटा ६५०
ववळाइ=भेजकर ३७२
वसइ=रहता है, बसता है ७४, १२७, १२८, १७५, २०१, ५१२, ५१५, ५२०
वसत्त=वस्तु ५०६
वसाळ=मेड़ ४३५
वसेस=बसते हैं ३६५
वहइ = बहता है, जाता है, चलता है ६०, ३३८, ४२४
वहउ = चलते हो ६२८
वहताँ=बहते हुए, चलते हुए ३३८
वहाँ=चले, बढ़े ४४६
वहि=चलकर ४६८
वहिळउ=शीघ्र, जल्दी १४२, १५५
वहिस्याँ = हम चलेंगे १०७
वहेसि = बनाऊँगी ६२, चलेंगी ६३
वहेसी = बहेगा, चलेगा १४७, ३२४
वाकडमुहाँ = वक्रमुख, बाँके मुखवाले २२७
वाँचण=बाँचने को, पढने को १४४
वाँण=बाण ४१२
वाँणि=वाणी ४६०
वाँध्यउ=बाँधा ३६२
वाँसइ=पास ३६८ । पीछे ६२५
वाइ = हवा, वायु ५८, २४०, २५७ । बजती है, चलती है २७७
वाइस=कौवा १५७
वाउ=वायु ७४, २६७
वाग=बागडोर, लगाम ३४५, ४११
वागरवाळ=ढाढी, याचक १०५, १८७
वाजंती=बजती हुई ५४०
वाजइ=बजता है २६६, २६८, ३५६ । बज, चल १२६
वाज्यउ=बजा ३५१
वाजा=बाजे ३५६
वाज्या=बजे ३४६, ३५२
वाटइ=मार्ग पर ६०, ३५६
वाटड़ी=बाट, मार्ग ३५६
वाटली=पात्र ५०५
वाटि=बची ६०६
वाड़ियाँ=वाटिकाओं में ५८८
वाड़ी=बाड़ी, वाटिका, ७३ । घर ३८३, ५३२
वाधाऊ=बधाई देनेवाले ५१६
वानी=वर्ण के ३४३
वाय=वायु २६६, ४७२

संभरउ=स्मरण किया १८
संभरया=याद किया ५४, ५५
संभळि=सुन ८०, ५४७
संभळी=सुनी ६४२
संभार=सम्हालकर, सम्हाल ६७,१४८
संभारिया=स्मृत, याद किये हुए १८०
संभारयउ=याद किया २४३
संभाळ, संभाळ=याद कर करके ३८३
सँभाळूँ=सम्हालूँगा ३२०
संभाळेह=सम्हाला ६३७
संभाळै=सम्हालती है ५८५
संमुहा=सामने, सम्मुख ७३
स=वह, सो ३३,१४७, २८६, २८७। अवधारणसूचक व पादपूरक अव्यय ११, १६, १४४, १७४, ३४१, ४२६, ४३०, ४८१
सउ=सो, वह २४, २०१। सौ संख्या १८६, १६१, २३०, ५१५, ५२०
सउसहसे=सौ सहस्र, एक लाख २३०
सकइ=सके, सकता है १६७
सकती=कसकर, सख्ती से ५००
सकूँ=सकता हूँ ४०४
सखरौंह=शिखरों पर २७१
सखिए=सखियाँ, सखियो २३, २६, ५३२, ५३५। हे सखी ५२६
सखियाँ=सखियो ५०१
सख्ख=साख ६७१
सगळाँ=सबके ४०
सगळा=सब ६५४, ६६३
सगळाइ=सभी ४७१
सगळी=सब, समस्त ४४६
सगाइ=संबंध, विवाह संबंध १
सगुण=गुणवान् ३८६, ४०५, ६७२
सगुणाँ=गुणवानो (के) ५६८
सगुणी=गुणवती ३४४, ४५६
सघण=सघन ५०८
सघळी=सारी १७८
सचेती=सचेत, सावधान २४०, ६२१, ६२२
सचउ=सच्चा २३८
सज=सजित ३४३
सजण=सज्जन, प्रियतम ५६०
सजल=स्वास्थ्यप्रद ४८५। जलता हुआ, उज्ज्वल ५०६। स्वस्थ, ताजा ६६८
सजि=सजाकर ३४६, ३६४
सज्जण=(सज्जन) प्रियतम २३, २५ ५६, ५६, ६१, ६८, ७०, ७३, ७४, १५८, १७५, १७६, १७६, १६६, २१६, २३४, ३१८, ४२०, ४२१, ५०६, ५३०, ५३२, ५३३, ५३४, ५४१, ५५३, ५६३, ५८१
सज्जणाँ=प्रियतम, ०से, ०की, ०का ०को, ०ने २०, १६२, १७६, २०४, २०५, ४१७, ४२२, ५१६। प्रेमी, ०से ४८७, ५३४। प्रेमियों, ०के १६१, ५२१। प्रियतमा ४०६
सज्जणा=प्रियतम १५४, १७२। ०की २०४
सज्जणिया=प्रियतम १४८, २७१, ३७२

सलूणी=लावण्यवती, सलोनी ३६३
सळ=वल २१६ । शलाका ४६२
स=सळइ=हिलती-डोलती ६०३
सल्ल=शल्य १६१, ३६६, ५२१
सल्लिया=सालते रहे ५६
सल्हियाँ=साली, व्यथित किया ५६
सव=सौ ५१२ । वही ३०३
सवळी=सब ३२५
सवाद = स्वाद, रस २५२
सवारि=सजाकर ५६५
सवि=सब ३
ससदळ=चद्रमा ४७६
ससनेही=सच्चे प्रेमी २२, ५८१, ६७४
ससहर=शशधर, चद्र ३२
ससिहर = शशधर ५७०
सहकार=आम्रवृक्ष ६७३
सहगाउ=सदा २६१
सहरॉइ=शिखरों के १५२
सहस=सहस्र २३०
सहसे = हजारों २३३
सहा = सहनेवाला ३६०
सहाइ=रक्षा, सहायता २७६
सहाव=स्वभाव २७
सहावो = स्वभाव २३४
सहि = सभी ३६८, ५६०
सहिए=सखियाँ, ० ने ५१५, ५१६
सहित=समेत, साथ ४५५
सहिनाण=चिह्न ३८२, ४४६
सही=सखी ६८ । अवश्य ही २८६ । सभी ५५७
सहीज=निश्चय ही ५१६
सहु=सब ८२, १६६, ४६८, ५१७, ५२८, ६०७, ६१४
सहू=सभी, सब २२१
सहेसि=सहूँगा १५१, ३१८, ४२६
साँझइ=साँझ को ५१७
साँझी=सध्या २५१, ५२२
सँधाण=उपचार ३३२
साँभरइ=याद आता, स्मरण होता ३७६
साँभळइ=सुनता है ३३७
साँभळि = सुनकर १८४, २०८ । सुनो ६२०, ६५४
साँभळिया=सुना, सुने ६६, ६०५
साँमि=स्वामी, मालिक ३१५, ३२३
साँमुहउ=सामने, संमुख, ३६१, ३५० ६४३
साँमुही=सामने २४१
साँम्हो=सामने २६६
साँवणि=सावन में २५१
साँवळि = श्यामल बदली ४१५
सा=वह (स्त्री) ११२, २०४, २३६, ३४०, ३५६, ४५३, ५७८, ६१३
साइ=वह ३३७
साइधण=प्रेयसी, प्रियतमा ४८३
साई=वॉग, धाड़, रुदन ३७७ ४०६
साख=फसल ११७ । साक्षी ५७०
साचइ=सत्य ५०६
साचेई=सत्य ही, सचमुच ही २०५

साजण=प्रियतम ५४, ५५, १०४, १६५, ४६४, ५१२, ५५६
साजनिया=प्रियतम ३७५
साजणां=प्रियतम से ५११
साजि = साज-सामान ८१
साटइ=बदले में, बट्टे में ४५८
साटविनु=बदले में, खरीदकर ? २३३
साठे=साठ सहस्र ६६२
साढिया=सांढनी सवार ८१
साथइ=साथ में ६१७
साथि=साथ में ५६६
साद=शब्द, आवाज २४५, २५२, ३८४, ३८५, ६०५
सामहलि=सामने ५२२
सामुहउ = सम्मुख ३६३
साम्हउ=सामने ४४७
साम्हाँ=सामने, ओर ४०६, ५१६
सार=रस ३५५
सायबन=बेदर्दी ४७७, ५८६
सायर=सागर ६२, ४५६, ६१२
सारँग=मयूर १७४
सार=सुधि, सुरति १६७
सारउ=सब ३२४
सारां=सुधि ६०६
सारस=पक्षी-विशेष ५१, ३८८
सारसड़ी=सारस, पक्षी-विशेष ३८६
सारहली=सार ५६
सारीखाँ=सदृश, सहज, ३, ५६३
सांगर=खेगार, वृक्ष - विशेष २६५
साल=शल्य, शूल ३०५। ढोला, साल्हकुमार ४१०
सालई=सालता है ३७५
सालण=सालने, सताने ३६
सालूराँ = दादुर, मेंढक १६८, ५६४
सालूरा=मेंढक १७३
सालूराह=दर्दुर, मेंढक ८
साले = शल्य (के) ? २६६
साल्ह=साल्ह कुमार, ढोला ७७,७८, १००, १०२, १८४, १८७, १६२, २३१, २४२, ५०८, ५६४, ६१६, ६२५, ६२६, ६५०, ६५२
साल्ह कुँवर=ढोला का नाम १४,२४ ६२, ६३, ५०७, ६१८
साल्हकुमार=ढोला का दूसरा नाम २७५, ४८६, ५२६
साव = स्वाद १३३
सावण=श्रावण १३३, १४८, १४६, १५१, २६६, २६८
सास=श्वास ३५८, ६०४, ६०६
सासरइ=ससुराल में ११, ३१६,५६४
सासरउ = ससुराल ८६
सासरवाड़ि = ससुराल ४३२
सासू = सास ३३५
साहँन = पकड़ने ४१६
साहई=सम्हालता है ८४७
साहिब = स्वामी २८, २६, ११६, ११६, १४६, १७३, २१८, २२६, २३५, ३१७, ३२४, ५१५, ५१६, ५२०, ५२८, ५२६, ५३१, ५३२, ५६२
साहिबा=प्रियतम ४८। हे प्रियतम ३८, २६६

सिंगार=शृंगार २०८, ३६४, ५६५
सिंघी=सिंहनी ३८१
सिंधु=समुद्र १८६, १६०, १६१
सिखाइ=सिखा १०६, १८३
सिणगार=शृगार २१४, ३०३, ३४७, ४८०, ५३६, ५६५, ५७१, ५७६, ५८०, ५८६, ६२३
सिध=सिद्धि ३४०, ४०७
सिध्ध=सिद्ध, योगी २२०
सिध्धावउ=सिधाओ, प्रयाण करो ३४०, ४०७
सियाइ=सुहावनी ४५६
सिर = शिर ३५७ । ऊपर, पर ५४५, ६१६
सिरजियाँ=बनाया ४१४,-४१५
सिरजिया=सिरजा, बनाया ४१६
सिरि=शिर पर ६३६, ६५८, ६५६ । ऊपर, पर, में २८, २४४, ३६७, ४२३ । लड़ी, सुमेर २३०
सिसहर = शशधर, चद्र १३, १२६
सिहरॉ=सिखरो के २६८
सींगण=नरसिंहा ४१६
सींचती=पानी निकालती ६५६
सींचाण=बाज, पक्षी विशेष २६७
सीचाणउ=बाज २११, २१२
सींची=सींची गई २६१, ३६२
सी=शीत,-सर्दी २७७, २६६, ४३६ । जैसी ४७८
सीख=बिदा १०६, २१०, २७६, २७८, ४०६
सीधा=सरल ५५७
सीय=शीत २८८, २६०
सीयाळइ = शीतकाल २७७
सीळ=शील ४५१
सीह=शीत २८६ । सिंह ४५६
सुं=से ६७, २५२ । उसको ६५७
सुँणे=सुन ४३८
सुंदर=सुदर ३६४, ४६६, ६०२ । हे सुदरी ५४६
सुंदरि=सुदरी २४, ८७, २३८, ३२१, ३६७, ४८१, ५७१, ५७७, ६१७, ६७०, ६७२
सु=पाद-पूरक अव्यय ७६, १०४, २१३, २३३, ४६८, ५६३ । वह, सो ५१६, ५३३ । अच्छा १६७, २२६
सुकच्छ = सुंदर कछवाली ४५२
सुकमाळ = सुकुमार ४७६
सुकोमळी=सुकोमल ४५२
सुक्ख=सुख ५४६
सुगंधउ = सुगधित २२३
सुगधी=महक ४६८ । सुगधित ५०५, ५०७
सुगात = सुंदर शरीरवाली ६५२
सुगाळ=सुकाल ११
सुगुणत्तसुगुणी ६५२
सुगुणी=सद्‌गुणोंवाली ४५३
सुचग=अत्यत सुंदर, बहुत अच्छा ३१०, ४५३, ४६२
सुचीत=मनोहर, सुंदर २७४

सुजाँण=चतुर १४२, १५५, १८४, १९२, ५६५, ५६६, ५९९, ६७२
सुणउ=सुनो ९७
सुणावे=सुनावे ३९८
सुणि=सुन २१, २३८, २१४, २४६, ३९७, ४३१, ४४८, ४९०, ६१९, ६४७, ६४९, ६७०
सुणियउ=सुना १९२
सुणिवा=सुनने को ९९
सुणी=सुनी ५८, १५६, २१७
सुणेसि=सुनूँगी १४५
सुणेसी=सुनोगी ५४४
सुणेह=सुनकर ४४४, ६५०
सुदु=सुदूर ? ३८५
सुधू=सुकन्या ८४
सुण्या=सुने २५
सुवराळ=पानी ४७३
सुपनंतर=स्वप्न में ५१३, ५५७
सुपनंतरि=स्वप्न १७०
सुपनई=स्वप्न में १४
सुपनइ=स्वप्न में ५०२, ५०३
सुपनउ=स्वप्न ५०३, ५१८
सुपना=स्वप्न
सुपनै=स्वप्न में ५५८
सुभराज=शुभराज, आशीर्वचन ४४७, ६४३
सुभाइ=स्वभाव ४३१
सुमर=याद करके १५६
सुवा=सुग्गा ३९९
सुरंग=सुंदर, सुहावना, सुरंगा, रसिक २११, २५६, ६५४, ६६२

सुरंगइ=सुरंगे २५२
सुरंगउ=सुरंगा ६६९
सुरंगा=सुरंगे, हरे भरे ५४६
सुरंगी=रँगीली ५२६
सुर=स्वर १८८
सुरत्त=याद, स्मृति १३५
सुरपति=इंद्र ९३
सुरह=सुरभि, सुगंधित द्रव्य ५०५, ५०७
सुरहउ=सुरभि, सुगंध १९०
सुरहि=सुरभित २२३
सुवइ=सोता है ६०८
सुसेत=सुश्वेत, उज्ज्वल ४५७, ६६६
सुहंगा=सस्ते २२६
सुहामणउ=सुहावना ११०, २४५, २५१, ३०२, ४३२
सुहाँमणा=सुहावने ६५४
सुहावउ=सुहावना ४८५
सुहावा=सुहावने २६८, ५३५
सुहावी=सुहावना ५८४
सुहिणइ=स्वप्न को ५१५
सुहिणउ=स्वप्न २४, ५०१
सुहिणा=स्वप्न ५१२, ५१४
सूँ=से ६, ५७, ७७, ९२, १३७, १५६, १७३, २१८, २४८, ३४२, ३६२, ५०१, ५४७, ५६४, ६१७, ६२०, ६२६, ६३३। साथ, से ६१८
सूँनउ=सूना २५४
सूँमर=ऊमर सूमरा ५१७

सू=सो ५३३, ५६०
सूकइ=सूखता है १५८
सूकण=सूखने ३७४
सूका=शुष्क ५३३, ५६०
सूकिया=सूखी २४८
सूकी=सूखी १३५
सूड़उ=सुग्गा ४०२
सूड़ा=हे सुग्गे ३६७, ४०५
सूधी=सीधी सादी, १०३ (छ)
सूताँ=सोते हुए ३०५, ३०६
सूती=सोई, सोती, सोई थी, सोती हुई १४, ४७, ४८, ५४, ५५, ३४१, ३४२, ३७८, ५०४, ५०५, ५०७, ५१२, ६०१, ६१०
सूधा=सीधे सादे, सरल ६४०, ६५८
सूना=सूने, शून्य ३५८
सूनी = खाली ५०
सूर=सूर्य ४६६, ५५१, ६४६
सूरिज=सूर्य १३०, ३०१
सूवउ=सुग्गा ४०६
सूवा = हे सुग्गे ३६८, ४०१
सूळी = सूली १६६
से=वह ६७, १६५, २००, ३८०
सेकंताँ=सेकते हुए ३२१
सेकइ=सेकता है २०६
सेजइँ=सेज में ४७, ४८
सेझडी = सेज, शय्या १६६
सेरियाँ=गलियों (में) १०६
सेलार=घोड़ों की जाति २२६
सेवंत=सेता, पाता ४१४
सेवार=शैवाल ६६४
सेवियइ = सेवन करना चाहिए २६४
सेहर = शिखर १२८
सैं=हम ४३८
सै=जैसे, से ४६६
सैण=मित्र ४३८
सो=वह १६४, ३०८, ३०६, ३६६, ४२६, ४७२। सा (परिमाण सूचक)। सौ ५६७
सोइ=वह, वही, उसे, उसी, २३, १११, १७०, ४२६, ४६४, ५१०, ५३२, ५४१
सोऊँ=सोती हूँ ७६, ५११, ५१४
सोग = शोक, दुःख ३५७, ६६५
सोने=सोना ५३६
सोरंभियउ=सुरभित ५५०
सोळ=सोलह संख्या ३६४
सोवँन=सोने का ५६४
सोवन = सुनहला, सोनेके, सोना ८७, २०६, २४३। सुहावने ४७१
सोवन्न = सुवर्ण, सुवर्णमय आभूषण ४६४, ४७५
सोव्रन्न=सुवर्ण ४६३
सोहड़=सुभट ५६७, ५६६, ६०७
सोहण=स्वप्न ५१०
सोहणा=सपना ५११
सोहणो=सपना ५०६
सोहली = एक आभूषण विशेष ४६५
सोहागण=सौभाग्यवती ५१०
सोहागिण=सौभाग्यवती, पतिसंयुक्ता २६०, २६१, ६७२
सोहामणइ=सुहावनी २६८

हसि नइ=हँसकर २२१, २२६
हसिसी = हँसेगा ७
हस्ती=हाथी ११५
हाँरग=हानि ६२७
हाँसउ=हँसी ७
हाथ करत=हाथ में लेते ४१६
हाथाळी=हथेली १५६
हाथि = हाथ में ५०५, ६५६
हाथे = हाथों में ३४६
हारियउ=हारा ५६०
हारिस्यइ=हार जायँगे ४२२
हालती=चलती है ४७४
हाल्यउ=चला ३७५
हिंडोलण हारि=झकझोरनेवाला ४७
हि = ही, पादपूरक अव्यय ७२,१०८, २०६, ५०२
हित=प्रेम ४१७
हियइ=हृदय में ३६६, ५१४
हियउ=हृदय ६१
हियड़इ=हृदय में १५८, १७५, ३०५ ३६७
हियड़उ = हृदय १६३, ३६०, ३६२ ५२६
हियड़ा = हृदय १६०, ४१६
हियाँह = हृदय से २०३
हिया = हृदय २१, ३०३, ४२२
हियाह=हृदय ५३३
हिये = हृदय में ३५८
हिरणाखी = मृगनयनी २२१, २२६
हिरणी=हरिणी २८२
हिलोर = लहर १६७
हिळूसइ = लालायित होता है ६१
हिव = अब २७६, ३२५, ३४१, ४४०, ४६०, ५६७, ६४६
हिवइ = अब ८
हिवड़उ=हृदय ६११
हिवडे = हृदय में ६१२
ही=भी, ही २१, ५०, ७४, १११, १४०-१४४, १७५, २००, २०१, २१४, २२५, २२७, २३३, २५७, २५८, २७६, ४०७, ४३०, ६२६
हीझरियाँह=झरने लगी ३६७
हीण = क्षीण ४६२
हीणउ=हीन, विना, रहित ५७६
हीयइ = हृदय में ६३३
हीयउ=हृदय ३८६
हीयडे=हृदय पर ५०६
हीया=हृदय १४३
हीयाह=हृदय में ५३०
हीर=हीरा ४५४
हु=मै २३५। होऊँ ३१८
हुंकारड़उ=उत्तर, हुंकार ६११
हुंता = से २०३। थे ५०६
हुति=होता, होते ७३, १६३
हुती=से ४३७। संभाव्य बात, होनी ४४६
हुँदउ=का ३०७
हुअउ = हुआ ४०, १२१, ४८६
हुई=होवे, होगा, हो रहा है, हो जाय १३१, ३४०, ५८४, ५८६, ६२७
हुइ जाइ=हो जाय ५०३
हुइ रह्यउ=हो रहा ४६

हुइस=होगा २७३

हुइ=होगा १४२। हुई, हो गई १६५ २०८, २४०, ३७२, ४०४, ४३७, ४४४, ४४५, ४४८, ५१६, ५८२, ५८६, ६२२

हुउ=होओ ६१६

हुता=थे ५३३

हुय=हुआ ५५८

हुयउ=हुआ ६५०

हुया=हुए, हुए हुए १४८, २५३, ३४६, ४२७, ५१६

हुवइ=होवे, हो, होता है ६८, २११, २२२, ५४६, ५४८, ५७२, ५६७

हुवउ=हुआ १०, १०१, २५७, ४६३, ५४५, ५४८, ५५१, ६५१

हुवा=हुए ५३२। चले गए ४२१। हो गए ४४२

हूँ=मैं ४३, ५१, ७२, १५१, १६३, १७३, २०६, २२५, २६३, २६३, ३१३, ३१८, ३४१, ३६२, ४६७, ५०२, ५०३, ५१२, ६२०, ६३५ से १८७, ३४२, ४२०, ४६३, ४६४

हूओं=हुए नाद के बीचों से ६६१

हूँतो, हूँता=से १८६, १८५, १६४। से ५३०

हूँती=से ३७० थी ५२६

हूआ=हुए ३८५

हूई=हो गई ३७८

हूया=हुए २०५

हूवउ=हुआ ५८०

हैवर=हयवर, श्रेष्ठ घोड़े ५६५

हेक=एक १३४, ४०४, ४७५, ५१४

हेकली=अकेली ३२३

हेड़ि=झुंड २२६

हेमाँगिर=हिमालय ५२६

हेमाळे=हिमालय में ४७७

हेरा=दूतों द्वारा खबर ५६७, ६२६

हेरा हुवइ=खबर होती है ५६७

हेलउ=पुकार ३७१

हेळ=खेल, क्रीड़ा ५११

है=है ३८५

होअइ=होवे ५०६

होइ=हो, हो जाय, हो जाता है, हो सकता है, होकर ६६, १८१, २६२, ३०६, ३१७, ३८६, ४८५, ५०२, ५०८, ६६८

होई=हो गई है ४४२

होय=हो, होकर, होता १६५, ३२८, ४८६, ५४६

होळी=होलिका १४५

होसइ=होगा ५३६

—०—

प्रतीकानुक्रमणिका



प्रतीकानुक्रमणिका
